

दूसरा अध्याय

७७ वां प्रकरण

वैदेहकरक्षणांम् ।

इस प्रकरण में व्यापारियों से प्रजा की रक्षा किस प्रकार की जावे-इस विषय का वर्णन होगा।

संस्थाध्यक्षः पण्यसंस्थायां पुराणभाण्डानां स्वकरणविशुद्धानामाधानं विक्रयं वा स्थापयेत् ॥ १ ॥ तुलामानभाण्डानि चावेक्षेत पौतवापचारात् ॥ २ ॥ परिमाणीद्रोणयोरर्धपलहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ३ ॥ पलहीनातिरिक्ते द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ तेन पलोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ५ ॥ तुलायाः कर्षहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ६ ॥ द्विकर्षहीनातिरिक्ते षट्पणो दण्डः ॥ ७ ॥ तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ८ ॥

संस्थाध्यक्ष, (माल विक्राने का सरकारी अध्यक्ष) बाज़ार में लेख आदि से अपनी सिद्ध की हुई व्यापारी की वस्तुओं को कहीं भरने दे या कोई बेचना चाहे-तो विक्रवादे । तराजू बांट और नाप के बतनें को भी यह अध्यक्ष पड़तालता रहे, जिससे तोल में कमी न हो जावे । परमाणी या द्रोणी तोल के नापने वाले बतने या तोल में ही आधा पल कमती बढ़ती हो जाना कोई अपराध नहीं है । यदि पल से अधिक कमती बढ़ती-हो जावे, तो वारह पण दण्ड होना चाहिए । इसी तरह पल के घटने बढ़ने से दंड की व्यवस्था भी घटती बढ़ती जावेगी । इसी प्रकार किसी एक तुला में एक कर्ष का फर्क रह जावे, तो कोई दोष नहीं मानना चाहिए । दो कर्ष घटने बढ़ने पर छः पण दंड किया जावे । इसी तरह कर्ष के घटने बढ़ने पर दंड की व्यवस्था है ॥१-८॥

आदकस्यार्धकर्षहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ९ ॥ कर्षहीनातिरिक्ते त्रिपणो दण्डः ॥ १० ॥ तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ११ ॥ तुलामानविशेषाणामतोऽन्येषामनुमानं कुर्यात् ॥ १२ ॥ तुलामानाभ्यामतिरिक्ताभ्यां क्रीत्वा हीनाभ्यां विक्रीणानस्य त एव द्विगुणां दण्डाः ॥ १३ ॥ गण्यपण्येष्वष्टभागं पण्यमूल्येष्वपहरतः पण्यवतिर्दण्डः ॥ १४ ॥ काष्ठलोहमणिमयं रज्जुचर्ममृण्मयं सूत्रवल्करौममयं वा जात्यमित्य जात्यं विक्रयाधानं नयतो मूल्याष्टगुणो दण्डः ॥ १५ ॥

आदक तोल के आधा कर्ष कमती बढ़ती हो जाने पर कोई अपराध नहीं होगा और इससे अधिक कमती बढ़ती होने पर तीन पण दंड होवे । इसी प्रकार कर्ष के घटने बढ़ने

पर दंड होना चाहिए। अन्य तुला या मान के विषय जो कुछ नहीं कहा गया, उसकी भी इसी कथन से व्यवस्था कर लेनी चाहिए। जो व्यापारी, अधिक तोलने वाले तराजू और बाटों से खरीदे और कम तोलने वाले तराजू और बाटों से बेचे, उसे दुगुना दंड होना चाहिए। गिनकर बेची जाने वाली चीजों में मूल्य का आठवां भाग ठग लेने वाले वनिये पर द्वियानव पण दंड होना उचित है। जो व्यापारी, काष्ठ लोह और पत्थर, रस्सी, चमड़ा और मिट्टी तथा सूत, बल्कल और ऊन की घटिया वस्तुओं को धोखे से बढ़िया बताकर बेच देता है या कोठे में भर देता है, उसपर कीमत से आठ गुना दंड होना चाहिए ॥६-१५॥

सारभाण्डारमित्यसारभाण्डं तज्जात मित्य तज्जातं राधायुक्तमुपधियुक्तं समुद्रपरिवर्तिमं वा विक्रयाधानं नयतो हीनमूल्यं चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १६ ॥ पणमूल्यं द्विगुणो द्विपणमूल्यं द्विशतः ॥ १७ ॥ तेनार्घवृद्धौ दण्डवृद्धिर्न्याख्याता ॥ १८ ॥ कारुशिल्पिनां कर्मगुणपकर्षमाजीवं विक्रयं क्रयोपधातं वा संभूय समुत्थापयतां सहस्रं दण्डः ॥ १९ ॥

बनावटी कस्तूरी कपूर आदि को असली तथा जो वस्तु कश्मीर आदि देश की न हो, उसको उस देश की बताकर एवं बनावटी शोभायुक्त वस्तु बनाकर झल से बनी हुई वस्तु को असली बताकर समुद्र की रत्न आदि वस्तु को बदल कर बेचने रखने वाले पर चौवन पण दण्ड होवे। यदि यह माल असली मोल पर बेचा हो तो पहले से दुगुना और दुगुने मोल पर बेचा हो तो दो सौ पण दण्ड होवे। इसी प्रकार मूल्य बढ़ने पर दंड की वृद्धि होती जानी चाहिए। यदि कारीगर लोग कर्म और गुण में कम कीमत वाले मकान आदि को सदा के लिए बेचने के समय मिलकर किसी मकान के कमती बढ़ती दाम कर दें तो उनपर सहस्र पण दंड होना चाहिए ॥ १६-१९ ॥

वेदेहकानां वा संभूय पण्यमारुन्धतामनर्धेण विक्रीणतां वा सहस्रं दण्डः ॥ २० ॥ तुलानामानान्तरमर्धवर्णान्तरं वा धरकस्य माषकस्य वा पणमून्यादष्टभागं हस्तदोषेणाचरतो द्विशतो दण्डः ॥ २१ ॥ तेन द्विशतोत्तरा दण्डवृद्धिर्न्याख्याता ॥ २२ ॥ धान्यस्नेह चारलवणगन्धभैषज्यद्रव्याणां समवर्णोपधाने द्वादशपणो दण्डः ॥ २३ ॥ यन्निसृष्टमुपजीवेयुस्तदेषां दिवससंजातं संख्याय वणिक् स्थापयेत् ॥ २४ ॥

इसी तरह जो व्यापारी मिलकर किसी माल के विक्रय को रोक दें और समझ पर भाव से अधिक दाम लेकर बेचे तो उनपर सहस्र पण दंड होवे। तराजू बाट भाव या वर्ण के कारण जो लाभ हो, उसमें तोलने या नापने वाले की हाथ चालाकी से वस्तु के

मोल से आठवां भाग अधिक खेँच लिया गया हो-तो उसपर दो सौ रुपये दण्ड होना चाहिए इसी तरह कीमत के अधिक खेँचने पर अधिक दण्ड की व्यवस्था कर दी जावे । धान्य, घृत, तेल, गुड़, लवण, गन्ध औषध आदि वस्तुओं में कैसी ही रंग की कोई चीज़ मिला कर बेचने पर बारह पण दण्ड होवे । व्यापारी को जो प्रति दिन लाभ हो-उसका हिसाब करके अपनी वही में लिखा करे ॥ २०-२४ ॥

क्रेतुविक्रेत्रोरन्तरपतितमादायादन्यद्भवति ॥ २५ ॥ तेन धान्यपण्यनि-
चयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः ॥ २६ ॥ अन्यथा निचितमेषां पण्याध्यक्षो गृह्णीयात्
॥ २७ ॥ तेन धान्यपण्यविक्रये व्यवहरेतानुग्रहेण प्रजानाम् ॥ २८ ॥ अनुज्ञात-
क्रयादुपरि चैषां स्वदेशीयानां पण्यानां पञ्चकं शतमाजीवं स्थापयेत् ॥ २९ ॥
परदेशीयानां दशकम् ॥ ३० ॥ ततः परमर्घं वर्धयतां क्रये विक्रये वा भावयता पणशते
पञ्चपणाद्विशतो दण्डः ॥ ३१ ॥ तेनार्घवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ३२ ॥

खरीदर और बेचने वाले के बीच में संस्थाध्यक्ष को अन्न आदि टैक्स मिलता है उससे अलग एक राशि बन जाती है । इस से व्यापारी धान्य आदि वस्तुओं की ढेरी सकारि आज्ञा से खरीदे । यदि कोई ऐसा न करे-तो उनकी ढेरी को पण्याध्यक्ष जब्त करले संस्थाध्यक्ष को चाहिए, कि वह धान्य आदि वस्तुओं के बेचने खरीदने में ऐसा व्यवहार करे-कि जिस से प्रजा के लिए सुखकारी हो सके जो वस्तु संस्थाध्यक्ष की आज्ञा से बेचता है, उनमें अपने देश की वस्तुओं पर प्रतिशत पांच पण लाभ लेना चाहिए । विदेश की वस्तुओं पर दश प्रतिशत लाभ होना उचित है । उस से अधिक मूल बढ़ाकर खरीदने बेचने वाले यदि पांच प्रतिशत अधिक लाभ लेवे-तो उसपर दो सौ पण दण्ड होवे । इसी तरह जों मूल्य बढ़ाया जावे, उसी प्रकार से उसपर दण्ड भी अधिक हो जाना चाहिए ॥ २५-३२ ॥

संभूयक्रये चैषामविक्रीतेतान्यं संभूयक्रयं दद्यात् ॥ ३३ ॥ पण्योपघाते
चैषामनुग्रहं कुर्यात् ॥ ३४ ॥ पण्यबाहुल्यात्पण्याध्यक्षः सर्वपण्यान्येकमुखानि
विक्रीणीत ॥ ३५ ॥ तेष्वविक्रीतेषु नान्ये विक्रीणीरन् ॥ ३६ ॥ तानि दिवसवे-
तनेन विक्रीणीरन्ननुग्रहेण प्रजानाम् ॥ ३७ ॥ देशकालान्तरितानां तु
पण्यानां ॥ ३८ ॥

यदि कुछ लोगों ने मिलकर सरकारी माल बेचने का ठेका लिया, और यदि वह नहीं बेच सके-तो उन से छीन कर दूसरे को देदेवे । यदि व्यापारी पर सरकारी माल जल अग्नि आदि से नष्ट हो जावे-तो उसे मुआफ़ कर देना चाहिए । वस्तुएं बहुत सी होती हैं इससे पण्याध्यक्ष, प्रत्येक वस्तु को उसकी मंडी में ही विक्राने दे । यदि सरकारी माल उनसे

भी न विकें-तो अन्य व्यापारी तब तक माल न बेचे-जब तक वह न विक जावे । उस माल को उस प्रकार प्रति दिन मजदूरी पर बिकवाया जावे, जिस से प्रजा को कोई कष्ट न बढ़ जावे । जो वस्तु अन्य देश या पूर्व समय में उत्पन्न हुई-उन को भी इकट्ठी करवाकर समय समय पर पर्याय्यत्न विकवांता रहे ॥ ३३-३८ ॥

प्रक्षेपं पर्यायनिष्पत्तिं शुल्कं वृद्धिमवक्रम्यम् ।

व्यापानन्यांश्च संख्याय स्थापयेदर्धमर्धवित् ॥ ३६ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे वैदेहकरक्षणां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आदित एकोनाशीतिः ॥ ७६ ॥

मूल्य बतवाई का समय, मजदूरी, व्याज, भाड़ा तथा अन्य व्यय लगाकर चतुर पर्याय्यत्न वस्तुओं के भावों को नियत करे ॥ ३६ ॥

इति श्रीकौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत, कण्टकशोधन अधिकरण में व्यापारियों से रक्षा करने का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



तीसरा अध्याय

७८वां प्रकरण

उपनिपात प्रतिकार

इस प्रकरण में दैवी आपत्तियों से प्रजा के बचाने की विधि का वर्णन किया जावेगा ।

दैवान्यष्टौ महाभयानि ॥ १ ॥ अग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मृषिका व्यालाः सर्पा रक्षांसीति ॥ २ ॥ तेभ्योजन पदं रक्षेत् ॥ ३ ॥ ग्रीष्मे बहिरधिश्रयणं ग्रामाः कुर्युः ॥ ४ ॥ दशमूलीसंग्रहेणाधिष्ठितावा ॥ ५ ॥ नागरिकप्रणिधावग्निप्रतिषेधो व्याख्यातः ॥ ६ ॥ निशान्त प्रणिधौ राजपरिग्रहे च ॥ ७ ॥ बलिहोमस्व स्तिवाचनैः ॥ पर्वसु चाग्निपूजाः कारयेत् ॥ ८ ॥

अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष, चूहे, हिसक जन्तु, सर्प और राक्षस-ये आठ दैव से आने वाले महाभय हैं । इन महाभयों से राष्ट्र की रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य है । गांव के रहने वाले गरमी के दिनों में अपने झोपड़ों से बाहर भोजन बनावे और यह भी जहां सरकारी दश कुल पर नियुक्त अफसर-जिसकी जिस जगह भोजन बनाने की आज्ञा दे, वहीं उसे भोजन बनाना चाहिए, नागरिक प्रणिधि (अधि: १-६) नामक प्रकरण में अग्नि

से बचने के उपाय बता दिए गए हैं। निशान्त प्रणिधि (अधि.१-२०) प्रकरण के अन्तर्गत राज परिग्रह नामक प्रकरण में भी ये अग्नि शान्त करने वाले उपाय लिखे हैं। पर्व के दिनों में बलि, होम, स्वास्त वाचन से अग्नि पूजा करनी चाहिए ॥१-८॥

वर्षारान्नमनूपग्रामा पूरवेलासुत्सृज्य वसेयुः ॥ ६ ॥ काष्ठवेणुनावश्वापगृ-
ह्णीयुः ॥१०॥ उह्यमानमलाबुद्धीतप्लवगण्डिकावेणिकाभिस्तारयेयुः ॥ ११ ॥
अनभिसरतां द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ अन्यत्र प्लवहीनेभ्यः ॥ १३ ॥
पर्वसु च नदीपूजाः कारयेत् ॥ १७ ॥ मायायोगविदो वेदविदो वा वर्षमभि-
चरेयुः ॥ १५ ॥

वर्षा ऋतु की रातों में नदी के समीप के गांव, पूर्व की ओर के तट को छोड़ कर शयन करें। काष्ठ, बांस के वेड़े और नावों का सदा संग्रह रखें। बहकर जाते हुए पुरुष को तूंची, मशक, नौका, काठ और बांसों के वेड़े से तिरा कर बचा लेवे। जो डूबते हुए पुरुष के बचाने का प्रयत्न न करे-उसपर बारह पण दण्ड होवे। यदि उनके पास नौका आदि साधन न हो-तो उनपर दण्ड नहीं होगा। पर्व के समय पर नदी-पूजा होनी चाहिए। अथर्व वेद के योगों को जानने वाले, या तान्त्रिक लोग, अतिवृष्टि की शान्ति का प्रयोग करते रहें ॥६-१५॥

वर्षाविग्रहे शचीनाथगङ्गापर्वतमहाकच्छपूजाः कारयेत् ॥ १६ ॥ व्याधिभय-
मौपनिषदिकैः प्रतीकारैः प्रतिकुर्युः ॥१७॥ औषधैश्चिकित्सकाः शान्तिप्रायश्चित्तैर्वा
सिद्धतापसाः ॥ १८ ॥ तेन मरको व्याख्यातः ॥१९॥ तीर्थाभिषेचनं महाकच्छ-
वर्धनं गवां श्यशानावदोहनं कवन्धदहनं देवरात्रिं च कारयेत् ॥ २० ॥ पशुव्या-
धिमरके स्थानान्यर्धनीराजनं स्वदैवतपूजनं च कारयेत् ॥ २१ ॥

वर्षा की समाप्ति पर इन्द्र, गङ्गा, पर्वत और समुद्र की पूजा करवावे। औषनिषदिक प्रकरण में कहे हुए उपायों से व्याधि और भय की शान्ति करे। चिकित्सक लोग औषध, और सिद्ध तापस, शान्ति प्रायश्चित्तों से रोग की शान्ति करे। इसी तरह संक्रामक बिमारियों की शान्ति के उपाय करते रहना चाहिए। गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान, समुद्र पूजा, श्मशान में गोदोहन, आटे के कवन्ध का दहन तथा देवता के निमित्त जागरण करे। पशुओं में व्याधि या मरी फैल जावे-तो स्थान २ पर दीपक दान और अपने २ देवता का पूजन करे ॥१६-२१॥

दुर्मित्ते राजा बीजभक्तोपग्रहं कृत्वानुग्रहं कुर्यात् ॥ २२ ॥ दुर्गसेतुकर्म वा
भक्तानुग्रहेण भक्तसंविभागं वा देशनिक्षेपं वा ॥ २३ ॥ मित्राणि वाप्यपाश्रयेत्

॥ २४ ॥ कर्शनं वमनं वा कुर्यात् ॥ २५ ॥ निष्पन्नसस्यमन्यविषयं वा सजनपदो
यायात् ॥ २६ ॥ समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत् ॥ २७ ॥ धान्यशाकमूलफला-
वापान्सेतुषु कुर्वीत ॥ २८ ॥ मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान्वा ॥ २९ ॥

दुर्भिक्ष के होने पर राजा प्रजा को बीज और खाद्य सामग्री देकर उनका उपकार करे। इस समय राजा दुर्ग या कोई सेतु बनवाना आरम्भ करदे और वह भोजन देने के ध्यान से होना चाहिए। जो परिश्रम न कर सकें-उनको भोजन बटवाया जावे तथा सुभिक्ष पूर्ण देश में भेजने की व्यवस्था भी कर दे। यदि अधिक आवश्यकता हो तो प्रजा की रक्षा के निमित्त राजा अपने मित्र राजाओं से सहायता भी लेवे। मालदार आदिमियों पर कर लगा कर या चन्दा लेकर दीनों का उद्धार करे। यदि अन्य प्रकार से कार्य न चले-तो अपनी सारी प्रजा को लेकर राजा अन्य सुभिक्ष वाले मित्र राष्ट्र में चला जावे। समुद्र, जलाशय या अन्य सजल प्रदेश का आश्रय लेना भी उचित है। वहां पर धान्य, शाक, मूल, फल की क्यारी बनवा कर खेती करवावे। मृग, पशु, पक्षी, दुष्ट जन्तु और मछली के शिकार का सुभीता करदे या इनकी प्राप्ति के देश में चला जावे ॥ २२-२९ ॥

मूषिकभये मर्जरिनकुलोत्सर्गः ॥ ३० ॥ तेषां ग्रहणहिंसायां द्वादशपणो
दण्डः ॥ ३१ ॥ शुनामनिग्रहे च ॥ ३२ ॥ अन्यत्रारण्यचरेभ्यः ॥ ३३ ॥
स्नुहिच्चारिलप्तानि धान्यानि विसृजेदुपनिषद्योगयुक्तानि वामूषिककरं वा प्रयुञ्जीत
॥ ३४ ॥ शान्तिं वा सिद्धतापसाः कुर्युः ॥ ३५ ॥ पर्वसु च मूषिकपूजाः कारयेत्
॥ ३६ ॥ तेन शलभपक्षिक्रिभिभयप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

मूषकों के भय उत्पन्न होने पर बिलाव, नकुल आदि जीवों को छोड़े। जो बिलाव नकुल को मारे-उनपर चारह पण दण्ड हो। अपने २ कुत्तों को जो रोक कर नहीं रखे-उस पर भी दण्ड हो। जंगली कुत्तों के रोक कर रखने का किसी पर भार नहीं है। सेहुँड़ (छोटा थूहर) के दूध में या उपनिषद प्रकरण में कड़ी हुई औषधों के रस में धान्य भिगो कर चूहों को खिलाये जावे-या चूहों के पकड़ने का उपाय किया जावे। सिद्ध तापस शान्ति मन्त्र जपे। पर्व के समय मूषको की पूजा कर देनी चाहिए। इसी प्रकार शलभ, पक्षी और छोटे छोटे कीटों के भय से प्रतीकार करने के उपाय जान लेने चाहिए ॥ ३०-३७ ॥

व्यालभये मदनरसयुक्तानि पशुशत्रानि विसृजेत् ॥ ३८ ॥ मदनकोद्रवपूर्णा-
न्यौदर्याणि वा ॥ ३९ ॥ लुब्धकाः श्वगणिनो वा कूटपञ्जरावपातैश्चरेयुः ॥ ४० ॥
आवरणिनः शस्त्रपाणयो व्यालानभिहन्त्युः ॥ ४१ ॥ अनभिसर्तुर्द्वादशपणो दण्डः

॥ ४२ ॥ स एव लाभो व्यालघातिनः ॥ ४३ ॥ पर्वसु स पर्वतपूजाः कारयेत्
॥ ४४ ॥ तेन मृगपशुपक्षिसंघग्राहप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ४५ ॥

हिंसक व्याघ्रादि पशुओं के भय के खड़े होने पर औपनिषदिक प्रकरण में बताया हुआ मदन रस आदि से युक्त पशुओं के शरीरों को वन में डलवादे । मदन (धतूरा) कोदों को पेट में भर कर पशुओं की लाश भी वन में डलवा देनी चाहिए । शिकारी या कुत्तों के साथ शिकार करने वाले लोग, धोखे से जाल बिछा कर पींजरो में उन्हें पकड़ ले वीर लोग कवच पहन कर शस्त्र से व्याघ्र आदि को मार डाले । जो शक्ति रखते हुए हिंसको पर आक्रमण न करे-उस पर वारह पण दंड होवे । जो व्याघ्रादि जन्तु को मार लेवे-उसको वारह पण इनाम में मिलना चाहिए । पर्व पर पर्वत पूजा होनी उचित है । इसी मृग, पशु पक्षी संघ के पकड़ने या मार देने के उपायों को समझ लेना चाहिए ॥३८-४५॥

सर्पभये मन्त्रैरोषधिभिश्च जाङ्गलीविदश्चरेयुः ॥ ४६ ॥ संभूय चोपसर्पा-
न्हन्युः ॥ ४७ ॥ अथर्ववेदविदो वाभिचरेयुः ॥ ४८ ॥ पर्वसु नागपूजाः
कारयेत् ॥ ४९ ॥ तेनोदकप्राणिभयप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ५० ॥

जब सर्पों का अधिक भय हो-तो मन्त्र विप और औषधों से वैद्य उनका प्रतीकार करें, जहां कहीं सर्प को लोग देखें-तपक कर उनको मार देवे । अथर्ववेद के जानने वाले उसका मन्त्र प्रयोग से उपचार करें । पर्व पर नाग पूजा की जावे । इसी तरह जलचर प्राणियों के भय के उपायों का अवलम्बन करना चाहिए ॥४६-५०॥

रक्षोभये रक्षोन्धान्यथर्ववेदविदो मायायोगविदो वा कर्माणिकुर्युः ॥ ५१ ॥
पर्वसु च वितर्दिछत्रोल्लोपिकाहस्तपताकाच्छागोपहारैश्चैत्यपूजाः कारयेत् ॥ ५२ ॥
चरुं वश्चरामीत्येवं सर्वभयेष्वहोरात्रं चरेयुः ॥ ५३ ॥ सर्वत्र चोप-
हतान्पितेवानुगृहीयात् ॥ ५४ ॥

राक्षसों के भय के उत्पन्न होने पर राक्षसों के नाशक अथर्व वेद के मंत्र या तांत्रिक मन्त्रों के अनुसार कर्म किये जावें । पर्व काल में वेदी के ऊपर छत्र, भोजन सामग्री, छोटी २ पताका, वकरा आदि की भेंट दे और चैत्य (देवालय के बगीचे) में पूजा करे । प्रत्येक भय में “तुमको मैं चरु अर्पण करता हूं” ऐसा मन्त्र बोलकर रात दिन हवन करे । उपर्युक्त भय से ग्रस्त प्रजा की राजा-पिता की तरह रक्षा करे ॥५१-५४॥

मायायोगविदस्तस्माद्विषये सिद्धतापसाः ।

वसेयुः पूजिता राज्ञा दैवापत्प्रतिकारिणः ॥ ५५ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे उपनिषातप्रतीकारस्तृतीयो ऽध्यायः ॥३॥

आदितो ऽशीतितमः ॥ ८० ॥

राजा, दैवी आपत्तियों से रक्षा करने के लिए माया योग (तान्त्रिक विधि) और अथर्व वेद के जानने वाले सिद्ध तापसों को बड़े आदर से अपने देश में बसावे ॥५५॥

इति श्रीकौटलीय अथर्शास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन प्रकरण में दैवी आपत्तियों के प्रतीकार का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



चौथा अध्याय

७६ वां प्रकरण

गूढ़जीविनारक्षा

इस प्रकरण में छुपे हुए प्रजा पीड़कों से रक्षा करने के उपाय बताये जावेंगे ।

समाहर्तृप्रणिधौ जनपदरक्षणमुक्तम् ॥ १ ॥ तस्य कण्टकशोधनं वक्ष्यामः ॥ २ ॥ समाहर्ता जनपदे सिद्धतापसप्रव्रजितचक्रचरचारणकुहकप्रच्छन्दकक्रार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकचिकित्सकोन्मत्तम् कवधिरजडान्धवैदेहककारुशि-
ल्पिकुशीलववेशशौण्डिकापूपिकपाकमांसिकौदनिकव्यञ्जनान्प्रणिदध्यात् ॥३॥

समाहर्तृ प्रचार प्रकरण में जन पद की रक्षा के उपाय बता दिए गए हैं । अब जन पद के प्रच्छन्न प्रजा पीड़कों से बचने के उपाय बताए जाते हैं । समाहर्ता नामक राज कर्मचारी (अफसर) राष्ट्र में सिद्ध, तापस संन्यासी, निरन्तर घूमने वाले, चारण, कुहक (कारीगर) प्रच्छन्दक, (स्वच्छन्द) घूमने वाले, ज्योतिषी, शकुन, मुहूर्त बताने वाले, चिकित्सक, पागल, गूंगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे, व्यापारी, कारीगर, शिल्पी, नट, भांड, कलाल, हलवाई, पक्का मांस बेचने वाले, तथा रसोइये आदि के रूप में गुप्त चरों को नियुक्त करे ॥१-३॥

ते ग्रामाणामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः ॥ ४ ॥ यं चात्र गूढ़-
जीविनं विशङ्केत तं सत्तिसवर्णेनापर्सपयेत् ॥ ५ ॥ धर्मस्थं विश्वासोपगतं सत्त्वी
ब्रूयात् ॥ ६ ॥ असौ मे बन्धुरभियुक्तः ॥ ७ ॥ तस्यायमनर्थः प्रतिक्रियता-
मय चार्थः प्रतिगृह्यतामिति ॥ ८ ॥ स चेत्तथा कुर्यादुपदाग्राहक इति प्रवासयेत्
॥ ९ ॥ तेन प्रदेष्टारो व्याख्याताः ॥ १० ॥

वे गुप्तचर, गांव के मनुष्य और अध्यक्षों की पवित्रता अपवित्रता का पता रखें । जिसको गुप्तचर, गूढ़जीवी (छलोपजीवी) समझे उसे सत्री के साथ अध्यक्ष के सामने उपस्थित करे । विश्वास योग्य धर्माध्यक्ष को सत्री कहे, कि यह अभियुक्त मेरा वन्धु है-उसके इस अपराध को क्षमा करो और इस के बदले में यह धन राशि स्वीकार करो । यदि न्यायाधीश रुपये लेकर उसे छोड़ दे-तो अफसर को घूस खोर समझ कर निकाल देना चाहिए । यही नियम प्रदेष्टा (राज्य का दूसरे अध्यक्ष) के विषय में जानने चाहिए ॥४-१०॥

ग्रामकूटमध्यक्षं वा सत्री ब्रूयात् ॥ ११ ॥ असौ जाल्मः प्रभूतद्रव्य-
स्तस्यायमनर्थः ॥ १२ ॥ तेनैवमाहारयस्वेति ॥ १३ ॥ स चेत्तथा कुर्या-
दुत्कोचक इति प्रवास्येत ॥ १४ ॥ कृतकाभियुक्तो वा कूटसाक्षिणो ऽभिज्ञा-
तानर्थवैपुल्येनारभेत ॥ १५ ॥ ते चेत्तथा कुर्युः कूटसाक्षिणः इति प्रवास्येन
॥ १६ ॥ तेन कूटश्रावणकारका व्याख्याताः ॥ १७ ॥

सत्री नामक गुप्तचर ग्राम के चौधरी या अध्यक्ष से कहें, कि यह दुष्ट बड़ा सम्पत्ति, मान् है, उसने आज यह अपराध किया है-अब चलकर उससे बहुत कुछ छीना जा सकता है । यह सुनकर यदि गांव का चौधरी या अध्यक्ष उससे द्रव्य छीन लावे, तो उसे उत्कोचक (रिश्वत खोर) समझकर राजा उसे निकाल दे । वनावटी अपराधी बनकर गुप्तचर, जिनको झूठी गवाही देने वाला समझे-उनसे कहे, मैं तुमको बहुत धन दूंगा, तुम झूठी गवाही दे दो । यदि वे ऐसा कह दें-तो उनको झूठे साक्षी समझकर देश से वारह निकलवा दिया जावे । यही नियम झूठी दस्तावेज बनाने वाले या सहायता करने वालों के जानने के लिए उचित होंगे ॥११-१७॥

यं वा मन्त्रयोगमूलकर्मभिः श्मशानिकैर्वा संवननकारकं मन्येत तं सत्री
ब्रूयात् ॥ १८ ॥ अमुष्यभार्या स्नुषां दुहितरं वा कामये ॥ १९ ॥ सा मां प्रतिका-
मयताम् ॥ २० ॥ अयं चार्थः प्रतिगृह्यतामिति ॥ २१ ॥ स चेत्तथा कुर्यात्संवन-
नकारक इति प्रवास्येत ॥ २२ ॥ तेन कृत्याभिचारशीलौ व्याख्यातौ ॥ २३ ॥

मन्त्रयोग औषधिप्रयोग तथा श्मशान की क्रियाओं से जिसको वशीकरण आदि करने वाला समझा जावे, उसके पास सत्री जाकर कहे, कि अमुक मनुष्य की भार्या, पुत्रधू, या पुत्री से संभोग करना चाहता हूं । वह मुझे चाहने लगे । तुम यह धन स्वीकार करो-जो वह धन ग्रहण करले-तो उसे वशीकरण आदि मन्त्रों के द्वारा ठगने वाला समझकर राजा नगर से निकलवा दे । यही ढंग भूत प्रेत शरीर में भरने वाले या मारण प्रयोग करने वालों पर वर्तने चाहिए ॥१८-२३॥

यं वा रसस्य कर्तारं क्रेतारं विक्रेतारं भैषज्याहारव्यवहारिणं वा रसदं
मन्येत तं सत्त्री ब्रूयात् ॥ २४ ॥ असौ मे शत्रुस्तस्योपधातः क्रियतामयं चार्थः
प्रतिगृह्यतामिति ॥ २५ ॥ स चेत्तथा कुर्याद्रसद इति प्रवास्येत ॥ २६ ॥ तेन
मदनयोगव्यवहारी व्याख्यातः ॥ २७ ॥

विष के बनाने वाले, बेचने या खरीदने वाले दवा और भोजन के व्यवहार के कर्ता,
पर यदि विष देने का सन्देह हो-तो उससे सत्री गुप्तचर, कहे, कि, यह मेरा शत्रु है, तुम
इसका मारण करो और इसके बदल में तुम यह धन ग्रहण करो। यदि वह वैसा करने
को तय्यार हो जावे-तो उसको विषगता प्रसिद्ध करके नगर से निकलवा दे। यही नियम
मूर्च्छित करने वाली धतूरे आदि की औषधियों के विषय में जानना चाहिए ॥२४-२७॥

यं वा नानालोहक्षाराणामङ्गारभस्मासंदंशमुष्टिकाधिकरणीविस्मटङ्कमृपाणा-
मभीक्ष्णं क्रेतारं मूषीभस्मधूमदिग्धहस्तवस्त्रलिङ्गं कर्मारोपकरणसंवर्गं कूटरूपकारकं
मन्येत तं सत्त्री शिष्यत्वेन संव्यवहारेण चानुप्रविश्य प्रज्ञापयेत् ॥ २८ ॥ प्रज्ञातः
कूटरूपकारक इति प्रवास्येत ॥ २९ ॥ तेन रागस्यापहर्ता कूटसुवर्णव्यवहारी च
व्याख्यातः ॥ ३० ॥

जो व्यक्ति, अनेक प्रकार के लोह, खार, कोयला, धोंकनी, संडासी, हथोड़ी, धन,
सांचे, छैनी, मूष आदि को अधिक मात्रा में खरीदे तथा जो मूष की भस्म, धुआं आदि से
हाथ बल मैले हो रहे हों-जो लुहार आदि के औजार अधिक मात्रा में रखता हो-यदि
उसपर जाली सिक्के बनाने का सन्देह हो, तो सत्री नामक गुप्तचर उसका शिष्य बन जावे
या अन्य किसी व्यवहार से उनकी पार्टी में मिल जावे-और उसका सारा ढंग मालूम
करले। जब उसके जाली सिक्के बनना प्रमाणित हो जावे-तो उसे जाली सिक्के बनाने
वाला घोषित करके देश से राजा निकाल दे। इसी प्रकार सुवर्ण आदि की रंगत उड़ा देने
वाले या झूठे सुवर्ण बनाने वाले का पता लगा कर राजा राज्य से निकाल दे ॥२८-३०॥

आरब्धारस्तु हिंसायां गूढाजीवास्त्रयोदश ।

प्रवास्या निष्क्रयार्थं वा दध्न् दोषविशेषतः ॥ ३१ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे गूढाजीवानां रक्षा चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥

आदित एकाशीतिः ॥ ८६ ॥

लोक में दुःख के उत्पन्न करने वाले, धर्मस्थ, प्रदेष्टा, ग्रामकूट, ग्रामअध्यक्ष, कूटसाक्षी,
कूटश्रावक, वशीकरणकर्ता, कृत्याकारक, मारणशील, विष देने वाला, मदन (धतूरे)

रसदाता, कूटरूपकर्ता, कूटसुवर्ण व्यापारी-ये तेरह गूढ़ा जीवी माने जाते हैं अर्थात् ये छुपकर प्रजा को कष्ट पहुंचा सकते हैं। प्रजा को दुःख से छुड़ाने के निमित्त इनको देश से राजा निकाल दे या अपराध के अनुसार दण्ड भी देवे ॥३१॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में गुप्त रूप से प्रजा के पीड़कों से वचाने के उपायों के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

८०वां प्रकरण

सिद्धव्यञ्जनैर्माणव प्रकाशनम्

इस प्रकरण में सिद्ध पुरुषों के वेष में रहने वाले गुप्तचरों द्वारा चोर आदि दुःखदायी व्यक्तियों के पता लगाने की विधि का वर्णन किया जावेगा।

सन्त्रीप्रयोगादूर्ध्वं सिद्धव्यञ्जना माणवा माणवविद्याभिः प्रलोभयेयुः प्रस्वा-
पनान्तर्धानद्वारापोहमन्त्रेण प्रतिरोधकान्संवननमन्त्रेण पारतन्त्रिकान् ॥१॥ तेषां
कृतोत्साहानां महान्तं संघमादाय रात्रावन्यं ग्राममुद्दिश्यान्यं ग्रामं कृतकाः स्त्रीपुरुषं
गत्वा ब्रूयुः ॥ २ ॥ इहैव विद्याप्रभावो दृश्यताम् ॥ ३ ॥ कृच्छ्रः परग्रामो
गन्तुमिति ॥ ४ ॥

सन्त्री नामक गुप्तचर के कार्य के अनन्तर सिद्ध तापस वेशधारी अपराधियों में मिले हुए, संमोहन करने वालों के रूप में विद्यमान, गुप्तचर अपनी संमोहन विद्याओं से कभी सुला देने कभी छुपा देने आदि के मन्त्रों द्वारा चोरों को और स्त्री वशीकरण के मन्त्रों से व्यभिचारियों को लुब्ध करता रहे। जब वे दुष्ट लोग सिद्ध रूपधारी गुप्तचर पर प्रीति करने लगें-तो वह वनावटी महात्मा इन लुटेरों या व्यभिचारियों के बड़े भारी संघ को लेकर रात में किसी अन्य गांव के उद्देश्य से चल दे। वहां उन स्त्री पुरुषों से कहे आज तुम यहीं पर हमारी विद्या का प्रभाव देखो-दूसरे गांव में पहुंचना तो कठिन है ॥१-४॥

ततो द्वाारापोहमन्त्रेण द्वााराण्यपोह्य प्रविश्यतामिति ब्रूयुः ॥ ५ ॥ अन्त-
र्धानमन्त्रेण जाग्रतामारक्षिणां मध्येन माणवानतिक्रामयेयुः ॥६॥ प्रस्वापनमन्त्रेण
प्रस्वापयित्वा रक्षिणः शय्याभिर्माणवैः संचारयेयुः ॥ ७ ॥

इसके पीछे वह बनावटी सिद्ध, जिस गांव में ठहरा है, वहां उसके संकेत में आये हुए स्त्री पुरुष विद्यमान है। वे द्वारों को खुला छोड़ दें। फिर द्वार खोलने के मन्त्रों से द्वार खोलकर उन लोगों से कह दे, कि तुम घुस जाओ। अन्तर्यान के मन्त्रों से जागते हुए पहरेदारों के मध्य से उन अपराध करने वालों को प्रविष्ट करादे तथा सुला देने के मन्त्रों से पहरेदारों को झूठ-मूठ सुला कर उनकी खाट उन अपराधियों द्वारा घुमवा देंगे ॥५-७॥

संवननमन्त्रेण भार्याव्यञ्जनाः परेषां माणवैः संमोदयेयुः ॥ ८ ॥ उपलब्ध-विद्याप्रभावाणां पुरश्चरणाद्यादिशेयुरभिज्ञानार्थम् ॥९॥ कृतलक्षणद्रव्येषु वा वेश्मसु कर्म कारयेयुः ॥ १० ॥ अनुप्रविष्टान्वैकत्र ग्राहयेयुः ॥ ११ ॥ कृतलक्षणद्रव्य-क्रयविक्रयाधानेषु योगसुरामत्तान्वा ग्राहयेयुः ॥१२॥ गृहीतान्पूर्वापदानसहायान-नुयुज्जीत ॥१३॥ पुराणचोरव्यञ्जना वा चोराननुप्रविष्टास्तथैव कर्म कारयेयुर्ग्रा-हयेयुश्च ॥ १४ ॥

वशीकरण मन्त्रों से अन्य की भार्या बने हुए गुप्तचरों द्वारा उन दुष्ट पुरुषों को हंसों दिल्लगी से प्रसन्न करादे। जब वे विद्या के प्रभाव से चकित हो जायें, तो उनको सिखाने के लिए उनको व्रत उपवास पुरश्चरण आदि का उपदेश करे। इसके अनन्तर राज चिन्ह से अङ्कित द्रव्य वाले घरों में इनकी चोरी करवादे। हो सके तो किसी एक घर में ही इन सबको पकड़वादे। जिन वस्तुओं पर राजकीय चिन्ह हो रहे हैं, उनके बेचने खरीदने कहीं रखने के समय या सुरापान आदि में उन्मत्त होने पर इन दुष्ट पुरुषों को वह बनावटी महात्मा पकड़वादे। जब ये पकड़े जायें-तो इनसे पूर्व की हुई वारदातों के सहायकों के नाम पूछे। पुराने चोर, गुप्तचर बनकर चोरों में मिलजावे और वे भी ऐसा ही काम करवावे तथा उन सबको पकड़वा देंगे ॥८-१४॥

गृहीतान्समाहर्ता पौरजानपदानां दर्शयेत् ॥ १५ ॥ चोरग्रहणीं विद्यामधीते राजा ॥ १६ ॥ तस्योपदेशादिमे चोरा गृहीताः ॥१७॥ भूयश्च गृहीष्यामि ॥१८॥ वारयितव्यो वः स्वजनः पापाचार इति ॥ १९ ॥ यं चात्रापसर्पोपदेशेन शम्या-प्रतोदादीनामपहर्तारं जानीयात्तर्मेपां प्रत्यादिशेत् ॥ २० ॥ एष राज्ञ प्रभाव इति ॥ २१ ॥

समाहर्ता (सरकारी अफसर) पकड़े हुए इन दुष्ट पुरुषों को पुर और देश के लोगों को दिखावे और कहे, कि चोर पकड़ने की विद्या को राजा जान चुका है। उस विद्या से ही ये चोर पकड़े गए हैं। जो ऐसा काम करेगा-उसे फिर मैं पकड़ूंगा-अब तुम जहां तक हो अपने मिलने वालों को पाप कर्म करने से रोक दो। गुप्तचरों के प्रभाव शम्या (सैल)

प्रतोद (पैनी) जैसी छोटी वस्तुओं के चोरों का भी पता लगाकर जनता से कहो, कि राजा का इतना प्रभाव है, कि छोटी २ चोरी को भी जान लेता है ॥१५-२१॥

पुराणचोरगोपालकव्याधश्चगणिनश्च वनचोराटविकाननुग्राहिष्ठाः प्रभूतकूट-
हिरण्यकुप्यभाण्डेषु सार्धत्रजग्रामेष्वेनानभियोजयेयुः ॥२२॥ अभियोगे गूढवलैर्घा-
तयेयुः ॥२३॥ मदनरसयुक्तेन वा पथ्यादनेनानुगृहीतलोप्रभारानायतगतपरि-
श्रान्तान्प्रस्वपतः प्रहवणेषु योगसुरामत्तान्वा ग्राहयेयुः ॥२४॥

इसी तरह पुराने चोर, ग्वाले, शिकारी, कुत्ते वाले, शिकारी बने हुए गुप्तचर, वन के चोर और वन में ही रहने वाले इन दुष्ट पुरुषों में रत्न-मिल जावें और बहुत सा सुवर्ण ताँबे आदि के वर्तनों से परिपूर्ण, व्यापारियों के संघ के गात्रों में लूटने के लिए इनको ले जावें । जब ये लूट मचाने लगे-तो प्रथम से छुपाई हुई सेना द्वारा इनका नाश करवादे । धतूरे आदि के संमोहन करने वाले रस से मिश्रित भोजन से बेहोश, माल को उठाकर, लाने पर सोये हुए या सवारी पर चलते हुए तथा उत्तम सुरापान कर उन्मत्त हुए इन लुटेरों को पकड़वा दे ॥ २२-२४ ॥

पूर्ववच्च गृहीत्वैनान्समाहर्ता प्ररूपयेत् ।

सर्वज्ञख्यापनं राज्ञः कारयन्नापूवासिषु ॥२५॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनं पञ्चमो

ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदितो द्व्यशीतिः ॥ ८२ ॥

राजकीय अध्यक्ष, इनको भी पकड़कर पूर्व की भांति राजा का सर्वज्ञत्व घोषित करने के निमित्त सारी प्रजा को इनको दिखावे ॥ २५ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टक शोधन अधिकरण में सिद्ध तपस्वियों के वेप में रहकर चोरों के पकड़ने के उपायों के वर्णनों का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ।



छठा अध्याय

८१वां प्रकरण

शङ्का रूप कर्माभिग्रहः

सिद्ध तापसों के गुप्तचर कर्म के वर्णन के अनन्तर अब इस अध्याय में जिनपर अपराध करने की आशङ्का हो सके उनका तथा नष्ट वस्तु के रूप और चोरी के कर्म का वर्णन किया जावेगा ।

सिद्धप्रयोगादूर्ध्वं शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ १ ॥ क्षीणदायकुटुम्बमल्प-
निर्वेशं विपरीतदेशजातिगोत्रनामकर्मापदेशं प्रच्छन्नवृत्तिकर्माणं मांससुराभक्ष्य-
भोजनगन्धमाल्यवस्त्रविभूषणेषु प्रसक्तमतिव्ययकर्तारं पुंश्चलीद्युतशौण्डिकेषु
प्रसक्तमभीक्ष्णप्रवासिनमविज्ञातस्थानगमनपर्यमेकान्तारण्यनिष्कुटविकासचारिणं
प्रच्छन्ने सामिपे वा देशे बहुमन्त्रसंनिपातं सद्यःक्षतव्रणानां गूढप्रतीकार-
यितारमन्तगृह् नित्यमभ्यधिगन्तारं कान्तापरं परपरिग्रहाणां परस्त्रीद्रव्यवेशमनाम
भीक्ष्णप्रप्टारं कुत्सितकर्मशास्त्रोपकरणसंसर्गं विरात्रे छन्नकुड्यच्छायासंचारिणं
विरुपद्रव्याणामदेशकालविक्रेतारं जातवैराश्यं हीनकर्मजातिं विगूहमानरूपं
लिङ्गेन आलिङ्गिनं लिङ्गिनं वा भिन्नाचारं पूर्वकृतापदानं स्वकर्मभिरपदिष्टं
नागरिकं महामात्रदर्शने गूहमानमपसरन्तमनुच्छ्वासोपवेशिनमाविशं शुष्कभिन्न-
स्वरमुखवर्णं शस्त्रहस्तं मनुष्यसंपातवासिनं हिंसस्तेननिधिनिक्षेपापहारप्रयोग-
गूढाजीविनामन्यतमं शङ्केतेति शङ्काभिग्रहः ॥ २ ॥

जिनकी कुल क्रमागत सम्पत्ति या कुटुम्ब क्षीण हो गया हो, जिनको अःमदनी
थोड़ी रह गई हो, जो अपने देश, जाति, गोत्र, नाम, और काम के बताने में
बहाने बनावे; जो अपनी वृत्ति को किसी पर प्रकट करना न चाहे, जो मांस, सुरा, भक्ष्य,
भोजन, गन्ध, माला, वस्त्र और आभूषणों को पसन्द करने वाला हो, जिसके बहुत व्यय
हो, व्यभिचारिणी, जुआरी और शरावियों की सङ्गति में रहता हो, जो सर्वदा घर से
बाहर विदेश में घूमता हो; जिसके स्थान, गमन और बेचने की चीजों का कुछ पता न
लगता हो, जो, एकान्त, वन, वगीचों में असमय में घूमता मिले, छुपे हुए स्थान या धनियों
के घरों के समीप जो अनेक पुरुष के साथ बार २ गुप चुप बात करता देखा हो; जो
ताजा घावों का छुपकर इलाज कराता हो; जो अधिकतर घर के भीतर रहने वाला हो
तथा किसी को देख कर झटपट लौट जाता हो, जो दूसरों की स्त्रियों में गमन करने वाला
देखा गया हो, पर स्त्री, द्रव्य और मकान के विषय में जिसने बार २ प्रश्न किये हो, चोरी
आदि कुत्सित कर्म के शस्त्र और साधनों को जो अच्छी तरह जानता हो, जो आधीरात में
दीवारा की छाया में घूमता देखा गया हो, जिसने वस्तुओं की आकृति बदलकर अनुचित स्थान
और काल पर बेची हो, जो सबसे शत्रु भाव रखता हो, जिसकी नीच जाति और नीच कर्म
हों, जो अपने असली रूप को छुपाये रखता हो, जो ब्रह्मचारी आदि न होकर भी ब्रह्मचारी
का रूप बनाये रखता हो, जिस का ब्रह्मचारी आदि रूपधारी मनुष्य का अपने रूप के विरुद्ध
आचरण हो, जिसने पूर्व में कभी अपराध किया हो, जिसकी बुरे कर्म करने की प्रसिद्धि हो,

जो नागरिक राजकीय कर्मचारी को देखकर ड्रुप जाता हो, या खसक जाता हो, जो एकान्त में दबकर बैठा हो, जो उद्विग्न सा रहता हो, जिसका मुख सूखा-वर्ण हीन और भिन्न स्वर धारी हो, जो शस्त्र रखता हो, ऐसे पुरुष को मनुष्य मात्र को दुःख देने वाला, हिंसक, चोर, धन या धरोहर हर्ता, विष का प्रयोग करने वाला या गूढ़ जीविका से प्रजा को कष्ट पहुंचाने वाला समझ लेना चाहिए इन शङ्काओं से गुप्त अपराध करने वाले पुरुष पर सन्देह किया जा सकता है ॥१-२॥

रूपाभिग्रहस्तु ॥ ३ ॥ नष्टापहतमविद्यमानं तज्जातव्यवहारिषु निवेदयेत् ॥ ४ ॥ तच्चेन्निवेदितमासाद्य प्रच्छादयेयुः साचिव्यकरदोषमाप्नुयुः ॥ ५ ॥ अजानन्तो ऽस्य द्रव्यस्यातिसर्गेण मुच्येरन् ॥ ६ ॥ न चानिवेद्य संस्थाध्यक्षस्य पुराणभाण्डानामाधानं विक्रयं वा कुर्युः ॥ ७ ॥

चोरी आदि की वस्तु के आकार से उसके पकड़ने के प्रकार के विषय में इस ढंग से समझना चाहिये, कि, जो वस्तु खो गई या उड़ाली गई, उसके व्यापारियों के उसके आकार की सूचना देदे। यदि व्यापारी उस वस्तु के आने पर और पहचान लेने पर भी छुपाकर ले लें-तो उन्हें, उस अपराध में सहायक मान कर दण्ड देना चाहिए। यदि उन्होंने भूल से उस वस्तु को ले लिया-तो उस वस्तु को लेकर उनको छोड़ दिया जावे। संस्थाध्यक्ष को सूचना दिये बिना पुरानी वस्तुओं के रखने और बेचने का किसी व्यापारी को अधिकार नहीं होना चाहिए ॥३-७॥

तच्चेन्निवेदितमासाद्येत रूपाभिगृहीतमागमं पृच्छेत ॥ ८ ॥ कुतस्ते लब्धमिति ॥ ९ ॥ स चेद्द्रव्यादायात्रादेवाप्तममुष्माल्लब्धं क्रीतं कारितमाधि-
प्रच्छन्नम् ॥ १० ॥ अयमस्य देशः कालश्चोपसंप्राप्तः ॥ ११ ॥ अयमस्यार्धः प्रमाणं क्षणमूल्यं चेति तस्यागमसमाधौ मुच्येत ॥ १२ ॥ नाष्टिकश्चेत्तदेव प्रतिसंदक्ष्यात् ॥ १३ ॥ यस्य पूर्वं दीर्घश्च परिभोगः शुचिर्वा देशस्तस्य द्रव्यमिति विद्वान् ॥ १४ ॥ चतुष्पदद्विषदानामपि हि रूपलिङ्गसामान्यं भवति किमङ्ग पुनरेकयोनिद्रव्यकर्तृप्रवृत्तानां कुप्याभरणभाण्डानामिति ॥ १५ ॥

यदि आकार बताई हुई वस्तु व्यापारी के पास आ जावे, तो आकार (हुआलए) से उस वस्तु को जानकर उसके लाने वाले से पूछे, तुमने यह वस्तु कहां से पाई। वह अपने कुल क्रमागत प्राप्त बतावे, किसी का नाम ले, या खरीदी हुई, बनवाई हुई बतावे या गुप्तचुप गहने रखी हुई बतावे, यह इसके लेने का समय और स्थान है, यह इसका मूल्य और

प्रमाण है, आजकल इसके ये दाम हैं। यदि इसका बताना सही निकल आवे-तो इसको छोड़ दिया जावे। अभियोक्ता (मुस्तगीस) भी उसे अपनी बतावे, और दोनों के पास साक्षी न हो-तो जो उसका उपयोग कर रहा है, या जिसका व्यवहार शुचि हो-उसकी वस्तु समझनी चाहिए। चौपायों और मनुष्यों तक में रूप और चिन्हों की समानता होती है, फिर एक से काष्ठ आदि सामान से बनी हुई लकड़ी, भूषण, और वर्तन के समान होने में सन्देह ही क्या किया जा सकता है ॥८-१५॥

स चेद्ब्रूयात् ॥ १६ ॥ याचितकमवक्रीतकमाहितकं निक्षेपमुपनिधिं
वैग्यावृत्यकर्म वा मुप्येति तस्यावसरप्रतिसंधानेन मुच्येत ॥ १७ ॥ नैवमित्यप-
सारो वा ब्रूयात् ॥ १८ ॥ रूपाभिगृहीतः परस्य दानकारणमात्मनः प्रतिग्रह-
कारणमुपलिङ्गनं वा दायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकोपदेष्टृभिरुपश्रोतृभिर्वा प्रति-
समानयेत् ॥ १९ ॥ उज्जिह्वतप्रतप्तनिष्पतितोपलब्धस्य देशकाललाभोपलिङ्गनेन
शुद्धिः ॥ २० ॥ अशुद्धस्तच्च तावच्च दण्डं दद्यात् ॥ २१ ॥ अन्यथा स्तेय-
दण्डं भजेत् ॥ २२ ॥ इति रूपाभिग्रहः ॥ २३ ॥

यदि वस्तु लाने वाला पुरुष, प्रश्न करने पर कहे, कि मैं इसें मांग कर या किराये पर लाया हूं। इस वस्तु को अमुक पुरुष, मेरे पास गिरवी, धरोहर, या बदले में रख गया है या इसको सुधरवाने मेरे पास लाया है तो इस बात की खोज करके सही निकलने पर उसको छोड़ दिया जावे। यदि जिस पुरुष के पास से लाने की पूर्व पुरुष ने कहा और वह पिछला पुरुष कहदे, कि मुझे कुछ नहीं मालूम है, तो वह अपराधी पुरुष, दूसरे के द्वारा दिया जाना प्रमाणित करे। अपने उस वस्तु के लेने के कारण की बतावे। इसके चिन्ह भी न्यायालय में प्रस्तुत करने चाहिए। देने दिलाने वाले, लिखने वाले अन्य लेने वाले, लेने को उत्साहित करने वाले, तथा जानने वालों को साक्षी के रूप में न्यायालय में लावे। कहीं पर भूली हुई, खोई हुई, गिरी हुई, वस्तु मिलने पर चोरी लगाई जावे, तो उस देश काल और प्राप्ति के प्रमाण उपस्थित कर देने पर वस्तु लेकर उसे छोड़ देना चाहिए। यदि वह सिद्ध न कर सके तो उसे उतना ही अर्थात् वस्तु की कीमत का ही दण्ड हो और यदि वह अपना सिद्ध न कर सके और अभियोक्ता उसे चोर बतावे, तो उससे प्रमाण लेकर उसे चोरी का दण्ड होना चाहिए। यहां तक रूप (आकार) द्वारा वस्तु के प्राप्त करने के विषय में वर्णन किया गया है ॥१६-२३॥

कर्माभिग्रहस्तु ॥ २४ ॥ मुपितवेशमनः प्रवेशनिष्कसनमद्वारेण द्वारस्य
संधिना वीजेन वा वेधमुत्तमागारस्य जालवातायननीप्रवेधमारोहणावतरणे च

कुड्यस्य वेधमुपखननं वा गूढद्रव्यनिक्षेपणं ग्रहणो पायमुपदेशोपलभ्यमभ्यन्तरच्छेदोत्तरपरिमर्दोपकरणमभ्यन्तरकृतं विधात् ॥ २५ ॥ विपर्यये बाह्यकृतं उभयतः उभयकृतम् ॥ २६ ॥

इसके आगे चोरी के विषय-में लिखा जावेगा । जिस घर में चोरी हुई हो, यदि उसमें घुसना और निकसना द्वार के बिना हुआ हो, द्वार की संधि [खिड़की] से प्रवेश या चूल से किवाड़ उतार दिया गया हो, ऊंचे मकान के झरोखे, खिड़की और उजालदान तोड़ दिए गए हों, चढ़ने और उतरने के लिए दीवार में गड्ढे बना लिए गए हों या दीवार तोड़ दी गई हो, छुपे हुए द्रव्य के निकालने के उपाय किये गए हों, जो धन बिना बताये प्राप्त न हो-उसकी प्राप्ति का उद्योग किया गया हो, भीतर घुसकर मकान खोदा गया और उसके गड्ढे भर दिए गए-हों तो-इस चोरी को अपने भीतर के मनुष्य के द्वारा की गई समझनी चाहिए । यदि ये बात न हों-तो बाहर के लोगों ने चोरी की है-ऐसा जानना और दोनों चिन्ह हों तो-बाहर और भीतर के दोनों ने मिलकर चोरी की है ॥२४-२६॥

अभ्यन्तरकृते पुरुषमासन्नं व्यसनिनं क्रूरसहायं तस्करोपकरणसंसर्गं स्त्रियं वा दरिद्रकुलामन्यप्रसक्तां वा परिचारकजनं वा तद्विधाचारमतिस्वप्नं निद्रा-क्लान्तमाविक्लान्तमाविशं शुष्कभिन्नस्वर मुखवर्णमनवस्थितमतिप्रलापिनमुच्चारो-हणसंरब्धगात्रं विलूननिघृष्टं भिन्नपाटितशरीरवस्त्रं जातकिरणसंरब्धहस्तपादं पांसुपूर्णकेशनखं विलूनभुग्नकेशनखं वा सम्यक्स्नातानुलिप्तं तैलप्रमृष्टगात्रं सद्योद्यौतहस्तपादं वा पांसुपिच्छिलेषु तुल्यपादपदनिक्षेपं प्रवेशनिष्कसनयोर्वा तुल्यमाल्यमद्यगन्धवस्त्रच्छेदविलेपनस्वेदं परीक्षेत ॥ २७ ॥ चोरं पारदारिकं वा विधात् ॥ २८ ॥

यदि अपने ही किसी नौकर चाकर पर चोरी का सन्देह हो तो समीप रहने वाले, जुआरी शराबी, दुष्ट पुरुषों के साथी, चोरों के सहचर, दरिद्र कुल की व्यभिचारिणी स्त्री या व्यभिचारी दरिद्री सेवक, अत्यन्त अंधने वाले, सोने वाले, व्याकुल, उद्विग्न, शुष्क और भिन्न स्वर और मुख की आकृतिधारी, चञ्चल, वकवादी, ऊपर चढ़ने योग्य शरीर वाले, रगड़ खा कर फटे हुए वस्त्रधारी, हाथ और पैरों में रगड़ के चिन्हों से युक्त, मिट्टी में भरे हुए केशनख वाले, या कटे-फटे केश नख धारी, अच्छी तरह स्नान के अनन्तर चन्दन लगाये हुए, तैल की मालिश से युक्त, तत्काल हाथ पैर धोये हुए, कीचड़ में घुसने और निकसने

के पद चिन्ह के समान पद चिन्ह वाले, जो माला और मद्य मकान में थी उसकी गन्ध वाले तथा मकान में मिले हुए वस्त्रों के टुकड़े में जो लेप और पसीने की गन्ध थी, वैसी ही गन्ध वाले पुरुष की पड़ताल करे । जो चोर हो या पर स्त्री गामी हो, उस से भी पूछताछ करे ॥२७-२८॥

सगोपस्थानिको बाह्यं प्रदेष्टा चोरमार्गणम् ।

कुर्यान्नागरिकश्चान्तर्दुर्गे निर्दिष्टहेतुभिः ॥ २९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे शङ्कारूपकर्माभिग्रहः षष्ठो ऽध्यायः ॥६॥

आदितस्त्रयशीतिः

गोप और स्थानिक को साथ लेकर प्रदेष्टा नामक राज्य कर्मचारी, बाहर के चोर की खोज लगावे तथा उपर्युक्त लक्षणों से युक्त चोर का पता, अपने नगर या दुर्ग में नागरिक नामक अध्यक्ष, खोज निकाले ॥२९॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत, कण्टकशोधन अधिकरण में शङ्का आदि के ढंग से चोर के पते लगाने के उपायों के वर्णन का छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



सातवां अध्याय

चरवां प्रकरण

आशुमृतक परीक्षा

इस प्रकरण में आशुमृतक (कतल) के अभियोगों का वर्णन किया जावेगा ।

तैलाभ्यक्तमाशुमृतक परीक्षेत ॥ १ ॥ निष्कीर्णमूत्रपुरीषं वातपूर्णकोष्ठत्वक्
शूनपादपाणिमुन्मीलिताक्षं सव्यञ्जनकण्ठं पीडननिरुद्धोर्ध्वासंहतं विद्यात् ॥ २ ॥
तमेव संकुचितबाहुसक्थिमुद्वन्धहतं विद्यात् ॥ ३ ॥ शूनपाणिपादोदरमपगताक्ष-
मुद्वृत्तनाभिमवरोपितं विद्यात् ॥ ४ ॥ निस्तब्धगुदाक्षं संदण्डजिह्वमाध्मातोदरमु-
दकहतं विद्यात् ॥ ५ ॥

जो अभी मारा गया हो, अर्थात् कतल हो गया हो, उसको तेल में डालकर परीक्षा करे । जिसका मल मूत्र निकल गया हो, जिसके उदर या त्वचा में वायु भरा हुआ हो, जिसके हाथ पैरों पर सूजन हो, जिसकी आंखें फटी रह रही हों, जिसके गले में रस्सी आदि का चिन्ह हो, तो उस व्यक्ति को रस्सी से गला घोटकर मारा हुआ समझना चाहिए । यदि ऐसे पुरुष की बाहु और जांघें सुकड़ी हो, तो उसको फांसी पर लटका कर

मारा हुआ समझना चाहिए । यदि उसके हाथ पैरों पर सूजना हो, आंखें, गड़ गई हों और नाभि निकल आई हो, तो उसे शूली पर चढ़ा कर मारा गया है । जिसकी गुदा और आंख सुकड़ गई हो, जीभ दांतों में दबी हो और पेट फूला हो, तो उसे जल में डुबाकर मारा जानना चाहिए ॥१-५॥

शोणितानुसिक्तं भग्नभिन्नगात्रं काष्ठै रश्मिभिर्वा हतं विद्यात् ॥६॥ संभ्र-
स्फुटितगात्रमवक्षिप्तं विद्यात् ॥७॥ श्यावपाणिपाददन्तनखं शिथिलमांसरोमचर्माणं
फेनोपदिग्धमुखं विषहतं विद्यात् ॥ ८ ॥ तमेव सशोणितदंशं सर्पक्रीडहतं विद्यात्
॥ ९ ॥ विक्षिप्तं वस्त्रगात्रमतिवातं वरिक्तं मदनयोगहतं विद्यात् ॥ १० ॥ अतो
ऽन्यतमेन कारणेन हतं हत्वा वा दण्डभयादुद्वन्धनिकृत्तकण्ठं विद्यात् ॥ ११ ॥

जो रक्त से भीगा हो, जिसके शरीर के अवयव कट गए हो, उसे लाठी और पत्थरों से मारा हुआ जानो । जिसका सारा शरीर फट गया हो, उसे मकान से गिराकर मरा हुआ समझो । जिसके हाथ, पैर, दांत, नख, काले पड़ गए हों, मांस रोम और चर्म ढीली पड़ गई हो मुंह भागों से भरा हो, उसे विष से मारा समझो । यदि ऐसे ही पुरुष के किसी स्थान से रक्त निकल रहा हो-तो उसे सांप या अन्य जन्तु के काटने या कटाने से मारा हुआ जानो । जिसके वस्त्र और शरीर बिखरे हो-जो छट-पटाता हो, जिसको दस्त और वमन हो रही हों, उसे धतूरे के योग से मारा जानो । इस प्रकार मारने योग्य शत्रु को मार कर राजा के दण्ड के भय से स्वयं भी पुरुष फांसी खाकर या गला काट कर मर जाता है ॥६-११॥

विषहतस्य भोजनशेषं पयोभिः परीक्षेत ॥ १२ ॥ हृदयादुद्धृत्याग्नौ प्रक्षिप्तं
चिटचिटायदिन्द्रधनुर्वर्णं वा विषयुक्तं विद्यात् ॥१३॥ दग्धस्य हृदयमदग्धं दृष्ट्वा
वा तस्य परिचारकजनं वा दण्डपारुष्यातिलब्धं मार्गेत ॥ १४ ॥ दुःखोपहतम-
न्यप्रसक्तं वा स्त्रीजनं दायनिवृत्तिस्त्रीजनाभिमन्तारं वा वन्धुम् ॥ १५ ॥ तदेव
हतोद्वन्धस्य परीक्षेत ॥१६॥ स्वयमुद्वन्धस्य वा विप्रकारमयुक्तं मार्गेत ॥१७॥

जो विष से मारा गया हो, उसके शेष भोजन की दूध के द्वारा परीक्षा की जावे । मरे हुए पुरुष का हृदय अग्नि में डाला जावे, यदि उसमें चटचट शब्द और इन्द्र धनुष का रंग निकले-तो उसे विष युक्त समझना चाहिए । जले हुये पुरुष के, नहीं जले हुए हृदय को देखकर उसके सेवक जन से या जिससे उसका लड़ाई भगड़ा हुआ है, उससे पूछताछ या तहकीकात की जावे । दुःख से मारे हुए अन्य में आसक्त पुरुष को स्त्री जन या दायभाग तथा उसकी स्त्री को भोगने की इच्छा रखने वाले वान्धवों से पूछताछ करे । इसी प्रकार,

किसी को मार कर स्वयं मर जाने वाले पुरुष की पूछताछ या तहकीकात करे । जो स्वयं फांसी आदि से मरा है, उसके मरने के कण्ट का पता लगाया जावे ॥१२-१७॥

सर्वेषां वा स्त्रीदायाद्यदोषः कर्मस्पर्धा प्रतिपक्षद्वेषः पण्यसंस्थ समवायो वा विवादपदानामन्यतमद्वा रोपस्थानम् ॥ १८ ॥ रोपनिमित्तो घातः ॥ १९ ॥ स्वयमादिष्टपुरुषैर्वा चोरैरर्थनिमित्त सादृश्यादन्यवैरिभिर्वा हतस्य घातमासन्नेभ्यः परीक्षेत ॥ २० ॥ येनाहुतः सहस्थितः प्रस्थितो हतभूमिमानीतो वा तमनुयुज्जीत ॥ २१ ॥

सब पुरुषों के स्त्री, दायभाग, राजकुल की हुक्मत का संघर्ष, शत्रुका द्वेष, व्यापार की प्रधानता या न्यूनता, अभियोग (मुकदमें बाजी) ये प्रायः रोप के उत्पादक कारण होते हैं और शेष उत्पन्न हो जाने पर (कतल) होता है । जिसने आत्म हत्या की हो, जिस को किसी की प्रेरणा से मारा हो, धन के कारण से जिसको चोरों ने मार दिया हो, अन्य वैरियों ने समान रूप देख कर भूल से मार डाला हो, इसके मारने की खोज उस मृतक व्यक्ति के सहचरों से करनी चाहिए । जिसने मृतक को बुलाया, जिसके साथ ठहरा, जिसके साथ गया या जो मारने की भूमि में लाया उन सबसे उस मृतक की खोज की जावे और उनमें से अपराधी को खोज निकाला जावे ॥१८-२१॥

ये चास्य हतभूमावासन्नचरास्तानेकैकशः पृच्छेत् ॥ २२ ॥ केनायमिहानीतो हतो वा ॥ २३ ॥ कः सहस्रः संगूहमान उद्विग्नो वा युष्माभिर्दृष्ट इति ॥ २४ ॥ ते यथा ब्रूयुस्तथानुयुज्जीत ॥ २५ ॥

जो मनुष्य, मृतक के मारने के स्थान में फिरते हों-उन सबसे पूछताछ करे कि कौन इसे यहां लाया और किसने इसे मारा है । किस आदमी को तुमने हथियार लिये हुए छुपा हुआ घबराया सा देखा था । ये जो बतावे उसके अनुसार आगे खोज की जावे ॥२२-२५॥

अनाथस्य शरीरस्थमुपभोगं परिच्छिदम् ।

वस्त्रं वेषं विभूषां वा दृष्ट्वा तद्व्यवहारिणः ॥ २६ ॥

अनुयुज्जीत संयोगं निवासं वासकारणम् ।

कर्म च व्यवहारं च ततो मार्गणमाचरेत् ॥ २७ ॥

जिस मृत व्यक्ति का कुछ पता न लगे, तो उसके शरीर की माला आदि उपभोग सामग्री, वस्त्र, वेष, भूषा, देखकर इन वस्तुओं के बेचने वाले व्यापारियों से इसके विषय में पूछताछ की जावे, कि यह किनके साथ रहता था या किनके साथ में माला आदि

खरीदने आया । इसके साथी, निवास स्थान, निवास का कारण, कर्म, व्यवहार (वृत्ति) का पता लगाकर मृतक के विषय में अन्वेषण (तहकीकात) की जावे ॥२६-२७॥

रज्जुशस्त्रविषैर्वापि कामक्रोधवशेन यः ।

धातयेत्स्वयमात्मानं स्त्री वा पापेन मोहिता ॥ २८ ॥

रज्जुना राजमार्गे तां चण्डालेनापकर्षयेत् ।

न श्मशानविधिस्तेषां न संवन्धिक्रियास्तथा ॥ २९ ॥

जो पुरुष, रज्जु, शस्त्र, विषसे या काम क्रोध के वश में होकर अतने आपको मार डाले या कोई स्त्री, किसी पाप के कारण आत्महत्या करले-तो चण्डाल उसे रस्सी में बांध कर सड़क पर खेंचे उनको श्मशान में न जलाने दिया जावे और न उसकी लाश उसके सम्बन्धियों को दी जावे ॥२८-२९॥

वन्धुस्तेषां तु यः कुर्यात्प्रेतकार्यक्रियाविधिम् ।

तद्वर्ति स चरेत्पश्चात्स्वजनाद्वा प्रमुच्यते ॥ ३० ॥

जो वान्धव, आत्मघाती की प्रेत क्रिया आदि करे-तो मरने के अनन्तर राजा उसे भी इसी तरह घसीटवा के या उसे अपनी जाति से च्युत करवादे ॥३०॥

संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन् ।

याजनाध्यापनाद्यौनात्तैश्चान्यो ऽपि समाचरन् ॥ ३१ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे आशुमृतकपरीक्षा सप्तमो ऽध्यायः ॥७॥

आदितश्चतुरशीतिः ॥ ८४ ॥

पतित पुरुष के साथ एक वर्ष तक यजन, अध्ययन या विवाह करने से पुरुष पतित हो जाता है । उस पुरुष से भी जो व्यवहार करता है वह भी एक वर्ष में पतित हो जाता है ॥३१॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में आशुमृतक (कतल) के मुकद्दमों की तहकीकात का सातवां अध्याय समाप्त हुआ ।



आठवां अध्याय

८३वां प्रकरण

वाक्य कर्मानुयोग ।

इस प्रकरण में अपराधी के विषय में साथ देने वाले से जो वाक्य कर्म (जिरह) की जावेगी अब उसका वर्णन होगा ।

मुपितसंनिधौ बाह्यानामभ्यन्तराणां च साक्षिणामभिशास्तस्य देशजाति-
गोत्रनामकर्मसारसहायनिवासाननुयुज्जीत ॥ १ ॥ तांश्चापदेशैः प्रतिसमानयेत्
॥ २ ॥ ततः पूर्वस्याह्नः प्रचारं रात्रौ निवासं चाग्रहणादित्यनुयुज्जीत ॥ ३ ॥
तस्यापसारप्रतिसंधाने शुद्धः स्यात् ॥ ४ ॥ अन्यथा कर्मप्राप्तः ॥ ५ ॥ त्रिरात्रा-
दूर्ध्वमग्र ह्यः शङ्कितकः पृच्छाभावादन्यत्रोपकरणदर्शनात् ॥ ६ ॥

जिसका माल चोरी गया है, उस अभियोगी [मुत्तगीस] के सन्मुख बाहर भीतर के साक्षियों से अपराधी (मुलजिम) के देश, जाति, गोत्र, नाम, कर्म, सम्पत्ति, सहायक और निवास के विषय में पूछा जावे । इसके अनन्तर चक्र देकर फिर साक्षी से अपराधी के विषय में पूछी हुई बातों की उलट पलट प्रश्नो द्वारा पुष्टि करे । इसके अनन्तर अपराधी से पूर्व दिन के काये, रात्रि निवास और गिरफ्तारी तक के सारे वृत्तान्त माहूम किये जावें । जब उसके छुटकारे के प्रमाण मिल जावें, तो उसे छोड़ दिया जावे, नहीं तो उसे अपराधी मानकर पूर्वोक्त दण्ड दिया जावे । चोरी के दिन से तीन दिन गुजर जाने पर केवल शङ्का के आधार पर किसी को नहीं पकड़ना चाहिए, क्योंकि उनसे ठीक २ प्रश्न नहीं हो सकेंगे । यदि कहीं चोरी का माल (मुद्रा) मिलजावे, तो उसे फौरन पकड़ लेना चाहिए ॥१-६॥

अचोरं चोर इत्यभिव्याहरश्चोरसमो दण्डः ॥ ७ ॥ चोरं प्रच्छादयतश्च
॥ ८ ॥ चोरेणाभिशास्तो वैरद्वेषाभ्यामपदिष्टकः शुद्धः स्यात् ॥ ९ ॥ शुद्धं परि-
वासयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥ शङ्कानिष्पन्नमुपकरणमन्त्रिसहायरूपवैय्या-
वृत्यकरान्निष्पादयेत् ॥ ११ ॥ कर्मणश्च प्रदेशद्रव्यादानांशविभागैः प्रतिसमानयेत्
॥ १२ ॥ एतेषां कारणानामनभिसंधाने विप्रलपन्तमचोरं विद्यात् ॥ १३ ॥
दृश्यते ह्यचोरो ऽपि चोरमार्गे यदृच्छया ॥ १४ ॥ संनिपाते चोरवेषशस्त्रभाण्ड-
सामान्येन गृह्यमाणो दृष्टश्चोरभाण्डस्योपवासेन वा यथा हि भाण्डव्यः कर्मकेश-

भयादचोरश्चोरो ऽस्मीति त्रुवाणः ॥ १५ ॥ तस्मात्समाप्तकरणं नियमयेत् ॥१६॥

जो मनुष्य, साधु पुरुष को चोर बनावे या चोर को छुपावे-उसपर चोर के तुल्य ही दण्ड किया जावे। चोर ने अपने वैर या द्वेष से किसी को पकड़वा दिया, तो जब उसका अपदेश [सफाई] हो जावे, तो उसे शुद्ध समझकर छोड़ दिया जावे। जब शुद्ध प्रतीत हो जावे, और अधिकारी उसे पकड़े ही रखे-तो इस अधिकारी पर भी पूर्व साहस दण्ड होना चाहिए। चोरी के सन्देह में पकड़े हुए पुरुष के पास से चोरी करने के साधन, सलाहकार सहायक, वस्तुओं का रूप, और उनके वेतन की पृच्छताछ की जावे। चोरी करने को कौन भीतर घुसा, क्या द्रव्य चुराया, क्या किसको दिया गया, किसका क्या देना है-इत्यादि बातों की भी जांच की जावे। यदि किसी पर ये बातें साबित न हों और वह अपने को डर से चोर भी बतावे-तो भी उसे छोड़ देना चाहिए, क्योंकि कभी २ अचोर भी अचानक चोरों के मार्ग में आकर पकड़ लिया जाता है। कभी २ उसके चोरों के तुल्य ही वेप, शस्त्र, और सामान होता है और वह उन चोरों के समान सामग्री के कारण पकड़ा भी जाता है। माण्डव्य ने चोरी के क्लेश के भय से चोर न होने पर भी अपने को चोर बताया-यह कथा महाभारत के आदि पर्व में है, इसलिए इस प्रकार के मामलों में खूब ध्यान-वीन करनी चाहिए ॥७-१६॥

मन्दापराधं बालं वृद्धं व्याधितं मत्तमुन्मत्तं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तमत्याशित-
मात्मका शितं दुर्बलं वा न कर्म कारयेत् ॥ १७ ॥ तुल्यशीलपुंश्चलीप्रापाविक्रम्या-
विकाशभोजनदातृभिरपस्पर्षयेत् ॥ १८ ॥ एवमतिसंदध्यात् ॥ १९ ॥ यथा वा
निक्षेपापहारे व्याख्यातम् ॥ २० ॥ आप्तदोषं कर्म कारयेत् ॥ २१ ॥ न त्वेव
स्त्रियं गर्भिणीं स्रुतिकां वा मासावरप्रजाताम् ॥ २२ ॥ स्त्रियास्त्वर्थकर्म वाक्यानुयोगो
वा ॥ २३ ॥

थोड़ा अपराध करने वाले बालक, वृद्ध, रोगी, बेसमझ, पागल, भूखे, प्यासे, थके हुए, अधिक भोजन किये हुए, अजीर्ण रोगी, दुर्बल अपराधी से जेल में काम नहीं करवाना चाहिये। अपराध करने वालों के साथी, वंश्या, दूती, कथक, भोजन बनाने वालों (सराय होटल वालों) से अपराधियों का पता लगाया जावे। इस प्रकार चोरी आदि के भगड़ों की बड़े ध्यान से खोज की जावे। निक्षेप (धरोहर) के अपहरण में जो खोज के ढंग बताये हैं; उसी तरह यहां भी किया जा सकता है। जिसका अपराध प्रमाणित हो उसी को दण्ड दिया जावे। एक महीने से कम की प्रसूता, और गर्भिणी को जेल का दण्ड नहीं देना

चाहिए । स्त्री को जहां तक हो आधी सजा देनी चाहिए या फिड़ककर छोड़ देना चाहिए ॥१७-२३॥

ब्राह्मणस्य सत्त्रिपरिग्रहः श्रुतवतस्तपस्विनश्च ॥२४॥ तस्यातिक्रम उत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च कर्मणा व्यापादनेन च ॥२५॥ व्यावहारिकं कर्मचतुष्कम् ॥ २६ ॥ पड्दण्डाः सप्त कशा द्वावुपरिनिबन्धावुदकनालिका च ॥ २७ ॥ पर पापकर्मणां नववेगलता द्वादशकं द्वावूरौ अष्टौ विंशतिर्नक्तमाललता द्वाविंश-
तल्ला द्वौ वृश्चिकवन्धावुल्लम्बने चले सूचीहस्तस्त यवागूपीतस्यैकपर्वदहनमङ्गल्याः
स्नेहपीतस्य प्रतापनमेकमह शिशिररात्रौ वल्गुजाग्रशय्या चेत्यष्टादशकं कर्म ॥२८॥

वेदपाठी और तपस्वी ब्राह्मण को सर्त्री नामक गुप्तचर के साथ नगर में घुमाकर छोड़ दिया जावे । जो अधिकारी, चोर या उसके सहायकों को अधिक दण्ड दे या मरवादे-तो इन नियमों के उल्लंघन के कारण उस पर उत्तम साहस दण्ड होना चाहिए आजकल शारारिक छः दण्ड के दण्डे मारना, सात कशा (चावुक) लगाना, हाथ पैर बांध कर ओंधे लटकाना, और नमक का पानी नाक में डालना ये चार प्रकार हैं । अत्यन्त अपराध करने वालों के-नये वारह बेंत लगाकर; दो रस्सियों से अलग खेंचकर टांग बांध देना, करखवे की छड़ी से अट्ठाईस बार मारना, बत्तीस चोटे लगाना, बायें हाथ को बायें पैर से पीछे को बांधना और दायें को दायें से बांध देना, दोनों हाथ बांधकर लटका देना, दोनों पैर बांधकर ओंधा लटका देना हाथ के नाखूनों में सुई चुभोना, खिचड़ी लप्सी पिलाकर अंगुली का एक पौरवा जलाना, घी पिलाकर एक दिन धूप में खड़े कर देना, जाड़े की रात में भीगी खाट पर सुलाना, ये भी दंड के प्रकार होते हैं । इस प्रकार अट्ठारह दंड के प्रकार हैं ॥२४-२८॥

तस्योपकरणं प्रमाणं प्रहरणं प्रधारणमवधारणं च खरपट्टादागमयेत् ॥२९॥
दिवसान्तरमेकैकं च कर्म कारयेत् ॥ ३० ॥ पूर्वकृतापदानं प्रतिज्ञाया अपहरन्त-
मेकदेशमदृष्टद्रव्य कर्मणा रूपेण वा गृहीतं राजकोशमपस्तृणन्तं कर्मवध्य वा
राजवचनात्समस्तं व्यस्तमभ्यस्तं वा कर्म कारयेत् ॥ ३१ ॥ सर्वापराधेष्वपीडनीयो
ब्राह्मणः ॥ ३२ ॥ तस्याभिशस्ताङ्को ललाटे स्याद्व्यवहारपतनाय ॥ ३३ ॥ स्तेये
श्वा ॥ ३४ ॥ मनुष्यवधे कवन्धः ॥ ३५ ॥ गुरुतल्पे भगम् ॥ ३६ ॥ सुरापाने
मद्यध्वजः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार के दंड के नियमों के प्रमाण, मारने के ढंग, अपराधी के खड़े करने के प्रकार का अध्ययन खरपट्ट के शास्त्र से जानना चाहिए । यदि किसी पर इनमें कई का

प्रयोग करना है, तो एक दिन बीच में ढालकर इनका प्रयोग करे। पहिले चोरी आदि अपराध करने वाले, प्रतिज्ञा करके चोरी करने वाले, माल के मुद्दे के साथ पकड़े हुए, माल न होने पर भी चोरी या चिन्हों से पकड़े हुए, राजा की सम्पत्ति को हड़प जाने वाले वध-कर्ता (कातिल) को ये सारे आवे पर इनमें से एक दंड दिया जा सकता है। ब्राह्मण को किसी भी अपराध में मृत्यु दंड या शारीरिक दंड न दिया जावे। भिन्न २ अपराधों के लिए उसके मस्तक में लोहे से दाग का चिन्ह कर दिया जावे। जिससे उसकी आमदनी और प्रतिष्ठा का पतन हो जावे। चोरी में कुत्ते, मनुष्य वध में कबन्ध, गुरु भार्या गमन पर भग और सुरापान पर मद्य ध्वजा का चिन्ह दाग देना चाहिए ॥२६-३७॥

ब्राह्मणं पापकर्माणमुद्रप्याङ्ककृतप्रणम् ।

कुर्यान्निर्विषयं राजा वासयेदाकरेषु वा ॥ ३८ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे वाक्यकर्मानुयोगः अष्टमो ऽध्यायः ॥८॥

आदितः पञ्चाशीतिः ॥ ८५ ॥

राजा, अपराध करने वाले ब्राह्मण के मस्तक पर इस प्रकार चिन्ह करके और जनता में घोषणा कराके उस ब्राह्मण को देश से निकाल दे या खानों वाले पर्वत में रहने की आज्ञा दे दे ॥३८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में साक्षी सं वाक्या-
नुयोग (जिरह) के वर्णन का आठवां अध्याय समाप्त हुआ ।



नवां अध्याय

८४वां प्रकरण

सर्वाधिकरण रक्षणम्

इस प्रकरण में सारे अध्यक्ष और राजकीय कर्मचारियों तथा उनके स्थानों की पड़-ताल का वर्णन किया जावेगा।

समाहर्तृप्रदेष्टारः पूर्वमध्यक्षणां मध्यक्षपुरुषाणां च नियमनं कुर्युः ॥ १ ॥
खनिसारकर्मान्तेभ्यः सारं रत्नं वापहरतः शुद्धवधः ॥ २ ॥ फल्गुद्रव्यकर्मान्तेभ्यः
फल्गुद्रव्यमुपस्करं वा पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ पण्यभूमिभ्यो वा राजपण्यं

मापमूल्यादूर्ध्वमापादमूल्यादित्यपहरतो द्वादशपणो दण्डः, आद्विपादमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः ॥४॥ आत्रिपादमूल्यादिति षट्त्रिंशत्पणः ॥ ५ ॥ आपण-
मूल्यादित्यष्टचत्वारिंशत्पणः ॥६॥ आद्विपणमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः ॥७॥
त्राचतुष्पणमूल्यादिति मध्यमः ॥ ८ ॥ आपट्पणमूल्यादित्युत्तमः ॥ ९ ॥
आदशपणमूल्यादिति वधः ॥ १० ॥

समाहर्त्ता (कलक्टर) और प्रदेष्टा नामक राजकीय अधिकारी, प्रथम अघ्न और उनके साथ काम करने वाले राज्य कर्मचारियों (अहलकारों) का नियमन (इन्तजाम) करे। जो कर्मचारी खान या वन से रत्न या चन्दन आदि की लकड़ी चलती करदे, उसे प्राण दण्ड दिया जावे। जो पुरुष साधारण वस्तुओं के कारखाने से कपास आदि साधारण वस्तु उड़ादे या उनकी प्राप्ति के आँजार चलते करदे-उसे पूर्व साहस दण्ड हो। राजकीय खेतों से एक मासे के मूल्य की वस्तु से लेकर चार मासे की वस्तु के अपहरण करने वाले राजकीय कर्मचारी या अन्य पुरुष पर बारह पण दण्ड होवे और जो आठ मासे की वस्तु का अपहरण करे-तो उसपर चौबीस पण दण्ड होना चाहिए। यदि वस्तु बारह मासे की अपहरण की गई-तो छत्तीस और एक पण की हो तो अड़तालीस पण दण्ड होना चाहिए। जो दो पण के मोल की हो तो पूर्व साहस, चार पण की हो-तो मध्यम साहस, आठ पण की हो-तो उत्तम साहस दंड होना चाहिए और जो वस्तु दस पण के मूल्य की होजावे-तो वध दंड होना उचित है ॥ १-१० ॥

कोष्ठपण्य कुप्या युधागारेभ्यः कुप्यभाण्डोपस्करापहारेष्वर्धमूल्येष्वेत एव दण्डाः ॥११॥ कोशभाण्डागाराक्षशालाभ्यश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः ॥१२॥ चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रा घात इति राजपरिग्रहेषु व्याख्यातम् ॥ १३ ॥
वाह्येषु तु प्रच्छन्नमहनि क्षेत्रखलवेश्मापणेभ्यः कुप्यभाण्डमुपस्करं वा मापमूल्या-
दूर्ध्वमापादमूल्यादित्यपहरतस्त्रिपणो दण्डः ॥ १४ ॥ आद्विपादमूल्यादिति षट्पणः ॥ १५ ॥ गोमयभस्मना वा प्रलिप्यावधोपणम् ॥ १६ ॥ आत्रिपाद-
मूल्यादिति नवपणः ॥ १७ ॥ गोमयभस्मना वा प्रलिप्यावधोपणम् ॥ १८ ॥
शरावमेखलया वा ॥ १९ ॥

जो कर्मचारी कोठार (गोदाम) पण्यस्थान (दुकान) ताँवे, लोहे के कारखाने से ताँवे आदि की बनी आधा मासा वस्तु तथा उनके साथन उड़ाते हैं, उसपर बारह पण दण्ड होवे। कोश, भंडार और अक्ष शाला से चौथाई पण की वस्तु भी चुराले-तो उसपर

चौबीस पण दंड हो । जो कर्मचारी, आप वस्तु चुराकर चोरों के शिर लगावे, उसका कष्ट पूर्वक बध किया जावे, यह राजपरिग्रह प्रकरण में लिखा गया है । यदि जनताके रेत, खलियान, घर या दुकानों से दिन में छुपाकर तांवे आदि के वर्तन या उनके साधनों, को उड़ावे, जो एक मासे से चार मासे तक के हों-तो उसपर तीन पण दण्ड हो । यदि वस्तु का मूल्य आठ मासा हो तो उसपर छः पण दंड हो अथवा इन दोनों के शरीर में गोबर और भस्म लपेट कर नगर ढिंढोरे के साथ घुमाया जावे । जो वस्तु बारह मासे के मूल्य की हो तो उस पर नौ पण दंड है । इसको भी गोबर भस्म में लपेटकर इसके गले में सकोरा बांधकर नगर में घुमावे ॥ ११-१६ ॥

आपणमूल्यादिति द्वादशपणः ॥ २० ॥ मुण्डनं प्रवाजनं वा ॥ २१ ॥
 आद्विपणमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः ॥ २२ ॥ मुण्डनमिष्टकाशकलेन प्रवाजनं
 वा ॥ २३ ॥ आचतुष्पणमूल्यादिति षट्त्रिंशत्पणः ॥ २४ ॥ आपञ्चपणमूल्या-
 दित्यष्टचत्वारिंशत्पणः ॥ २५ ॥ आदशपणमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः
 ॥ २६ ॥ आत्रिंशतिपणमूल्यादिति द्विशतः ॥ २७ ॥ आत्रिंशत्पणमूल्यादिति
 पञ्चशतः ॥ २८ ॥ आचत्वारिंशत्पणमूल्यादिति सहस्रः ॥ २९ ॥ आपञ्चा-
 शत्पणमूल्यादिति बधः ॥ ३० ॥

जो वस्तु एक पण मूल्य की हो-तो बारह पण दंड दे या उसका मूँड मुँडाकर देश से निकाल दे । दो पण की वस्तु चुराने पर चौबीस पण दंड दे या उसे मूँड मुँडाकर ईंट मारते हुए नगर से निकाल दे । चार पण मूल्य की वस्तु हो-तो छत्तीस पण, पांच पण की हो-तो अड़तालीस पण, दश पण की हो तो पूर्व साहस दंड, बीस पण की हो तो दो सौ पण दंड, तीस पण के मूल्य की हो तो तीन सौ पण, चालीस पण के मूल्य की हो तो एक सहस्र पण और पचास पण मूल्य की वस्तु चुराने पर प्राण दंड होना चाहिए ॥ २०-३० ॥

प्रसह्य दिवा रात्रौ वान्तर्याममेव हरतो ऽर्धमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः
 ॥ ३१ ॥ प्रसह्यदिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्यापहरतश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव दण्डाः
 ॥ ३२ ॥ कुटुम्बाध्यक्षमुख्यस्वामिनां कूटशासनमुद्राकर्मसु पूर्वमध्यमोत्तमवधा
 दण्डाः ॥ ३३ ॥ यथापराधं वा ॥ ३४ ॥ धर्मस्थश्चेद्विवदमानं पुरुषं तर्जयति
 भर्त्सयत्यपसारयत्यभिग्रसते वा पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३५ ॥ वाक्पा-
 रूप्ये द्विगुणम् ॥ ३६ ॥ पृच्छयं न पृच्छत्यपृच्छयं पृच्छतिपृष्ट्वा वा विसृजति
 शिक्षयति समारयति पूर्वं ददाति वेति मध्यममस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३७ ॥

दिन या रात में सुखित आये नाते से दो नाते की बत्तु को बत्त मुँके डीलने पर
 डा पण बंद हो । दिन या रात में शक लेकर नाते के चतुर्थे या पाँच की बत्तु भी डीलने पर
 यही बंद होवे । साधारण प्रजाजन, अश्वज, गाँव का मुखिया या अन्य मनहरी कहे
 जाली वृत्तावेक या सुहर वृत्तावेको उत्तर काम से प्रथम साहस, मध्यम साहस, मन्त्र
 साहस बंद और बध बंद कर होना चाहिए । जैसा जिसका अग्राम हो वैसा ही बंद हो ।
 जो वसन्त्यज, वयान देते हुए पुत्र को अकारण, वनकाट, अचारी से निकाल देना या
 शिवत खा जाता है, तो वसन्त्य को पूर्व साहस बंद होना चाहिए । यदि बाढ़ी, प्रविशती को
 वसन्तिकारी गाली देवे-तो उसे दुगुला बंद हो । जो वसन्त्यज, पूजने योग्य वध को नहीं
 पूजता, नहीं पूजने योग्य को पूजता है, कुछ वध को पूजकर नहीं छोड़ देता है, सारी देते
 समय सिलाता, किसी वध को याद दिलाता, या पूर्व वध को पूर्व का देता है, तो ऐसे
 अश्वज को मध्यम साहस बंद होना चाहिए ॥ ३१-३४ ॥

देयं देनां न पृच्छत्यदेयं देनां पृच्छति कार्येनदेनादिविवाहयति जनेनादि-
 हरति कालहरणेन आन्तरपराहयति नागापिशं वाक्यमुक्कलयति नागिनाहात्यं
 साक्षिसयो दग्गति त्रिगिरातुशिष्टं कार्यं पुनरपि गृह्णति उचननस्मै साहसदण्डं
 कुर्यात् ॥ ३८ ॥ पुनरपराधे द्विगुणं स्थानादयपराहसं च ॥ ३९ ॥ लेखक
 श्रेष्ठकं न लिखत्यपुत्रं लिखति दुष्टकमुपलिखति दुष्टकलिखत्यपराधेन लिख-
 यतीति पूर्वतस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ४० ॥ यथापराधं वा ॥ ४१ ॥

जो वसन्त्य (वज्र या सजिह्वे) देते योग्य अज्ञा नहीं देता और नहीं देते योग्य
 अज्ञा दे देता है, किसी नाई को देता, सारी के निम्न देता है, किसी को डक
 करके चुका देता है, काल व्यतीत करके उसके हुए बाढ़ी प्रविशती को रोक करता है ।
 ठीक २ बोलते हुए बाढ़ी प्रविशती या सारी को गड़ बड़ा देता है । साक्षियों को नति
 (सक्षिरा) दे देता है, जिसका कैला हो चुका-उसे फिर ले कैला है, ऐसे वसन्त्य को
 राजा ज्जन साहस दण्ड देवे । दुवार, वही अनराध करने पर दुगुला दण्ड हो और सजान
 से दण्ड दिया जावे । लेखक यदि लिखने की बात को न लिखे, नहीं कही हुई बात को
 लिखले, अच्छी को दुरी तरह और दुरी को अच्छी बात का लिखता है तब बात के
 तात्पर्य में विकल्प खड़ा कर देता है, उस कर्मचारी (सुहरि) को पूर्व साहस दण्ड हो या
 ज्जने जैसे विषय में यह अनराध किया-वैसा दण्ड हो ॥ ३८-४१ ॥

अमन्त्यः प्रदेया वा हरणमदण्डयं क्षिपति शेषद्विगुणतस्मै दण्डं
 कुर्यात् ॥ ४२ ॥ हीनातिरिक्ताष्टगुणं वा शान्तिदण्डं क्षिपति शान्तिनेत्र दण्डं

भजेत ॥ ४३ ॥ निष्क्रयद्विगुणं वा ॥ ४४ ॥ यं वा भूतमर्थं नाशयत्यभूतमर्थं
करोति तदप्सुगुणं दण्डं दद्यात् ॥ ४५ ॥ धर्मस्थीयाचारकान्निस्सारयतो
वन्धनागाराच्छ्रय्यासनभोजनोच्चारसंचारं रोधवन्धनेषु त्रिपणोत्तरा दण्डाः कर्तुः
कारयितुश्च ॥ ४६ ॥

धर्माधिकारी या प्रदेष्टा, यदि दण्ड नहीं देने योग्य व्यक्ति को सुवर्ण दण्ड देवे-तो
इस सुवर्ण से दुगुना दण्ड इन अधिकारियों पर किया जावे । यदि किसीको कम दण्ड के
स्थान पर अधिक और अधिक स्थान पर कम दण्ड देता है, तो अधिकारी पर आठ गुना
दण्ड होना चाहिए और जो धर्माव्यक्त ने व्यर्थ ही शरीर दण्ड दे डाला है, तो उसपर भी
शरीर दण्ड होना चाहिए और मूल्य से दुगुना जुर्माना होना चाहिए । जो धर्माधिकारी
न्याय की बात न करके अन्याय की बात करे, उसपर भी आठ गुना दण्ड है । मजिस्ट्रेट
के द्वारा निर्दिष्ट, चारक [दण्ड स्थान] से या वन्धनागार से जो व्यक्ति, कैदी को घुमा के,
या वहीं उसके सोने, बैठने, भोजन, शौच और व्रमने का प्रवन्ध करदे या करादे, तो उन्हें
उत्तरोत्तर तीन पण बढ़ाते हुए दण्ड देना चाहिए ॥४४-४६॥

चारकादभियुक्तं मुञ्चतो निष्पातयतो वा मध्यमः साहसदण्डो ऽभियोग-
दानं च ॥ ४७ ॥ वन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च ॥ ४८ ॥ वन्धनागाराध्यक्षस्य
संरुद्धक्रमनोख्याय चारयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ४९ ॥ कर्म कारयतो
द्विगुणः ॥ ५० ॥ स्थानान्यत्वं गमयतो ऽन्नपानं वा रुन्धतः पणवतिर्दण्डः
॥ ५१ ॥ परिक्लेशयत उत्कोटयतो वा मध्यमः साहसदण्डः ॥ ५२ ॥ घतः
साहस्रः ॥ ५३ ॥ परिगृहीतां दार्सीमाहितिकां वा संरुद्धिकामधिचरतः पूर्वः
साहसदण्डः ॥ ५४ ॥

जो दण्ड स्थान से अभियुक्त को छोड़ दे या चले जाने को प्रेरणा करे, तो उसपर
मध्यम साहस दण्ड हो और जो अभियोग (मुकदमें) का हर्जाना हो-वह भी उससे ही
लिया जावे । यदि वन्धनागार से चलवा करदे-तो उसका सर्वस्व छीनकर प्राण दंड देना
चाहिए । वन्धनागार [जेल] के अध्यक्ष की बिना आज्ञा, कैदी को जो घुमावे-उसपर
चौबीस पण दंड हो और जो ऐसा करने को उकसावे-उसपर दुगुना दंड हो । जो मनुष्य,
कैदी का स्थान बदले या खाने पीने में रुकावट डाले-उसपर छियानवे पण दण्ड हो । जो
कैदी को क्लेश दे या गिश्त के लिए तंग करे-उस पर मध्यम साहस दंड हो । यदि कोई
कैदी को मारे-तो उसपर एक सहस्र पण दण्ड हो । कैद में आई हुई दासी, या रखेल स्त्री के
साथ जो जेल में बुरा व्यवहार करे-उसपर पूर्व साहस दंड हो ॥४७-५४॥

चोरडामरिकभार्या मध्यमः ॥ ५५ ॥ संरुद्रिकामार्यामुत्तमः ॥ ५६ ॥
 संरुद्रस्य वा तत्रैव यातः ॥ ५७ ॥ तदेवाक्षणगृहीतायामार्यायां विद्यात् ॥ ५८ ॥
 दास्यां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५९ ॥ चारक्रमभित्वा निष्पातयतो मध्यमः
 ॥ ६० ॥ भित्वावधः ॥ ६१ ॥ बन्धनारागात्सर्वस्वं वधश्च ॥ ६२ ॥

चोर या (लुटेरे) की भार्या के साथ बुरा व्यवहार करने पर मध्यम साहस और
 कैद में आई हुई स्त्री के साथ बुरा व्यवहार करने वाले पर उत्तम साहस दंड होना
 चाहिए। यदि कोई कैदी किसी स्त्री से बुरा व्यवहार कर ले तो उसे प्राण दंड हो। यही
 मृत्यु दंड आर्य स्त्री के साथ अध्यक्ष आदि के बुरा व्यवहार करने पर दिया जावे। दासी के
 साथ अध्यक्ष ऐसा करे-तो पूर्व साहस दण्ड हो। हवालात को बिना तोड़े कैदी को निकाल
 दिया जावे-तो मध्यम साहस दंड हो। हवालात तोड़कर कैदी छुड़ाने पर वधका दंड है।
 बन्धनागार (जेलखाने) से छुड़ाने में सर्वस्व हरण और मृत्यु दण्ड की व्यवस्था है ॥ ५५-६२ ॥

एवमर्थचरान्पूर्वं राजा दण्डेन शोधयेत् ।

शोधयेयुश्च शुद्धार्यैः पौरजानपदान्दमैः ॥ ६३ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे सर्वाधिकरणरक्षणं नवमो ऽध्यायः ॥ ६४ ॥

आदितः पडशीतिः ॥ ८६ ॥

राजा प्रथम अपने कर्म-चारियों को दंड द्वारा ठीक चलावे, फिर नियमानुसार दंड
 व्यवस्था द्वारा राजकीय अध्यक्ष, पुर और देश की जनता का ठीक २ शासन करे ॥ ६३ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में सारे अधिकारियों
 के कर्मों के वर्णन का नौवां अध्याय पूरा हुआ ।



दसवां अध्याय

८५वां प्रकरण

एकाङ्गवध निष्क्रयः

इस प्रकरण में अपराधी के एक अङ्ग कटवाने या उसका निष्क्रय (बदले का द्रव्य)
 लेने का वर्णन किया जावेगा ।

तीर्थयातग्रन्थिभेदोर्ध्वकराणां प्रथमे ऽपराधे संदंशच्छेदनं चतुष्पञ्चा-
 शत्पणो वा दण्डः ॥ १ ॥ द्वितीये छेदनं पणस्य शत्यो दण्डः ॥ २ ॥ तृतीये

दक्षिणहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ ३ ॥ चतुर्थे यथाकामी वधः ॥ ४ ॥
पञ्चविंशतिपणावरेषु कुक्कुटनकुलमार्जारश्वसूकरस्तेयेषु हिंसायां वा चतुष्पञ्चा-
शत्पणो दण्डः ॥ ५ ॥ नासाग्रच्छेदनं वा ॥ ६ ॥ चण्डालारण्यचराणा-
मर्धदण्डाः ॥ ७ ॥

तीर्थ के ऊपर धोखा देने वाले, ठग उठाई गिरों के प्रथम अपराध पर अङ्ग लियों के नख निकलवा देने चाहिए या इसके बदले में चौवन पण दंड में लिए जावे । यदि वही अपराधी दुबारा भी ऐसा ही करे-तो उसकी सारी अङ्ग लि कटवादी जावे, या उससे सौ पण दंड लिया जावे । यदि फिर तीसरी बार वही अपराध करता पकड़ा जावे-तो उसका दाया हाथ कटवा देना चाहिए या चारसौ रुपये दंड लेने उचित है । यदि फिर चौथी बार अपराध करे,तो जैसे राजा की इच्छा हो, उसी तरह उसे मृत्यु दंड दिया जावे । पच्चीस पण से कम मूल्य के कुक्कुट, नौले, बिलाव, कुत्ते, और सूअरों की चोरी करने या उनके मार देने पर चौवन पण दंड या उसकी नाक का जरा सा अगला हिम्सा कटवा देना चाहिए । यदि ये मुरों आदि किसी चण्डाल पुरुष के हों या जंगली मनुष्यों के हों-तो अपराधी को आधा दंड होगा ॥१-७॥

पाशजालकूटापपातेषु वद्धानां मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यानामादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ८ ॥ मृगद्रव्यवनान्मृगद्रव्यापहारे शतयो दण्डः ॥ ९ ॥ विम्बविहारमृगपक्षिस्तेये हिंसायां वा द्विगुणो दण्डः ॥ १० ॥ कारुशिल्पिकुशीलवतपस्विनां क्षुद्रकद्रव्यापहारे शतयो दण्डः ॥ ११ ॥ स्थूलकद्रव्यापहारे द्विशतः ॥ १२ ॥ कृषिद्रव्यापहारे च ॥ १३ ॥

फांसी, जाल, प्रच्छन्न गडदे खोंदकर जो बिना अधिकार सुरक्षित वन के मृग, पशु पक्षी और मत्स्यों को पकड़ता है, उस से उसका मूल्य और उतना ही दंड लेना चाहिए । वन में स्वच्छन्द घूमने वाले मृग या वन की लकड़ी आदि वस्तुओं को अपहरण करने वाले पुरुष पर सौ रुपये दंड हों । वगीचे और विहारस्थलों के पशु और पक्षियों के चुराने वाले पर इस से दुगुना दंड होवे । कारीगर, शिल्पी, नट और तपस्वी पुरुषों की छोटी मोटी वस्तु के चुराने पर सौ रुपये दंड हों और बड़ी चीजों के चुराने पर दो सौ दण्ड हो । खेती के साधन हल आदि के चुराने पर भी दो सौ पण दंड होना चाहिए ॥ ८-१३ ॥

दुर्गमकृतप्रवेशस्य प्रविशतः प्राकारच्छिद्राद्वा निक्षेपं गृहीत्वापसरतः कन्धरावधो द्विशतो वा दण्डः ॥ १४ ॥ चक्रयुक्तं नावं क्षुद्रपशुं वापहरत

एकपादवधः त्रिशतो वा दण्डः ॥ १५ ॥ कूटकाकण्यचारालाशलाकाहस्तविषम-
कारिण एकहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ १६ ॥ स्तेनपारदारिकयोः साचिव्य-
कर्मणि स्त्रियाः संगृहीतायाश्च कर्णनासाच्छेदनं पञ्चशतो वा दण्डः ॥ १७ ॥
पुंसो द्विगुणः ॥ १८ ॥ महापशुमेकं दासं दासीं वापहरतः प्रेतभाण्डं वा वि-
क्रीणानस्य द्विपादवधः षट्छतो वा दण्डः ॥ १९ ॥

दुर्ग में प्रवेश नहीं होने की आज्ञा वाले पुरुष का दुर्ग में प्रवेश करने वाले अथवा
परकोटे के छिद्र से घुस कर दुर्ग से द्रव्य उड़ा लेने वाले पुरुष की गर्दन काट कर मार
देना या उससे दो सौ पण दंड लेना चाहिए। पहियों की नाव या क्षुद्र पशु के अपहरण
करने वाले अपराधी का एक पैर काट देना चाहिए या उस से तीन सौ पण दंड में लेवे।
जाली कौड़ी, पासे चमड़े की चौकड़ी और शलाका बनाने तथा छल से हाथ चलाने की
शिक्षा देने वाले का एक हाथ काट दिया जावे या उसपर चार रुपये दंड होवे। चोर
और व्यभिचारी पुरुषों की सहायता करने वाली पकड़ी हुई स्त्रियों की नाक और कान
कटवा देने उचित हैं या उनसे पाँचसौ रुपये दंड लिये जावें। जो पुरुष उनकी सहायता करे-तो
उसे भी दुगुना दंड हो। जो पुरुष बड़े पशु और दास या दासी तथा प्रेत निमित्त आई हुई
वस्तुओं को चुरावे-तो उसके दोनों पैर कटवा दिये जावें या उससे छः सौ पण दंड
में लिया जावे ॥१४-१९॥

वर्णोत्तमानां गुरुणां च हस्तपादलङ्घने राजयानवाहनाद्यारोहणे चैकहस्तपाद-
वधः सप्तशतो वा दण्डः ॥ २० ॥ शूद्रस्य ब्राह्मणवादिनो देवद्रव्यमवस्तुणतो
राजद्विष्टमादिशतो द्विनेत्रभेदिनश्च योगाञ्जनेनान्धत्वमष्टशतो वा दण्डः ॥ २१ ॥
चोरं पारदारिकं वा मोक्षयतो राजशासनमूनमतिरिक्तं वा लिखतः कन्यां दासीं
वा सहिरण्यमपहरतः कूटव्यवहारिणो विमांसविक्रयिणश्च वामहस्तपादवधो
नवशतो वा दण्डः ॥ २२ ॥ मानुषमांसविक्रये वधः ॥ २३ ॥ देवपशुप्रति-
मामनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णरत्नसस्यापहारिण उत्तमो दण्डः शुद्रवधोवा ॥ २४ ॥

आम वर्ण के पूज्य पुरुषों के हाथ या पैर से मारने या राजा की सवारी, अश्व
आदि पर चढ़ने वाले पुरुष का एक हाथ और एक पैर कटवा देना चाहिए या उससे सात
सौ पण दंड में लेने उचित हैं। जो शूद्र, अपने को ब्राह्मण बतावे और देव द्रव्य को अपने
अधीन करले, राजा के द्वेष की बात फैलावे या किसी की दोनों आँखें फोड़ दे-तो औषधियों
का अञ्जन लगाकर उसे अन्धा कर देना चाहिए। चोर या व्यभिचारी, पुरुष को छड़ाने

वाले, राज शासन को घटा बढ़ाकर लिखने वाले, कन्या या दासी को आभूषणों के साथ चुराने वाले, छल कपट का व्यवहार करने वाले, अभक्ष्य पशुओं का मांस बेचने वाले, अपराधी का बाँया हाथ और दोनों पैर काट देने उचित है या उनसे नौ सौ पण दंड लेने ! यदि कोई मनुष्य का मांस बेचता पकड़ा जावे-तो उसका वध करना उचित है । देवता के पशु, प्रतिमा, मनुष्य खेत, घर, सुवर्ण, रत्न और अन्न के अपहरण करने वाले मनुष्यों को उत्तम साहस दंड वा शुद्ध दंड से मृत्यु दंड देना चाहिए ॥२०-२४॥

पुरुषं चापराधं च कारणं गुरुलाघवम् ।

अनुबन्धं तदात्वं च देशकालौ समीक्ष्य च ॥ २५ ॥

उत्तमावरमध्यत्वं प्रदेष्टा दण्डकर्मणि ।

राज्ञश्च प्रकृतीनां च कल्पयेदन्तरास्थितः ॥ २६ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे एकाङ्गवधनिष्क्रयो दशमोऽध्यायः ॥१०॥

आदितः सप्ताशीतिः ॥ ८७ ॥

दंड देने वाला पुरुष अपराधी, उसके अपराध, कारण का गौरव-लाघव, उसके जोड़-तोड़ उस समय के देश और काल, को देखकर राजा और प्रजा के मध्य में स्थित होकर उत्तम, मध्यम और प्रथम आदि दंड देवे ॥२५-२६॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत, कण्टकशोधन अधिकरण में अपराधी के एक

अङ्ग वध और उसके निष्क्रय का दशवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



ग्यारहवां अध्याय

दण्डवां प्रकरणं

इस प्रकरण में कष्ट-पूर्वक वध और बिना कष्ट वध करने का वर्णन किया जावेगा ।

कलहे घ्नतः पुरुषं चित्रो घातः ॥ १ ॥ सप्तरात्रस्यान्तमृते शुद्धवधः

॥ २ ॥ पक्षस्यान्तरुत्तमः ॥ ३ ॥ मासस्यान्तः पञ्चशतः समुत्थानव्ययश्च ॥४॥

शस्त्रेण प्रहरत उत्तमो दण्डः ॥ ५ ॥ मदेन हस्तवधः ॥ ६ ॥ मोहेन द्विशतः

॥७॥ वधे वधः ॥ ८ ॥ प्रहारेण गर्भं पातयत उत्तमो दण्डः ॥ ९ ॥ भैषज्येन

मध्यमः ॥ १० ॥ परिक्लेशेन पूर्वः साहसदण्डः ॥ ११ ॥

लड़ाई म्हाड़े में जो पुरुष, किसी दूसरे पुरुष को मारदें-तो उसको कष्ट पूर्वक मृत्यु दण्ड देना चाहिए। यदि लड़ाई म्हाड़े में इतना चोट लग गई, कि सात दिन में मृत्यु हो-तो उसको शुद्ध मृत्यु दण्ड अर्थात् बिना कष्ट फांसी दी जावे। यदि लड़ाई दंगे के पन्द्रह दिन बाद किसी आहत की मृत्यु हो-तो अपराधी को उत्तम साहस दंड होवे और महीने के अनन्तर मृत्यु हो-तो पांच सौ दंड और चिकित्सा व्यय वसूल किया जावे। जो लड़ाई में शस्त्र का प्रयोग करे, उसको उत्तम साहस दंड हो। यदि मद में आकर प्रहार कर बैठे-तो हाथ कटवाया जावे। मोह में आकर मार बैठे-तो दो सौ पण दंड हो यदि किसीका दंगे में प्राण निकल गया हो-तो अपराधी को प्राण दंड दिया जावे। यदि प्रहार से किसी स्त्री का गर्भ गिर जावे-तो उत्तम साहस दंड हो। औषधि द्वारा गर्भ गिराने पर मध्यम दंड हो। यदि कठोर काम कराकर गर्भ पात करा दिया गया हो तो पूर्व साहस दंड होना चाहिए ॥१-११॥

प्रसभस्त्रीपुरुषघातकाधीमारकानिग्राहकावधोपकावस्वन्दकोपवेधकान्पथिवैर-
मप्ररोधकान्राजहस्त्यधरधानां हिंसकान्स्तेनान्वा शूलानारोहयेयुः ॥१२॥ यथैनान्द-
हेदपनयेद्वा स तमेव दण्डं लभेत साहसमुत्तमं वा ॥ १३ ॥ हिंसस्तेनानां
भक्तवासोपकरणमिमन्त्रदानवैयावृत्यकर्मसूतमो दण्डः ॥ १४ ॥ परिभाषणम-
विज्ञाने ॥ १५ ॥ हिंसस्तेनानां पुत्रदारमसमन्त्रविसृजेत्समन्त्रमाददीत ॥ १६ ॥

बलात्कार द्वारा स्त्री पुरुषों के घातक, किसी के उड़ा ले जाने या रोक रखने वाले-किसीके मारने की धमकी देने वाले या लूट मचाने वाले तथा कान नाक काट लेने वाले मार्ग के धर्मशाला आदि स्थानों पर बलपूर्वक अधिकार करने वाले तथा राजा के हाथी, अश्व और रथों को मार देने चुरा लेने वाले अपराधियों को शूली पर चढ़ाकर मार देवे। जो इन पुरुषों का दाह कर्म करे या इन्हें हटा ले जावे, उनपर यही दंड या उत्तम साहस दंड होना चाहिए। हत्यारे और चोरों को भोजन, वस्त्र, सामग्री, अग्नि, सम्मति, दान या वेतन से नौकरी करे-तो उसपर उत्तम साहस दंड होवे। यदि भूल से उनकी सहायता हो जावे-तो उन सहायक पुरुषों को चेतावनी देकर छोड़ दिया जावे। घातक और चोरों के पुत्र और स्त्रियों को यदि उनके कामों में सम्मिलित न हों-तो उन्हें छोड़ दिया जावे और यदि सम्मिलित हों-तो यथा योग्य दंड दिया जावे ॥१२-१६॥

राज्यकामुकमन्तः पुरप्रधर्षकमटव्यमित्रोत्साहकं दुर्गराष्ट्रदण्डकोपकं वा
शिरोहस्तप्रादीपिकं घातयेत् ॥ १७ ॥ ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत् ॥ १८ ॥ मातृ-
पितृपुत्रभ्रात्राचार्यतपस्विघातकं वा त्वक्छिन्नः प्रादीपिकं घातयेत् ॥ १९ ॥
तेषामाक्रोशे जिह्वाच्छेदः ॥ २० ॥ अङ्गाभिरदने तदङ्गान्मोच्यः ॥ २१ ॥

राजा के राज्य के छीनने के अभिलाषी, राजा के रनिवास में व्यभिचार की चेष्टा करने वाले, वन के लोग या राजा के शत्रु को उत्साह देने वाले, दुर्ग, राष्ट्र की जनता को चमका देने वाले अपराधी के शिर और हाथ पर अङ्गारा धर कर मरवा देना चाहिए । यदि ब्राह्मण ऐसा करे-तो उसे आजीवन काल कोठरी में डाल दे । माता, पिता, पुत्र, भ्राता, आचार्य, तपस्वी के घातक पुरुष की खाल और शिर पर अङ्गारा रखवाकर मरवा दिया जावे । यदि कोई माता पिता आदि को गाली देदे-तो उसकी जिह्वा का छेद करवा दिया जावे । यदि किसी अङ्ग से अङ्ग को मसल दिया गया-तो उसके उसी अङ्ग को तोड़ दिया जावे ॥१७-२१॥

यदच्छाधाते पुंसः पशुयूथाऽश्वस्तेयं च शुद्धवधः ॥ २२ ॥ दशावरं च यूथं विधात् ॥ २३ ॥ उदकधारणं सेतुं भिन्दतस्तत्रैवाप्सु निमज्जनम् ॥ २४ ॥ अनुदकमुत्तमः साहसदण्डः ॥ २५ ॥ भग्नोत्सृष्टकं मध्यमः ॥ २६ ॥ विषदायकं पुरुषं स्त्रियं च पुरुषघ्नीमपः प्रवेशयेदगर्भिणीम् ॥ २७ ॥ गर्भिणीं मासावर-प्रजातां पतिगुरुप्रजाघातिकामग्निविषदां संधिच्छेदिकां वा गोभिः पाटयेत् ॥ २८ ॥

यदि कोई अपराधी अचानक किसी पुरुष को मार दे, या पशुओं के झुंड से अश्व आदि की चोरी करले-तो उसे बिना कष्ट दिए मरवा देना चाहिए । कम से कम दश पशुओं का एक यूथ माना जाता है । यदि जल के रोकने वाले सेतु को जो तोड़ देता है, उसको पानी में डुबो देना चाहिए । यदि जल न आया हो और पुल बना हो-तो जो उस पुल को तोड़ता है, उसे उत्तम साहस दंड देना चाहिए । जो पुल खंडहर हो रहा हो और कोई पुरुष उसे तोड़ गिरावे-तो उसे मध्यम साहस दंड होवे । विष देने वाले पुरुष या पुरुष मारने वाली स्त्री को पानी में डुबो दे-परन्तु स्त्री गर्भवती नहीं होनी चाहिए । गर्भवती स्त्री को बच्चा उत्पन्न हो जाने पर एक महीने बाद पानी में डुबो दे । पति, गुरु, सन्तान के मारने वाली, अग्नि लगाने वाली, विष देने वाली और संधि काट देने वाली स्त्री को गौओं से रूंधवा कर मरवा दे ॥२२-२८॥

विवीतक्षेत्रं खलवेश्मद्रव्यहस्तिवनादीपिकमग्निना दाहयेत् ॥ २९ ॥ राजा-क्रोशकमन्त्रभेदकयोरनिष्टप्रवृत्तिकस्य ब्राह्मणमहानसावलेहिनश्च जिह्वामुत्पाटयेत् ॥ ३० ॥ ग्रहरणावरणस्तेनमनायुधीयमिषुभिर्घातयेत् ॥ ३१ ॥ आयुधीय-स्योत्तमः ॥ ३२ ॥ मेढूफलोपघातिनस्तदेव छेदयेत् ॥ ३३ ॥ जिह्वानासोपघाते संदंशवधः ॥ ३४ ॥

गोचर भूमि, खेत, खलिहान, घर, वन की वस्तु, हाथियों के वन में अग लगाने वाले अपराधी को आग में जला देवे। राजा को गाली देने वाले, गुप्त भेद खोलने वाले, राजा के अनिष्ट करने वाले और ब्राह्मण की रसोई से चुराकर चाट जाने वाले पुरुष की जिह्वा उखड़वा लेनी चाहिए। जो कवच और शस्त्र चुरावे और शस्त्रों से जीविका न करे उसे बाणों से मार डालना चाहिए, जो वह शस्त्र जीवी होवे तो उसे उत्तम साहस दंड होना चाहिए। जो कोई किसी के लिङ्ग और अंड कोशों को काट दे, तो उस अपराधी के भी लिङ्ग और अंडकोश कटवा दिये जावे। जिह्वा और नाक काट देने पर अंगूठा और अंगुली कटवा देनी चाहिए ॥२६-३४॥

एते शास्त्रेऽनुगताः क्लेशदण्डा महात्मनाम् ।

अक्लिष्टानां तु पापानां धर्म्यः शुद्धवधः स्मृतः ॥ ३५ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्प एकादशो

अध्यायः ॥ ११ ॥ आदितोऽष्टाशीतिः ॥ ८८ ॥

ये कठिन दंड महात्माओं ने शास्त्रों में कहे हैं, परन्तु जो अनुचित पाप कर्म हैं, उनमें शुद्ध वध ही धर्म माना गया है ॥३५॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में शुद्ध और चित्र वध का ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



बारहवां अध्याय

८७वां प्रकरण

कन्या प्रकर्म

इस प्रकरण में कन्या सम्बन्धी अपराधों का वर्णन किया जावेगा ।

सवर्णमप्राप्तफलां कन्यां प्रकुर्वतो हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ १ ॥
मृतायां वधः ॥ २ ॥ प्राप्तफलां प्रकुर्वतो मध्यमप्रदेशिनीवधो द्विशतो वा दण्डः
पितुश्चावहीनं दद्यात् ॥ ३ ॥ न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ ४ ॥ सकामायां
चतुष्पञ्चाशत्पणो वा दण्डः ॥ ५ ॥ स्त्रियास्त्वर्धदण्डः ॥ ६ ॥ परशुल्कावरुद्धायां
हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः शुल्कदानं च ॥ ७ ॥ सप्तार्तवप्रजातां वरणादूर्ध्व-
मलभमानः प्रकृत्य प्राकामी स्यात् ॥ ८ ॥ न च पितुरपहीनं दद्यात् ॥ ९ ॥
ऋतुप्रतिरोधिभिः स्वाम्यादपक्रामति ॥ १० ॥

जो पुरुष रजोहीन कन्या पर प्रहार करता है, उसके हाथ कटवा लिये जावें, या उस पर चार सौ पण दंड हों। जो वह कन्या मर जावे, तो उसको भी फांसी दी जावे। जो रजस्वला कन्या पर प्रहार करे-तो उसकी बीच की अङ्गुली कटवा दी जावे या उसपर दो सौ पण दंड हो और पिता जो हर्जाना बतावे-वह दिया जावे। अकामा कन्या अर्थात् छोटी कन्या से कभी संयोग की इच्छा न करे, अन्यथा दंड होगा। जो सकामा कन्या हो, उससे संभोग करने पर चौवन पण दंड हो और सकामा स्त्री के साथ संभोग करने पर आधा दंड होवे। जो दूसरे के साथ सगाई हुई कन्या को दूषित करे उसके हाथ कटवा दिये जावें या चार सौ पण दंड दिया जावे और प्रथम वर का शुल्क दिलाया जावे। वरण के अनन्तर कन्या के सात ऋतु हो गए हों और किसी कारण से उसका पिता उसका विवाह न करे-तो पति उसे छीनकर ला सकता है। उस समय पिता का हर्जाना नहीं दिया जावेगा। जो कन्या का ऋतु घात करता है, वह कन्या पर से अपना स्वत्व हटा लेता है ॥१-१०॥

त्रिवर्षप्रजातार्तवायास्तुल्यो गन्तुमदोषः ॥ ११ ॥ ततः परमतुल्योऽप्यनलंकृतायाः ॥ १२ ॥ पितृद्रव्यादाने स्तेयं भजेत ॥ १३ ॥ परमुद्दिश्यान्यस्य विन्दतो द्विशतो दण्डः ॥ १४ ॥ न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ १५ ॥ कन्यामन्यां दर्शयित्वान्यां प्रयच्छतः शतयो दण्डस्तुल्यायाम् ॥ १६ ॥ हीनायां द्विगुणः ॥ १७ ॥ प्रकर्मण्यकुमार्याश्चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १८ ॥ शुल्कव्ययकर्मणी च प्रतिदद्याद् अवस्थाय ॥ १९ ॥ तज्जातं पश्चात्कृता द्विगुणं दद्यात् ॥ २० ॥

यदि तीन वर्ष तक कन्या के ऋतु आता रहे, और पिता उसका विवाह न करे-तो उसी जाति का कोई भी पुरुष उसकी इच्छा से उसके साथ संयोग करके उसका पति बन सकता है। यदि तीन वर्ष से अधिक ऋतु होते हो जावें-तो छोटी स्थिति का वर भी उस कन्या के साथ स्वेच्छा से विवाह कर सकता है, परन्तु कन्या के आभूषणों पर उसका अधिकार नहीं होगा। यदि वह पति उस पिता के अलंकारों को न लौटावे-तो उसे चोरी का दण्ड दिया जावे। यदि कोई कन्या अन्य को देना स्वीकार किया गया हो और वह मैं ही हूँ ऐसा कहकर यदि दूसरा विवाह लेता है-तो उसपर दो सौ पण दंड हो। अकामा (छोटी कन्या) से किसी को सुख नहीं मिल सकता है। यदि और कन्या दिखाई गई और विवाह तुल्य वरण की दूसरी के साथ कर दिया गया-तो उस विवाह करने वाले अपराधी पर सौ पण दण्ड हो। यदि हीन वर्ण की कन्या दे दी जावे-तो दुगुना दण्ड हो। जो क्षत्रियोनि स्त्री को, अक्षत्र योनि बताकर विवाह करदे, उसपर चौवन पण दण्ड हो और उसके शुल्क तथा

व्यय उस पति के पास पहुँचाए जावें । यदि वह कन्या से प्राप्त होने पर भी शुल्क आदि न देवे-तो उस से दुगुना लिया जावे ॥ ११-२० ॥

अन्यशोणितोपधाने द्विशतो दण्डः ॥ २१ ॥ मिथ्याभिज्ञं सिनध्व पुंमः
॥ २२ ॥ शुल्कव्ययकर्मणी च जीयेत ॥ २३ ॥ न च प्राकाम्यमक्रामायां लमेत
॥ २४ ॥ स्त्री प्रकृता सक्रामा समाना द्वादशपणदण्डं दद्यात् ॥ २५ ॥ प्रकर्त्री
द्विगुणम् ॥ २६ ॥ अक्रामायाः शत्यो दंड आत्मरागार्थं शुल्कदानं च ॥ २७ ॥
स्वयं प्रकृता राजदास्यं गच्छेत् ॥ २८ ॥ नहिर्ग्रामस्य प्रकृतायां मिथ्याभिज्ञं सने
च द्विगुणो दंडः ॥ २९ ॥

अपना अक्षत योनित्व दिखाने के लिए जो स्त्री अन्य स्त्री के रक्त कपड़ों पर लगा ले-उसपर दो सौ पण दण्ड हो । जो इस विषय में मिथ्या कहने वाला पुरुष है अर्थात् अक्षत योनि कहकर विवाह करने वाला पुरुष है, उसपर भी दो सौ पण दंड हो तथा अपना शुल्क और विवाह का व्यय भी इस पति को मिलना चाहिए । नहीं चाहने वाली स्त्री के साथ संभोग करने में आनन्द नहीं है । समान वर्ण की युवति स्त्री से जो भोग कर लेता है, उसपर बारह पण दंड होवे । यदि स्त्री हस्त क्रिया आदि से अपने को क्षत कर ले-तो उसे दुगुना दंड हो । विवाह की इच्छा न रखकर भी थोड़ी देर के आनन्द के लिए जो स्त्री किसी से संयोग करले-तो उसे सौ पण दंड होगा और पूर्व पति का शुल्क लौटाना पड़ेगा । जो स्वयं अपने को क्षत करती है, उसे राजा दासी बना सकता है । गांव के बाहर दोनों के संयोग करने और फिर अपराध के स्वीकार न करने पर दुगुना दंड हो ॥ २१-२९ ॥

प्रसह्य कन्यामपहरतो द्विशतः ॥ ३० ॥ ससुवर्णमुत्तमः ॥ ३१ ॥ बहूनां
कन्यापहारिणां पृथग्यथोक्ता दंडाः ॥ ३२ ॥ गणिकादुहितरं प्रकुर्वतश्चतुष्पञ्चाश-
त्पणो दंडाः ॥ ३३ ॥ शुल्कं मातुर्भोगः षोडशगुणः ॥ ३४ ॥ दासस्य दास्या
वा दुहितरमदासीं प्रकुर्वतश्चतुर्विंशतिपणो दंडः शुल्कावध्यदानं च ॥ ३५ ॥

जो बल-पूर्वक कन्या का अपहरण करे-उसपर दो सौ पण दंड हो । यदि सुवर्ण के सहित अपहरण करता है-तो उस पर उत्तम साहस दंड हो । यदि कन्या के अपहरण करने वाले अनेक व्यक्ति हों-उनको पूर्वोक्त पृथक् २ दंड दिया जावे । जो वेश्या की पुत्री के साथ अनिच्छा से संभोग करता है, उसपर चौवन पण दंड हो तथा दंड से सोलह गुना शुल्क उस वेश्या कन्या की माता को दिया जावे । दास या दास की पुत्री को जो स्वतन्त्र कर दे

अर्थात् आप उससे विवाह करले-तो उसपर चौबीस पण दंड तथा उसे शुल्क और आभूषण देने पड़ेंगे ॥ ३०-३५ ॥

निष्क्रयानुरूपां दासीं प्रकुर्वतो द्वादशपणो दंडो वस्त्रावध्यदानं च ॥३६॥
साचिन्यावकाशदाने कर्तृसमो दंडः ॥ ३७ ॥ प्रोषितपतिकामपचरन्तीं पतिवन्धु-
स्तत्पुरुषो वा संगृहणीयात् ॥३८॥ संगृहीता पतिमाक्रान्तेत ॥३९॥ पतिश्चेत्त्वमेत
निसृज्येतोभयम् ॥ ४०॥ अक्षमायाः स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनं वधं जारश्च
प्राप्नुयात् ॥ ४१ ॥ जारं चोरं इत्यभिहरतः पञ्चशतो दण्डः ॥ ४२ ॥ हिरण्येन
मुञ्चतस्तदष्टगुणः ॥ ४३ ॥

जो दासी कन्या का मोल चुकाकर उससे भोग करता है, उस पर बारह पण दंड और उसे वस्त्र आभूषण देने होंगे । इन स्त्रियों को दूषित करने में जो सहायता और सम्मति देता है, उसको भी अपराधी के तुल्य दंड होना चाहिए । जिसका पति विदेश गया, यदि वह कुछ अनुचित करती है तो उसके बांधव या कुटुम्बी पुरुष उसे रोक रख सकते हैं । बांधवों द्वारा रोकी हुई वह स्त्री पति के आने की प्रतिज्ञा करे । यदि पति क्षमा करदे-तो उन दोनों को छोड़ दे । यदि पति क्षमा न करे-तो उस स्त्री के नाक कान काट दिए जावें और उस जार को मार दिया जावे । जो कोई व्यभिचार के लिए घर में आवे और उसे चोर बताया जावे, तो बताने वाले पर पांच सौ पण दंड होवे । यदि सुवर्ण लेकर कोई जार पुरुष को छोड़ दे-तो छोड़ने वाले से अठगुना सुवर्ण दंड में लिया जावे ॥ ३६-४३ ॥

केशाकेशिकं संग्रहणमुपलिङ्गनाद्वा शरीरोपभोगानां तज्जातेभ्यः स्त्री-
वचनाद्वा ॥ ४४ ॥ परचक्राटवीहृतामोषप्रव्यूढामरणेषु दुर्भिन्ने वा त्यक्तां प्रेत-
भावोत्सृष्टां वा परस्त्रियं निस्तारयित्वा यथासंभाषितं समुपभुञ्जीत ॥ ४५ ॥
जातिविशिष्टामक्रामामपत्यवर्तीं निष्क्रयेण दद्यात् ॥ ४६ ॥

जब स्त्री पुरुषों को ऊपर नीचे पकड़ लिया जावे, स्त्री या पुरुष के शरीर पर संभोग के चिन्ह हों, उन दोनों द्वारा संतान उत्पन्न होने या स्त्री के कहने पर संभोग का निश्चय माना जाता है । दूसरे देश के वन में घूमती हुई लायी गई, नदी के प्रवाह में दूबती बचाई गई, वन में दुर्भिन्न के समय त्यागी हुई या मरी समझकर छोड़ी हुई पर स्त्री को भी आपत्ति से छुड़ाकर उसकी इच्छा के अनुसार भोग सकता है । यदि वह स्त्री जाति में श्रेष्ठ हो, उद्धार कर्ता की चाह न करती हो, या सन्तान वाली हो-तो उसका मूल्य लेकर उसे उसके पूर्व पति को सौंप देवे ॥४४-४६॥

चोरहस्तानदीवेगाद्दुर्भिक्षादेशविभ्रमात् ।

निस्तारयित्वा कान्तारान्नष्टां त्यक्तां मृतेति वा ॥ ४७ ॥

भुञ्जात स्त्रियमन्येषां यथासंभाषितं नरः ।

न तु राजप्रतापेन प्रमुक्तां स्वजनेन वा ॥ ४८ ॥

न चोत्तमां न चाकामा पूर्वापत्यवर्ती न च ।

ईदृशीं चानुरूपेण निष्क्रयेणापवाहयेत् ॥ ४९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे कन्याप्रकर्म द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

आदित एकोननवतिः ॥ ८६ ॥

चोर, नदी वेग, दुर्भिक्ष, देश विसव, वन में छोड़ी हुई, मरी समझकर फँकी हुई स्त्री की रक्षा करके पुरुष उसकी अनुमति से उस स्त्री को भी भोग सकता है। परन्तु राज कोप या स्वजन से निकाली हुई, उत्तम वर्ण वाली अकामा, और सन्तान वाली स्त्री को कोई नहीं भोग सकता है, उसको तो उद्धारक अपने श्रम का मोल लेकर उसके पति को वापिस करदे ॥४७-४९॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में कन्या दूषित करने के सम्बन्ध में राजकीय व्यवस्था का बारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



तेरहवां अध्याय

दण्डवां प्रकरण

अतिचार दण्ड

इस प्रकरण में अभक्ष्य भक्षण आदि के विषय में राजकीय नियमों का उल्लेख होगा ।

ब्राह्मणमपेयमभक्ष्यं वा ग्रासयत उत्तमो दंडः ॥ १ ॥ क्षत्रियं मध्यमः ॥ २ ॥ वैश्यं पूर्वं साहसदंडः ॥ ३ ॥ शूद्रं चतुष्पञ्चाशत्पणो दंडः ॥ ४ ॥ स्वयंग्रसितारो निर्विषयाः कार्याः ॥ ५ ॥ परगृहाभिगमने दिवा पूर्वं साहसदंडः ॥ ६ ॥ रात्रौ मध्यमः ॥ ७ ॥ दिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्य प्रविशत उत्तमो दंडः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य, ब्राह्मण को अपेय पिलादे और अभक्ष्य खिलादे, उसे उत्तम साहस, जो क्षत्रिय को खिलादे, उसे मध्यम और जो वैश्य को खिला-पिलादे, उसे प्रथम और शूद्र को

खिलाने पिलाने वाले को चौवन पण दंड होना चाहिए । यदि ब्राह्मण आदि वर्ण, स्वयं अभक्ष्य भक्षण करे, तो उन्हें स्वदेश से निकाल दिया जावे । जो पुरुष दिन में किसी के घर में बिना आज्ञा घुस जावे-तो उसे पूर्व साहस, रात में मध्यम साहस और दिन या रात में शस्त्र लेकर घुसने पर उत्तम साहस दंड दिया जावे ॥१-न॥

भिक्षुकवैदेहकौ मत्तोन्मत्तौ बलादापदि चातिसंनिकृष्टाः प्रवृत्तप्रवेशाश्चा-
दंडया अन्यत्र प्रतिषेधात् ॥ ९ ॥ स्ववेश्मनोऽपि रात्रादूर्ध्वं परिवार्यमारोहतः
पूर्वः साहसदंडः ॥ १० ॥ परवेश्मनो मध्यमः ॥ ११ ॥ ग्रामारामवाटभेदिनश्च
॥ १२ ॥ ग्रामेष्वन्यतः सार्धिका ज्ञातसारा वसेयुः ॥ १३ ॥ मुषितं प्रवासितं
चैषामनिर्गतं रात्रौ ग्रामस्वामी दद्यात् ॥ १४ ॥ ग्रामोन्तेषु वा मुषितं प्रवासितं
विवीताध्यक्षो दद्यात् ॥ १५ ॥

भिखारी, फेरी लगाकर माल बेचने वाले, नशे में लीन, पागल, बलपूर्वक आपत्ति में धकेले हुए तथा जिनका घर में आना जाना है, वे दंड के भागी नहीं हैं, यदि इनको रोक दिया गया-तो इनको भी घर में घुसने का अधिकार नहीं है । एक पहर रात बीतने पर अपने ही घर की दीवार चढ़ने वाले को पूर्व साहस दंड हो । यदि दूसरे की दीवार पर चढ़े या गांव के बगीचों की दीवार तोड़े तो मध्यम साहस दंड होवे । यदि ग्राम के पास कोई व्यापारियों का पड़ाव पड़े तो वह ग्रामाध्यक्ष को अपनी सारी सूचना देकर डेरा डाले । यदि फिर रात में चोरी, लूट भूल, चूक हो जावे, तो उस वस्तु को ग्रामाध्यक्ष देवे । ग्राम के अन्त में यदि चोरी या लूट हो तो विवीताध्यक्ष राज्य का अधिकारी उस चोर को देवे ६-१५॥

अविवीतानां चोररज्जुकः ॥ १६ ॥ तथाप्यगुप्तानां सीमावरोधेन विचर्यं
दद्युः ॥ १७ ॥ असीमावरोधे पञ्चग्रामी दशग्रामी वा ॥ १८ ॥ दुर्वलं वेश्म
शकटमनुत्तवधमूर्ध्वस्तम्भशस्त्रमनपाश्रयमप्रतिच्छन्नं श्वभ्रं कूर्पं कृटावपातं वा
कृत्वा हिंसायां दंडपारुष्यं विद्यात् ॥ १९ ॥ वृक्षच्छेदने दम्यरश्मिहरणे चतुष्प-
दानांमदान्तसेवने वा काष्ठलोष्टपापाणदण्डवाणवाहुविक्षेपणेषु याने हस्तिना च
॥ २० ॥ संघट्टने चापेहीति प्रकोशन्नदण्डयः ॥ २१ ॥

यदि वहां विवीताध्यक्ष का अधिकार न हो-तो उसको चोर पकड़वाने वाला गांव का चौधरी देवे । यदि ये भी न हों तो सीमापालक खोज लगाकर उनकी वस्तु दिलवादे । यदि सीमापालक का प्रान्त न हो तो उसे पञ्च ग्रामी या दश ग्रामी देवे । कमजोर मकान, गाड़ी, खड़ा शस्त्र, असुरक्षित गड्ढा, कुआ, या पत्थरों का ढेर कोई करदे और उससे

किसी की मृत्यु हो जावे, तो दंड पारुष्य प्रकरणानुसार अपराधी को दंड दिया जावे । वृत्त के काटने, रस्सी पकड़े हुए जाने, दैल घोड़ों को हिलाने, काष्ठ, देला, पत्थर, दंड, बाण और बाहु फेंकने पर सवारी या हाथी के आने और दृट जाओ की आवाज लगा देने परभी जो टक्कर में आजावे, तो इसमें किसी को भी दंड नहीं होगा ॥१६-२१॥

हस्तिना रोपितेन हतो द्रोणान्नमद्यकुम्भं माल्यानुलेपनं दन्तप्रमार्जनं च पटं दद्यात् ॥ २२ ॥ अश्वमेधावभृथत्नानेन तुल्यो हस्तिना वध इति पाद-प्रक्षालनम् ॥ २३ ॥ उदासीनवधे यातुरुत्तमो दण्डः ॥ २४ ॥ शृङ्गिणां दंष्ट्रिणा वा हिंस्यमानममोक्षयतः स्वामिनः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २५ ॥ प्रतिक्रुष्टस्य द्विगुणः ॥ २६ ॥ शृङ्गिदंष्ट्रिभ्यामन्योन्यं घातयतस्तच्च तावच्च दण्डः ॥ २७ ॥ देवपशुमृषभमुक्षारं गोकुमारीं वा वाहयतः पञ्चशतो दण्डः ॥ २८ ॥ प्रवासयत उत्तमः ॥ २९ ॥

रोप में भरे हुए हाथी के द्वारा यदि कोई अचानक मारा जावे, तो द्रोण भर अन्न, मद्य का घड़ा, माला चन्दन, दांतों का वस्त्र उसके उत्तराधिकारी हाथी के निमित्त देवे । - अश्वमेध यज्ञ के स्नान के तुल्य हाथी से मारा जाना उत्तम माना गया है, दूसरे यह हाथी की पूजा है । यदि हाथीवान की भूल से हाथी किसीको मार दे-तो हथवान पर उत्तम साहस दंड होगा । सींग वाले गौ और दांत वाले अश्व आदि द्वारा मारे जाते हुए मनुष्यों को यदि उस पशु का स्वामी रक्षा के लिए न दौड़े-तो उस स्वामी पर पूर्व साहस दंड हो यदि वह मनुष्य रक्षा के लिए बार २ चिल्ला रहा हो और स्वामी त्रिलकुल चेष्टा न करता हो, तो दुगुना दंड हो । सींग और दांत वाले पशु लड़कर एक पशु को मारदे-तो उसमें पशु का मोल और उतना ही दंड मारने वाले पशु का स्वामी देवे । जोदेवता के पशु, सांड बैल, और बछिया या गाय को जोत में लगावे, उसपर पांच सौ पण दंड होवे । इनको कोई नगर से निकाले-तो उत्तम साहस दंड हो ॥२२-२९॥

लोमदोहवाहनप्रजननोपकारिणां क्षुद्रपशूनामादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ३० ॥ प्रवासने च ॥ ३१ ॥ अन्यत्र देवपितृकार्येभ्यः ॥ ३२ ॥ छिन्नस्य भग्नयुगं तिर्यक्प्रतिमुखगतं प्रत्यासरद्धा चक्रयुक्तं यातपशुमनुष्यसंवाधे वा हिंसायामदण्डयः ॥ ३३ ॥ अन्यथा यथोक्तं मानुषप्राणिहिंसायां दण्डमभ्या-भवेत् ॥ ३४ ॥ अमानुषप्राणिवधे प्राणिदानं च ॥ ३५ ॥ बाले यातरि यानस्थः स्वामी दण्डयः ॥ ३६ ॥ अस्वामिनि यानस्थः प्राप्तव्यवहारो वा याता ॥ ३७ ॥ बालाधिष्ठितमपुरुषं वा यानं राजा हरेत् ॥ ३८ ॥

ऊन; दूध सवारी देने वाले और सन्तान उत्पन्न करके उपकार करने वाले छोटे पशुओं का जो अपहरण करे-उनको उतना मोल और उतना ही दंड होना चाहिए। नगर से निकालने पर भी यही दंड है। यदि देव कार्य या पितृ कार्य के निमित्त बाहर लेजाना है-तो लेजाया जा सकता है। यदि बैल की नाथ टूट जावे, जुआ खंड बंड हो जावे, टेढ़ा चौक कर चल पड़े, पक्षियों के साथ भाग निकले और मनुष्य तथा गाड़ियों के आने जाने का मेला लगा हो तो ऐसे मौके पर किसी के मर जाने पर गाड़ीवान पर कोई दंड नहीं है। यदि ये बातें न हों-तो मनुष्य या प्राण के वध के दंड के वे भागी होंगे। यदि मनुष्य या बड़ा पशु न-मरा हो और छोटा पशु मरा हो तो वैसा ही पशु बदले में दंडे। यदि सवारी का कोई मूर्ख या बच्चा चला रहा हो, तो उसमें बैठने वाला यान का स्वामी उसको दंड भोगे। यदि स्वामी यान में न बैठा हो और चलाने वाला बालिया हो-तो उसको दंड मिलेगा। यदि यान भी बालक चला रहा है और यान में कोई सवार नहीं है, तो उस यान को राजा अपने कब्जे में करले ॥ ३०-३८ ॥

कृत्याभिचाराभ्यां यत्परमापादयेत्तदापादयितव्यः ॥३९॥ कामं भार्यायाम-
निच्छन्त्यां कन्यायां वा दारार्थिनां भर्तारि भार्याया वा संवननकरणम् ॥ ४० ॥
अन्यथा हिंसायां मध्यमः साहसदण्डः ॥ ४१ ॥ मातापित्रोर्भगिनीं मातुलानी-
माचार्याणां स्नुषां दुहितरं भगिनीं वाधिचरतः लिङ्गच्छेदनं वधश्च ॥ ४२ ॥
सक्रामा तदेव लभेत ॥ ४३ ॥ दासपरिचारकाहितकथुक्ता च ॥ ४४ ॥
ब्राह्मण्यामगुप्तायां क्षत्रियस्योत्तमः ॥ ४५ ॥ सर्वस्वं वैश्यस्य ॥ ४६ ॥
शूद्रः कटाग्रिनां दह्येत ॥ ४७ ॥ सर्वत्र राजभार्यागमने कुम्भीपाकः ॥ ४८ ॥

मारण मोहन कर्मों से जो संसार को तंग करे-तो जिस पुरुष पर ऐसा मारण मोहन किया गया और उसका पता लग गया-तो अपराधी को दण्ड दिया जावे। यदि भार्या पति को न चाहे या कन्या अपने वर से विवाह की अभिलाषा न करे या स्त्री भर्ता से प्रेम चाहती हो, तो ये तान्त्रिक प्रयोग किये जा सकते हैं। यदि कोई किसी की हिंसा कर डालेगा, तो मध्यम साहस दंड होगा। जो पुरुष, मोसी, बुआ, मामी, आचार्यानी, पुत्रवधू, पुत्री, वहन के साथ व्यभिचार करे तो उसका लिङ्ग छेदन करके वध दण्ड देवे। यदि ये स्त्रियां ऐसा करे तो उनको भी यही दंड हो। यदि कोई स्त्री दास परिचारक (नौकर) या रखे हुए मनुष्य व्यभिचार करे-उसे भी उपयुक्त दंड होवे। स्वतन्त्र ब्राह्मणी के साथ क्षत्रिय व्यभिचार करे, तो उसे उत्तम साहस दंड, वैश्य करे-तो सर्वस्वापहरण, शूद्र करे तो फूस की आग

से वध करना चाहिए । राजा की स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले को भाड़ में भून दिया जावे ॥ ३६-४८ ॥

श्वपाकीगमने कृतकबन्धाङ्कः परविषयं गच्छेच्छ्वपाकत्वं वा ॥ ४९ ॥
शूद्रश्वपाकस्यार्यागमने वधः स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम् ॥ ५० ॥ प्रव्रजितागमने
चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ५१ ॥ सकामा तदेव लभेत ॥ ५२ ॥ रूपाजीवायाः
प्रसह्योपभोगे द्वादशपणो दण्डः ॥ ५३ ॥ बहूनामेकाधिचरतां पृथक्चतुर्विंश-
तिपणो दण्डः ॥ ५४ ॥ स्त्रियमयोनौ गच्छतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५५ ॥
पुरुषमधिमेहतश्च ॥ ५६ ॥

श्वपाकी के साथ गमन करने वाले पुरुष के साथे में कबन्ध का चिन्ह दाग कर अन्य देश में निकाल दे या श्वपाक बनादे । शूद्र और श्वपाक यदि किसी आर्या स्त्री के साथ सम्भोग करे, तो उसका वध और स्त्री के नाक कान काट लेने उचित हैं । संन्यासिनी के साथ गमन करने पर चौबीस पण दंड हो । यदि संन्यासिनी सकामा होकर स्वयं करावे तो उसे भी यही दंड हो । वेश्या के साथ बलपूर्वक भोग करे-तो बारह पण दंड होवे । यदि कई मनुष्य मिलकर एक साथ एक स्त्री से भोग करें, तो उनको पृथक् २ चौबीस पण दंड दिया जावे । स्त्री की योनि छोड़कर उसके मुख आदि में मैथुन करे-तो पूर्व साहस दंड हो पुरुष के साथ गुदा मैथुन करने पर भी प्रथम साहस दंड होना चाहिए ॥ ४९-५६ ॥

मैथुने द्वादशपणः तिर्यग्योनिष्वनात्मनः ।

दैवतप्रतिमानां च गमने द्विगुणः स्मृतः ॥ ५७ ॥

अदण्डयदण्डने राज्ञो दण्डत्रिंशद्गुणोऽम्भसि ।

वरुणाय प्रदातव्यो ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम् ॥ ५८ ॥

तेन तत्पूयते पापं राज्ञो दण्डापचारजम् ।

शास्ता हि वरुणो राजा मिथ्या व्याचरतां नृषु ॥ ५९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे अतिचारदण्डः त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

आदितः नवतिः ॥ ६० ॥

पशुओं के साथ गमन करने वाले दुराचारी पुरुष पर बारह पण दण्ड होवे । देव प्रतिमाओं के साथ गमन करने पर चौबीस पण दंड हो । जो राजा अदंडनीय को दंड देता है, उसपर भी तीस गुना दंड हो । वह धन जल में डाल दिया जावे और फिर उसको ब्राह्मण निकाल लें ॥ ५७-५८ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत कण्टकशोधन अधिकरण में अनाचार के दंड के
वर्णन का तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



योगवृत्त पंचम अधिकरण

प्रथम अध्याय

नव्वां प्रकरण

दण्डकर्मिकम्

इस प्रकरण में राजकीय कर्मचारियों के कण्टक पन का वर्णन और उसके शोधन का प्रकार बताया जावेगा ।

दुर्गराष्ट्रयोः कण्टकशोधनमुक्तम् ॥ १ ॥ राजराज्ययोर्वक्ष्यामः ॥ २ ॥
राजानमवगृह्योपजीविनः शत्रुसाधारणा वा ये मुख्यास्तेषु गृहपुरुषप्रणिधिः कृत्य-
पक्षोपग्रहो वा सिद्धिर्यथोक्तं पुरस्तादपजा पोपसर्पो वा यथा च पारशामिके
वक्ष्यामः ॥ ३ ॥ राज्योपघातिनस्तु वल्लभाः संहता वा ये मुख्याः प्रकाशमशक्याः
प्रतिपेद्दुं दूष्यास्तेषु धर्मरुचिरुपांशुदण्डं प्रयुजीत ॥ ४ ॥

दुर्ग और राष्ट्र के कण्टकायी चोर लुटेरे आदि कण्टकों के नष्ट करने के उपाय चौथे अधिकरण में बता दिए गए अब राजा और उसके राज्य में अमात्य आदि का जो कण्टकत्व है, अब उसके निराकरण के उपाय बताये जावेंगे । राजाओं को दावकर जो अपना व्यवहार चलाना चाहते हैं, वे अमात्य आदि भी शत्रु के समान हैं । उन में राजा गुप्त पुरुषों की नियुक्ति करे तथा शत्रुओं से द्वेष करने वाले पुरुषों को अपनी ओर मिलाये रहे इसी से सिद्धि है, जैसा की पूर्व में प्रथम अधिकरण में कहा जा चुका और अपने मनुष्यों को नहीं फूटने देना तथा शत्रु के मनुष्यों में फूट डलवाना आदि उपाय आगे पारशामिक (तेरहवें) प्रकरण में कहेंगे - जो राजा के प्रेमी राजा के नाश के उपायों में लगे हैं या जो अमात्य आदि मुख्य २ पुरुष संगठित हो गए हैं तथा जिनसे प्रकाश में कुछ नहीं कहा जा सकता, उन दोष युक्त व्यक्तियों को धर्मात्मा राजा गुप्त चुप मरवादे ॥ १-४ ॥

दूष्यमहामात्रभ्रातरमसत्कृतं सन्त्री प्रोत्साह्यराजानं दर्शयेत् ॥ ५ ॥ तं राजा
दूष्यद्रव्योपभोगातिसर्गेण दूष्ये विक्रमयेत् ॥ ६ ॥ शस्त्रेण रसेन वा विक्रान्तं
तत्रैव घातयेद्भ्रातृघातको ऽयमिति ॥ ७ ॥ तेन पारशवः परिचारिकापुत्रश्च

व्याख्यातौ ॥ ८ ॥ दूष्यमहामात्रं वा सत्त्रिप्रोत्साहितो भ्राता दायं याचेत् ॥९॥
 तं दूष्यगृहप्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो ब्रयात् ॥ १० ॥
 हतो ऽयं दायकामुक इति ॥ ११ ॥ ततो हतपन्नं परिगृह्येतरं निगृहणीयात्
 ॥ १२ ॥ दूष्यसमीपस्था वा सत्रिणो भ्रातरं दायं याचमानं घातेन परिभर्त्सयेयुः
 ॥ १३ ॥ तं रात्राविति समानम् ॥ १४ ॥

यदि हाथियों का अध्यक्ष राजा से बिगाड़ गया हो-तो सत्री नामक गुप्तचर, उस हस्त्यध्यक्ष के भाई को-जिसका हस्त्यध्यक्ष ने अपमान किया हो, उसे उत्साहित करके राजा के पास लावे। उस भ्राता को राजा यह कहकर उभाड़दे, कि तुम्हारे भाई के सारे अधिकार और द्रव्य तुमको दिया जावेगा, तुम इसे मार दो। जब वह शस्त्र या विष से अपने भाई को मारदे-तो राजा उसे मातृ घातक कहकर मरवा देवे। यदि भाई न हो, तो महामात्र के नीच वर्ण की स्त्री से उत्पन्न या दासी पुत्र से ऐसा करवादे और उन्हें फिर पितृ घातक कहकर मरवादे। यदि भाइयों में बिगाड़ न हो, तो सत्री नामक गुप्तचर महामात्र के भाई को अपना भाग बांट लेने को उत्साहित करे। जब वह दायभाग मांगने वाला भ्राता महामात्र (हस्त्यध्यक्ष) के घर के द्वार पर रात को सोवे या गुजरे तो उसे मारकर कह, कि यह व्यक्ति मारा गया इसको इसके भाई ने इसलिए मारा है, कि यह अपना हिस्सा मांगता था। इस प्रकार मृत व्यक्ति के पक्ष से उस महामात्र को भी दंड दे दे। या महामात्र के समीप के मनुष्यों से सत्री उनको धमकवादे, कि हम तुम्हें मारेंगे फिर राजा का तीक्ष्ण घातक मार कर पूर्व रीति से उसके भाई को उसका बना कर मरवा दिया जावे ॥१-१४॥

दूष्यमहामात्रयोर्वा यः पुत्रः पितुः पिता वा पुत्रस्य दारानधिचरति भ्राता वा भ्रातुस्तयोः कापटिकमुखः कलहः पूर्वेण व्याख्यातः ॥ १५ ॥ दूष्यमहामात्रपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्त्री राजपुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह न्यस्तो ऽसीत्युपजपेत् ॥ १६ ॥ प्रतिपन्नं राजा रहसि पूजयेत् ॥ १७ ॥ प्राप्तयौवराज्यकालं त्वां महामात्रभयान्नाभिषिञ्चामीति ॥ १८ ॥ तं सत्त्री महामात्रवधे योजयेत् ॥ १९ ॥ विक्रान्तं तत्रैव घातयेत्पितृघातकोऽयमिति ॥ २० ॥ भिक्षुकी वा दूष्यभार्या सांवननकीभिरौषधीभिः संवास्य रसेनातिसंदध्यात् ॥ २१ ॥ इत्याप्यः प्रयोगः ॥ २२ ॥

दूषित करने योग्य दो महामात्रों को कापटिक गुप्तचर यह कहकर लड़वादे, कि पिता पुत्र की स्त्री से या पुत्र पिता की स्त्रियों से; भाई भाई की स्त्री से व्यभिचार करता है,

जब कलह हो जावे, तो उनमें एक को मरवाकर दूसरे को फांसी दे दी जावे। दूषित करने योग्य महामात्र के अभिमानी पुत्र के पास सभी जावे, और कहे कि तुम तो राजपुत्र हो, शत्रु के भय से तुम तो यहां गुप्त रखा है, इसी से युवराज नहीं बनाये जाते हो। जब वह राजा के पास आवे तो राजा उस का सत्कार करे और कहे, कि यद्यपि तुम्हारा युवराज होने का समय है, परन्तु महामात्र के भय से तुम्हें युवराज नहीं बनाता हूं, वह तुम्हें अपना पुत्र कहता है। इसके बाद संत्री उसे महामात्र के वध के लिए प्रेरित को जब वह उसे मार दे-तो उसे पितृघातक कहकर मरवादे। जिस महामात्र आदि को दूषित करना है, उसकी स्त्री के पास जाकर कोई साधनी कहे, कि मेरे पास वशोकरण की औषधि है, तुम अपने पति को खिलाओ-यह कहकर उसे विष दे आवे-इससे महामात्र आदि अव्यक्त मारा जावेगा। यह ढंग आप्य प्रयांग कहाता है ॥१५-२२॥

दूष्यमहामात्रमटवीं परग्रामं वा हन्तुं कान्तारव्यवहिते वा देशे राष्ट्रपाल-
मन्तपालं वा स्थापयितुं नागरस्थानं वा कुपितमवगृहीतुं सार्थातिवाहं प्रत्यन्ते
वा सप्रत्यादेयमादातुं फल्गुवलं तीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ २३ ॥ रात्रौ दिवा वा युद्धे
प्रवृत्ते तीक्ष्णाः प्रतिरोधकव्यञ्जना वा हन्तुरभियोगे हत इति ॥ २४ ॥ यात्रा-
विहारगतो वा दूष्यमहामात्रान्दर्शनायाह्वयेत् ॥ २५ ॥ ते गूढशस्त्रैस्तीक्ष्णैः
सह प्रविष्टा मध्यमकक्षायामात्मविचयमन्तः प्रवेशनार्थं द्यूः ॥ २६ ॥ ततो
दौवारिकाभिगृहीतास्तीक्ष्णा दूष्यप्रयुक्ताः स्म इति ब्रूयुः ॥ २७ ॥ ते तदभिवि-
ख्याप्य दूष्यान्हन्युः ॥ २८ ॥

इसके अतिरिक्त जिस महामात्र (अफसर) को मरवाना हो, उसको वन या शत्रु के ग्रामपर गहन वन में भेज दे या राष्ट्रपाल तथा अन्तपाल की स्थापना का बहाना लेकर भेजे अथवा अमुक नगर की बागी प्रजा को दवाना है, ऐसा कहकर भेजे या इस व्यापारियों के संघ को सीमा तक पहुंचाना है, या हमारी कुछ भूमि शत्रु ने दवाली है, वह निकालनी है, ऐसा कहकर साधारण सेना के साथ एक घातक पुरुष को भी भेज दे। रात में या दिन में जब युद्ध प्रवृत्त हो-तो वे तीक्ष्ण पुरुष सेना के रोकने के बहाने उस अफसर को ही मार दे और कहदे, कि लड़ाई में मारा गया। राजा यात्रा सैर करने के बहाने से बाहर जाने लगे-तो मिलने के लिए उन दूषित अफसरों को भी बुलावे। इनके साथ गुप्त रूप से शस्त्र लेकर राजा के तीक्ष्ण पुरुष भी चलदे और मध्यम कक्षा में जब भीतर घूमने की तलाशी ली जावे, तो द्वारपाल उन तीक्ष्ण पुरुषों को पकड़े-वे उन महामात्रों

का नाम लेवे । राजा उनके द्वारा अपने मारन का पद्धत्यन्त्र नगर में घोषित कराकर उन्हें फांसी पर चढ़ादे ॥ ७-२८॥

तीक्ष्णस्थाने चान्ये वध्याः ॥ २६ ॥ बहिर्विहारगतो वा दूष्यानासन्नावा-
सान्पूजयेत् ॥ ३० ॥ तेषां देवीव्यञ्जना वा दुःस्त्री रात्रावावासेषु गृह्येतेति समानं
पूर्वेण ॥ ३१ ॥ दूष्यमहोमात्रं वा सूदो भक्षकारो वा ते शोभन इति स्तवेन
भक्ष्यभोज्यं याचेत ॥ ३२ ॥ बहिर्वा कचिद्ध्वगतः पानीयं तदुभयं रसेन
योजयित्वा प्रतिस्वादने तावेवोपयोजयेत् ॥ ३३ ॥ तदभिविख्याप्य रसदाविति
घातयेत् ॥ ३४ ॥

यदि किसी अन्य पुरुष को मरवाना होतो तीक्ष्ण पुरुषों के स्थान पर मरवा देवे ।
कहीं बाहर सैर करने के स्थान पर दूषित करने योग्य अफसरों के भी डेरे बलवादे, वह
महारानी के वेश में किसी व्यभिचारी स्त्री को भेजदे और रात में उस अफसर को
पकड़ कर मरवादे । राजा, दूषित करने योग्य बड़े अफसर से उसके रसोइये की प्रशंसा
करे-हमें भी कुछ भोजन बनवाकर भेजो या कहीं बाहर रास्ते में पानी मांगे और उस
भोजन या पानी को विष संयुक्त करके उसी महामात्र को वह खिला दिये जावे-इस प्रकार
उत्तको राजा को विष देने वाला विख्यात करके मरवादे ॥२६-३४॥

अभिचारशीलं वा सिद्धव्यञ्जनो गोधाकूर्मककटकूटानां लक्षण्यानामन्य-
तमप्रकाशनेन मनोरथानवाप्स्यसीति ग्राहयेत् ॥ ३५ ॥ प्रतिपन्नं कर्मणि रसेन
लोहमुसलैर्वा घातयेत्कर्मव्यापदा हत इति ॥ ३६ ॥ चिकित्सकव्यञ्जनो वा
दौरात्मिकमसाध्यं वा व्याधिं दूष्यस्य स्थापयित्वा भैषज्याहारयोगेषु रसेनातिसंद-
ध्यात् ॥ ३७ ॥ सूदारालिकव्यञ्जना वा प्रणिहिता दूष्यं रसेनातिसंदधुः
॥ ३८ ॥ इत्युपनिषत्प्रतिषेधः ॥ ३९ ॥

जो किसी का मारण करना चाहता हो, ऐसे दूष्य अफसर के पास कोई मंत्र जंत्र
करने वाला सिद्ध गुप्तचर पहुंचे । वह उससे कहे, कि तुम अच्छे लक्षणों से युक्त गोधा,
कछुआ, कैंकड़ा या हरिण में से किसी एक को श्मशान आदि में पका कर खाने से अपनी
कामना को प्राप्त कर सकोगे-जब वह इस काम में लग जावे, तो उसको विष या लोहे
के मुद्गरों से मार दे और यह प्रसिद्ध करे, कि मारण कर्म के उलटा पड़ जाने से यह
स्वयं मारा गया । कोई वैद्य गुप्तचर, किसी दुष्ट असाध्यरोग होने की दृष्ट अफसर
को चेतावनी दे । जब वह औषध आहार लेने लगे-तो उसको विष देकर मरवादे । दूष्य

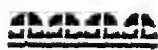
अफसर का कोई रसोइया या मांस पकाने वाला बनकर गुप्त दूष्य को विष प्रयोग से मारदे । यहां तक जो वर्णन किया गया-यह उपनिषद् प्रयोग कहाता है ॥३५-३६॥

उभयदूष्यप्रतिषेधस्तु ॥ ४० ॥ यत्र दूष्यः प्रतिषेद्धव्यस्तत्र दूष्यमेव फल्गुवलतीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ ४१ ॥ मच्छामुष्मिन्दुर्गे राष्ट्रं वा सैन्यमृत्यापय ॥ ४२ ॥ हिरण्यं वा ॥ ४३ ॥ वल्लभाद्वा हिरण्यमाहारय ॥ ४४ ॥ वल्लभ-कन्यां वा प्रसह्यानय ॥ ४५ ॥ दुर्गसेतुवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवन-कर्मणामन्यतमद्वा कारय ॥ ४६ ॥ राष्ट्रपाल्यमन्तपाल्यं वा ॥ ४७ ॥ यश्च त्वा प्रतिषेधयेन्न वा ते साहाय्यं दद्यात्स बन्धव्यः स्यादिति ॥ ४८ ॥ तथैवेत-रेषां प्रेषयेदमुष्याविनयः प्रतिषेद्धव्य इति ॥ ४९ ॥ तमेतेषु कलहस्थानेषु कर्म-प्रतिघातेषु वा विवदमानं तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा प्रच्छन्नं हन्युः ॥ ५० ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५१ ॥

अब दो दूष्यों को एक ही प्रयोग से मार देने की विधि को बताया जाता है । जहां पर एक विरोधी अधिकारी को मरवाना हो, दूसरे ऐसे ही दुष्ट अधिकारी को थोड़ी सी दुर्बल सेना और घातक पुरुष के साथ भेज दे और कहे, कि जाओ, इस दुर्ग या राष्ट्र में तुम सेना या सुवर्ण का संग्रह करो अथवा उस अधिकारी के पक्षपाती राजा से धन संग्रह करने को भेजे अथवा उसी प्रेमी राजा की कन्या छीन कर लाने को उसे भेजे । अमुक स्थान पर तुम दुर्ग, सेतु, व्यापारियों को सड़क, वन में मकान, खान की वस्तु या वन की उत्तम लकड़ी या हाथी इकट्ठे करो अथवा राष्ट्रपाल या अन्तपाल के कामों की देख रेख रखो । जो तुम्हें इस काम को रोके या सहायता न दे, उसे पकड़लो । इसी तरह अन्य दुष्ट अधीश्यों को दूसरे की दुष्टता रोकने को भेजे । जब इनका परस्पर कोई कलह हो-तो घातक पुरुष शस्त्र मारकर इन सब दुष्ट अधिकारियों को मारदे-अब अन्य भी मरवाने से बचे हों-तो उनपर इनके मरवाने का दोष लगाकर मरवादे ॥५०-५१॥

पुराणां ग्रामाणां कुलानां वा दूष्याणां सीमाक्षेत्रखलवेशममर्यादासु द्रव्यो-पकरणसस्यवाहनहिसासु प्रेक्षाकृत्योत्सवेषु वा समुत्पन्ने कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा ब्रूयुः ॥ ५२ ॥ एवं क्रियन्ते ये ऽमुना कलहायन्त इति ॥ ५३ ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५४ ॥ येषां वा दूष्याणां जात-मूलाः कलहास्तेषां क्षेत्रखलवेशमान्यादीपयित्वा बन्धुसंबन्धिषु वाहनेषु वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा तथैव ब्रूयुः ॥ ५५ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत योगवृत्त नामक अधिकरण में राजा के साथ समयानुकूल व्यवहार करने के वर्णन का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



छठा अध्याय

६४-६५ प्रकरण

राज्यका प्रतिसन्धान मेकैश्वर्य ।

इस प्रकरण में राजा पर आने वाली विपत्तियों के प्रतिकार और उसके ऐश्वर्य के कारणों का वर्णन किया जावेगा ।

राजव्यसनमेवममात्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १ ॥ प्रागेव मरणावाधमयाद्राज्ञः प्रियहितोपग्रहेण मासद्विमासान्तरं दर्शनं स्थापयेत् ॥ २ ॥ देशपीडापहममित्रा-पहमायुष्यं पुत्रीयं वा कर्म राजा साधयतीत्यपदेशेन राजव्यञ्जनमनुरूपवेलायां प्रकृती दर्शयेत् ॥ ३ ॥ मित्रामित्रदूतानां च ॥ ४ ॥ तैश्च यथोचितां संभाषाममात्यमुखो गच्छेत् ॥ ५ ॥ दौधारिकान्वेशिकमुखश्च यथोक्तं राजप्रणिधिमनुवर्तयेत् ॥ ६ ॥ अपकारिषु च हेडं प्रसादं वा प्रकृतिकान्तं दर्शयेत् ॥ ७ ॥ प्रसादमेवापकारिषु ॥ ८ ॥

राजा पर जो विपत्ति आवे-उसका प्रतीकार अमात्य को इस तरह करना चाहिए । यदि किसी विरोधी राजा द्वारा के प्रच्छन्न क्रम से मारे जाने के पड़ यन्त्र की सूचना मिले तो पूर्व से ही राजा के प्रिय हितकारी मित्रों की सन्मति से महीने दो महीने में राजा दर्शनों की व्यवस्था करदे । आजकल राजा देश पीड़ा और शत्रु भयनाशक, आयु जनक पुत्रोत्पत्तिकारक किसी भी यज्ञादि कर्म में लगे हुए हैं-इस से उनके दर्शन देर में होते हैं-यह प्रसिद्ध करदे । जब दर्शन का समय आवे, तो किसी पुत्र को राजा के चिन्ह धारण कराकर प्रजा को दर्शन करा दिए जावे । यदि कोई मित्र या शत्रु के दूत आवें-तो उनको भी उसी बनावटी राजा से मिलाकर उनके साथ यथोचित वार्तालाप भी-राजा वेषधारी-किसी अमात्य के द्वारा ही राजा करे । राज्य के प्रतिनिधियों के द्वारपाल और अन्तपुर के रक्षकों के द्वारा आदेश दिलावे । अपकारियों पर कोप या अनुग्रह अमात्यों की सन्मति से दिखावे, परन्तु उपकारियों पर सवेदा कृपा हो दिखानी उचित है ॥ १-८ ॥

आप्तपुरुषाधिष्ठितौ दुर्गप्रत्यन्तस्थौ वा कोशदण्डावेकस्थौ कारयेत् ॥ ९ ॥
कुल्यकुमारमुख्यांश्चान्यापदेशेन ॥ १० ॥ यश्च मुख्यः पक्षवान्दुर्गाटवीस्थो वा वैगुण्यं भजेत तमुपग्राहयेत् ॥ ११ ॥ बह्वावाधां वा यात्रां प्रेषयेत् ॥ १२ ॥

मित्रकुलं वा ॥ १३ ॥ यस्माच्च सामन्तादावाधां पश्येत्तमुत्सवविवाहहस्तिबन्धना-
श्वपण्यभूमिप्रदानापदेशेनावग्राहयेत् ॥ १४ ॥ स्वामित्रेण वा ततः संधिमदूष्यं
कारयेत् ॥ १५ ॥ आटविकामित्रैर्वा वैरं ग्राहयेत् ॥ १६ ॥ तत्कुलीनमवरुद्धं वा
भूम्येकदेशेनोपग्राहयेत् ॥ १७ ॥

दुर्ग और सीमा प्रान्त के कोश और सेना को किसी विश्वासी पुरुष की देख रेख
में एक स्थान में इकट्ठे करे। किसी वहाने से कुल के मुख्य २ राज कुमारों को भी एकत्र
करले। जो मुख्य, बहुत सहायता वाला, दुर्ग या अरण्य निवासी वीर, राजा के विरुद्ध
हों-उनको किसी तरह वश में करले। जो वश में न हो, तो उस राजकुमार को बहुत सी
बाधा वाले, देश पर चढ़ाई करने भेज दे या किसी मित्र के पास सहायता के वहाने भेज
कर अटका देवे। जिस किसी सामन्त से विरोध की आशङ्का हो, उसको उत्सव, विवाह,
हस्तिबन्धन, अश्व, अन्य द्रव्य या भूमि प्रदान के वहाने से अपने पास बुलाकर निग्रह
अनुग्रह द्वारा वश में करले या अपने मित्र द्वारा वश में कराले। और उस के बाद उस से
नहीं टूटने वाली अपने योग्य सन्धि करावे यदि वह सामन्त वश में न आवे, तो किसी
वनचर शत्रु के साथ वैर करादे या उसके कुल के किसी पुरुष को कुछ भूमि देकर उसके
द्वारा उसे पकड़वावे ॥ ६-१७ ॥

कुल्यकुमारमुख्योपग्रहं कृत्वा वा कुमारमभिषिक्तमेव दर्शयेत् ॥ १८ ॥
दाण्डधर्मिकं द्वा राज्यकण्टकानुद्धृत्य राज्यकण्टकानुद्धृत्य राज्यं कारयेत्
॥ १९ ॥ यदि वा कश्चिन्मुख्यः सामन्तादीनामन्यतमः कोपं भजेत तमेहि राजनं
त्वा करिष्यामीत्यावाहयित्वा घातयेत् ॥ २० ॥ आपत्प्रतीकारेण वा साधयेत्
॥ २१ ॥ युवराजे वा क्रमेण राज्यभारमारोप्य राजव्यसनं ख्यापयेत् ॥ २२ ॥
परभूमौ राजव्यसने मित्रेणामित्रव्यञ्जनेन शत्रोः संधिमवस्थाप्यापगच्छेत् ॥ २३ ॥
सामन्तादीनामन्यतमं वास्य दुर्गे स्थापयित्वापगच्छेत् ॥ २४ ॥ कुमारमभिषिच्य
वा प्रतिव्यूहेत् ॥ २५ ॥ परेणामियुक्तो वा यथोक्तमापत्प्रतीकारं कुर्यात् ॥ २६ ॥
एवमेकैश्वर्यममान्यः कारयेदिति कौटल्यः ॥ २७ ॥

कुल के मुख्य राजकुमार को वश में करके युवराज पद पर आरुढ़ राजकुमार को
ही सब कामों में आगे २ करके प्रजा को दिखाया जावे। दाण्ड कर्मिक प्रकरण में कही हुई
विधि के अनुसार राज्य के कांटों को साफ करके राजा को निष्कण्टक बनाकर राज्य का
भोग करावे। यदि कोई मुख्य सामन्त, द्वेषी मुख्य राजकुमार के बन्धन में डालने से
कुपित हो जावे, तो उसे बुलावे, और कह, कि अच्छा तुम्हें या तुम कहते हो, जिसे राजा

बना दिया जावेगा-तुम यहां आओ। इस तरह धोखे से उसे बुलाकर मरवा डाले या आपत्प्रतीकार प्रकरण में बताई हुई विधि के द्वारा उसका निराकरण करे। यदि अन्य तरह से राजा के प्राण न बचते दिखाई दें, तो युवराज में राज्य का भार रखकर राजा का कहीं मारा जाना प्रसिद्ध कर दिया जावे। शत्रु भूमि में राजा के मारे जाने की प्रसिद्धि करने पर उसी बनावटी शत्रु भूत मित्र से शत्रु राजा की सन्धि करादे और आप चला आवे। उसके दुर्ग में किसी अपने सामन्त को छोड़ दे। किसी राजकुमार को राज्य पर बैठकर युद्ध छेड़ दे। यदि शत्रु चढ़ाई करे-तो आपत्प्रतीकार प्रकरण की विधि के अनुसार उनका प्रतीकार करे। इस प्रकार शत्रु को मरवाकर राजा को एक मात्र ऐश्वर्य शाली अमात्य बनादे यह कौटल्य आचार्य का कथन है ॥१८-२७॥

नैवमिति भरद्वाजः ॥ २८ ॥ प्रम्रियमाणे वा राजन्यमात्यः कुल्यकुमार-
मुख्यान्परस्परं मुख्येषु वा विक्रामयेत् ॥ २९ ॥ विक्रान्तं प्रकृतिकोपेन घातयेत् ॥ ३० ॥

कुल्यकुमारमुख्यानुपांशुदण्डेन वा साधयित्वा स्वयं राज्यं गृह्णीयात् ॥ ३१ ॥

राज्यकारणाद्धि पिता पुत्रान्पुत्राश्च पितरमभिदुहन्ति ॥ ३२ ॥ किमङ्ग पुनर-

मात्यप्रकृतिर्होत्रप्रग्रहो राज्यस्य ॥ ३३ ॥ तत्स्वयमुपस्थितं नावमन्येत ॥ ३४ ॥

स्वयमारूढा हि स्त्री त्यज्यमानाभिशपतीति लोकप्रवादः ॥ ३५ ॥

भरद्वाज गोत्रा अन्य आचार्य इसको नहीं मानते। वे कहते हैं, कि राजा को मरणासन्न प्रसिद्ध करके अमात्य कुल के विरोधी मुख्य कुमारों को अन्य मुख्य कुमारों से लड़ादे। जो विजयी हो, उसपर अन्य सामन्तों का कोप कराकर उसे भी मरवादे। राजाके वंश के मुख्य राजकुमारों को गुप्त चुप त्रिप आदि के द्वारा मरवाकर राजा स्वयं राज्य को ग्रहण करे! राज्य के कारण पिता पुत्र और पुत्र पिता से द्वेष करने लगते हैं। यदि राज्य की सारी डोरी अमात्य के हाथ में आजावेगी-तो उसका राज्य का लोलुप बन जाना कौन बड़ी बात है। जो (राज्य) स्वयं उपस्थित हो, उसका अपमान नहीं करना चाहिए। ऐसा लोगों का मत है। स्वयं प्राप्त हुई स्त्री का जो अपमान करता है, वह शाप दे देती है-ऐसा लोगों का खयाल है ॥२८-३५॥

कालश्च सकृदभ्येति यं नरं कालकाङ्क्षिणम् ।

दुर्लभः स पुनस्तस्य कालः कर्मचिकीर्षतः ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य समय की प्रतीक्षा कर रहा है, उसे समय एक बार प्राप्त होता है। कर्म करने के अभिलाषी पुरुष को फिर उचितकाल का मिलना दुर्लभ ही है ॥३६॥

प्रकृतिकोपकर्मधर्मिष्ठमनैकान्तिकं चैतदिति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ राजपुत्रमा-
त्मसंपन्नं राज्ये स्थापयेत् ॥ ३८ ॥ संपन्नाभावे व्यसनिनं कुमारं राजकन्यां

गर्भिणी देवीं वा पुरस्कृत्य महामात्रान्सन्निपात्य ब्रूयात् ॥३६॥ अयं वो निक्षेपः ॥ ४० ॥ पितरमस्यावेक्ष्वं सत्त्वाभिजनमात्मनश्च ॥ ४१ ॥ ध्वजमात्रोऽयं भवन्त एव स्वामिनः ॥ ४२ ॥ कथं वा क्रियतामिति ॥ ४३ ॥ तथा ब्रुवमाणं योगपुरुषा ब्रूयुः ॥ ४४ ॥ कोऽन्यो भवत्पुरोगादस्माद्राज्ञश्चातुर्वर्ण्यमर्हति पालयितुमिति ॥ ४५ ॥

कौटल्याचार्य कहते हैं, कि ऐसा करने से अमात्य आदि कुपित हो सकते हैं और यह धर्म रहित भी है तथा यह सम्भव ही है। यदि राजा की मृत्यु हो गई-तो जो उत्तम गुणों से युक्त राजकुमार हो, उसे ही राज्य पर स्थापित करना चाहिए। यदि अमात्य गुण सम्यन्न राजकुमार न हो, तो व्यसनी राजकुमार, राजकन्या या गर्भिणी देवी को बड़े २ अफसरों के सन्मुख करके उनसे कहे, यह आप लोगों के धरोहर रखी जाती है। तुम लोग इसके पिता और अपने कुल की ओर देखो। अब यह तुम्हारे स्वामी राजा का चिन्हमात्र शेष है। अब तुम लोग बताओ क्या किया जावे। इस प्रकार कहते हुए अमात्य से वे एकत्रित महान् व्यक्ति कथन करें, कि तुम्हारे सन्मुख इस राजकुमार के सिवा अन्य कौन है, जो चातुर्वर्ण्य प्रजा की रक्षा करने का अधिकार रखता हो ॥३७-४५॥

तथेत्यमात्यः कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वाधिकुर्वीत ॥ ४६ ॥ बन्धुसंबन्धिनानां मित्रामित्रदूतानां च दर्शयेत् ॥ ४७ ॥ भक्तवेतनविशेषममात्या-
नामायुधीयानां च कारयेत् ॥ ४८ ॥ भूयश्चायं वृद्धः करिष्यतीति ब्रूयात् ॥ ४९ ॥
एवं दुर्गराष्ट्रमुख्यानाभाषेत ॥ ५० ॥ यथार्हं च मित्रामित्रपक्षम् ॥ ५१ ॥ विनय-
कर्मणि च कुमारस्य प्रयतेत ॥ ५२ ॥

अमात्य उनकी बात स्वीकार करके राजकुमार, राजकन्या या गर्भिणी राजमहिषी को राज्यसिंहासन का कार्य सौंप दे तथा उनके बन्धुबान्धव और अन्य भिन्न शत्रु राजाओं के दूतों को भी उसही राजकुमार के दर्शन करवावे। अब अमात्य और सेना के सिपाहियों के कुछ भत्ते और वेतन में वृद्धि करदी जावे और कहा जावे, कि जब यह बड़ा होगा, तब और वेतन बढ़ाया जावेगा। इसी तरह दुर्ग और राष्ट्र के मुख्य २ सामन्तों से भी कहदे तथा जैसा उचित समझा जावे, वैसे ही मित्र या शत्रु पक्ष से कह दिया जावे। इसके अनन्तर राजकुमार के पढ़ाने में पर्याप्त प्रयत्न किया जावे ॥४६-५२॥

कन्यायां समानजातयादपत्यमुत्पाद्य वाभिषिञ्चेत् ॥ ५३ ॥ मातुश्चित्तक्षो-
भभयात्कुल्यमल्पसत्त्वं छात्रं च लक्ष्ण्यमुपनिदध्यात् ॥ ५४ ॥ ऋतौ चैनां

रक्षेत् ॥ ५५ ॥ न चात्मार्यं कश्चिदुत्कृष्टमुपभोगं कारयेत् ॥ ५६ ॥ राजार्यं तु
यानवाहनाभरणवस्त्रस्त्रीवेशमपरिवापान्कारयेत् ॥ ५७ ॥

यौवनस्थं च याचेत् विश्रमं चित्तकारणात् ।

परित्यजेदपुण्यन्तं तुप्यन्तं चानुपालयेत् ॥ ५८ ॥

यदि राजकुमार न होतो विवाह द्वारा समान जाति के पुरुष से राजकन्या में पुत्र
उत्पन्न कराकर उसे राज्य सिंहासन पर बैठा दे । माता के चित्त में शोक न हो, इस से
कुलीन, निबल, सौम्य वेद पाठी छात्र को उसके पास रख दे और ऋतुकाल में इसकी
अच्छी तरह रक्षा की जावे । अमात्य अपने लिए कोई उत्तम उपभोग सामग्री न जुटावे ।
राजा के लिए-तो यान वाहन, आभरण, वस्त्र, स्त्री, मकान, और बढ़िया शय्यासन तैयार
करावे । जब राजकुमार युवा हो जावे, तो अमात्य अपने विश्राम करने की इच्छा प्रकट
करे, जिससे कुमार के चित्त का अभिप्राय प्रकट हो । यदि वह असन्तुष्ट होवे, तो उस
छोड़ दे और सन्तुष्ट होवे-तो उसके साथ रहकर राज्य कार्य करता रहे ॥ ५३-५८ ॥

निवेद्य पुत्ररक्षार्थं गूढसारपरिग्रहान् ।

अरण्यं दीर्घसत्त्रं वा सेवेतारुच्यतां गतः ॥ ५९ ॥

यदि अमात्य को ही राज्यकार्य से अरुचि हो जावे, तो उस राजकुमार की रक्षा के
निमित्त गूढसार पुरुषों को बताकर आप तपस्या के लिए वन में चला जावे या किसी
लम्बे यज्ञ को आरम्भ करदे ॥ ५९ ॥

मुख्यैरवगृहीतं वा राजानं तत्प्रियाश्रितः ।

इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित् ॥ ६० ॥

जब राजा को मुख्य २ पुरुष सम्हाल लें-तो नीति शास्त्र का ज्ञाता, वृद्ध अमात्य, राजा
के प्रिय पुरुषों के आश्रित रहकर इतिहास और पुराणों से राजकुमार को तत्व अ
ज्ञान करावे ॥ ६० ॥

सिद्धव्यञ्जनरूपो वा योगमास्थाय पार्थिवम् ।

लभेत लब्ध्वा दूष्येषु दाण्डकर्मिकमाचरेत् ॥ ६१ ॥

यदि आवश्यकता होतो खैरखाह वृद्ध अमात्य, कपटी सिद्ध का रूप बनाकर योग
धारण करके राजा को मोहित करके उसे वश में करे । जब राजा वश में हो जावे, तो
फिर राजा से विरोध रखने वाले पुरुषों को दाण्डकर्मिक प्रकरण की विधि द्वारा
सीधा करदे ॥ ६१ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत योगवृत्त नामक अधिकरण में राज्य के सम्हालने
के वर्णन का छठा अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर योगवृत्त नामक
पाँचवां अधिकरण भी समाप्त हो गया ।

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे राज्यप्रतिसंधानम्
एकैश्वर्य षष्ठो ऽध्यायः ॥६॥

आदितः पण्यवतिः ॥६६॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य
योगवृत्तं पञ्चमऽधिकरणं समाप्तम् ॥५॥



अथ मण्डल योनिः षष्ठमधिकरणम्

प्रथम अध्याय

६६वां प्रकरण

प्रकृतिसम्पदः

इस प्रकरण में राजा के मन्त्री आदि की प्रकृति के गुणों का वर्णन होगा ।

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः ॥१॥ तत्र स्वामि-
संपत् ॥२॥ महाकुलीनो दैवबुद्धिः सत्त्वसंपन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्यवाग-
विसंवादकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहो ऽदीर्घसूत्रः शक्यसामन्तो दृढबुद्धि-
रक्षुद्रपरिपत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणाः ॥३॥ शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारण
विज्ञानोहापोहतत्वाभिनिवेशाः प्रज्ञागुणाः ॥४॥ शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं
चोत्साहगुणाः ॥५॥

✓ । स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग कोश, सेना, मित्र-ये सात प्रकृति कहाते हैं । इसमें
सर्व प्रथम स्वामी के गुण बताये जाते हैं । उत्तम कुलोत्पन्न, वृद्धों की मानने वाला,
धार्मिक, सत्यवादी, सत्य प्रतिज्ञाधारी, कृतज्ञ, ऊंचे उद्देश्यवाला, महोत्साही, कार्य में देर
नहीं करने वाला, समर्थ सामन्तों से युक्त, दृढ बुद्धि, उत्तम २ मनुष्यों की सभा में बैठने
वाला, शास्त्र मर्यादा का अभिलाषी-ये राजा के गुण हैं, इन्हीं गुणों के कारण राजा के
पास जाने की इच्छा होती हो, (सुनने की इच्छा, उचित बात या शास्त्र का सुन लेना,
सुनकर ग्रहण करना, ग्रहण करके धारण कर लेना, धारण के अनन्तर विज्ञान, फिर
तर्क वितर्क और तत्व का जानना ये बुद्धि के गुण हैं) शौर्य, अमर्ष (क्रोध) शीघ्रकारीपन,
चतुर्दा-ये चार राजा के चार उत्साह गुण हैं ॥१-५॥

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रः स्वग्रहः कृतशिल्पोव्यसने
दण्डनाय्युपकारापकारयोर्दृष्टप्रतीकारी ह्रीमानापत्रकृत्योर्विनियोक्ता दीर्घदृ-
दर्शी देशकालपुरुषकारकार्यप्रधानः संधिविक्रमत्यागसंयमपणपरच्छिद्रविभागी

संवृतोऽदीनाभिहास्यजिह्वभ्रुकुटीक्षणः कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः
शक्रः स्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसंपत् ॥६॥

अर्थ पूर्ण वचन बोलने में कुशल, प्रतिभा सम्पन्न, भाषण करने में समर्थ, स्मृति, बुद्धि और बल सम्पन्न, उन्नतचित्त, संयमी, हाथी घोड़े आदि के चलाने में कुशल, विपत्ति के समय शत्रु पर चढ़ाई करने वाला, उपकार और अपकार के बदला देने में समर्थ, लज्जाशील, आगति और प्रकृति के ऊपर अधिकार रखने वाला, दीर्घदर्शी परिणामदर्शी, देश, काल, पुरुषार्थ के करने में प्रधान शक्ति युक्त, सन्धिविग्रह के समय का ज्ञाता, त्यागी, नियमानुकूल कोश पण बढ़ाने वाला, शत्रु छिद्र द्रष्टा, अपने आकार को छुगने वाला, दीन पुरुषों की हंसी न करने वाला, टेढ़ी भ्रुकुटी से न देखने वाला, काम क्रोध, लोभ, मोह, चपलता, उपताप, (डाह) चुगली आदि दुर्गुणों से रहित, प्रियभाषी, मुसकुराहट के साथ उत्तम बोलने में समर्थ, वृद्धों के आचार और उपदेश का ज्ञाता राजा श्रेष्ठ है-ये आत्मसंपत् कहाती है ॥६॥

अमात्यसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥७॥ मध्ये चान्ते च स्थानवानात्मधारणः
परधारणश्चापदि स्वारक्षः स्वाजीवः शत्रुद्वेषी शक्यसामन्तः पङ्कपापाणोषर-
विषमकण्टकश्रेणीव्यालमृगाटवीहीनः कान्तः सीताखनिद्रव्यहस्तिवनवान् गव्यः
पौरुषेयो गुप्तगोचरः पशुमानदेवमातृको वारिस्थलपथाभ्यामुपेतः सारचित्र-
बहुपण्यो दण्डकरसहः कर्मशीलकर्मकोऽवाल्लिशस्वाम्यवरवर्णप्रायो भक्तशुचि-
मनुष्य इति जनपदसंपत् ॥८॥

अमात्य संपत् (गुण) पूर्व में ही कहे जा चुके। अब जन पद संपत् बतायी जाती है। जनपद के मध्य और अन्त में दुर्ग होने चाहिए। जो आपत्काल में अपने और बाहर से आने वाले पुरुषों के भोजन के लिए पर्याप्त धान्य वाला हो। जो पर्वत और नदियों के कारण अपनी रक्षा में समर्थ हो। जिसमें थोड़े परिश्रम से अन्न उत्पन्न हो सके। जिसमें शत्रु के द्वेषी पुरुष हों। जिसमें शक्तिशाली सामन्तों का निवास हो। कीबड़, पत्थर, ऊषर, विषम स्थान, कण्टकश्रेणी, सिंह आदि जन्तु मृग और वन से रहित, नदी सरोवर से सुन्दर हल के जोतने योग्य भूमि, खान, वन की लकड़ी और हाथियों के वन से संयुक्त, जहाँ का जल वायु गौ और पुरुषों के उपयोगी, सुरक्षित गोचर भूमि से युक्त, पशुओं से भरे हुए, जल की वर्षा के बिना भी अन्न उत्पन्न करने वाला, जल स्थल के मार्ग से सुसम्पन्न सारयुक्त बहुत सी चित्र वस्तुओं से युक्त दण्ड केकर को सह लेने वाला, परिश्रमी किसानों से युक्त, बुद्धिमान् राजा से परिपालित, उत्तम वर्ण के लोगों से भरा हुआ, भक्त और

पवित्र आचार वाले, पुरुषों से व्याप्त जन पद उत्तम माना गया है। उपर्युक्त सामग्री जनपद संपद कहाती है ॥७८॥

दुर्गसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥६॥ धर्माधिगतः पूर्वैः स्वयं वा हेमरूप्यप्राय-
श्चित्रस्थूलरत्नहिरण्यो दीर्घामप्यापदमनायति सहेतेति कोशसंपत् ॥१०॥ पितृ-
पैतामहो नित्यो वश्यस्तुष्टभृतपुत्रदारः प्रवासेष्वपि संपादितः सर्वत्राप्रतिहतो
दुःखसहो बहुयुद्धः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविशारदः सहवृद्धिज्ञयिकत्वाद्वैध्यः क्षत्र-
प्राय इति दण्डसंपत् ॥११॥

दुर्ग की सम्पत् भी पूर्व दुर्ग विधान प्रकरण में बता दी गई है। अब कोश सम्पत् बताते हैं पूर्वज या अपने आप धर्म से इकट्ठे किये हुए धन से सम्पन्न सुवर्ण, चांदी, से भरा हुआ, विचित्र और स्थूल अमूल्य रत्नों से युक्त, चिरकाल तक चलने वाली दुर्भिन्न आदि आपत्ति और आमदनी के अभाव को सहने में समर्थ होना-कोश सम्पत् है। पिता और पितामह के आगे से चले आते हुए, सदा वश में रहने वाले सैनिक होने चाहिए। जिसके सेवक पुत्र और स्त्री वृत्ति से सन्तुष्ट हो, प्रवास (चढ़ाई) में जाने पर भी जिसके कुटुम्ब को धन दिया जाता रहा हो। सब जगह अप्रतिहत गति से बढ़ा चला जाता हो, जो दुःख सहने में समर्थ हो। जिसने बहुत से युद्ध कर रखे हों-जो सारी शस्त्र विद्या और युद्ध के ज्ञान में विशारद हो। राजा की वृद्धि और हानि में अपनी वृद्धि हानि मानने वाला हो ऐसे क्षत्रियों से भरी सेना होना ही दण्ड संपत् कहाती है ॥६-११॥

पितृपैतामहं नित्यं वश्यमद्वैध्यं महल्लघुसमुत्थमिति मित्रसंपत् ॥१२॥
अराजवीजी लुब्धः क्षुद्रपरिपत्को विरक्तप्रकृतिरन्यायवृत्तिरयुक्तो व्यसनी
निरुत्साहो दैवप्रमाणो यत्किंचनकार्यगतिरननुबन्धः क्लीबो नित्यापकारी चेत्य-
मित्रसंपत् ॥१३॥ एवंभूतो हि शत्रुः सुखः समुच्छेत्तुं भवति ॥१४॥

पितृ पितामह क्रम से चले आता हुआ, नित्य वश में रहने वाला, किसी प्रकार का भेद नहीं मानने वाला, छोटे बड़े सारे कामों में सहायक मित्र होना-मित्र सम्पत् कहाती है। जो शुद्ध राजवंश का न हो, जो लोभी और क्षुद्र विचार वाले मनुष्यों की सभा में बैठने वाला हो, जिसके मन्त्री और प्रजा जिससे विरक्त रहते हों। जो अन्याय परायण, व्यसनी निरुत्साह, दैव को मानने वाला (आलसी) हो। जो कुछ होना होगा-वह हो जावेगा-ऐसे विचार रखने वाला, सहायता से हीन, वीरता रहित, नित्य अपकार में तत्पर हो वह शत्रु शीघ्र वश में होता है यह शत्रु संपत् कहाती है ॥१२-१४॥

अरिर्वर्जाः प्रकृतयः सप्तैताः स्वगुणोदयाः ।

उक्ताः प्रत्यङ्गभूतास्ताः प्रकृता राजसंपदः ॥१५॥

शत्रु को छोड़कर शेष सारी सात प्रकृति अपने २ गुणों के साथ गिना दी गई हैं ।
ये एक दूसरे की सहायक होकर सारी राज सम्पत्ति कहाती हैं ॥१५॥

संपादयत्यसंपन्नाः प्रकृतीरात्मवान्नृपः

विवृद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान् ॥१६॥

ततः स दुष्टप्रकृतिश्चातुरन्तो ऽप्यनात्मवान् ।

हन्यते वा प्रकृतिभिर्याति वा द्विषतां वशम् ॥१७॥

आत्मगुण सम्पन्न राजा, अयोग्य प्रकृति (मन्त्री आदि) को भी योग्य बना लेता है और जो राजा स्वयं अयोग्य है, वह वृद्धिशाली और अनुरक्त प्रजा को भी अयोग्य बना या विरुद्ध बना देता है । आत्मोचित गुणों से रहित राजा की प्रकृति (प्रजा) बिगड़ जाती है, वह चारों समुद्र का अधिपति होकर भी प्रजा से मार दिया जाता है या वह शत्रु के वश में चला जाता है ॥१६-१७॥

आत्मवांस्त्वल्पदेशो ऽपि युक्तः प्रकृतिसंपदा ।

नयज्ञः पृथिवीं कृत्स्नां जयत्येव न हीयते ॥१८॥

इति मण्डलयोनौ षष्ठेऽधिकरणे प्रकृतिसंपदः प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

आदितः सप्तनवातः ॥ ६७ ॥

आत्म गुण से युक्त, थोड़े देश से सन्पन्न राजा भी प्रकृति (मन्त्री) के गुणों से युक्त हो जाता है । यह नीतिमान् सारी पृथिवी को जीत लेता है और कभी पराजित नहीं होता ॥१८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत मण्डलयोनि अधिकरण में मन्त्री आदि प्रकृति

के गुणों के वर्णनों का पहिला अध्याय समाप्त हुआ ।

॥६७॥

दूसरा अध्याय

६७वां प्रकरण

शमव्यायामिकम्

इस प्रकरण में शान्ति और उद्योग की विधि का वर्णन होगा ।

शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः ॥ १ ॥ कर्मरम्भाणां योगाराधनो

व्यायामः ॥ २ ॥ कर्मफलोपभोगानां क्षेमादाधनः शमः ॥ ३ ॥ शमव्यायाम-

योर्योनिः पाङ्गुण्यम् ॥ ४ ॥ क्षयस्थानं वृद्धिरित्युदयास्तस्य ॥ ५ ॥ मानुषं
नयापनयो दैवमयानयो ॥ ६ ॥

शम और व्यायाम-योग और कल्याण के साधन हैं। किसी भी कार्य के आरम्भ कर देने पर उसको साक्षोपात्त पूर्ण करने के दृढ़ को व्यायाम कहते हैं। सन्धि आदि कर्म और उनके फलों के उपभोगों के विघ्नों के नाशक ढंग को शम कहते हैं। शम और व्यायाम का कारण सन्धि, विमह, यात, आसन, संश्रय और द्वैधी भाव हैं। इस पाङ्गुण्य के क्षय स्थान (स्थिति) और वृद्धि-ये तांन गुण हैं। इन फलों के प्राप्त करने वाले मानुष और दैव ये दो कर्म हैं। मानुष कर्म नय और अपनय तथा दैव कर्म अय और अनय है ॥ १-६ ॥

दैवमानुषं हि कर्म लोकं यापयति ॥७॥ अदृष्टकारितं दैवम् ॥८॥ तस्मिन्निष्टेन
फलेन योगो ऽयः ॥९॥ अनिष्टेनानयः ॥१०॥ दृष्टकारितं मानुषम् ॥११॥
तस्मिन्योगक्षेमनिष्पत्तिर्नयः ॥१२॥ विपत्तिरपनयः ॥१३॥ तच्चिन्त्यम् ॥१४॥
अचिन्त्यं दैवमिति ॥१५॥ राजात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नो नयस्याधिष्ठानं विजिगीषुः
॥१६॥ तस्य समन्ततो मण्डलोभूता भूम्यनन्तरा अरिप्रकृतिः ॥१७॥ तथैव भूम्ये-
कान्तरा मित्रप्रकृतिः ॥१८॥ अरिसंपद्युक्तः सामन्तः शत्रुः ॥१९॥

ये दैव और मानुष कर्म ही लोक यात्रा के कराने वाले हैं। धर्म अधर्म (अदृष्ट) से जन्य कर्म दैव हैं। जत्र दैव के द्वारा कार्य की सिद्धि हो-तो वह कर्म अय कहाता है और जत्र अनिष्ट की प्राप्ति हो-तो अनय कहाता है। प्रभु, मन्त्र और उत्साह से होने वाले कर्म मानुष कहाते हैं। इसमें योग क्षेम के सिद्ध होने पर कर्म नय कहाता है और कार्य के भ्रष्ट हो जाने पर वही मानुष कर्म अपनय कहाता है। मानुष कर्म के विषय में विचार किया जा सकता है। दैव कर्म तो अविचारणीय विषय हैं। आत्म, द्रव्य, प्रकृति आदि की सम्पत्ति से सम्पन्न नय का स्थान राजा विजयो होता है। राजा के चारों ओर वसे हुए समीप की भूमि वाले राजा शत्रुभूत होते हैं। बीच में एक राज्य पड़ने पर जो राज्य हो-उसके राजा मित्र होते हैं। अरि सम्पत्ति से युक्त सामन्त शत्रु कहाता है ॥ ७-१९ ॥

व्यसनी यातव्य अनपाश्रयो दुर्बलाश्रयो वोच्छेदनीयः ॥२०॥ विपर्यये
पीडनीयः कर्शनीयौ वा ॥२१॥ इत्यरिविशेषाः ॥२२॥ तस्मान्मित्रमरिमित्रं
मित्रमित्रमरिमित्रमित्रं चानन्तर्येण भूमीनां प्रसज्यते पुरस्तात् ॥२३॥ पश्चात्पा-
र्णिग्राह आक्रन्दः पार्णिग्राहासार आक्रन्दासार इति ॥२४॥ भूम्यनन्तरः
प्रकृत्यमित्रः तुल्याभिजन सहजः ॥२५॥ विरुद्धो विरोधयिता वा कृत्रिमः ॥२६॥

जो राजा विपत्ति में फंसा हो, उस पर चढ़ाई कर देनी चाहिए। जिसका कोई आश्रय न हो वा दुर्बल आश्रय हो-उस शत्रु को उखाड़ देना सरल है। यदि शत्रु आश्रय हीन या दुर्बल आश्रय वाला न हो, तो उसे पीड़ित करके यथाशक्य दुर्बल बनादे। ये शत्रुओं के भेद हैं। इसी तरह मित्र, अरिमित्र, मित्र का मित्र-आदि राजा राज्य की भूमि के समीप होने से प्रथम इनसे ही भिड़न्त होती है। राजा के पीछे के चार राजा पार्ष्णि-ग्राह आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार कहाते हैं। अपनी भूमि के समीप का राजा स्वभाव से ही शत्रु होता है। अपने ही वंश में उत्पन्न दाय भागी सहजशत्रु कहाते हैं। स्वयं विरुद्ध होने या विरोध करने पर जो शत्रु हो-वह कृत्रिम शत्रु कहाता है ॥ २०-२६ ॥

भूम्येकान्तरं प्रकृतिमित्रं मातातितृसंबद्धं सहजम् ॥ २७ ॥ 'धनजीवितहेतो-
राश्रितं कृत्रिममिति ॥ २८ ॥ अरिविजिगीष्णोभूम्यनन्तरः संहतासंहतयोरनुग्रह-
समर्थो निग्रहे चासंहतयोर्मध्यमः ॥ २९ ॥ अरिविजिगीषुमध्यानां बहिः प्रकृ-
तिभ्यो बलवत्तरः संहतासंहतानामरिविजिगीषुमध्यमानामनुग्रहे समर्थो निग्रहे
चासंहतानामुदासीनः ॥ ३० ॥ इति प्रकृतयः ॥ ३१ ॥

बीच के राज्य से आगे का राज्य प्रकृति मित्र होता है। माता और पिता से सम्बन्ध रखने वाला ममेरा फुफेरा भाई सहज मित्र होता है। धन और जीविका के ध्यान से आश्रय लेने वाला पुरुष कृत्रिम मित्र कहाता है। शत्रु और विजयी राजा की भूमि के समीपवर्ती संगठित असंगठित शत्रु मित्र की सहायता देने में समर्थ और असंगठित के निग्रहमें समर्थ मध्यम राजा कहाता है। शत्रु विजयी राजा और मध्यम राजा में इनकी प्रकृति (मन्त्री आदि) से बाहर तथा मध्यम से भी शक्तिशाली संहत और असंहत; शत्रु विजयी और मध्यम राजा की सहायता में समर्थ, असंगठित [प्रथक् २] के निग्रह में समर्थ राजा उदासीन होना है। इस प्रकार बारह राज प्रकृतियों का वर्णन किया गया ॥ २७-३१ ॥

विजिगीषुमित्रं मित्रमित्रं वास्य प्रकृतयस्तिस्रः ॥ ३२ ॥ ताः पञ्चभिर-
मात्यजनपददुर्गकोशदण्डप्रकृतिभिरेकैकशः संयुक्ता मण्डलमष्टादशकं भवति
॥ ३३ ॥ अनेन मण्डलपृथक्त्वं व्याख्यातमरिमध्यमोदासीनानाम् ॥ ३४ ॥
एवं चतुर्मण्डलसङ्क्षेपः ॥ ३५ ॥ द्वादश राजप्रकृतयः ॥ ३६ ॥ षष्टिर्द्रव्य-
प्रकृतयः ॥ ३७ ॥ संचेपेण द्विसप्ततिः ॥ ३८ ॥

विजयाभिलाषी नृप उसके मित्र और मित्र के मित्र-ये तीन प्रकृति कहाती हैं। ये तीनों छः अमात्य जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड प्रकृतियों से युक्त होकर अठारह भेद से एक मंडल बन जाता है। इसी प्रकार अरिमंडल, मध्यम मंडल और उदासीन मंडल बन जाता

हैं। ये चारों मंडलों का संक्षेप में वर्णन किया गया। राजप्रकृति बारह, द्रव्य प्रकृति साठ-ये सब मिलकर बहत्तर प्रकृति कहाती हैं ॥ ३२-३८॥

तासां यथास्वं संपदः शक्तिः सिद्धिश्च ॥ ३९ ॥ बलं शक्तिः ॥ ४० ॥
सुखं सिद्धिः ॥ ४१ ॥ शक्तिस्रिविधा ॥ ४२ ॥ ज्ञानबलं मन्त्रशक्तिः ॥ ४३ ॥
कोशदण्डबलं प्रभुशक्तिः ॥ ४४ ॥ विक्रमबलमुत्साहशक्तिः ॥ ४५ ॥ एवं सिद्धिस्रि-
विधैव ॥ ४६ ॥ मन्त्रशक्तिसाध्या मन्त्रसिद्धिः ॥ ४७ ॥ प्रभुशक्तिसाध्या
प्रभुसिद्धिः ॥ ४८ ॥ उत्साहशक्तिसाध्या उत्साहसिद्धिरिति ॥ ४९ ॥ ताभिरभ्युच्चितो
ज्यायान्भवति ॥ ५० ॥ अपचितो हीनः ॥ ५१ ॥ तुल्यशक्तिः समः ॥ ५२ ॥
तस्माच्छक्तिं सिद्धिं च घटेतात्मन्यावेशयितुम् ॥ ५३ ॥

इनकी सम्पदायें यथायोग्य पूर्व में कही जा चुकी। अब शक्ति और सिद्धि कहते हैं बल का नाम शक्ति है। सुख नाम सिद्धि है। शक्ति तीन प्रकार की है। ज्ञान बल मन्त्र, शक्ति कोश दण्ड बल, प्रभुशक्ति और विक्रमबल उत्साह शक्ति कहाती है। इसी प्रकार सिद्धि भी तीन तरह की है। मन्त्र शक्ति से सिद्ध होने वाली सिद्धि मन्त्र सिद्धि, प्रभुशक्ति से सिद्ध होने वाली प्रभुसिद्धि और उत्साह शक्ति से सिद्ध होने वाली उत्साह सिद्धि कहाती है। इन शक्तियों से युक्त राजा श्रेष्ठ होता है। इनसे हीन दुर्बल माना गया है। इनकी तुल्य शक्ति हो, तो वह साधारण शक्ति होता है। इससे राजा अपने भीतर शक्ति और सिद्धि को धारण करने का प्रयत्न करे ॥ ३९-५३॥

साधारणा वा द्रव्यप्रकृतिष्वानन्तर्येण शौचवशेन वा दूष्यामित्राभ्यां वाप-
क्रष्टुं यतेत ॥ ५४ ॥ यदि वा पश्येत् ॥ ५५ ॥ अमित्रो मे शक्तियुक्तो
वाग्दण्डपारुष्यार्थदूषणैः प्रकृतीरुपहनिष्यति ॥ ५६ ॥ सिद्धियुक्तो वा मृगयाद्यत-
मद्यस्त्रीभिः प्रमादं गमिष्यति ॥ ५७ ॥ स विरक्तप्रकृतिरुपक्षीणः प्रमत्तो वा साध्यो
मे भविष्यति ॥ ५८ ॥ विग्रहाभियुक्तो वा सर्वसंदोहेनैकस्थो दुर्गस्थो वा स्था-
स्यति ॥ ५९ ॥ स संहितसैन्यो मित्रदुर्गवियुक्तः साध्यो मे भविष्यति ॥ ६० ॥
बलवान्वा राजा परतः शत्रुमुच्छेत्तुकामस्तमुच्छिद्यमानमुच्छिन्नादिति बलवता
प्रार्थितस्य मे विपन्नकर्मारम्भस्य वा साहाय्यं दास्यति ॥ ६१ ॥ मध्यमलिप्सायां
चेति ॥ ६२ ॥ एवमानिषु कारणेष्वमित्रस्यापि शक्तिं सिद्धिं चेच्छेत् ॥ ६३ ॥

जो राजा स्वयं साधारण शक्ति प्राप्त कर सकता हो, वह द्रव्य प्रकृति सम्पत्ति की अपने शुद्ध आचारण द्वारा वृद्धि करे तथा दुष्ट मनुष्य और शत्रु की शक्तिके हास का सर्वदा प्रयत्न करता रहे। यदि राजा यह देखे, कि मेरा शत्रु शक्ति युक्त है, वह बाणी की कठोरता या

दण्ड की कठोरता या धन से हमारी प्रकृति को नष्ट कर देगा या सिद्धि से युक्त होकर मृगया, द्यूत, मद्य और स्त्रियों से प्रमाद में डाल देगा; जब राजा के मन्त्री आदि विरक्त हो जावेंगे-तो राजा क्षीण बल होगा या प्रमाद में पड़ जावेगा-तब मेरा साध्य हो सकेगा, अथवा जब मैं चढ़ाई करूँगा-तो वह सारी सेना को लेकर एक स्थान या दुर्ग में स्थित होगा, उस समय मित्र के दुर्ग से या सहायता से वञ्चित यह शत्रु राजा, सेना सहित मेरे वश में हो जावेगा। यदि राजा यह समझे कि यह बलवान् राजा, दूसरे शत्रु का उच्छेद करेगा, उस उच्छेद करने योग्य का यह उच्छेद करले। जब यह बलवान् से लड़ लेगा-तो क्षीण बल होकर मुझ विगड़े कार्य वाले के सहायता भोगने पर यह अवश्य सहायता देगा, क्योंकि यह स्वयं किसी मध्यम शक्ति से मिलने की इच्छा रखेगा। इस प्रकार के कारणों से शत्रु की शक्ति को वश में लाने की भी विजयाभिलाषी इच्छा करता रहे ॥५४-६३॥

नेमिमैकान्तरात् राज्ञः कृत्वा चानन्तरानरान् ।

नाभिमात्मानमायच्छेन्नेता प्रकृतिमण्डले ॥ ६४ ॥

मध्ये ऽभ्युपहितः शत्रुर्नेतुर्मित्रस्य चोभयोः ।

उच्छेद्यः पीडनीयो वा बलवानपि जायतो ॥ ६५ ॥

इति मण्डलयोनौ षष्ठेऽधिकरणे शमन्यायामिकं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आदितो ऽष्टनवतिः ॥ ६८ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य मण्डलयोनिः

षष्ठमधिकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

विजयाभिलाषी राजा, राज मण्डल रूपी चक्र में एक राज्य से आगे रहने वाले मित्र राजाओं को नेमि, समीप के राजाओं को अरे और अपने आपको नाभि के तुल्य समझे। विजयी राजा और उसके मित्र के बीच में फंसा हुआ शत्रु, यदि बलवान् भी हो तो भी वह उखाड़ा या पीड़ित किया जा सकता है ॥६४-६५॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत मण्डलयोनि अधिकरण में शम और व्यायाम

के वर्णन का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर मण्डलयोनि

अधिकरण भी समाप्त हो गया।



षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणम्

प्रथम अध्याय

६८-६९ वां प्रकरण

षाड् गुण्यसमुद्देशः क्षयस्थान् वृद्धिनिश्चयः

इस प्रकरण में छः गुण और क्षय स्थान तथा वृद्धि के निश्चय का वर्णन होगा ।

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डलं योनिः ॥ १ ॥ संधिविग्रहासनयानसंश्रयद्वै
धीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः ॥ २ ॥ द्वैगुण्यमिति वातव्याधिः ॥ ३ ॥
संधिविग्रहाभ्यां हि षाड्गुण्यं संपद्यत इति ॥ ४ ॥ षाड्गुण्यमेवैतदवस्थाभेदा-
दिति कौटल्यः ॥ ५ ॥ तत्र पणवन्धः संधिः ॥ ६ ॥ अपकारो विग्रहः ॥ ७ ॥
उपेक्षणमासनम् ॥ ८ ॥ अभ्युच्चयो यानम् ॥ ९ ॥ परार्पणं संश्रयः ॥ १० ॥
संधिविग्रहोपादानं द्वैधीभाव इति षड्गुणाः ॥ ११ ॥

सन्धि आदि छः गुणों के स्वामी आदि सात प्रकृति और वारह राज मण्डल कारण हैं । सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय और द्वैधी भाव-ये छः गुण कहंते हैं । वातव्याधि (उद्धव) आचार्य का मत है, कि गुण दो ही हैं । सन्धि और विग्रह में शेष चार गुणों का अन्तर्भाव है । आसन आदि गुणों का सन्धि और विग्रह में ही अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि उनकी अवस्था (लक्षणों) में भेद है, इससे छः ही गुण मानने चाहिए । कुछ पण- (शर्तों) के आधार पर जो दो राजाओं का परस्पर मेल हो जाता है, इसे सन्धि कहते हैं । परस्पर एक दूसरे के अपकार में लग जाना, विग्रह होता है । किसी समय की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहना आसन कहाता है । चढ़ाई करने का नाम यान है । शत्रु या अन्य बलवान राजा को अपने आपको सौंप देना-संश्रय होता है । एक से सन्धि और दूसरे से विग्रह का उपयोग करना द्वैधी भाव है । ये छः गुण हैं ॥१-११॥

परस्माद्धीयमानः संदधीत ॥ १२ ॥ अभ्युच्चीयमानोतिगृहणीयात् ॥ १३ ॥
न मां परो नाहं परमुपहन्तुं शक्त इत्यासीत् ॥ १४ ॥ गुणातिशययुक्तो गीयात्
॥ १५ ॥ शक्तिहीनः संश्रयेत् ॥ १६ ॥ सहायसांघ्ये कार्ये द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ १७ ॥
इति गुणावस्थापनम् ॥ १८ ॥

यदि शत्रु से अपने को दुर्बल समझे-तो सन्धि कर लेनी चाहिए । यदि बलवान् माने-तो विग्रह (युद्ध) छेड़ दे । न तो मुझे शत्रु मार सकता है और न मैं ही शत्रु पर आक्रमण कर सकता हूँ-यह सोचकर आसन का व्यवहार करे । अपने भीतर शक्ति देश, कालकी उचितता देखकर चढ़ाई करे । यदि राजा शक्तिहीन हो-तो अपने को शत्रु या अन्य राजा के अर्पण कर दे । सहायता से साध्य कार्य में द्वैधीभाव का उपयोग करे । इस प्रकार गुणों के व्यवहार का समय माना गया है ॥ १२-१८ ॥

तेषां यस्मिन्वा गुणे स्थितः पश्येत् ॥ १९ ॥ इहस्थः शच्यामि दुर्गसेतु-
कर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्माण्यात्मनः प्रवर्तयितुं परस्य चैतानि
कर्माण्युपहन्तुमिति तमातिष्ठेत् ॥ २० ॥ सा वृद्धिराशुतरा ॥ २१ ॥ मे वृद्धिभू-
यस्तरा वृद्ध्युदयतरा वा भविष्यति विपरीता परस्येति ज्ञात्वा परवृद्धिमुपेक्षेत् ॥ २२ ॥

इन गुणों में जिस किसी भी गुण में स्थित होने पर यदि राजा देखे, कि इस गुण के अवलम्बन से मैं दुर्ग, सेतुकर्म [नहर आदि] सड़क, नई बस्ती बसाने, खान, लकड़ी तथा हाथियों के वन की वृद्धि कर्म कर सकूंगा और शत्रु के इन कार्यों के हानि पहुंचाने में समर्थ होऊंगा-तो उसी गुण का आश्रय लेवे, इससे बहुत शीघ्र अत्यन्त वृद्धि होती है । यदि शत्रु की वृद्धि हो रही हो-परन्तु उससे यह देखे, कि इसतरह तो मेरी वृद्धि अधिक और उत्कट होगी और आगे चलकर शत्रु की वृद्धि रुक जावेगी, तो शत्रु वृद्धि की उपेक्षा कर देवे ॥ १९-२२ ॥

तुल्यकालफलोदयायां वा वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥ २३ ॥ यस्मिन्वा गुणे
स्थितः स्वकर्मणामुपधातं पश्येन्नेतरस्य तस्मिन्न तिष्ठेत् ॥ २४ ॥ एष क्षयः ॥ २५ ॥
चिरतरेणाल्पतरं वृद्ध्युदयतरं वा क्षेप्ये विपरीतं परं इति ज्ञात्वा क्षयमुपेक्षेत्
॥ २६ ॥ तुल्यकालफलोदये वा क्षये संधिमुपेयात् ॥ २७ ॥ यस्मिन्वा गुणे
स्थितः स्वकर्मवृद्धिं क्षयं वा नाभिपश्येदेतत्स्थानम् ॥ २८ ॥ ह्रस्वतरं वृद्ध्युदयतरं
वा स्थास्यामि विपरीतं पर इति ज्ञात्वा स्थानमुपेक्षेत् ॥ २९ ॥ तुल्यकालफलोदये
वा स्थाने संधिमुपेयादित्याचार्याः ॥ ३० ॥

यदि अपने तुल्य शत्रु की भी भविष्य में वृद्धि होती दिखाई दे-तो उससे सन्धि कर ले । जिस गुण में स्थित होने पर अपनी हानि और शत्रु के कामों की उन्नति देखे-उस गुण का कदापि अवलम्बन न करे । इस प्रकार से गुण का अवलम्बन करना क्षय का हेतु होता है । मेरी हानि बहुत थोड़ी बहुत देर में होगी तथा मेरा यह क्षय वृद्धि का कराने वाला है एवं इस ढङ्ग से शत्रु की बहुत शीघ्र अधिक सर्वदा के लिए हानि होने की सम्भावना हो,

तो अपने क्षय की भी परवाह न करे । यदि शत्रु का क्षय और वृद्धि समान ही दिखाई दे-तो ऐसे शत्रु से सन्धि करले । जिस गुण में स्थित होने पर अपने स्वार्थ की वृद्धि या हानि कुछ भी न देखे-तो वहां आसन का अवलम्बन श्रेष्ठ है । मेरा इस प्रकार चुप बैठना बहुत थोड़े के लिए है और इससे परिणाम में उन्नति होगी तथा इससे शत्रु के उदय की सम्भावना नहीं है, तो ऐसे आसन की चिन्ता न करे । यदि आसन करने से भी कोई फल दिखाई न दे और शत्रु तथा अपनी एक सी वृद्धि दिखाई दे-तो राज सन्धि करले ॥२३-३०॥

नैतद्विभाषितमिति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ यदि वा पश्येत् ॥ ३२ ॥ संधौ स्थितो महाफलैः स्वकर्मभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥ ३३-॥ महाफलानि वा स्वकर्माण्युपभोक्ष्ये परकर्माणि वा ॥ ३४ ॥ संधिविश्वासेन वा योगोपनिषत्प्राणि-
धिभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥ ३५ ॥ सुखं वा सानुग्रहपरिहारसौकर्यं फलला-
भभूयस्त्वेन स्वकर्मणा परकर्मयोगावहजनमाप्तावयिष्यामि ॥ ३६ ॥ बलिनाति-
मात्रेण वा संहितः परः स्वकर्मोपघातं प्राप्स्यति ॥ ३७ ॥ येन वा विगृहीतो मया संधत्ते तेनास्य विग्रहं दीर्घं करिष्यामि ॥३८॥ मया वा संहितस्य मद्द्वेषिणो जनपदं पीडयिष्यति ॥ ३९ ॥ परोपहतो वास्य जनपदो मामागमिष्यति ॥४०॥
ततः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि ॥ ४१ ॥ विपन्नकर्मारम्भो वा विषमस्थः परः कर्मसु न मे विक्रमेत् ॥ ४२ ॥ परतः प्रवृत्तकर्मारम्भो वा ताभ्यां संहितः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि ॥४३॥ शत्रुप्रतिबद्धं वा शत्रुणा संधिं कृत्वा मण्डलं भेत्स्यामि ॥४४॥
भिन्नमवाप्स्यामि ॥ ४५ ॥ दण्डानुग्रहेण वा शत्रुमुपगृह्य मण्डललिप्सायां विद्वेषं ग्राहयिष्यामि ॥४६॥ विद्विष्टं तेनैव घातयिष्यामीति संधिना वृद्धिमातिष्ठेत् ॥४७॥

कौटल्याचार्य कहते हैं, कि यह कोई बहुत नीतिपूर्ण बात नहीं है । यदि राजा देखे, कि सन्धि करने पर मैं बड़े २ उत्तम कर्म करके शत्रु के कामों को हानि पहुंचा दूंगा या अपने उत्तम २ कर्मों के फलों के साथ शत्रु के महान् कर्मों का भी लाभ उठाऊंगा, सन्धि के धोखे में विष प्रयोग आदि के द्वारा शत्रु का नाश कर सकूंगा, तो सन्धि कर ले । इसी तरह शत्रु के उत्तम २ मनुष्यों को कृपा दिखाकर और उनके कष्टों के नाश का वचन देकर तथा उनको अधिक फल या लाभ दिखाकर अपनी कार्य कुशलता से अपनी ओर खींचलाऊंगा । अत्यन्त बलवान् के साथ सन्धि करने से शत्रु अपने कामों को हानि पहुंचा लेगा या जिससे विग्रह करने के लिए मुझसे मिलना चाहता है, उससे ही लम्बः युद्ध करवा दूंगा; यदि इसकी मुझसे सन्धि होगी-तो यह मेरे शत्रु के देश को जा पीड़ित करेगा । शत्रु से क्षीण बल हो जाने पर इसका यह देश मेरे अधिकार में हो सकेगा। इसके

बाद मैं अपने दुर्ग आदि की उन्नति कर सकूंगा । जब शत्रु, विपत्ति आने के काम करने से विपद्ग्रस्त हो जावेगा-तो यह मेरे राष्ट्र पर आक्रमण नहीं कर सकेगा, यदि दूसरे की सहायता से उसने कार्य आरम्भ किया और उन दोनों से सन्धि कर लेने पर मेरे कामों में भी वृद्धि होगी । शत्रु से सन्धि करने पर शत्रु के मंडल के तोड़ने फोड़ने में समर्थ हो सकूंगा और जब उनमें फूट पड़ जावेगी-तो मैं शत्रु को वश में कर लूंगा । मैं इस समय सेना की सहायता देकर जब शत्रु का उपकार करदूंगा-तो यह शत्रु राजा यदि अपने मंडल से मिलना चाहेगा-तो नहीं मिलने दूंगा और जब इनका परस्पर द्वेष हो जावेगा-तो इसको उनसे ही मरवा दूंगा । जब राजा इस प्रकार की परिस्थिति देखे-तो शत्रु से सन्धि करे ॥ ३१-४० ॥

यदि वा पश्येत् ॥ ४८ ॥ आयुधीयप्रायः श्रेणीप्रायो वा पे जनपदः
शैलवननदीदुर्गैकद्वारारक्षो वा शक्ष्यति पराभियोगं प्रतिहन्तुमिति ॥ ४९ ॥
विषयान्ते दुर्गमविषह्यमपाश्रितो वा शक्ष्यामि परकर्माण्युपहन्तुमिति ॥ ५० ॥
व्यसनपीडोपहतोत्साहो वा परः संप्राप्तकर्मोपघातकाल इति ॥ ५१ ॥ विगृही-
तस्यान्यतो वा शक्ष्यामि जनपदमपवाहयितुमिति विग्रहे स्थितो वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५२ ॥

यदि विजयाकांक्षी राजा देखे कि मेरे देश में प्रायः लोग शस्त्र चलाने में समर्थ और संगठित हैं तथा पर्वत, वन, नदी, दुर्ग से मेरा देश भरा पड़ा है । इसमें घुसने का एक ही द्वार है । यह शत्रु के आक्रमण का उत्तर दे देगा-मैं अपने देश की सीमा के दृढ़ दुर्ग में स्थित होकर शत्रु के कार्यों का नाश कर सकता हूँ । व्यसन और कष्टों से शत्रु का सारा उत्साह नष्ट हो रहा है, इस समय उसको वश में किया जा सकता है । यदि युद्ध हो गया-तो मैं शत्रु के कुछ देश दवा लूंगा, तो ऐसी स्थिति में राजा को युद्ध छोड़ देना चाहिए ॥ ४८-५२ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ५३ ॥ न मे शक्तः परः कर्माण्युपहन्तुम् ॥ ५४ ॥
नाहं तस्य कर्मोपघाती वा ॥ ५५ ॥ व्यसनमस्य श्ववराहयारिवक्लहे वा ॥ ५६ ॥
स्वकर्मानुष्ठानपरो वा वर्धिष्य इत्यासनेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५७ ॥

यदि राजा के विचार में यह बात आवे, कि शत्रु इतना समर्थ नहीं है, कि मेरे कामों को हानि पहुंचा सके और न मैं उसके कामों को विगाड़ सकता हूँ । यद्यपि शत्रु राजा पर व्यसन है, परन्तु कलह में कुत्ते और शूकर को लड़ाई के तुल्य कोई फल नहीं निकलेगा । यदि मैं अपना काम करता रहा-तो बढ़ जाऊंगा । इस परिस्थिति में राजा चुपचाप बैठा हुआ आसन का अवलम्बन करे ॥ ५३-५७ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ५८ ॥ यानसाध्यः कर्मोपघातः शत्रोः प्रतिविहितस्व-
कर्मारक्षणास्मीति यानेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५९ ॥

शत्रु के कर्मों का नाश चढ़ाई से ही हो सकता है। मैंने अपने दुर्ग आदि की रक्षा का प्रबन्ध कर दिया है। यदि राजा यह समझे-तो चढ़ाई के द्वारा अपनी उन्नति कर सकता है ॥५८-५९॥

यदि वा मन्येत ॥ ६० ॥ नास्मि शक्तः परकर्माण्युपहन्तुं स्वकर्मोपघातं
वा त्रातुमिति बलवन्तमाश्रितः स्वकर्मानुष्ठानेन क्षयात्स्थानं स्थानाद्वृद्धिं
चाकाङ्क्षेत् ॥ ६१ ॥

मैं शत्रु के कामों में हानि नहीं पहुंचा सकता और न अपने कामों की ही रक्षा कर सकता हूं। इस दशा में बलवान् का आश्रय लेवे। फिर अपने काम करता हुआ इस क्षणिक क्षय से स्थान की प्राप्ति करे और उसके अनन्तर अपनी वृद्धि कर ले ॥६०-६१॥

यदि वा मन्येत ॥ ६२ ॥ संधिनैकतः स्वकर्माणि प्रवर्तयिष्यामि विग्रहे-
णैकतः परकर्माण्युपहनिष्यामीति द्वैधिभावेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ६३ ॥

एक के साथ सन्धि और दूसरे के साथ विग्रह करके मैं अपने कार्यों को बना सकूंगा और शत्रु के कार्यों को नष्ट कर दूंगा-तो राजा द्वैधी भाव का अवलम्बन करके अपनी वृद्धि करे ॥६२-६३॥

एवं षड्भिर्गुणैरेतैः स्थितः प्रकृतिमण्डले ।

पर्येषेत क्षयात्स्थानं स्थानाद्वृद्धिं च कर्मसु ॥ ६४ ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमोऽधिकरणे पाङ्गुण्यसमुद्देशः क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयश्च
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितो नवनवार्तः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार राजा अमात्य आदि प्रकृति मण्डल में इन छः गुणों से व्यवहार करता हुआ, स्थित होकर क्षय से अपने स्थान और स्थान से फिर अपनी व्यों की व्यों उन्नति की अभिलाषा करे ॥६४॥

इति श्रीकौटलाय अर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य नामक अधिकरण में क्षय, स्थान और
वृद्धि के निर्णय का पहिला अध्याय समाप्त हुआ ।



दूसरा अध्याय

१००वां प्रकरण

संश्रय वृत्ति

इस प्रकरण में दो गुणों के आश्रय के समय की उपस्थिति में कौन से गुण का अवलम्बन करे-इस विषय का निर्णय किया जावेगा ।

संधिविग्रहयोस्तुल्यायां वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥ विग्रहे हि क्षयव्ययप्रवास-
प्रत्यवाया भवन्ति ॥ २ ॥ तेनासनयानयोरासनं व्याख्यातम् ॥ ३ ॥ द्वैधीभावसं-
श्रययोर्द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ ४ ॥ द्वैधीभृतो हि स्वकर्मप्रधान आत्मन एवोपकरोति
॥ ५ ॥ संश्रितस्तु परस्योपकरोति नात्मनः ॥ ६ ॥

यदि सन्धि और विग्रह दोनों में एक सा लाभ दिखाई दे-तो सन्धि का ही आश्रय करे. क्योंकि विग्रह में तो जननाश, धन व्यय, प्रवास और कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसी तरह आसन और यान के सम्बन्ध में आसन का अवलम्बन समझ लेना चाहिए। द्वैधीभाव और संश्रय में द्वैधीभाव उत्तम है, क्योंकि द्वैधीभाव में अपना काम प्रधान होता है, इससे राजा अपना उपकार कर लेता है, संश्रय में तो दूसरे का काम बनता है, अपना नहीं बन सकता है ॥१-६॥

यद्बलः सामन्तस्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत् ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टबलाभावे तमे-
वाश्रितः कोशदण्डभूमिनामन्यतमेनास्योपकर्तुमदृष्टः प्रयतेत ॥ ८ ॥ महादोषो
हि विशिष्टबलसमागमो राज्ञामन्यत्रारिविगृहीतात् ॥ ९ ॥ अशक्यो दण्डोपनत-
वद्वर्तेत ॥ १० ॥ यदा चास्य प्राणहरं व्याधिमन्तःकोपं शत्रुवृद्धिं मित्रव्यसनमु-
पस्थितं वा तन्निमित्तमात्मनश्च वृद्धिं पश्येत्तदा संभाव्य व्याधिधर्मकार्यापदेशेना-
पयायात् ॥ ११ ॥ स्वविषयस्थो वा नोपगच्छेत् ॥ १२ ॥ आसन्नो वास्य च्छिद्रेषु
ग्रहरेत् ॥ १३ ॥

यदि संश्रय करना हो-तो शत्रु जितना बलशाली हो-उससे भी बलवान् राजा का संश्रय स्वीकार करे। यदि शत्रु राजा से कोई बलवान् राजा न हो, तो शत्रु का ही आश्रय ले लेवे। कोश, सेना या भूमि में से किसी वस्तु को देकर उसे संतुष्ट करे-परन्तु इसके सम्मुख न जावे। अधिक बलशाली राजा के साथ मिलने पर कभी बड़ी बुराई उत्पन्न हो जाती है। यदि बलवान् शत्रु का अन्य शत्रु से विग्रह हो रहा हो-तो मिलने में बुराई उत्पन्न नहीं हो सकती है। जब राजा शक्ति हीन हो, तो दण्डोपनत व्यवहार की भांति

नम्रता से दिन निकाले । जब शत्रु राजा के कोई प्राणनाशक व्याधि पुरोहित आदि अन्तः प्रकृति का कोप, शत्रु की वृद्धि, मित्र का व्यसन उपस्थित हो और उससे राजा यदि अपनी वृद्धि समझे, तो किसी सम्भव व्याधि या धर्म कार्य का वहाना करके वहां से खसक आवे । यदि राजा अपने देश में पहिले से ही आ चुका हो-तो बुलाने पर भी शत्रु देश में न जावे । यदि पास ही रहना पड़ जावे, तो मौके पर उस पर आघात कर दे ॥७-१३॥

‘बलीयसोर्वा मध्यगतस्त्राणसमर्थमाश्रयेत् ॥ १४ ॥ यस्य वान्तर्धिः स्यात् ॥ १५ ॥ उभौ वा कपालसंश्रयस्तिष्ठेत् ॥ १६ ॥ मूलहरमितरस्येतरमपदिशेत् ॥ १७ ॥ भेदमुभयोर्वा परस्परापदेशं प्रयुज्जीत ॥ १८ ॥ भिन्नयोरुपांशुदण्डम् ॥ १९ ॥

दो बलवान् राजाओं की खटकने पर जो अपनी रक्षा में समर्थ दिखाई दे. विजयेच्छुक राजा उसका ही आश्रय लेवे अथवा जो अपने देश या सम्बन्ध में समीप हो-उसका आश्रय लेवे । यदि दोनों का ही आश्रय लेना पड़े-तो दोनों से इधर उधर की बातें बनाकर कपाल संश्रय करले । दो कपालों से जैसे घड़ा बनता है, ऐसे दोनों से अपना काम निकालना कपाल संश्रय कहाता है । जब इन राजाओं से मिले, तो एक दूसरे के राज्य का अपहरण करना चाहता है-ऐसा सुभावे । इस प्रकार परस्पर की झूठी सच्ची लगाकर छल से दोनों में झगड़ा करावे । यदि उनमें फूट पड़ जावे-तो विष प्रयोग आदि से उनको मरवा दे ॥१४-१९॥

पार्श्वस्थो वा बलस्थयोरासन्नभयात्प्रतिकुर्वीत ॥ २० ॥ दुर्गापाश्रयो वा द्वैधीभूत-
स्तिष्ठेत् ॥ २१ ॥ संधिविग्रहक्रमहेतुभिर्वा चेष्टेत् ॥ २२ ॥ दूष्यमित्राटविकानु-
भयोरुपगृह्णीयात् ॥ २३ ॥ एतयोरन्यतरं गच्छंस्तैरेवान्यतरस्य व्यसने ग्रहरेत्
॥ २४ ॥ द्वाभ्यामुपहितो वा मण्डलापाश्रयस्तिष्ठेत् ॥ २५ ॥ मध्यममुदासीनं
वा संश्रयेत् ॥ २६ ॥ तेन सहैकमुपगृह्येतरमुच्छिन्द्यादुभौ वा ॥ २७ ॥ द्वाभ्या-
मुच्छिन्नो वा मध्यमोदासीनयोस्तत्पक्षीयाणां वा राज्ञां न्यायवृत्तिमाश्रयेत् ॥ २८ ॥

इन दोनों बलवान् राजाओं में जिससे भय की आशङ्का निकट आ रही है, उसके पास रहकर अपने वचात्र का उपाय करे या अपने दुर्ग में स्थित होकर एक से सन्धि और दूसरे से विग्रह छेड़ दे अथवा सन्धि और विग्रह के उपयोगी जैसा समय आवे वैसा कर ले । इन दोनों में जिसका मित्र विगड़ रहा हो-उस मित्र से या वनचर वीरों से मेल कर ले, फिर इनमें से एक पर चढ़ाई करके इन दूष्य मित्र या वनचरों से उनपर कठिनाई में आघात करवावे । यदि दोनों राजा इस पर चढ़ाई करदें, तो वह मण्डल बनाकर दुर्ग में स्थित रहे या मध्यम तथा उदासीन राजा का आश्रय लेवे । उनके साथ एक से मिलकर

दूसरे का नाश करदे या दोनों को नष्ट करे। यदि इन दोनों ने राजा को अधिक पीड़ित कर दिया-तो मध्यम और उदासीन तथा उनके पक्ष के अन्य राजा का न्यायानुकूल आश्रय लेवे ॥२०-२८॥

तुल्यानां वा यस्य प्रकृतयः सुख्येयुरेनं यत्रस्थो वा शक्नुयादात्मानमुद्धर्तुं यत्र पूर्वपुरुषोचिता गतिरासन्नः संवन्धो वा मित्राणि भूर्यासीति शक्तिमन्ति वा भवेयुः ॥ २९ ॥

यदि कई राजा सहायता देने को तय्यार हों-तो जिसके मन्त्री आदि प्रकृति सुख-कारी प्रतीत हों, जिसके साथ रहकर अपना उद्धार हो सकता हो-जिनके साथ से अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा रहती हो अथवा जिनसे कुछ समीप का सम्बन्ध हो और जिसके बहुत से शक्तिशाली मित्र हों-उसी राजा का आश्रय लेवे ॥२९॥

प्रियो यस्य भवेद्यो वा प्रियो ऽस्य कतरस्तयोः ॥ ।

प्रियो यस्य स तं गच्छेदित्याश्रयगतिः परा ॥३०॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संश्रयवृत्तिः द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आदितः शततमः ॥१००॥

जो जिसका प्रिय होता है, उनमें दूसरा उसका अप्रिय कैसे हो सकता है, इसलिए जो जिसका प्रिय हो, राजा उसका आश्रय ग्रहण करे ॥३०॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य अधिकरण में संश्रयवृत्ति के वर्णन का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



तीसरा अध्याय

१०१-१०२वां प्रकरण

समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशः हीनसंधयश्च ।

इस प्रकरण में सम, हीन और अधिक के गुणों की स्थापना और हीन के साथ सन्धि का वर्णन किया जावेगा ।

विजिगीषुः शक्त्यपेक्षः पाङ्गुण्यमुपयुज्जीत ॥ १ ॥ समज्यायोभ्यां संधीयेत ॥ २ ॥ हीनेन विगृह्णीयात् ॥ ३ ॥ विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैति ॥ ४ ॥ समेन चामं पात्रमामेनाहतमिवोभयतः क्षयं करोति ॥ ५ ॥ कुम्भेनेवाश्मा हीनेनैकान्तसिद्धिमवाप्नोति ॥ ६ ॥

विजयेच्छुक राजा अपनी शक्ति को देखकर सन्धि आदि छःओं गुणों का प्रयोग करे, जो अपने बराबर की शक्ति रखने वाला या अधिक शक्तिशाली हो-उससे सन्धि करे और शक्तिहीन के साथ युद्ध छेड़ दे। बलवान् के साथ युद्ध छेड़ने में हाथी के साथ पैदल का युद्ध समझना चाहिए। सम के साथ युद्ध होने पर कच्चे घड़े से कच्चे घड़े के टकराने के तुल्य दोनों का नाश होता है। पत्थर से घड़े के भिड़ने की भांति हीन बल के साथ युद्ध होने पर अवश्य सिद्धि होती है ॥ १-६ ॥

ज्यायांश्चेन्न संधिमिच्छेद्दण्डोपनतवृत्तमावलीयसं वा योगमातिष्ठेत् ॥ ७ ॥
समश्चेन्न संधिमिच्छेद्यावन्मात्रमपकुर्यात्तावन्मात्रमस्य प्रत्यपकुर्यात् ॥ ८ ॥ तेजो हि
संधानकारणम् ॥ ९ ॥ नातप्तं लोहं लोहेन संधत्त इति ॥ १० ॥ हीनश्चेत्सर्वत्रानुग्रहा-
तस्तिष्ठेत्संधिमुपेयात् ॥ ११ ॥ आरण्योऽग्निरिव हि दुःखामर्षजं तेजो विक्रमयति
मण्डलस्य चानुग्राह्यो भवति ॥ १२ ॥

यदि बलवान् सन्धि न करे-तो उससे दंडोपनत और आवलीयस प्रकरणोक्त नियमों का व्यवहार करे। यदि बराबर का राजा सन्धि न करे-तो यह जितना नुकसान पहुंचावे, उतनी ही उसकी भी हानि करदे। सन्धि तो तेज के अधीन है। यदि लोहा तप्त नहीं होगा, तो दूसरे लोहे से नहीं मुड़ेगा। यदि हीन बल वाला राजा सब कामों में झुका ही रहे, तो उससे सन्धि कर ले। वन की आग की भांति दुःख और क्रोध से तेज चमक उठता है, इस समय हीन बल वाला भी कभी २ राजमंडल का अनुग्रह पात्र बनकर हानि पहुंचा देता है ॥ ७-१२ ॥

संहितश्चेत्प्रकृतयो लुब्धक्षीणापचारिताः प्रत्यादानभयाद्वा नोपगच्छ-
न्तीति पश्येद्धीनोऽपि विगृह्णीयात् ॥ १३ ॥ विगृहीतश्चेत्प्रकृतयो लुब्धक्षीणा-
पचारिता विग्रहोद्विग्ना वा मां नोपगच्छन्तीति पश्येज्ज्यायानपि संधीयेत् ॥ १४ ॥
विग्रहोद्वेगं वा शमयेत् ॥ १५ ॥ व्यसनयौगपद्येऽपि गुरुव्यसनोऽस्मि लघुव्यसनः
परः सुखेन प्रतिकृत्य व्यसनमात्मनोऽभियुञ्जयादिति पश्येज्जायानपि
संधीयेत् ॥ १६ ॥

सन्धि कर लेने पर भी शत्रु के मन्त्री आदि लोभ, नीचता आदि दोषों के कारण अपने बदले लेने के भय से मुझसे मेल नहीं करते हैं-यदि बलहीन राजा यह देखे-तो युद्ध कर डाले। जब युद्ध छिड़ जावे और फिर भी मन्त्री आदि लोभ, नीचता आदि के वशी-भूत हुए या विग्रह से उद्विग्न हुए मुझसे नहीं मिलते-यदि राजा यह देखे-तो बलवान् होने पर भी राजा सन्धि करले अथवा विग्रह उत्पन्न उद्वेग को शान्त कर दे। यद्यपि अपने ऊपर

और शत्रु के ऊपर एक साथ किसी विपत्ति ने आक्रमण किया, परन्तु नीतिमान् राजा जब यह समझे, कि मुझपर भारी व्यसन है, शत्रु पर इस विपत्ति का थोड़ा प्रभाव पड़ेगा। शत्रु सुखपूर्वक अपनी विपत्ति का प्रतिकार करके मुझसे युद्ध छेड़ देगा-तो ऐसी दशा में शक्तिशाली होता हुआ भी छोटे से सन्धि कर ले ॥ १३-१६ ॥

संधिविग्रहयोश्चेत्परकर्शनमात्मोपचयं वा नाभिपश्येज्ज्यायानप्यासीत् ॥ १७ ॥ परव्यसनमप्रतिकार्यं चेत्पश्येद्धीनो ऽप्यभियायात् ॥ १८ ॥ अप्रतिकार्यासन्नव्यसनो वा ज्यायानपि संश्रयेत् ॥ १९ ॥ संधिनैकतो विग्रहेणैकतश्चेत्कार्यसिद्धिं पश्येज्ज्यायानपि द्वैधीभूतस्तिष्ठेदिति ॥ २० ॥ एवं समस्य षाड्गुण्योपयोगः ॥ २१ ॥ तत्र तु प्रतिविशेषः ॥ २२ ॥

सन्धि या विग्रह करने पर भी शत्रु की कोई हानि और अपनी कोई वृद्धि नहीं दिखाई दे, तो शक्तिशाली राजा चुपचाप बैठा आसन का संश्रयण करे। यदि शत्रु पर कोई ऐसा व्यसन आ पड़ा है, जिसका वह प्रतीकार नहीं कर सकता, तो थोड़ा शक्तिशाली राजा भी बड़े राजा पर चढ़ाई कर दे। यदि अपने ऊपर कोई ऐसा व्यसन समीप में ही आता दिखाई दे, कि जिसका उपाय नहीं हो सकेगा, तो बलवान् होकर भी किसी अन्य का आश्रय ग्रहण करे। यदि एक से सन्धि और दूसरे से विग्रह करने पर अपने कार्य की सिद्धि देखे-तो शक्तिशाली राजा द्वैधी भाव का आश्रय ग्रहण करे। इसी तरह समान शक्तिशाली के साथ भी इन छःओं गुणों का व्यवहार किया जा सकता है ॥ १७-२२ ॥

प्रवृत्तचक्रेणाकान्तो राज्ञा बलवतावलः ।

संधिनोपनमेत्तूर्णं कोशदण्डात्मभूमिभिः ॥ २३ ॥

यदि चलते हुए चक्र वाले बलवान् राजा ने हीन बल पर आक्रमण कर दिया, तो हीन बल राजा कोश, सेना, भूमि और अपने आपको भी यथायोग्य समर्पित करके सन्धि कर ले ॥ २३ ॥

स्वयं संख्यातदण्डेन दण्डस्य विभवेन वा ।

उपस्थातव्यमित्येष संधिरात्माभिषो मतः ॥ २४ ॥

सन्धि के नियमों के अनुसार नियत सेना और दंड के धन को लेकर राजा जब स्वयं शत्रु राजा की सेवा में उपस्थित हो, तो यह आत्माभिष सन्धि कहाती है ॥ २४ ॥

सेनापतिकुमाराभ्यामुपस्थातव्यमित्ययम् ।

पुरुषान्तरसंधिः स्यान्नात्मनेत्यात्मरक्षणः ॥ २५ ॥

यदि राजा अपने राजकुमार या सेनापति को नियत सेना और धन लेकर शत्रु के दरवार में भेजे, तो यह पुरुषान्तर सन्धि कहाती है। इसमें राजा की आत्म रक्षा हो जाती है, इससे इसे आत्मरक्षण सन्धि भी कह देते हैं ॥ २५ ॥

एकेनान्यत्र यातव्यं स्वयं दण्डेन वेत्ययम् ।

अदृष्टपुरुषः संधिर्दण्डमुख्यात्मरक्षणः ॥ २६ ॥

जिस सन्धि में स्वयं अकेला राजा या उसकी सेना शत्रु के कार्य करने के निमित्त शत्रु के देश से भिन्न किसी अन्य देश में जावे-तो यह दंड मुख्यात्मरक्षण सन्धि कहाती है, क्योंकि इसमें राजा या उसके मुख्य सेनापति को भी नहीं जाना पड़ा ॥ २६ ॥

मुख्यस्त्रीबन्धनं कुर्यात्पूर्वयोः पश्चिमे त्वरिम् ।

साधयेद्दूढमित्येते दण्डोपनतसंधयः ॥ २७ ॥

यदि शक्तिशाली राजा ने पूर्व की दो संधि आत्माभिप और आत्मरक्षण के स्थान में किसी मुख्य राज दरवारी की कन्या आदि लेना स्वीकार किया या तीसरी अदृष्ट पुरुष सन्धि के अनुसार गुप्तधन ले लिया, तो यह दंडोपनत सन्धि कहावेगी ॥ २७ ॥

कोशदानेन शेषाणां प्रकृतीनां विमोक्षणम् ।

परिक्रयो भवेत्संधिः स एव च यथासुखम् ॥ २८ ॥

स्कन्धोपनेयो बहुधा ज्ञेयः संधिरुपग्रहः ।

निरुद्धो देशकालाभ्यां अत्ययः स्यादपग्रहः ॥ २९ ॥

यदि युद्ध में पकड़े हुए मन्त्री आदि किसी मुख्य व्यक्ति का धन देकर मोक्ष किया जावे, तो उसे परिक्रय सन्धि कहते हैं। यदि इसी सन्धि में कई बार में थोड़ा २ करके किश्त वार बहुत धन दिया जावे, तो यह उपग्राह सन्धि होती है। किसी भी देश काल के अनुसार यह देने योग्य धन कुछ दिन के अनन्तर चुका देने की प्रतिज्ञा करके जो सन्धि की जाती है, यह अपग्रह सन्धि होती है ॥ २८-२९ ॥

विषह्यदानादायत्यां क्षमः स्त्रीबन्धनादपि ।

सुवर्णसंधिर्विश्वासादेकीभावगतो भवेत् ॥ ३० ॥

ठहरे हुए धन का नियत समय में दान और कन्या आदि के दान से भविष्य में सुखकारी सन्धि सुवर्ण सन्धि कहाती है, क्योंकि इसमें विश्वास उत्पन्न होकर दोनों में एकता स्थापित हो जाती है ॥ ३० ॥

विपरीतः कपालः स्यादत्यादानाभिभाषितः ।

पूर्वयोः प्रणयेत्कुप्यं हस्त्यश्च वागुरान्वितम् ॥ ३१ ॥

बहुत अधिक हाथी आदि मांगने परं जो सन्धि हों-वह ऊपर की सन्धि के विरुद्ध है और कपाल सन्धि कहाती है। इससे पूर्व की दो सन्धियों में जो सन्धि का द्रव्य देना है, तावां आदि की वस्तु, हाथी और अश्व उनके परिच्छेद के साथ दे देवे या देर में मार देने योग्य विष खिलाकर हाथी आदि देवे ॥३१॥

तृतीये प्रणयेदर्धं कथयन्कर्मणां क्षयम् ।

तिष्ठेच्चतुर्थं इत्येते कोशोपनतसंधयः ॥ ३२ ॥

तीसरी सन्धि में आधा सा धन देवे और कहदे, कि अभी हमारे जमा या कारखानों से धन नहीं आया है। चौथी सन्धि में जहां तक हो वहाना बनाकर ठहरा रहे, दे कुछ भी नहीं-ये चारों सन्धि धन देने के कारण कोशोपनत सन्धि कहाती है ॥३२॥

भूम्येकदेशत्वागने शेषप्रकृतिरक्षणम् ।

आदिष्टसंधिस्तत्रेष्टो गूढस्तेनोपघातिनः ॥ ३३ ॥

भूमि का एक भाग देकर शेष प्रजा और देश की जो रक्षा करनी है, वह आदिष्ट सन्धि कहाती है। इसमें अपने गूढ़ पुरुष, उस शत्रु के नाश के लिए रखे जा सकते हैं ॥३३॥

भूमीनामात्तसाराणां मूलवर्जं प्रणामनम् ।

उच्छिन्नसंधिस्तत्रेष्टः परव्यसनकाङ्क्षिणः ॥ ३४ ॥

सार भाग अपहरण करके मूल वस्तु उत्पन्न होने वाली भूमि से भिन्न भूमि का प्रदान करना—उच्छिन्न सन्धि कहाती है। शत्रु पर व्यसन की प्रतीक्षा करने वाले राजा के लिए यह सन्धि बड़ी उत्तम है। व्यसन के समय आक्रमण करके वह भूमि वापिस ली जा सकती है ॥३४॥

फलदानेन भूमीनां मोक्षणं स्यादवक्रयः ।

फलातिभुक्तो भूमिभ्यः संधिः स परिदूषणः ॥ ३५ ॥

भूमि का मूल्य या उससे उत्पन्न वस्तु देते रहकर भूमि के छुड़ा लेने का नाम अवक्रय सन्धि है। जब भूमि में उत्पन्न वस्तु और कुछ अधिक धन देना पड़े-तो यह परिदूषण सन्धि कहाती है ॥३५॥

कुर्यादवेक्षणं पूर्वौ पश्चिमौ त्वावलीयसम् ।

आदाय फलमित्येते देशोपनतसंधयः ॥ ३६ ॥

इन चारों सन्धियों में पूर्व की दो आदिष्ट और उच्छिन्न सन्धि में शत्रु की विपत्ति की राजा प्रतीक्षा करे और पिछली दो सन्धि उच्छिन्न और अवक्रय सन्धि में आवलीयस

प्रकरण के उपायों द्वारा शत्रु का प्रतीकार करे। भूमि लेकर ये सन्धि होती हैं। इससे इनको देशोपनत सन्धि भी कहते हैं ॥ ६॥

स्वकार्याणां वशेनैते देशे काले च भाषिताः ।

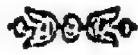
आवलीयसिकाः कार्यास्त्रिविधा हीनसंधयः ॥ ३७ ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशो हीनसंधयः

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदित एकाशतः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार से निरूपण की हुई इन तीन प्रकार की दण्डोपनत, कोशोपनत और देशोपनत सन्धियों को देश, काल और आवलीयस प्रकरण के अनुसार उपयोग में लावे। ये तीनों सन्धियां हीन सन्धि होती हैं ॥३७॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य अधिकरण में शत्रु के साथ सन्धि करने के उपायों के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



चौथा अध्याय

१०३-१०७वां प्रकरण

विगृह्यासनं सन्धायसनं विगृह्यायानं, सन्धाययानं सम्भूयप्रमाणम् ।

इस प्रकरण में युद्ध करके चुप बैठना, सन्धि करके चुप बैठना, युद्ध करना और फिर चढ़ाई कर देना, सन्धि के अनन्तर फिर चढ़ाई करना, इकट्ठे होकर चढ़ दौड़ना आदि विषयों का दिग्दर्शन कराया जावेगा ।

संधिविग्रहयोरासनं यानं च व्याख्यातम् ॥ १ ॥ स्थानमासनमुपेक्षणं चेत्यासनपर्यायाः ॥ २ ॥ विशेषस्तु ॥ ३ ॥ गुणैकदेशे स्थानम् ॥ ४ ॥ स्ववृद्धिप्राप्त्यर्थमासनम् ॥ ५ ॥ उपायानामप्रयोग उपेक्षणमिति ॥ ६ ॥ संधानकामयोररिविजिगीष्वोरुपहन्तुमशक्तयोर्विगृह्यासनं संधाय वा ॥ ७ ॥

सन्धि और युद्ध के समय किस प्रकार आसन (चुप बैठे रहना) और किस प्रकार यान (चढ़ाई) करना चाहिए-यह बताया जा चुका। स्थान, आसन और उपेक्षण ये तीनों आसन के पर्यायवाची (दूसरे) नाम हैं। परन्तु इनमें कुछ विशेषता (फर्क) भी है-किसी भाग में चुप बैठे रहना और किसी विषय में उपाय करते रहना स्थान कहा जाता है। अपनी वृद्धि की प्राप्ति के लिए चुपचाप बैठे रहना आसन है। किसी भी उपाय का अवलम्बन न करना-उपेक्षण कहा जाता है। जब शत्रु और विजयेच्छुक राजा, दोनों ही सन्धि करने की

इच्छा रखते हों और वे परस्पर एक दूसरे के नष्ट कर देने की शक्ति न रखते हो-तो कुछ लड़कर जब चुप बैठ जाते हैं, उसे विगृह्य आसन कहते हैं और जब वे सन्धि करके चुप बैठते हैं, तब सन्धाय आसन कहाता है ॥१-७॥

यदा वा पश्येत्स्वदण्डैर्मित्राटवीदण्डैर्वा समं ज्यायांसं वा कर्शयितुमुत्सह इति तदा कृतवाह्यभ्यन्तरकृतयो विगृह्यासीत ॥८॥ यदां वा पश्येदुत्साहयुक्ता मे प्रकृतयः संहता विवृद्धाः स्वकर्मण्यव्याहताश्चरिष्यन्ति परस्य वा कर्माण्युपह- निष्यन्तीति तदा विगृह्यासीत ॥ ९ ॥

जब राजा यह समझले, कि मैं अपनी सेना और मित्र तथा वनवासी वीरों की सेना को लेकर बराबर शक्ति वाले या अधिक शक्तिशाली को कुछ हानि पहुंचा सकता हूँ-तो दुर्ग और राष्ट्र का प्रबन्ध करके प्रथम युद्ध करे और फिर सन्धि कर ले। जब राजा को निश्चय रहे, कि मेरे मन्त्री अमात्य आदि उत्साह युक्त और संगठित तथा सब तरह चढ़े बढ़े हैं, वे अपने कामों को बराबर ठीक करते रहेंगे और शत्रु के कामों को हानि पहुंचा देंगे-तब प्रथम युद्ध करे और पीछे सन्धि कर ले ॥८-९॥

यदा वा पश्येत्परस्यापचरिताः क्षीणा लुब्धाः स्वचक्रस्तेनाटवीव्यथिता वा प्रकृतयः स्वयमुपजापेन वा मामेष्यन्तीति ॥ १० ॥ संपन्ना मे वार्ता विपन्ना परस्य तस्व प्रकृतयो दुर्भिन्नोपहता मामेष्यन्ति ॥ ११ ॥ विपन्ना मे वार्ता संपन्ना परस्य ॥ १२ ॥ तं मे प्रकृतयो न गमिष्यन्ति विगृह्य चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याहरिष्यामि ॥१३॥ स्वपण्योपघातीनि वा परपण्यानि निवर्तयिष्यामि ॥ १४ ॥ परवणिक्पथाद्वा सारयन्ति मामेष्यन्ति विगृहीते नेतरम् ॥ १५ ॥ दूष्यामित्राटवीनिग्रहं वा विगृहीतो न करिष्यति ॥ १६ ॥ तैरेव वा विग्रहं प्राप्स्यति ॥ १७ ॥ मित्रं मे मित्रभाव्यमिप्रयातो बह्वल्पकालं तनुन्नयव्ययमर्थं प्राप्स्यति ॥ १८ ॥ गुणवतीमादेयां वा भूमिं सर्वसंदोहेन वा मामनादृत्य प्रयातुकामः कथं न यायात् ॥१९॥ इति परवृद्धिप्रतिघातार्थं प्रतापार्थं च विगृह्यासीत ॥ २० ॥ तमेव हि प्रत्यावृत्तो ग्रसत इत्याचार्याः ॥२१॥

जब राजा को ऐसी परिस्थिति दिखाई दे, कि शत्रु के मन्त्री अमात्य आदि, अपने राजा के दुर्व्यवहार से असन्तुष्ट हैं। वे सब तरह से क्षीण और लालची हैं तथा अपने देश के चोर और वन के भील आदि लोगों से दबाये हुए हैं, यदि उनमें तोड़ फोड़ लगायी गई-तो वे हमारी ओर हो जावेंगे। हमारी खेती वाणिज्य चल रहे हैं और शत्रु के नष्ट

हो चुके । अब उसके मन्त्री आदि दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर हमारे अनुकूल हो सकेंगे । यद्यपि शत्रु के कृषि व्यापार आदि बने हैं और हमारे दुर्भिक्ष से विगड़ गए-तो भी हमारे गुणों में अनुरक्त हमारे मन्त्री आदि प्रकृति, शत्रु से जाकर नहीं मिलेगी और युद्ध का आरम्भ करते ही मैं बहुत कुछ धान्य, पशु और सुवर्ण छीन लाऊंगा । मेरे व्यापार को नष्ट कर देने वाले दूसरे के व्यापार को मैं इस युद्ध से निवृत्त कर दूंगा । शत्रु के राजमार्ग से सार वाली हाथी घोड़े-हाथीदांत आदि वस्तु युद्ध करने पर ही मुझे मिल सकेगी अन्यथा मिलने का कोई उपाय नहीं है । जब मैं युद्ध छेड़ दूंगा-तो इससे विगड़े हुए शत्रु या वनचर भील आदि का विग्रह न कर सकेगा और उनसे भी युद्ध छिड़ जावेगा । मेरा मित्र या मित्रभावी (सर्वोत्तम मित्र) चढ़ाई करके बहुत ही थोड़े समय में और बहुत ही थोड़े सेना के विनाश और थोड़े से व्यय से अपने काम को बना लेगा-मेरी गुणवती भूमि के लेने की अभिलाषा से सारी तय्यारी के साथ मेरा अनादर करके मुझ पर आक्रमण करने का अभिलाषी शत्रु राजा आक्रमण न कर सके-इत्यादि शत्रु वृद्धि के नाश और अपने प्रताप के निमित्त युद्ध करके ही चुप बैठे । यदि इस पर इस तरह दुवारा फिर चढ़ाई कर दी जावेगी, तो उसको निगला जा सकेगा-ऐसा आचार्यों का मत है ॥१०-२१॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ कर्शनमात्रमस्य कुर्यादव्यसनिनः ॥ २३ ॥ पर-
वृद्ध्या तु वृद्धः समुच्छेदनम् ॥ २४ ॥ एवं परस्य यातव्योऽस्मै साहाय्यम-
विनष्टः प्रयच्छेत् ॥ २५ ॥ तस्मात्सर्वसंदोहप्रकृतो विगृह्यासीत् ॥ २६ ॥
विगृह्यासनहेतु प्रातिलोभ्ये संधायासीत् ॥ २७ ॥ विगृह्यासनहेतुभिरभ्युच्चितः
सर्वसंदोहवर्जं विगृह्य यायात् ॥ २८ ॥

कौटल्याचार्य ऐसा नहीं मानते । वे कहते हैं, कि जो शत्रु राजा किसी व्यसन में नहीं फंसा-उसको किसी प्रकार से कुछ हानि पहुंचा देनी चाहिए और यदि अपने किसी मित्र द्वारा सहायता प्राप्त हो गई-तो वृद्धि पाकर उसका समुच्छेद कर देना उचित है । इस प्रकार शत्रु द्वारा आक्रमणीय दूसरा राजा भी नष्ट न होकर विजयाभिलाषी राजा को अवश्य सहायता पहुंचावेगा, इसलिए सारे ढंग से अपनी प्रकृति (मन्त्री आदि) को ठीक रखकर युद्ध करे और फिर चुप हो जावे । यदि युद्ध करके चुप बैठने के कारणों के विपरीत कारण हों, तो सन्धि करके चुप हो जावे । युद्ध के अनन्तर चुप बैठकर उस समय के उपयोगी कार्यों से अपनी शक्ति बढ़ाकर युद्ध के अनन्तर दुवारा फिर चढ़ाई करदे, परन्तु यह देख ले, कि शत्रु अपने मन्त्री आदि सारे साधनों से सुसम्पन्न तो नहीं है । यदि शत्रु में कोई छिद्र दिखाई न दे-तो चढ़ाई न करे ॥२२-२८॥

यदा वा पश्येव्यसनी परः प्रकृतिव्यसनं वास्य शेषप्रकृतिभिरप्रतिकार्यं
स्वचक्रपीडिता विरक्ता वास्य प्रकृतयः कर्षिता निरुत्साहाः परस्पराद्वा भिन्नाः
शक्या लोभयितुमग्न्युदकव्याधिमरकदुर्भिन्ननिमित्तं क्षीणयुग्यपुरुषनिचयरक्षा-
विधानः पर इति तदा विगृह्य यायात् ॥ २६ ॥

जब राजा यह देखे, कि शत्रु विपत्ति में उलझ रहा है या इसको इसके मन्त्री
आदि से विपत्ति की सम्भावना हो रही है। आने वाले व्यसन को शेष मन्त्री नहीं हटा
सकते हैं। अपने राष्ट्र से पीड़ित होने के कारण इस राजा की प्रकृति (मन्त्री आदि प्रजा)
इससे विरक्त होकर क्षीण हो रही है। वह निरुत्साह होकर आपस में झगड़ते हैं। अब
उनको लोभ के द्वारा वश में किया जा सकता है, अग्नि, जल, व्याधि, महामारी, दुर्भिन्न
से इसके वाहन, वीर आदि के नष्ट हो जाने से यह अपनी रक्षा में असमर्थ है-तो ऐसी
दशा में युद्ध के अनन्तर फिर दुवारा भी चढ़ाई कर देनी चाहिए ॥२६॥

यदा वा पश्येन्मित्रमाक्रन्दश्च मे शूरवृद्धानुरक्तप्रकृतिर्विपरीतप्रकृतिः परः
॥ ३० ॥ पार्ष्णिग्राहश्चासारश्च ॥ ३१ ॥ शच्यामि मित्रेणासारमाक्रन्देन पार्ष्णि-
ग्राहं वा विगृह्य यातुमिति तदा विगृह्य यायात् ॥ ३२ ॥

मेरे आगे पीछे के मित्र राजा शूर, वृद्ध और अनुरक्त मन्त्री आदि से युक्त हैं और
शत्रु राजा के मन्त्री आदि उससे भीतर ही भीतर असन्तुष्ट हैं और इसी तरह पार्ष्णिग्राह
और आसार (आसपास के राजा) भी हैं। मैं मित्र से आसार और आक्रन्द से पार्ष्णिग्राह
को लड़ाकर चढ़ाई कर सकता हूँ। जब राजा यह देखे-तो युद्धके पीछे चढ़ाई करदे ॥३०-३२॥

यदा वा फलमेकहार्यमल्पकालं पश्येत्तदा पार्ष्णिग्राहासाराभ्यां विगृह्य
यायात् ॥ ३३ ॥ विपर्यये संधाय यायात् ॥ ३४ ॥ यदा वा पश्येन्न शक्यमेकेन
यातुमवश्यं च यातव्यमिति तदा समहीनज्यायोभिः सामवायिकैः संभूय यायादे-
कत्र निर्दिष्टेनांशेनानेकत्रानिर्दिष्टेनांशेन ॥ ३५ ॥ तेषामसमवाये दण्डमन्यतम-
स्मिन्निविष्टांशेन याचेत ॥ ३६ ॥ संभूयाभिगमनेन वा निर्विशयेत ॥ ३७ ॥
ध्रुवे लाभे निर्दिष्टेनांशेनाध्रुवे लाभांशेन ॥३८॥

जब विजय रूपी फल थोड़े ही समय में अकेले द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता हो-
तो उस समय पार्ष्णिग्राह और आसार से भी स्वयं युद्ध करके शत्रु राजा पर चढ़ाई करे।
यदि अकेला ऐसा करने में असमर्थ हो, तो इनसे सन्धि करके फिर शत्रु पर चढ़ाई करे।
जब राजा देखे, कि मैं अकेला चढ़ाई नहीं कर सकता और चढ़ाई अवश्य करनी है, तब
समान, हीन, अधिक बल या सबके साथ मिलकर चढ़ाई करदे, एक स्थान पर चढ़ाई करनी

हो-तो परस्पर के अंश का निश्चय करले या अनेक स्थानों पर चढ़ाई करनी हो-तो अंश नहीं भी निश्चित किया जा सकता है, फिर अन्त में वटवारा कर लिया जावेगा। यदि वे सारे इकट्ठे होकर स्वयं न चलें, तो उनको कुछ भाग देने की कहकर उनसे सेना ही मांगले। यदि मिलकर साथ चले-तो उनका अंश निश्चित करदे। जिस वस्तु का अवश्य लाभ दिखाई दे-उसका अंश पहिले ठहरा लिया जावे और जिसके लाभ का निश्चय न हो, उसमें लाभ के अंश नियत कर लिये जावेगा। मेरे दो भाग होंगे-तुम्हारा एक २ होगा इत्यादि प्रकार से भाग का निश्चय करे ॥३३-३८॥

अंशो दण्डसमः पूर्वः प्रयाससम उत्तमः ।

विलोपो वा यथालाभं ग्रन्थेपसम एव वा ॥ ३६ ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे विगृह्यासनं संधायासनं विगृह्यासनं
संधाययानं संभूयप्रयाणं चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो द्विशतः ॥१०२॥

अंश का विधान भी सेना के ऊपर होना चाहिए अथवा जिसने जितना श्रम किया है, उसको उतना ही अंश मिलना चाहिए-यह उत्तम पक्ष है। जिसको जितना लूट में मिले वह उसका होगा-जिसका आक्रमण में जितना व्यय हो-उसके अनुसार धन का वटवारा होगा-इस ढंग से अनेक प्रकार से धन के विभाग का निश्चय होता है ॥ ३६ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य अधिकरण में चढ़ाई करने के
प्रकारों के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पांचवां अध्याय

१०८-११०वां प्रकरण

यातव्यामित्र योरमिग्रह चिन्ता क्षयलोभ, विरागहेतवः प्रकृतीनां
सामवायिकाविपरिमर्शः

इस प्रकरण में चढ़ाई करने योग्य दूसरे राजा और शत्रु में प्रथम किस पर चढ़ाई की जावे तथा मन्त्री आदि प्रकृतियों के क्षय, लोभ और विराग के हेतु और इनके अनुगामियों के विषय में वर्णन किया जावेगा।

तुल्यसामन्तव्यसने यातव्यममित्रं वेत्यमित्रमभियायात् ॥ १ ॥ तत्सिद्धौ
यातव्यम् ॥ २ ॥ अमित्रसिद्धौ हि यातव्यः साहाय्यं दद्यान्नामित्रो यातव्यसिद्धौ
॥ ३ ॥ गुरुव्यसनं यातव्यं लघुव्यसनममित्रं वेति ॥ ४ ॥ गुरुव्यसनं सौकर्यतो
यायादित्याचार्याः ॥ ५ ॥

जब अपने सामन्तों द्वारा शत्रु या अन्य चढ़ाई करने योग्य राजा पर समान रूप से विपत्ति आई हुई हो-तो प्रथम शत्रु पर चढ़ाई करें । जब शत्रु जीत लिया जावे, तब उसके साथी चढ़ाई करने योग्य दूसरे राजा पर चढ़ाई करे । यदि शत्रु को जीत लिया और यातव्य (उसके साथी) पर चढ़ाई की तो सम्भव है, वह सहायता देदे, परन्तु साथी के जीतने पर शत्रु सहायक नहीं बन सकता है । यदि चढ़ाई करने योग्य, शत्रु का साथी अधिक विपत्ति में फंसा है और शत्रु पर थोड़ी विपत्ति आई हो-तो प्रथम भारी विपत्ति में फंसे हुए साथी पर चढ़ाई करे, क्योंकि भारी विपत्ति में फंसा हुआ राजा शीघ्र पराजित किया जा सकता है, ऐसा आचार्यों का मत है ॥ १-५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ लघुव्यसनमभिन्नं यायात् ॥ ७ ॥ लघ्वपि हि व्यसनमभियुक्तस्य कृच्छ्रं भवति ॥ ८ ॥ सत्यं गुर्वपि गुरुतरं भवति ॥ ९ ॥ अनभियुक्तस्तु लघुव्यसनः सुखेन व्यसनं प्रतिकृत्या मित्रो यातव्यमभिसरेत् ॥ १० ॥ पार्थिवं गृह्णीयात् ॥ ११ ॥

कौटल्याचार्य यह बात नहीं मानते हैं । वे तो यही कहते हैं, कि यदि शत्रु पर थोड़ी भी विपत्ति हो-तो प्रथम शत्रु पर ही चढ़ाई करनी चाहिए, क्योंकि छोटी सी भी विपत्ति, चढ़ाई करने के अनन्तर बहुत बड़ी बन जाती है । यह ठीक है, कि भारी विपत्ति तो बहुत ही भारी हो जावेगी, परन्तु शत्रु राजा अपनी छोटी विपत्ति का उपाय करके अपने साथी राजा की सहायता को पहुँच जावेगा और पीछे से आक्रमण कर देगा ॥ ६-११ ॥

यातव्ययौगपद्ये गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिं लघुव्यसनमन्यायवृत्तिं विरक्तप्रकृतिं वेति ॥ १२ ॥ विरक्तप्रकृतिं यायात् ॥ १३ ॥ गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयोऽनुगृह्णन्ति ॥ १४ ॥ लघुव्यसनमन्यायवृत्तिमुपेक्षन्ते ॥ १५ ॥ विरक्ता बलवन्तमप्युच्छिन्दन्ति ॥ १६ ॥ तस्माद्विरक्तप्रकृतिमेव यायात् ॥ १७ ॥

चढ़ाई करने योग्य तीन तरह के शत्रु होते हैं । एक तो भारी विपत्ति में फंसे हुए होने पर भी न्याय वृत्ति से चलने वाला, दूसरे थोड़ी विपत्ति में फंसा हुआ अन्याय वृत्ति से चलने वाला और तीसरे विरक्त मन्त्री अमात्यों से मुक्त राजा होता है । इनमें सब से प्रथम जिसके मन्त्री आदि विरक्त हो-उसी पर चढ़ाई करे । यदि राजा भारी विपत्ति में फंसा है, परन्तु न्याय वृत्ति से चलता है, तो उसके मन्त्री आदि उसकी अवश्य सहायता करते हैं और अन्याय वृत्ति से चलने वाले थोड़ी विपत्ति में फंसे हुए राजा की भी ये लोग उपेक्षा कर देते हैं । विरक्त मन्त्री, बलवान् राजा का भी उच्छेद कर देते हैं, इसलिए जिस राजा के मन्त्री विरक्त हों-उस पर अवश्य चढ़ाई करनी चाहिए ॥ १२-१७ ॥

क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति ॥ १८ ॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिं यायात् ॥ १९ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयः सुखेनोपजापं पीडां त्रोपगच्छन्ति ॥ २० ॥ नापचरिताः प्रधानावग्रहसाध्या इत्याचार्याः ॥ २१ ॥

जिस राजा के मन्त्री दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित हों, उस राजा पर प्रथम चढ़ाई करे या जिसने अपने मन्त्री अमात्य आदि का तिरस्कार कर दिया है, उस पर प्रथम चढ़ाई करनी चाहिए। इस विषय में यही सिद्धांत है, कि प्रथम दुर्भिक्ष आदि से दुर्बल या लालची मन्त्री अमात्य आदि से युक्त राजा पर ही प्रथम चढ़ाई करनी उचित है। जो मन्त्री अमात्य दुर्बल और लालची होते हैं, वे सुखपूर्वक तोड़े फोड़े जा सकते हैं या उनकी पीड़ा पहुंचाई जा सकती है, परन्तु तिरस्कार पाये हुए मन्त्री आदि किसी विशेष युक्त से शीघ्र वश में नहीं आ सकते हैं-ऐसा आचार्यों का मत है ॥ १८-२१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयो भर्तारि क्षिग्धा भर्तृहिते तिष्ठन्ति ॥ २३ ॥ उपजापं वा विसंवादयन्ति ॥ २४ ॥ अनुरागे सार्वगुण्यमिति ॥ २५ ॥ तस्मादपचरितप्रकृतिमेव यायात् ॥ २६ ॥

कौटल्याचार्य यह भी नहीं मानते हैं। यदि मन्त्री आदि क्षीण और लालची भी हैं, तो भी वे अपने स्वामी के भक्त हो सकते हैं और अपने स्वामी का हित सम्पादन कर सकते हैं। वे तोड़ फोड़ में भी नहीं आ सकेंगे, क्योंकि वे अपने स्वामी के अनुराग में सब गुण मान सकते हैं, इसलिए जिसने अपने मन्त्री आदि प्रकृति का अपमान कर दिया हो, उस पर ही प्रथम चढ़ाई करना चाहिए ॥ २२-२६ ॥

बलवन्तमन्यायवृत्तिं दुर्बलं वा न्यायवृत्तिमिति ॥ २७ ॥ बलवन्तमन्यायवृत्तिं यायात् ॥ २८ ॥ बलवन्तमन्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयो नानुगृह्णन्ति निष्पातयन्त्यमित्रं वास्य भजन्ते ॥ २९ ॥ दुर्लभं तु न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयः परिगृह्णन्त्यनुनिष्पतन्ति वा ॥ ३० ॥

यदि राजा अन्यायवृत्ति से चलता है, तो वह कितना भी बलवान् हो-उस पर चढ़ाई कर देनी चाहिए। जो न्याय वृत्ति से चलता हो और उसमें अन्य दुर्बलाएं हों-तो उस पर भी चढ़ाई की जा सकती है। अन्याय वृत्ति से रहने वाले बलवान् राजा पर चढ़ाई कर देने पर उसके मन्त्री आदि उसकी सहायता नहीं करते हैं और दुर्ग आदि से निकाल तक देते हैं। यदि निकालने में असमर्थ हों-तो शत्रु से जा मिलते हैं। न्याय वृत्ति राजा पर चढ़ाई करके उसका जीत लेना दुर्लभ ही है, क्योंकि उसके मन्त्री अमात्य, उसका

योद्धा प्रति योद्धा राजा, अपने २ मित्रों पर विशेष अनुग्रह करते रहें। उनमें शक्यारम्भी, कल्यारम्भी, भव्यारम्भी, स्थिरकर्मा और अनुरक्त प्रकृति पर विशेष तौर पर अनुग्रह करे। जो मित्र अपने कर सकने योग्य कार्य का मित्र के निमित्त आरम्भ कर देता है, वह शक्यारम्भी कहा जाता है। जो दोषहीन कार्य का आरम्भ कर दे, वह कल्यारम्भी, जो भविष्य में कल्याणकारी कार्य का आरम्भ कर दे, वह भव्यारम्भी, मित्र के उपकार के कार्य को आरम्भ करके पूरा करने वाला, स्थिरकर्मा और अच्छी सहायता वाला होने से थोड़े भी परिचयसे अधिक काम कर देने वाला अनुरक्त प्रकृति मित्र कहा जाता है। यदि इनका कुछ भी उपकार कर दिया जावे, तो ये शक्यारम्भी आदि मित्र उसके बदले में बहुत बड़ा उपकार कर सकते हैं। इनसे विपरीत स्वभाव वाले पुरुषों पर कोई अनुग्रह नहीं करना चाहिए ॥ ११-१८ ॥

तयोरेकपुरुषानुग्रहे यो मित्रं मित्रतरं वानुगृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १९ ॥
मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति ॥ २० ॥ क्षयव्ययप्रवासपरोपकारानितरः ॥ २१ ॥
कृतार्थश्च शत्रुर्वैगुण्यमेति ॥ २२ ॥ मध्यमं त्वनुगृह्णतोऽर्थो मध्यमं मित्रं मित्रतरं
वानुगृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति क्षयव्यय-
प्रवास परोपकारानितरः ॥ २४ ॥

शत्रु और मित्र में किसी एक पर अनुग्रह करना हो-तो मित्र या अधिक मित्र पर ही करना चाहिए-इसी से अपने कार्य की सिद्धि होती है, क्योंकि मित्र से ही अपनी वृद्धि हो सकती है। यदि शत्रु पर उपकार किया जावेगा, तो उसमें व्यर्थ जन नाश, धन व्यय, प्रवास कष्ट और शत्रु का उपकार होगा। जब उसका स्वार्थ सिद्ध हो जावेगा, तो वह फिर विगड़ जावेगा। यदि मध्यम राजा पर अनुग्रह करना है, तो भी जो अपना मित्र या गाढ़ा मित्र हो, उसी पर अनुग्रह किया जावे, इसी से कार्य की सिद्धि है। मित्रसे अपनी वृद्धि और शत्रु से जन नाश, धन व्यय, प्रवास और शत्रु के उपकार के सिवाय कुछ भी लाभ नहीं है ॥ १९-२४ ॥

मध्यमश्चेदनुगृहीतो विगुणः स्यादमित्रो ऽतिसंधत्ते ॥ २५ ॥ कृतप्रयासं
हि मध्यमामित्रमपसृतमेकार्थोपगतं प्राप्नोति ॥ २६ ॥ तेनोदासीनानुग्रहो
व्याख्यातः ॥ २७ ॥ मध्यमोदासीनयोर्वलांशदाने यः शूरं कृतास्त्रं दुःस्वसह-
मनुरक्तं वा दण्डं ददाति सो ऽतिप्रधीयते ॥ २८ ॥ विपरीतो ऽति-
संधत्ते ॥ २९ ॥

यदि मध्यम पर अनुग्रह किया और वह विगड़ गया-तो शत्रु से जा मिलेगा, क्योंकि मध्यम शत्रु सदा से उससे मिलने की चेष्टा कर रहा होता है। जब इनका एक स्वार्थ हो गया-तो ये दोनों मिलने ही ठहरे। इसी प्रकार उदासीन पर किये हुए अनुग्रह की दशा समझो। मध्यम और उदासीन राजाओं को जो सेना देने के समय शूर वीर अस्त्र विद्या में निपुण, दुःख सह लेने वाले, अनुरक्त वीरों को दे देता है, वह धोखा खाता है। जो इस प्रकार अपनी सेना नहीं देता, वही अपना कार्य बनाने में समर्थ होता है ॥ २५-२६ ॥

यत्र तु दण्डः प्रतिहतस्तं वा चार्थमन्यांश्च साधयति तत्र मौलवृत्तश्रेणी-
मित्राटवीवलानामन्यतममुपलब्धदेशकालं दण्डं दद्यात् ॥ ३० ॥ अमित्राटवीवलं
वा व्यवहितदेशकालम् ॥ ३१ ॥ यं तु मन्येत कृतार्थो मे दण्डं गृहणीयाद-
मित्राटव्यभूम्यनृतुपु वा वासयेदफलं वा कुर्यादिति दण्डव्यासङ्कापदेशेनैनमनु-
गृहणीयात् ॥ ३२ ॥

जिस कार्य की सिद्धि के लिए सेना भेजी गई और वह मारी गई और अभी वही कार्य अवश्य सिद्ध करना है, तो उसके निमित्त, मौलवल, भृतवल, श्रेणीवल, मित्रवल, और अटवीवल में से देशकाल के अनुसार किसी वल (सेना) को भेज देवे। यदि देश काल की दूरी हो अर्थात् दूर जाना हो और विलम्ब में कार्य होता दिखाई दे-तो वहां शत्रुवल या जंगली जाति के वल को भेजे। जब राजा देखे, कि यह सहायता चाहने वाला सामन्त अपने कार्य के सिद्ध होने पर मेरी सेना को भी हड़प कर जावेगा या शत्रु, जंगल, दुर्गम प्रदेश या दुःखदायी स्थानों में रखेगा अथवा अन्त में उसको कुछ भी धन आदि न देकर निष्फल लौटावेगा, तो ऐसे मनुष्य से सेना के विषय में कोई वहाना बनाकर प्रतिषेध (इनकार) कर देना चाहिए ॥ ३०-३२ ॥

एवमवश्यं त्वनुगृहीतव्ये तत्कालसहमस्मै दण्डं दद्यात् ॥ ३३ ॥
आसमाप्तेश्चैनं वासयेद्योधयेच्च वलव्यसनेभ्यश्च रक्षेत् ॥ ३४ ॥ कृतार्थाच्च साप-
देशमपस्त्रावयेत् ॥ ३५ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं वास्मै दद्यात् ॥ ३६ ॥ यातव्येन
वा संधायैनमतिसंदध्यात् ॥ ३८ ॥

यदि ऐसे राजा को भी किसी कारण से अवश्य सहायता देनी पड़े, तो उस समय पर काम दे देने वाली साधारण सेना उसको दे देवे। जब तक उनका कार्य न हो लेवे-उसके अच्छे स्थान में रहने तथा लड़ने और सेना के कष्टों से बचाता रहे। जब उसका काम पूरा हो जावे, तो झटपट कुछ वहाना बनाकर अपनी सेना को लेकर चला आवे।

यदि हो सके-तो जिस पर आप असन्तुष्ट हो, उस राजा या शत्रु अथवा जंगली मनुष्यों की सेना उसे देवे । आक्रमण किये जाने वाले राजा से गुप्तचर सन्धि करके फिर इससे सन्धि कर ले अर्थात् इस तरह उस यातव्य राजा से अपनी सेना बचाये रखे ॥३३-३७॥

समे हि लाभे संधिः स्याद्विषमे विक्रमो मतः ।

समहीनविशिष्टानामित्युक्तः संधिविक्रमः ॥ ३८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे यातव्यवृत्तिरनुग्राह्यमित्रविशेषा

अष्टमो ऽध्यायः ॥ ८ ॥ आदितः षट्छतः ॥ १०६ ॥

यदि दोनों का समान लाभ होता दिखाई देवे-तो सन्धि होनी चाहिए और अपना कम लाभ हो-तो युद्ध करना चाहिए । समहीन और अधिक बल वाले सबका सन्धि के विषय में यही नियम है ॥३८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में चढ़ाई करने योग्य राजा के साथ व्यवहार और अनुग्रह करने योग्य मित्रों के वर्णन का आठवां अध्याय समाप्त हुआ ।

नवां अध्याय

११६वां प्रकरण

मित्र हिरण्य भूमि कर्म सन्धयः ।

इस प्रकरण में मित्र, हिरण्य, भूमि और कर्मों के द्वारा की गई सन्धियों का वर्णन किया जावेगा ।

संहितप्रयाणे मित्रहिरण्यभूमिलाभानामुत्तरोत्तरो लाभः श्रेयान् ॥ १ ॥
मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवतो मित्रं हिरण्यलाभात् ॥ २ ॥ यो वा लाभः
सिद्धः शेषयोरन्यतरं साधयति स श्रेयान् ॥ ३ ॥ त्वं चाहं च मित्रं लभावह
इत्येवमादिभिः समसंधिः ॥ ४ ॥ त्वं मित्रमित्येवमादिभिर्विषमसंधिः ॥ ५ ॥
तयोर्विशेषलाभादतिसंधिः ॥ ६ ॥ समसंधौ तु यः संपन्नं मित्रं मित्रकृच्छे वा
मित्रमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ७ ॥ आपद्धि सौहृदस्थैर्यमुत्पादयति ॥ ८ ॥

मिलकर चढ़ाई करने पर मित्र, सुवर्ण और भूमि का जो लाभ होता है, उनमें मित्र की अपेक्षा सुवर्ण और सुवर्ण की अपेक्षा भूमि का लाभ श्रेष्ठ है, क्योंकि भूमि लाभ से मित्र (राजा) और सुवर्ण का स्वयं लाभ हो जाता है और सुवर्ण से मित्र प्राप्ति हो

जाती है । इनमें जो लाभ हो जाय और यदि वह अन्य दो की सिद्धि का कारण बन जावे-तो वह लाभ सर्व श्रेष्ठ है । तुम और मैं दोनों को मित्र (सहायक राजा) का लाभ समान रूप से होगा-इस विचार से जो सन्धि की जावेगी-वह सम सन्धि कहाती है । तुम मित्र को प्राप्त करना और हम सुवर्ण और भूमि ले लेंगे-इस प्रकार ठहरा कर जो संधि की गई हो-वह विषमसन्धि होती है । इन समसन्धि और विषमसन्धि में निश्चित किये हुए अपने २ लाभ से जब दोनों को विशेष लाभ हो जावे, तो वह सन्धि अति सन्धि हो जाती है । जब समसन्धि में कोई राजा अपने मित्र को पा लेता है या विपत्तिग्रस्त मित्र की सहायता को पहुंच जाता है, तो वह अधिक लाभ प्राप्त करता है, क्योंकि आपत्ति मित्रता को दृढ़ बना देती है ॥१-८॥

मित्रकृच्छ्रेऽपि नित्यमवश्यमनित्यं वश्यं वेति ॥ ९ ॥ नित्यमवश्यं श्रेयः ॥ १० ॥ तद्व्यनुपकुर्वदपि नापकरोतीत्याचार्याः ॥ ११ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ वश्यमनित्यं श्रेयः ॥ १३ ॥ यावदुपकरोति तावन्मित्रं भवत्युपकार-लक्षणं मित्रमिति ॥ १४ ॥

मित्र की विपत्ति में जब उसकी सहायता की जाती है, तो उस समय कोई तो सदा को मित्र बन जाता है, पर वह रहता स्वतन्त्र है और कोई सदा को मित्रता की पाश में नहीं बँधता, परन्तु वश में हो जाता है । इनमें जो सदा को मित्र बन जाता है, चाहे वह अधीन नहीं होता-वही अच्छा है । वह यदि उपकार नहीं कर सकेगा, तो अपकार भी नहीं करेगा-ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य इस सिद्धान्त को नहीं मानते हैं, वे तो अपने अधीन रहने वाले राजा को उत्तम समझते हैं, चाहे वह सदा की मित्रता की डोरी में न बंधें । जब तक उपकार करेगा-तब तक ही मित्र है । मित्र तो कहते ही उसे हैं-जो उपकार करता है ॥९-१४॥

वश्ययोरपि महाभोगमनित्यमल्पभोगं वा नित्यमिति ॥ १५ ॥ महाभोग-मनित्यं श्रेयः ॥ १६ ॥ यहाभोगमनित्यमल्पकालेन महदुपकुर्वन्महान्ति व्ययस्थानानि प्रतिकरोतीत्याचार्याः ॥ १७ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १८ ॥ नित्यमल्पभोगं श्रेयः ॥ १९ ॥ महाभोगमनित्यमुपकारभयादपक्रामति ॥ २० ॥ उपकृत्य वा प्रत्यादातुमीहते ॥ २१ ॥ नित्यमल्पभोगं सातत्यादल्पमुपकुर्वन्महता कालेन महदुपकरोति ॥ २२ ॥

जब इस ढंग के दो राजा अपने अधीन होने लगे, जिनमें एक तो बहुत सा कर देने को तय्यार हो, परन्तु वह कर थोड़े ही देने की प्रतिज्ञा करे तथा दूसरा थोड़ी

कर सामग्री देवे-परन्तु वह सदा के लिए देना स्वीकार करे-तो इसमें किससे मिलना चाहिए-इसमें बहुत आचार्य कहते हैं, कि जो अधिक कर देवे-चाहे थोड़े दिन देवे-तो उससे ही सन्धि करनी चाहिए, क्योंकि अधिक लाभ महान् उपकार कर देता है और जो बड़े २ व्यय के स्थान हैं-उनको निवटा देता है, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते हैं-वे तो सदा के लिए थोड़ा कर लेना ही उत्तम मानते हैं। जो अधिक द्रव्य देता है, वह अधिक धन देने के भय से शीघ्र मित्रता छोड़ देता है या देकर शीघ्र ही उसका बदला चुकना चाहता है। सदा किये जाने वाला थोड़ा उपकार भी बहुत दिन चलने के कारण थोड़ा २ उपकार पाता हुआ भी अधिक समय में जाकर महान् उपकार का कारण बन जाता है ॥१५-२२॥

गुरुसमुत्थं महन्मित्रं लघुसमुत्थमल्पं वेति ॥ २३ ॥ गुरुसमुत्थं महन्मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ २४ ॥ यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं साधयतीत्याचार्याः ॥ २५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २६ ॥ लघुसमुत्थमल्पं श्रेयः ॥ २७ ॥ लघुसमुत्थमल्पं मित्रं कार्यकालं नातिपातयति दौर्बल्याच्च यथेष्टभोग्यं भवति नेतरत्प्रकृष्टभौमम् ॥ २८ ॥

बड़े प्रयत्न से सहायता करने वाला महान् मित्र अच्छा है या थोड़े से प्रयत्न से तथ्यार होने वाला छोटा मित्र उत्तम है। इस विषय में आचार्यों का मत है, कि चाहे बड़े प्रयत्न से सहायक बने, परन्तु महाशक्ति मित्र ही प्रताप करने वाला होता है। ज्योंही यह उठता है, त्योंही कार्य बन जाता है, परन्तु कौटल्याचार्य का मत यह नहीं है। वे तो थोड़े प्रयत्न से सहायक बन जाने वाले छोटे मित्र को ही उत्तम मानते हैं। थोड़े प्रयत्न से उठने वाला छोटा मित्र कार्य के समय को नहीं खो देता है। वह दुर्बल होता है, इससे जहां इच्छा हो, वहां लगाया जा सकता है, परन्तु महाशक्ति मित्र ऐसा नहीं कर सकता है, यदि वह दूर रहता हो, तो बिल्कुल ही कार्य में नहीं आ सकता है ॥२३-२८॥

विक्षिप्तसैन्यमवश्यसैन्यं वेति ॥ २९ ॥ विक्षिप्तं सैन्यं शक्यं प्रतिसंहर्तुं वश्यत्वादित्याचार्याः ॥ ३० ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ अवश्यसैन्यं श्रेयः ॥ ३२ ॥ अवश्यं हि शक्यं सामादिभिर्वश्यं कर्तुम् ॥ ३३ ॥ नेतरत्कार्यव्यासक्तं प्रतिसंहर्तुम् ॥ ३४ ॥

जिस मित्र राजा की सेना वश में हो, परन्तु वह मित्र २ स्थानों में बिखरी हो, वह मित्र अच्छा या जिसकी थोड़ी सेना चाहे वश में नहीं है, परन्तु पास में ही है, वह मित्र अच्छा है ? इसमें आचार्य उसी मित्र को अच्छा बताते हैं, जिसकी सेना वश में रहती है, चाहे वह मित्र २ स्थानों में बिखरी हुई क्यों न हो, क्योंकि वह सेना वश में होने से

शीघ्र इकट्ठी की जा सकती है, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते हैं। वे तो अपने पास होने वाली सेना के अधिपति मित्र राजा को ही उत्तम समझते हैं, चाहे उसकी सेना वश में न होवे। जब आवश्यकता पड़ेगी, साम आदि उपायों से उसको अपने वश में कर लिया जावेगा, परन्तु विखरी हुई सेना का इकट्ठा होना कठिन है, क्योंकि वह अन्य कार्य में लगी हुई है ॥२६-३४॥

पुरुषभोगं हिरण्यभोगं वा मित्रमिति ॥ ३५ ॥ पुरुषभोगं मित्रं श्रेयः
॥ ३६ ॥ पुरुषभोगं मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ ३७ ॥ यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं
साधयतीत्याचार्याः ॥ ३८ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३९ ॥ हिरण्यभोगं मित्रं श्रेयः
॥४०॥ नित्यो हि हिरण्येन योगः कदाचिदण्डेन दण्डश्च हिरण्येनान्ये च कामाः
प्राप्यन्त इति ॥ ४१ ॥

सेना द्वारा सहायता देने वाला मित्र या सुवर्ण द्वारा सहायता देने वाला मित्र अच्छा है? तो आचार्य कहते हैं, कि सेना द्वारा सहायता करने वाला मित्र अच्छा है, जो सेना देकर सहायता करता है, वही प्रताप बढ़ाने वाला होता है। वह ज्योंही काम करने खड़ा होता है, त्योंही कार्य सिद्ध कर देता है, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत के विरुद्ध हैं, वे तो सुवर्ण द्वारा सहायता करने वाले मित्र को उत्तम समझते हैं, क्योंकि सुवर्ण की सदा आवश्यकता रहती है। सेना की सहायता की तो कभी २ आवश्यकता होती है। सुवर्ण से तो सेना भी इकट्ठी की जा सकती है और अन्य काम भी निकाले जा सकते हैं ॥३५-४१॥

हिरण्यभोगं भूमिभोगं वा मित्रमिति ॥ ४२ ॥ हिरण्यभोगं गतिमच्चात्स-
र्वव्ययप्रतीकारकरमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४४ ॥ मित्रहिरण्ये
हि भूमिलाभाद्भवत इत्युक्तं पुरस्तात् ॥ ४५ ॥ तस्माद्भूमिभोगं मित्रं श्रेय
इति ॥ ४६ ॥

सुवर्ण अर्पण करने वाला मित्र अच्छा या भूमि अर्पण करने वाला मित्र अच्छा मानना चाहिए। इस विषय में आचार्य, सुवर्ण द्वारा सहायता करने वाले मित्र को ही अच्छा बताते हैं, क्योंकि धन सब जगह पहुंच कर सहायता कर सकता है और सारे व्यर्थों के भार का हलका बना देता है, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते। वे तो भूमि द्वारा सहायता करने वाले मित्र को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, क्योंकि सुवर्ण और मित्र दोनों भूमि से प्राप्त हो जाते हैं; यह प्रथम ही कही जा चुकी है। इससे भूमि की सहायता देने वाला मित्र उत्तम है ॥४२-४६॥

तुल्ये पुरुषभोगे विक्रमः क्लेशसहत्वमनुरागः सर्ववललाभो वा मित्रकुला-
द्विशेषः ॥ ४७ ॥ तुल्ये हिरण्यभोगे प्रार्थितार्थता प्राभृत्यमल्पप्रयासता सातत्याच्च
विशेषः ॥ ४८ ॥ तत्रैतद्भवति ॥ ४९ ॥

जब दो मित्र सेना से सहायता करने वाले हों-तो उनमें पराक्रमशाली, क्लेश
सह लेने वाला, अनुरक्त, सारी सेना देने में उत्साही, मित्र ही साधारण मित्र से श्रेष्ठ
हैं। जब दो मित्र सुवर्ण से सहायता कर रहे हों-तो उनमें मांगते ही बहुत अधिक
द्रव्य देने वाला थोड़ा, प्रयास कराने वाला और बहुत दिन तक सहायता देने वाला मित्र
ही उत्तम है। इस विषय में यह सिद्धान्त है— ॥ ४७-४९ ॥

नित्यं वश्यं लघूत्थानं पितृपैतामहं महत् ।

अद्वैध्यं चेति संपन्नं मित्रं षड्गुणमुच्यते ॥ ५० ॥

नित्य, वश्य, लघूत्थान, पितृ पैतामह, महत् और अद्वैध्य-ये छः प्रकार के मित्र अपने
गुणों के भेद से पृथक् २ होते हैं ॥ ५० ॥

ऋते यदर्थं प्रणयाद्रच्यते यच्च रक्षति ।

पूर्वोपचितसंबन्धं तन्मित्रं नित्यमुच्यते ॥ ५१ ॥

जो बिना किसी धन के लालच से अपने पूर्व के बड़े हुए सम्बन्धी की रक्षा
करता है और समय पर मित्र की रक्षा में तत्पर होता है, वही नित्य मित्र
कहाता है ॥ ५१ ॥

सर्वचित्रमहाभोगं त्रिविधं वश्यमुच्यते ।

एकतोभोग्युभयतः सर्वतोभोगि चापरम् ॥ ५२ ॥

सर्व भोग, चित्र भोग और महा भोग-ये तीन प्रकार का वश्य मित्र होता है। जो
भूमि हिरण्य आदि समस्त वस्तुओं से सहायता करता है, वह सर्व भोग, जो केवल सेना
या धन से ही उपकार करता है, वह महा भोग और जो ताँवा, लोहा आदि से मित्र की
सहायता करता है, वह मित्र भोग कहाता है। जो केवल शत्रु का प्रतिकार करे, वह
एकतो भोगी, जो शत्रु और शत्रु के मित्र का प्रतीकार करे, वह उभय भोगी और जो
शत्रु उसके मित्र तथा आटविक आदि सब से रक्षा करता है, वह सर्वतो भोगी वश्य
मित्र कहाता है ॥ ५२ ॥

आदातृ वा दात्रपि वा जीवत्यरिषु हिंस्रया ।

मित्रं नित्यमवश्यं तद्गुणैर्व्यपसारि च ॥ ५३ ॥

जो राजा से कुछ लेवे या न लेवे, परन्तु शत्रु राजा में मार काट करके अपना निर्वाह करता हो, वह दुर्ग या वन में घूमने वाला वीर पुरुष, नित्य मित्र होता है, यद्यपि वह वश्य नहीं है ॥ ५३ ॥

अन्यतो विगृहीतं वा लघुव्यसनमेव वा ।

संधत्ते चोपकाराय तन्मित्रं वश्यमध्रुवम् ॥ ५४ ॥

जब किसी का अन्य से युद्ध छिड़ जावे या अन्य कोई छोटी मोटी विपत्ति आ पड़े-तो अपने उपकार के निमित्त जो सन्धि करता है वह वश्य मित्र होता है, परन्तु यह अनित्य होता है । विना ही प्रयत्न के सेना से सहायता करने-वाला लघूत्यान, जो कुल क्रमागत मित्र हो, वह पितृ पैतामह, जो अत्यन्त सेना युक्त हो-वह महत् मित्र कहाता है ॥ ५४ ॥

एकार्थेनार्थसंबन्धमुपकार्यविकारि च ।

मित्रभावि भवत्येतन्मित्रमद्वैध्यमापदि ॥ ५५ ॥

जिनका परस्पर एक ही स्वार्थ सम्बन्ध हो, जो उपकारी और विकारहीन हो, आपत्ति में भी दूर नहीं हाने वाला हो, यह अद्वैध्य मित्र कहाता है ॥ ५५ ॥

मित्रभावाद्ध्रुवं मित्रं शत्रुसाधारणाचलम् ।

न कस्यचिदुदासीनं द्वयोरुभयभावि तत् ॥ ५६ ॥

जो अपना मित्र होने से ध्रुव और शत्रु का मित्र होने से चल तथा किसी का भी मित्र न होने से उदासीन होता है, वह उभय भावी मित्र कहाता है ॥ ५६ ॥

विजिगीषोरमित्रं यन्मित्रमन्तर्धितां गतम् ।

उपकारे निविष्टं वा शक्तं वानुपकारि तत् ॥ ५७ ॥

जो विजय के लिए चढ़ाई करने वाले का शत्रु है और इसी राजा के शत्रुओं में फंसा होने से मित्र भी बनता है, जो शक्तिशाली होकर उपकार कर देता है या उपकार नहीं भी करता है, इस प्रकार यह दूसरे ढंग का उभय भावी मित्र माना गया है ॥ ५७ ॥

प्रियं परस्य वा रक्ष्यं पूज्यं संबन्धमेव वा ।

अनुगृह्णाति यन्मित्रं शत्रुसाधारणं हि तत् ॥ ५८ ॥

जो शत्रु का प्रिय, रक्षा के योग्य, पूज्य तथा सम्बन्धी है और अपना भी उपकार कर देता है, वह मित्र शत्रु में समान भाव रखने वाला शत्रु साधारण कहाता है ॥ ५८ ॥

प्रकृष्टभौमं संतुष्टं बलवच्चालसं च यत् ।

उदासीनं भवत्येतद्व्यसनादवमानितम् ॥ ५९ ॥

दूर देश में रहने वाला, सन्तोषी, बलवान् परन्तु आलसी और धूर्त आदि व्यसनों में फंसा हुआ मित्र समय पर सहायता नहीं कर सकता है ॥ ५६ ॥

अरेनेतुश्च यद्वृद्धिं दौर्बल्यादनुवर्तते ।

उभयस्याप्यविद्विष्टं विद्यादुभयभावि तत् ॥ ६० ॥

जो मित्र दुर्बल होने के कारण शत्रु और चढ़ाई करने वाले राजा दोनों की सहायता में तत्पर होता रहता है, और दोनों से द्वेष नहीं रखता, उसे तीसरा उभय भावी मित्र कहते हैं ॥ ६० ॥

कारणाकरण ध्वस्तं कारणाकरणागतम् ।

यो मित्रं समपेक्षेत स मृत्युमुपगूहति ॥ ६१ ॥

बिना कारण छोड़कर गए हुए और बिना कारण ही फिर आकर मिल जाने वाले मित्र को जो अपने यहां रख लेता है, वह मृत्यु से आलिङ्गन करता है ॥ ६१ ॥

क्षिप्रमल्पो लाभश्चिरान्महानिति वा ॥ ६२ ॥ क्षिप्रमल्पो लाभः कार्यदेश-
कालसंवादकः श्रेयानित्याचार्याः ॥ ६३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६४ ॥ चिराद-
विनिपाती वीजसधर्मा महान्नामः श्रेयान्विपर्यये पूर्वः ॥ ६५ ॥

शीघ्र होने वाला थोड़ा लाभ अच्छा या चिर काल में होने वाला महान् लाभ उत्तम है। आचार्य कहते हैं, कि शीघ्र होने वाला थोड़ा लाभ भी अच्छा है, जिससे प्रत्येक देश काल के कार्य के करने में सुभीता उत्पन्न हो जाता है, परन्तु कौटल्याचार्य इसको भी नहीं मानते, वह तो चिरकाल में होने वाला, स्थायी, महान् लाभ उत्तम है, क्योंकि वह वीज की तरह फलदायी होता है। यदि महान् लाभ में कोई आशङ्का हो तो पूर्वाचार्यों का मत ही उपादेय है ॥ ६२-६५ ॥

एवं दृष्ट्वा ध्रुवे लाभे लाभांशे च गुणोदयम् ।

स्वार्थसिद्धिपरो याथात्संहितः सामवायिकैः ॥ ६६ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्य भूमिकर्मसंधौ मित्रसंधिः

हिरण्यसंधिः नवमो ऽध्यायः ॥ ६ ॥

आदितः सप्तशतः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार विजयेच्छुक राजा, निश्चित लाभ देखकर तथा थोड़े लाभ में गुणों का उदय विचार कर अन्य राजाओं के साथ सन्धि करता हुआ अपने स्वार्थ की सिद्धि करे ॥ ६६ ॥

इति श्री कोटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत पादगुण्य अधिकरण में मित्र और हिरण्य
सन्धि के विचार का नौवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



दसवां अध्याय

११६वां प्रकरण

भूमिसन्धिः

इस अध्याय में भूमि सन्धि के विषय में वर्णन होगा ।

त्वं चाहं च भूमिं लभाग्रह इति भूमिसन्धिः ॥ १ ॥ तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थः
संपन्नां भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥ तुल्ये संपन्नालामे यो बलवन्त-
माक्रम्य भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३ ॥ भूमिलाभं शत्रुकर्शनं प्रतापं च
हि प्राप्नोति ॥ ४ ॥ दुर्बलाद्भूमिलाभे सत्यं सौकर्यं भवति ॥ ५ ॥ दुर्बल एव
च भूमिलाभः तत्सामन्तश्च मित्रममित्रभावं गच्छति ॥ ६ ॥

तुम और हम विजय के अनन्तर इस प्रकार भूमि प्राप्त करेंगे इस शर्त से जो
सन्धि की जाती है, वह भूमिसन्धि कहाती है। इन दोनों में जो अपना मतलब गांठ
कर उत्तम २ भूमि ले लेता है, वह अपना काम ठीक बना लेता है। जब दोनों सन्धि
कर्ताओं को उत्तम भूमि मिल जावे, तो इनमें जिसने बलवान् शत्रु पर आक्रमण करके
भूमि प्राप्त की है उसका कार्य अधिक उचित रीति पर सिद्ध हुआ जानो, क्योंकि बलवान्
शत्रु के जीत लेने से भूमि लाभ, शत्रु पराजय और प्रताप वृद्धि ये तीन लाभ प्राप्त होते
हैं। दुर्बल से भूमि छीनना यद्यपि सीधी बात है, परन्तु यह भूमि लाभ उत्तम नहीं माना
जा सकता है, क्योंकि इस अनुचित आक्रमण से आक्रान्ता का सामन्त या मित्र ही शत्रु
बनकर उस दुर्बल का सहायक बन जाता है ॥१-६॥

तुल्ये बलीयस्त्वे यः स्थितशत्रुमुत्पाद्य भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते
॥ ७ ॥ दुर्गावाप्तिर्हि स्वभूमिरक्षणं मित्राटवोप्रतिपेधं च करोति ॥ ८ ॥ चला-
मित्राद्भूमिलाभे शक्यसामन्ततो विशेषः ॥ ९ ॥ दुर्बलसामन्ता हि क्षिप्राप्यायन-
योगक्षेमा भवन्ति ॥ १० ॥ विपरीता बलवत्सामन्ता कोशदण्डावच्छेदिनी च
भूमिर्भवति ॥ ११ ॥

जब दोनों युद्ध कर्ताओं की समान शक्ति या बल होता है, तो उस दृढ़ शत्रु को
उखाड़ कर जो भूमि प्राप्त करता है यह एक उत्कृष्ट बात मानी जाती है, क्योंकि जब अधिक

दुर्ग प्राप्ति हो जाती है, तो अपनी भूमि की रक्षा और शत्रु के मित्र तथा वनचर भीलों के आक्रमण से अपनी रक्षा होना सुलभ हो जाता है। यदि इधर उधर घूमने वाले दुर्ग हीन अस्थिर शत्रु से भूमि प्राप्त करली तो तभी उत्तम होगा, जब शत्रु के पास शक्तिशाली सामन्त नहीं होंगे। दुर्बल सामन्त होने पर प्राप्त की हुई भूमि, शीघ्र ही योग क्षेमकरी हो जाती है। जब चल शत्रु के पास भी बलवान् सामन्त हों, तो बलवान् सामन्तों के रहने पर छीनी हुई भूमि, अपने कोश और सेना का नाश करने वाली सिद्ध होगी ॥७-११॥

संपन्ना नित्यामित्रा मन्दगुणा वा भूमिरनित्यामित्रेति ॥ १२ ॥ संपन्ना नित्यामित्रा श्रेयसी भूमिः ॥ १३ ॥ संपन्ना हि कोशदण्डौ संपादयति ॥ १४ ॥ तौ चामित्रप्रतिधातकावित्याचार्याः ॥ १५ ॥

विजिगीषुके लिये अत्यन्त समृद्धिशाली पर नित्य शत्रु से युक्त भूमि लेनी श्रेयस्कर है, अथवा अत्यल्प समृद्धिशाली अनित्य शत्रु से युक्त भूमि श्रेयस्कर है। इस विषय में प्राचीन आचार्यों का सिद्धान्त है कि अत्यन्त समृद्धिशाली नित्यशत्रुयुक्त भूमि ही श्रेयस्कर है। क्योंकि सम्पन्न भूमि के द्वारा कोश और सेना दोनों का संग्रह किया जा सकता है। तथा ये दोनों शत्रुओं का उच्छेद किया जा सकता है ॥१५॥

नेति कौटल्यः ॥ १६ ॥ नित्यामित्रलाभे भूयांश्छत्रुलाभो भवति ॥ १७ ॥ नित्यश्च शत्रुरपकृते चापकृते च शत्रुरेव भवति ॥ १८ ॥ अनित्यस्तु शत्रुरप-
कारोदनपकाराद्वा शाम्यति ॥१९॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता। वह कहता है कि नित्यशत्रुयुक्त भूमि के प्राप्त होने पर अत्यधिक शत्रु का विरोध हो जाता है। अर्थात् शत्रुता बढ़ती जाती है। क्योंकि जो नित्य शत्रु है, उसका चाहे उपकार किया जाय, या अपकार, वह शत्रु ही रहता है। अपनी सहज शत्रुता को कभी छोड़ नहीं सकता। परन्तु अनित्य शत्रु में यह बात नहीं देखी जाती, उसके साथ उपकार या अपकार करने से वह अवश्य ही शान्त हो जाता है। वह विजिगीषु का फिर अपकार नहीं कर सकता ॥१६-१९॥

यस्या हि भूमेर्वहुदुर्गाश्चोरगणैर्म्लेच्छाटवीभिर्वा नित्याविरहिताः प्रत्यन्ता सा नित्यामित्रा विपर्यये त्वनित्यामित्रेति ॥२०॥

जिस भूमि के सीमा प्रान्तों में होने वाले बहुत से दुर्ग, चोरों म्लेच्छों तथा आटविकों से सदा घिरे हुए रहते हों, वह भूमि 'नित्यामित्रा' कहाती है। और इससे विपरीत भूमि, अर्थात् जिसके सीमा प्रान्त के दुर्गों में चोर आदि न रहते हों, वह 'अनित्यामित्रा' कही जाती है ॥२०॥

अल्पा प्रत्यासन्ना महती व्यवहिता वा भूमिरिति ॥ २१ ॥ अल्पा प्रत्यासन्ना श्रेयसि ॥ २२ ॥ सुखा हि प्राप्तुं पालयितुमभिसारयितुं च भवति ॥ २३ ॥ विपरीता व्यवहिता ॥ २४ ॥

प्राप्त होने वाली भूमियों में समीप की थोड़ी भूमि अच्छी होती है, या दूर की बहुत सी भूमि ? समीप की थोड़ी भी भूमि श्रेयस्कर होती है। क्योंकि सुकरता से उसकी प्राप्ति और रक्षा की जा सकती है तथा विपत्ति काल में उसका सहारा भी लिया जा सकता है। परन्तु बहुत दूर की भूमि इससे विपरीत ही होती है ॥ २१-२४ ॥

व्यवहितान्व्यवहितयोरपि दण्डधारणात्मधारणा वा भूमिरिति ॥ २५ ॥ आत्मधारणा श्रेयसी ॥ २६ ॥ सा हि स्वसमुत्थाभ्यां कोशदण्डाभ्यां धार्यते ॥ २७ ॥ विपरीता दण्डधारणा दण्डस्थानमिति ॥ २८ ॥

दूर और समीप की भूमि में भी, लेने के लिये पररक्षित भूमि अच्छी होती है, या स्वयं सुरक्षित भूमि अच्छी होती है ? स्वयं सुरक्षित भूमि ही अच्छी होती है। क्योंकि स्वयं स्थापित किये हुए कोश और सेना के द्वारा उसकी सुव्यवस्था की जा सकती है। परन्तु पररक्षित भूमि इसके विपरीत होती है। दूसरे से स्थापित किये हुए कोश और सेना के द्वारा उसकी व्यवस्था की जाती है। वह केवल अपनी रक्षा के लिए दूसरे से स्थापित की हुई सेना के निवास का एक स्थान मात्र होती है ॥ २५-२८ ॥

वालिशात्प्राज्ञाद्वा भूमिलाभ इति ॥ २९ ॥ वालिशाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३० ॥ सुप्राप्यानुपाल्या हि भवत्यप्रत्यादेया च ॥ ३१ ॥ विपरीता प्राज्ञादनुरक्तेति ॥ ३२ ॥

मूर्ख शत्रु से भूमि का लाभ होना अच्छा है या बुद्धिमान् से ? मूर्ख शत्रु राजा से भूमि का मिलना श्रेयस्कर है। क्योंकि वह बड़ी सरलता से प्राप्त हो जाती है। और उसकी रक्षा भी सुखपूर्वक की जा सकती है। तथा उसके फिर वापस लौटने की भी शङ्का नहीं रहती परन्तु बुद्धिमान् से प्राप्त हुई भूमि सर्वथा इसके विपरीत होती है। क्योंकि उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन, तथा अन्य प्रजावर्ग, उसमें सदा अनुराग रखने वाले होते हैं। ऐसी अवस्था में यदि वह भूमि किसी तरह कठिन्ता से ले भी ली जाय फिर भी उसके वापस होने की शङ्का बनी ही रहती है ॥ २९-३२ ॥

पीडनीयोच्छेदनीययोरुच्छेदनियाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३३ ॥ उच्छेदनीयो ह्यनपाश्रयो दुर्बलापाश्रयो वाभियुक्तः कोशदण्डावादायापसर्तुकामः प्रकृतिभिः त्यज्यते ॥ ३४ ॥ न पीडनीयो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्ध इति ॥ ३५ ॥

पीडनीय (शत्रु आदि के द्वारा पीड़ित किया जाने वाला) और उच्छेदनीय (सर्वथा उच्छिन्न किया जाने वाला) इन दोनों में से उच्छेदनीय से भूमि का लाभ होना श्रेयस्कर है। क्योंकि निराश्रय या दुर्बल का आश्रय प्राप्त किये हुए उच्छेदनीय के ऊपर जब आक्रमण किया जाता है, तो वह कोश और सेना लेकर अपने स्थान से भाग जाने की इच्छा करता है। ऐसी अवस्था में प्रकृति जन उसकी सहायता नहीं करते, उसे छोड़ देते हैं। परन्तु पीडनीय, दुर्ग और मित्रों की सहायता प्राप्त करके, अपने स्थान पर ही स्थित रहता है, इसी लिये प्रकृतिजन उसका त्याग नहीं करते ॥३३-३५॥

दुर्गप्रतिस्तब्धयोरपि स्थलनदीदुर्गीयाभ्यां स्थलदुर्गीयाद्भूमिलामः श्रेयान् ॥ ३६ ॥ स्थलीयं हि सुरोधावमर्दास्कन्दमनिस्त्राविशत्रु च ॥ ३७ ॥ नदीदुर्गं तु द्विगुणकेशकरमुदकं च पातव्यं वृत्तिकरं चामित्रस्य ॥ ३८ ॥

स्थल दुर्गधारी या नदी दुर्गधारी इन दो शत्रुओं में जो भूमि स्थल दुर्गधारी की प्राप्त हो जाती है, वह उत्तम मानी गई है, क्योंकि स्थल के दुर्ग को अच्छी तरह घेरा जा सकता है। उसका उच्छेद कर देना भी सुलभ है और न वहां से शत्रु राजा भाग ही सकता है, परन्तु नदी दुर्ग तो दुगुना क्लेशदायी होता है। वहां पीने योग्य जल और निर्वाह करने योग्य फल आदि, घेरा डालने पर भी शत्रु को मिलते ही रहेंगे ॥३६-३८॥

नदीपर्वतदुर्गीयाभ्यां नदीदुर्गीयाद्भूमिलामः श्रेयान् ॥ ३९ ॥ नदीदुर्गं हि हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुवन्धनौभिः साध्यमनित्यगाम्भीर्यमपस्त्राव्युदकं च ॥ ४० ॥ पार्वतं तु स्थारक्षं दुरवरोधि कृच्छ्रारोहणं भग्ने चैकस्मिन्न सर्ववधः ॥ ४१ ॥ शिलावृक्षपमोक्षश्च महापकारिणाम् ॥ ४२ ॥

यदि नदी दुर्ग और पर्वत दुर्ग से टकर आ पड़े-तो पर्वत दुर्ग की अपेक्षा नदी दुर्ग से भूमि लाभ कर लेना श्रेयस्कर है। क्योंकि नदी दुर्ग, हाथी, लकड़ी के स्तम्भ, वेड़े, पुल और नौकाओं से जीता जा सकता है। नदी के दुर्गों में स्थायी गंभीरता नहीं होती वहां नदी के किनारे तोड़कर जल बहाकर कम भी किया जा सकता है, परन्तु पर्वत का दुर्ग बड़ा सुदृढ़ होता है। उसको घेरा नहीं जा सकता और न उसपर चढ़ा जा सकता है। यदि एक दो के सारे जाने पर भी इसमें सबका वध नहीं हो सकता है तथा आक्रमण कारियों पर पत्थर और वृक्ष गिराकर उनका नाश किया जा सकता है ॥३९-४२॥

निम्नस्थलयोधिभ्यो निम्नयोधिभ्यो भूमिलामः श्रेयान् ॥ ४३ ॥ निम्न-योधिनो ह्यपुरुद्वदेशकालाः ॥ ४४ ॥ स्थलयोधिनस्तु सर्वदेशकालयोधिनः ॥ ४५ ॥

खनकाकाशयोधिभ्यः खनकेभ्यो भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ४६ ॥ खनका हि
खातेन शस्त्रेण चोभयथा युध्यन्ते ॥ ४७ ॥ शस्त्रेणैवाकाशयोधिनः ॥ ४८ ॥

निम्न स्थान से युद्ध करने वाले या स्थल योधी वीरों में निम्न योधी वीरों से भूमि
लाभ कर लेना कल्याण कारी हैं, क्योंकि निम्न (नौका आदि में बैठकर) स्थान से युद्ध
करने वाले, देश काल के बन्धन में होते हैं, परन्तु स्थल योधी किसी देश काल की
रुकावट से नहीं रुकते वे सर्वत्र सदा युद्ध करने में समर्थ होते हैं । गड्ढे खोदकर युद्ध करने
वाले आकाश योधी वीरों में खाई खोदकर लड़ने वालों से भूमि लाभ उत्तम माना गया
है, क्योंकि वे युद्ध के लिए खाई और शस्त्र दो वस्तुओं की अपेक्षा रखते हैं, परन्तु आकाश
योधी तो केवल शस्त्रों से युद्ध करने में समर्थ होते हैं ॥ ४३-४८ ॥

एवंविधेभ्यः पृथिवीं लभमानो ऽर्थशास्त्रवित् ।

संहितेभ्यः परेभ्यश्च विशेषमधिगच्छति ॥ ४९ ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ भूमिसंधिः

दशमो ऽध्यायः ॥ १० ॥ आदितो ऽष्टशतः ॥ १०८ ॥

नीतिमान् राजा सन्धि किए हुए या अन्य शत्रुओं से जब भूमि लाभ कर लेता है,
तो उसको बहुत विशेषता प्राप्त हो जाती है ॥ ४९ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य अधिकरण में भूमि लाभ के वर्णन

का दसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



ग्यारहवां अध्याय

११६वां प्रकरण

अनवसित सन्धिः

इस अध्याय में भी भूमि के सम्बन्ध में ही कुछ लिखा जावेगा ।

त्वं चाहं च शून्यं निवेशयावह इत्यनवसितसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यः प्रत्युप-
स्थितार्थो यथोक्तगुणां भूमिं निवेशयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥ तत्रापि स्थलमौ-
दकं वेति ॥ ३ ॥ महतः स्थलादल्पमौदकं श्रेय सातत्यादवस्थितत्वाच्च फलानाम्
॥ ४ ॥ स्थलयोरपि प्रभूतपूर्वापरसस्यमल्पवर्षपाकमसत्कारम्भं श्रेयः ॥ ५ ॥
औदकयोरपि धान्यवापमधान्यवापाच्छ्रेयः ॥ ६ ॥

तुम और हम किसी शून्य स्थान पर अधिकार करले-इस बात को सन्मुख रख कर जो सन्धि की जाती है, वह अनवसित सन्धि कहाती है । उनमें जो अपने स्वार्थ को दृष्टि रखकर गुणवती भूमि पर अधिकार कर लेता है, वह अपने काम को सुचारु रीति से बनाने में समर्थ होता है । इसमें भी भूमि, स्थल और जल प्रायः-दो-तरह की होती है । इस में बिल्कुल शुष्क भूमि से थोड़े जल वाली भूमि उत्तम मानी गई है, क्योंकि वहां सर्वदा निश्चित रूप से फलादि की उत्पत्ति सम्भव है । दो प्रकार की स्थल भूमि में भी जिस में कार्तिकी और बैसाखी दोनों फसल होती हों, थोड़ी सी वर्षा से अच्छी खेती पक जावे तथा जिस में उत्तम रीति से जोत आदि की जा सके-वही स्थल भूमि उत्तम है । जलप्राय भूमि में भी धान्य आदि बोने में समर्थ भी धान्य आदि अन्न की उत्पत्ति नहीं करने वाली भूमि से श्रेष्ठ है ॥ १-६ ॥

तयोरल्पबहुत्वे धान्यकान्तादल्पान्महदधान्यकान्तं श्रेयः ॥ ७ ॥ महत्स्य-
वकाशे हि स्थाल्याश्चानूप्याश्चौषधयो भवन्ति ॥ ८ ॥ दुर्गादीनि च कर्माणि
प्राभूत्येन क्रियन्ते ॥ ९ ॥ कृत्रिमा हि भूमिगुणाः ॥ १० ॥

जब थोड़ी अधिक भूमि का प्रश्न आवे-तो धान्य उत्पन्न करने वाली थोड़ी भूमि से धान्य नहीं उत्पन्न करने वाली भी अधिक भूमि अच्छी होती है । जब भूमि का अधिक विस्तार होगा, तो उसमें समय पर स्थल और जल की वस्तु उत्पन्न की जा सकेगी तथा अधिक भूमि में दुर्ग आदि सेनोपयोगी कर्म भी अच्छी तरह किये जा सकते हैं । भूमि तो अपने परिश्रम से गुण उत्पन्न कर लिए जाते हैं-यहां भूमि का गुण है ॥ ७-१० ॥

खनिधान्यभोगयोः खनिभोगः कोशकरः ॥ ११ ॥ धान्यभोगः कोशको-
द्गागरकरः ॥ १२ ॥ धान्यमूलो हि दुर्गादीनां कर्मणामारम्भः ॥ १३ ॥ महावि-
षयविक्रमो वा खनिभोगः श्रेयान् ॥ १४ ॥

खान और धान्य उत्पन्न करने वाली भूमि में खान की भूमि कोश बढ़ाने वाली होती है, परन्तु धान्य उत्पन्न करने वाली भूमि, कोश और भण्डार दोनों को भरदेती है । धान्य के अधीन दुर्ग आदि की रचना सम्भव है : खान की वस्तु भी उत्तम मानी गई हैं, उनसे भी अनेक देशों में अपना वैभव फैलाया जा सकता है ॥ ११-१४ ॥

द्रव्यहस्तिवनभोगयोर्द्रव्यवनभोगः सर्वकर्मणां योनिः प्रभूतनिधानक्षमश्च
॥ १५ ॥ विषरीतो हस्तिवनभोग इत्याचार्याः ॥ १६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १७ ॥

शक्यं द्रव्यवनमनेकमनेकस्यां भूमौ वापयितुं न हस्तिवनम् ॥ १८ ॥ हस्तिप्रधानो हि परानीकवध इति ॥ १९ ॥

उत्तम चन्दन आदि की लकड़ी और हाथियों के वन में कौन सा श्रेष्ठ है ? इनमें द्रव्य (वस्तुओं) का वन सब कामों से आरम्भ करने का कारण और बहुत से कोश का उत्पन्न करने वाला होता है। हाथी के वनों से ये वस्तुएँ नहीं मिल पाती हैं। ऐसा आचार्यों का मत है परन्तु कौटल्याचार्य इस बात को नहीं मानते हैं। वे कहते हैं, कि लकड़ी आदि के द्रव्य वन अनेक लगाये जा सकते हैं, परन्तु हाथियों का वन तय्यार नहीं किया जा सकता। हाथियों से यह एक बड़ा लाभ है, कि इस से शत्रु सेना का नाश किया जा सकता है ॥ १५-१६ ॥

वारिस्थलपथभोगयोरनित्यो वारिपथभोगो नित्यः स्थलपथभोग इति ॥ २० ॥
भिन्नमनुष्या श्रेणीमनुष्या वा भूमिरीति ॥ २१ ॥ भिन्नमनुष्या श्रेयसी ॥ २२ ॥
भिन्नमनुष्या भोग्या भवत्यनुपजाप्या चान्येषामनापत्सहा तु ॥ २३ ॥ विपरीता श्रेणीमनुष्या कोपे महादोषा ॥ २४ ॥

जल मार्ग और स्थल मार्ग में सदा नहीं रहने वाला जल मार्ग और सदा रहने वाला स्थल मार्ग होता है। जिस भूमि के मनुष्य संगठित नहीं हैं, वह भूमि उत्तम है या संगठित मनुष्यों से भरी हुई भूमि श्रेष्ठ है ? इस में असंगठित मनुष्यों से बसी हुई भूमि ही राजा को सुखदायी होती है, क्योंकि अन्य राजा उन्हें तोड़ फोड़ नहीं सकता अर्थात् एक तोड़ने से सब नहीं टूटते और न ये असंगठित पुरुष आपत्ति के सहने को तय्यार हो सकते हैं। इनसे विपरीत संगठित मनुष्यों की भूमि दुःखदायी है। जब वे लोग कुपित हो उठते हैं-तो राजा को मुश्किल खड़ी हो जाती है ॥ २०-२४ ॥

तस्यां चातुर्वर्ण्याभिनिवेशं सर्वभोगसहत्वादवरवर्णप्राया श्रेयसी ॥ २५ ॥
वाहुल्याद्भ्रुवत्वाच्च कृष्याः कर्षणवतीः ॥ २६ ॥ कृष्या चान्येषां चारम्भाणां प्रयोजकत्वात् गोरक्षकवती ॥ २७ ॥ पण्यनिचयणानुग्रहादाद्यवणिग्बती ॥ २८ ॥
भूमिगुणानामपाश्रयः श्रेयान् ॥ २९ ॥

इस भूमि में चारों वर्णों में से किस वर्ण के निवास वाली भूमि उत्तम है ? तो यहाँ कहना चाहिए सब कुछ देने में समर्थ शूद्र ग्वाले जैसी छोटी जाति से भरी हुई भूमि ही राजा के ऐश्वर्य के बढ़ाने वाली है। बहुत अधिक और निश्चित फल देने वाली होने से खेती के योग्य भूमि ही कल्याण कारी है। खेतों के योग्य भूमि ही अनेक कार्यों के सम्पन्न करने के योग्य होने से गोकुल के बढ़ाने वाली होती है। तात्पर्य यह है, कि जो भूमि राजा को सब तरह से आश्रय देने वाली हो-वही उत्तम है ॥ २५-२९ ॥

दुर्गापाश्रया पुरुषापाश्रया वा भूमिरिति ॥ ३० ॥ पुरुषापाश्रया श्रेयसी ॥ ३१ ॥ पुरुषवद्वि राज्यम् ॥ ३२ ॥ अपुरुषा गौर्वन्ध्येव किं दुहीत ॥ ३३ ॥

आश्रय भी दो प्रकार का है, एक तो दुर्गों का आश्रय है, दूसरा पुरुषों का आश्रय है। इन में जिस भूमि में पुरुषों का आश्रय प्राप्त हो वही भूमि श्रेष्ठ माननी चाहिए, क्योंकि राज्य की भित्ति तो पुरुषों (सैनिकों) के ऊपर ही अवलम्बित है। पुरुष हीन भूमि बन्ध्या गौ की भांति कुछ फल नहीं दे सकती है ॥ ३०-३३ ॥

महाक्षयव्ययनिवेशात्तु भूमिमवाप्तुकामः पूर्वमेव क्रेतारं पणेत ॥ ३४ ॥ दुर्बलमराजवीजिनं निरुत्साहमपक्षमन्यायवृत्तिं व्यसनिनं देवप्रमाणं यत्किंचनकारिणं वा ॥ ३५ ॥ महाक्षयव्ययनिवेशायां हि भूमौ दुर्बलो राजवीजी निविष्टः सगन्धाभिः प्रकृतिभिः सह क्षयव्ययेनावसीदति ॥ ३६ ॥ बलवानराजवीजी क्षयभयादसगन्धाभिः प्रकृतिभिस्त्यज्यते ॥ ३७ ॥ निरुत्साहस्तु दण्डवानपि दण्डस्याप्रणेता सदण्डः क्षयव्ययेनावभज्यते ॥ ३८ ॥

बहुत से पुरुषों के क्षय और धन के व्यय से किसी भूमि को प्राप्त किया जावे-तो प्रथम उसके खरीददार किसी राजा से शर्त निश्चित करले। इस भूमि का खरीददार ऐसा राजा टटोलना चाहिए, जो दुर्बल, राजकुल में अनुत्पन्न, निरुत्साही, पक्षहीन, अन्यायाचरण करने वाला, व्यसनों में लिप्त, भाग्य के भरोसे पर निर्भर तथा जो कुछ सनक सवार हुई उसीके अनुसार कार्य कर डालने वाला हो। जब बहुत से जनों का क्षय और धन का व्यय करके उस भूमि में दुर्बल, राजकुलहीन, राजा वास करने लगता है, तो आप जैसे मन्त्री अमात्य आदि के साथ वह दुर्बल राजा बहुत ही शीघ्र, जन क्षय और धन व्यय से पीड़ित होने लगता है। राजकुल में अनुत्पन्न राजा यदि बलवान् हो, तो भी जनक्षय के भय से कुलोत्पन्न मन्त्री आदि उसे छोड़ देते हैं। निरुत्साही राजा, सेना सम्पन्न होने पर भी सेना का प्रयोग करना नहीं जानता, इससे सेना होने पर भी जनक्षय और धन व्यय के कारण नष्ट हो जाता है ॥३४-३८॥

कोशवानप्यपक्षः क्षयव्ययानुग्रहहीनत्वान्न कुतश्चित्प्राप्नोति ॥ ३९ ॥ अन्यायवृत्तिं निविष्टमप्युत्थापयेत् ॥ ४० ॥ सकथमनिविष्टं निवेशयेत् ॥ ४१ ॥ तेन व्यसनी व्याख्यातः ॥ ४२ ॥ दैवप्रमाणो मानुषहीनो निरारम्भो विपन्नकर्मारम्भो वावसीदति ॥ ४३ ॥ यत्किंचनकारी न किंचिदासादयति ॥ ४४ ॥ स चैषां पापिष्ठतमो भवति ॥ ४५ ॥ यत्किंचिदारम्भमाणो हि विजिगीषोः कदाचिच्छिद्रमासादयेदित्याचार्याः ॥ ४६ ॥ यथा छिद्रं तथा विनाशमप्यासादयेदिति कौटल्यः ॥ ४७ ॥

यद्यपि राजा कोश आदि से सुसम्पन्न भी है, तो भी यदि उसके कोई सहायक नहीं है, तो वह जनक्षय और धनव्यय तथा सहायता हीन होने से कुछ भी सिद्धि नहीं पा सकता है। अन्याय से चलने वाले जमे हुए राजा को भी प्रजा उखाड़ देती है, फिर वह कैसे नये बसाये हुए प्रदेश पर शासन करने में समर्थ हो सकता है। यही दुर्ग्य सनों में फंसे हुए राजा की होंती है। जो राजा केवल भाग्य के आश्रय पर ही निर्भर है, वह पुरुषार्थ नहीं करेगा, इससे किसी भी कार्य का आरम्भ उससे नहीं होगा। जब उसके सारे कार्य नष्ट हो जावेंगे-तो वह फिर स्वयं भी नष्ट ही हुआ जानो। जो अपनी सनक के अनुसार कार्य कर बैठता है, वह कभी कुछ नहीं प्राप्त कर सकता है। इन सब में यह सनकी सब से अधिक बेकार है। यह मन में आवेगा, वही आरम्भ कर देगा, इससे कभी न कभी विजयाभिलाषी राजा के चंगुल में फंस ही जावेगा ऐसा आचार्य मानते हैं, कौटल्याचार्य कहते हैं, कि ज्योंही वह किसी खराबी में फंसा, कि उसी समय उसका नाश भी समझ लेना चाहिए ॥३६-४७॥

तेषामलाभे यथा पार्णिग्राहोपग्रहे वक्ष्यामस्तथा भूमिमवस्थापयेदित्यभि-
हितसंधिः ॥ ४८ ॥ गुणवतीमादेयां वा भूमिं बलवता क्रयेण याचितः संधिमव-
स्थाप्य दद्यादित्यनिभृतसंधिः ॥ ४९ ॥ समेन वा याचितः कारणमवेक्ष्य दद्यात्
॥ ५० ॥ प्रत्यादेयो मे भूमिर्वश्या वानया प्रतिबद्धः परो मे वश्यो भविष्यति
भूमिविक्रयाद्वा मित्रहिरण्यलाभः कार्यसामर्थ्यकरो मे भविष्यतीति ॥ ५१ ॥
तेन हीनः क्रेता व्याख्यातः ॥ ५२ ॥

यदि इन दुर्गुणों से युक्त कोई राजा न मिले, तो पार्णिग्राह प्रकरण में कहे हुए उपायों के द्वारा भूमि को बसा लेवे यह अभिहित सन्धि कहाती है। गुणवती लेने योग्य भूमि को बलवान् सामन्त यदि मूल्य द्वारा ग्रहण करना चाहे, तो उनसे सन्धि की शर्त निश्चित करके दे देवे, यह अनिभृत सन्धि कहाती है। यदि बराबर की शक्तिवाला, राजा, उस भूमि को ग्रहण करना चाहे, तो निम्नलिखित कारणों को विचार कर वह भूमि उसे दे देवे, कि यह भूमि कालान्तर में मेरे पास आकर वश में हो जावेगी या इसके चक्र में पड़ा हुआ शत्रु भी मेरे वश में हो जावेगा, तथा भूमि के विक्रय से मित्र और सुवर्ण लाभ होकर मेरी कार्य करने की शक्ति बढ़ जावेगी बराबर वाले के तुल्य ही हीन शक्ति वाले को भूमि देने में लाभ है ॥४८-५२॥

एवं मित्रं हिरण्यं च सजनामजनां च गाम् ।

लभमानो ऽतिसंधत्ते शास्त्रवित्सामवायिकान् ॥ ५३ ॥

इति पाद्गुण्ये सप्तमे अविकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ अनवसितसंधिः
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ आदितो नवशतः ॥ १०६ ॥

नौति शास्त्र को जानने वाला राजा, इस प्रकार मित्र, सुवर्ण, तथा जन सन्पन्न
या जनहीन, भूमि को प्राप्त करके अपने साथी राजाओं में उन्नति लाभ कर सकता है ॥५३॥

इति श्री कौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत पाद्गुण्य अविकरण में मित्र हिरण्य आदि
प्राप्ति के वर्णन का न्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



बारहवां अध्याय

११६वां प्रकरण

कर्म सन्धिः

इस अध्याय में किसी कार्य करने के विषय में नियम निश्चित करके जो संधि की
जाती है, उसका वर्णन होगा । इस संधि को कर्म संधि कहते हैं ।

त्वं चाहं च दुर्गं कारयावह इति कर्मसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यो द्रव्यव्ययविप-
क्षमव्यव्ययारम्भं दुर्गं कारयति सोऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥ तत्रापि स्थलनदीपर्वतदु-
र्गाणामुत्तरोत्तरं श्रेयः ॥ ३ ॥ सेतुवन्धयोरप्याहार्योदकात्सहोदकः श्रेयान्
॥ ४ ॥ सहोदकयोरपि प्रभूतवापस्यानः श्रेयान् ॥ ५ ॥

पृथक् २ स्थानों में तुम और हम मिलकर दुर्ग रचना करवावें, इस प्रकार दो
राजाओं का मिलकर नियमों द्वारा संधि करना कर्म-संधि कहा जाता है । इनमें जो दुर्गम
स्थान में अस्तित्व, थोड़े व्यय से दुर्ग बनवाता-वह अपना कार्य अधिक सिद्ध कर पाता है ।
इनमें भी स्थल, नदी और पर्वत दुर्गों में क्रम से एक दूसरे स्थान के दुर्ग उत्तम माने गये
हैं अर्थात् स्थल से नदी और नदी से पर्वत दुर्ग श्रेष्ठ है । सेतु वन्धों (तालाबों) में भी
वर्षा के जल से भरने वाले सेतुवन्ध से स्वयं जल नोत वाला सेतुवन्ध उत्तम होता है ।
स्वयं जल नोतों से भर जाने वाले तालाबों में भी वह उत्तम है, जिसके साथ बाने की
भूमि लगी हुई है ॥१-५॥

द्रव्यवन्धयोरपि यो महत्सारवद्द्रव्याद्वीकं विषयान्ते नदीमातृकं द्रव्यवन्धं छेद-
यति सोऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥ नदीमातृकं हि स्वाजीवमपाश्रयश्चापदि भवति ॥७॥
हस्तिमृगवन्धयोरपि यो बहुशूरमृगं दुर्बलप्रतिवेशमनन्तावकेशि विषयान्ते हस्तिवन्धं

बध्नाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ८ ॥ तत्रापि बहुकुण्ठाल्पशूरयोरल्पशूरं श्रेयः ॥ ९ ॥
शूरेषु हि युद्धम् ॥ १० ॥ अल्पाः शूरा बह्वनशूरांश्चान्ति ते भयाः स्वसैन्याव-
धातिनो भवन्तीत्याचार्याः ॥ ११ ॥

लकड़ी आदि के वनों में भी जो राजा अच्छी २ वस्तु उत्पन्न करने वाले अपने देश के अन्तभाग में स्थित निर्जन वन को सींचने योग्य बना लेता है और उसके झाड़ भंखाड़ कटवा देता है, वह अपना कार्य बनाने में समर्थ होता है। नदी से सींचा जाने योग्य वन, जीविका के लिए उत्तम और आपत्ति में आश्रय देने वाला हो जाता है। जो राजा हाथियों के वन और अन्य जन्तुओं से परिपूर्ण वन में अत्यन्त शक्तिशाली जन्तु, हाथियों के वन को अपनी सीमा प्रान्त में बसाते हैं, वही अपना कार्य बनाने में समर्थ होता है। इस हस्तो वन के पास में अन्य दुर्बल जन्तुओं के लिए भी वन होना चाहिए। जो बहुत ही गहन और आने जाने के मार्गों से सम्पन्न होना चाहिए। इनमें भी बहुत से दुर्बल हाथियों से थोड़े शूर हाथियों से युक्त वन कल्याणकारी है, क्योंकि शूर हाथियों से ही युद्ध हो सकता है। थोड़े शक्तिशाली हाथी, बहुत से अशक्त हाथियों को भगा देते हैं, वे भागते हुए हाथी, अपनी ही सेना को कुचल देते हैं ऐसा आचार्यों का मत है ॥६-११॥

नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ कुण्ठा बहवः श्रेयांसः स्कन्धविनियोगादनेकं कर्म कुर्वाणाः स्वेषामपाश्रयो युद्धे ॥ १३ ॥ परेषां दुर्धर्पा विभीषणाश्च ॥ १४ ॥
बहुषु हि कुण्ठेषु विनयकर्मणा शक्यं शौर्यमाधातुम् ॥ १५ ॥ न त्वेवाल्पेषु शूरेषु बहुत्वमिति ॥ १६ ॥

कौटल्याचार्य इससे प्रथक् मत रखते हैं, वे कहते हैं, कि अशक्त भी बहुत से हाथी राजा के कल्याण में समर्थ हो सकते हैं। क्योंकि वे अपने स्कन्ध पर बहुत से कार्यों का भार ले लेते हैं और अनेक युद्धोपयोगी कार्य करके अपने पक्ष के वीरों के आश्रय बन जाते हैं। हाथियों की अधिक संख्या देखकर शत्रु भयभीत हो जाते हैं, और वे उनपर आक्रमण करने में असमर्थ रहते हैं। यदि बहुत से अशिक्षित हाथी भी हों तो उनको सिखा पढ़ाकर शूरवीर भी बनाया जा सकता है, परन्तु थोड़े हाथियों को संख्या में बहुत नहीं बनाया जा सकता है ॥१२-१६॥

खन्योरपि यः प्रभूतसारामदुर्गमार्गमल्पव्ययारम्भां खनिं खानयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १७ ॥ तत्रापि महासारमल्पमल्पसारं वा प्रभूतमिति ॥ १८ ॥
महासारमल्पं श्रेयः ॥ १९ ॥ वज्रमणिमुक्ताप्रवालहेमरूप्यधातुर्हि प्रभूतमल्पसारमत्यर्घेण ग्रसत इत्याचार्याः ॥ २० ॥ नेति कौटल्यः ॥२१॥ चिरादल्पो महा-

सारस्य क्रेतो विद्यते ॥ २२ ॥ प्रभूतः सातत्यादल्पसारस्य ॥ २३ ॥ एतेन
वणिक्पथो व्याख्यातः ॥ २४ ॥

खानों में भी जो बहुत सा बढ़िया माल देने वाली, सरल भागों से सम्पन्न, तथा थोड़े से व्यय से बनने वाली खान को बनवाता है, वह अपने कार्य को सुचारु रीति से कर सकता है। इन खानों में अधिक मूल्य की वस्तु उत्पन्न करने वाली खान उत्तम है या स्वल्प मूल्य की बहुत सी वस्तु उत्पन्न करने वाली उत्तम मानी जाती है। इस विषय में आचार्यों का मत है, कि अधिक मूल्य की थोड़ी वस्तु उत्पन्न करने वाली खान ही उत्तम समझनी चाहिए, क्योंकि हीरा, मणि, मुक्ता, प्रवाल (मूंगा) सुवर्ण चांदी आदि धातु, थोड़े मूल्य की बहुत सी वस्तुओं को अपने अधिक मूल्य से अपने भीतर ग्रस लेते हैं अर्थात् उनसे अनेक वस्तु लायी जा सकती हैं। कौटल्याचार्य इस बात को भी नहीं मानते हैं। वे कहते हैं, कि बहुमूल्य वस्तु के खरीदने वाले, बहुत थोड़े हैं, जो कभी २ आते हैं। थोड़े मूल्य की वस्तु के खरीदने वाले सदा बहुत मिलते हैं। इसी प्रकार अधिक मूल्य की वस्तु ले जाने वाले व्यापारियों के मार्ग की अपेक्षा थोड़े मूल्य की वस्तु बेचने वाले व्यापारियों के मार्ग बनाना अधिक लाभकारी है ॥१७-२४॥

तत्रापि वारिस्थलपथयोर्वारिपथः श्रेयान् ॥ २५ ॥ अल्पव्ययव्यायामः
प्रभूतपरयोदयश्चेत्याचार्याः ॥ २६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २७ ॥ संरुद्धगतिरसार्ध-
कालिकः प्रकृष्टभययोनिर्निष्प्रतिकारश्चः वारिपथः विपरीतः स्थलपथः ॥ २८ ॥

जल और स्थल मार्गों में जल मार्ग उत्तम है, क्योंकि वह थोड़े से व्यय और परिश्रम से बन जाता है और उससे बहुत सी बेचने की चीजें भी आसानी से ले जायी जा सकती हैं। यही आचार्य मानते हैं। कौटल्याचार्य इस बात को नहीं मानते हैं, क्योंकि जल का मार्ग रुक जाता है, और सब काल में नहीं चल पाता है। वह स्थल मार्ग की अपेक्षा भय जनक भी अधिक है। इसमें जब कोई भय खड़ा हो जाता है, तो उसका प्रतीकार भी नहीं हो सकता है। स्थल मार्ग इससे विपरीत अर्थात् कल्याणकारी है ॥२५-२८॥

वारिपथे तु कूलमंथानपथयोः कूलपथः परयपट्टणवाहुल्याच्छ्रेयान्दी-
पथो वा सातत्या द्विषद्वावाधत्वाच्च ॥ २९ ॥ स्थलपथे ऽपि हैमवतो दक्षिणापथा-
च्छ्रेयान् ॥ ३० ॥ हस्त्यश्वगन्धदन्ताजिनरूप्यसुवर्णपण्याः सारवत्तरा इत्या-
चार्याः ॥ ३१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ कम्बलाजिनाश्चपरयवर्जाः शङ्खवज्रम-
णिमुक्ताः सुवर्णपण्याश्च प्रभूततरा दक्षिणापथे ॥ ३३ ॥ दक्षिणापथे ऽपि बहुखनिः

सारपण्यः प्रसिद्धगतिरल्पव्यायामो वा वणिक्पथः श्रेयान् ॥ ३४ ॥ प्रभूतविषयो वा फल्गुपण्यः ॥ ३५ ॥ तेन पूर्वः पश्चिमश्च वणिक्पथो व्याख्यातः ॥ ३६ ॥ तत्रापि चक्रपादपथयोश्चक्रपथो विपुलारम्भत्वाच्छ्रेयान् ॥ ३७ ॥ देशकालसंभावनो वा खरोष्ट्रपथः ॥ ३८ ॥ आभ्यामंसपथो व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

जलीयमार्ग भी दो प्रकार का है, एक तो तटवर्ती दूसरा प्रवाहवर्ती । इनमें जो तटवर्ती मार्ग है वह अधिक उत्तम माना गया है, क्योंकि उनमें बेचने योग्य वस्तु के बेचने के लिए बहुत से नगर आ जाते हैं । नदी का प्रवाहमार्ग भी ठीक सा है, क्योंकि उसमें सदा आना जाना रहता है और असह्य बाधा से हीन होता है । स्थल मार्ग में भी दक्षिणमार्ग से हिमालय की ओर का उत्तर मार्ग उत्तम है, क्योंकि इधर हाथी, अश्व, कस्तूरी, हाथीदांत, चर्म, चांदी और सोना आदि बहुमूल्य की बहुत सी वस्तुएं मिल जाती हैं । यह पूर्वाचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य इसके सहमत नहीं हैं, वे कहते हैं, कि कम्बल के लिए ऊन, मृगचर्म, अश्वदि बेचने योग्य वस्तुओं को छोड़कर हाथी आदि वस्तु और शंख, हीरा, मणि, मुक्ता तथा सुवर्ण आदि अमूल्य वस्तुएँ दक्षिण मार्ग में भी बहुत मिलती हैं । दक्षिणीय मार्ग में भी बहुत खानों और सार वस्तुओं से युक्त, प्रसिद्ध रीति से गमन योग्य, थोड़े परिश्रम से साध्य, बनाया हुआ व्यापारी मार्ग श्रेष्ठ है । वह मार्ग भी अच्छा ही है, जिसमें थोड़ी कीमत की अधिक वस्तुएँ होती हैं । इसी से पूर्व और पश्चिम के मार्ग भी समझे जा सकते हैं । इन मार्गों में भी गाड़ी का मार्ग और पैदल मार्गों में गाड़ी का मार्ग श्रेष्ठ है, क्योंकि इस मार्ग से अधिक वस्तु लायी जा सकती है । देश काल की सम्भावना से गदहे और ऊंटों का मार्ग भी अच्छा है । इसी तरह कंधे पर माल ढोने वाले बैल आदि के मार्गों की व्याख्या समझो ॥२६-३९॥

परकर्मोदयो नेतुः क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।

तुल्ये कर्मपथे स्थानं ज्ञेयं स्वं विजिगीषुणा ॥ ४० ॥

जिस काम से शत्रु के कामों की उन्नति हो, इससे विजयेच्छुक राजा का क्षय होता है और जिस से शत्रु की हानि हो-उससे राजा की वृद्धि है यदि दोनों को एक कर्म का समान फल है-तो दोनों एक स्थान पर स्थित हैं-यही समझना चाहिए ॥४०॥

अल्पागमातिव्ययता क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।

समायव्ययता स्थानं कर्मसु ज्ञेयमात्मनः ॥ ४१ ॥

तस्मादल्पव्ययारम्भं दुर्गादिषु महोदयम् ।

कर्म लब्ध्वा विशिष्टः स्यादित्युक्ताः कर्मसंघयः ॥ ४२ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ कर्मसंधिर्द्वादशो

ऽध्यायः ॥ १२ ॥ आदितो दशशतः ॥ ११० ॥

जिस कार्य से थोड़ी आमदनी और अधिक व्यय हो-उससे हानि और जिस से अधिक आमदनी और थोड़ा व्यय हो उससे वृद्धि होती है। तथा जिन कर्मों में समान आय व्यय रहे, उसमें एक स्थान पर स्थिति समझो। इन सब बातों पर विचार करके विजयाभिलाषी राजा दुर्ग आदि में थोड़ा व्यय करे और उससे बहुत बड़ा कार्य निकाले। यदि अपने कार्य को सफल बना लिया, तो विजयेच्छुक राजा सब में श्रेष्ठ हो जाता है-यहां तक कई सन्धियों का वर्णन किया गया ॥ ४१-४२ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में कर्म सन्धि के वर्णन का

वारहवां अध्याय समाप्त हुआ।



तेरहवां अध्याय

११७वां प्रकरण

पार्ष्णिग्राह चिन्ता

इस अध्याय में आक्रमण करने वाले राजा को किस के पीछे चलना चाहिए-इस विषय का विचार होगा।

संहत्यारिविजिगीष्वोरमित्रयोः पराभियोगिनोः पार्ष्णि गृह्णातोयः शक्ति-
संपन्नस्य पार्ष्णि गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १ ॥ शक्तिसंपन्नो ह्यमित्रमुच्छिद्य
पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ २ ॥ न हीनशक्तिर्लब्धलाभ इति ॥ ३ ॥ शक्तिसाम्ये यो
विपुलारम्भस्य पार्ष्णि गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ४ ॥ विपुलारम्भो ह्यमित्रमु-
च्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नाल्पारम्भः सक्तचक्र इति ॥ ५ ॥

आक्रमणकर्ता राजा और उसके शत्रु दोनों किसी प्रकार मिलकर यदि अपने शत्रु पर आक्रमण करें। शत्रु पर आक्रमण करने वाले तथा एक दूसरे की सहायता से चलने वाले इन दोनों में जो शक्ति सम्पन्न के साथ हो लेता है, वही अपना काम बनाता है, क्योंकि शक्ति सम्पन्न प्रथम अपने शत्रु का नाश करके-फिर अपने साथी राजा का भी पराभव कर सकता है। हीन शक्ति राजा कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। जिन दोनों समान शक्ति शाली राजाओं ने मिलकर आक्रमण किया हो

तो उनमें जिसने विशाल कार्य का आरम्भ किया है, उसका साथ देना चाहिए, इसीमें स्वार्थ सिद्धि है। विशाल कार्य का आरम्भ करने वाला ही शत्रु का नाश करके अपने साथी शत्रुभूत प्रथम राजा का नाश कर सकेगा। जिसके छोटे २ कार्य भी बिखरे पड़े हैं, वह शत्रु को नहीं उखाड़ सकता है। वह तो अभी अपनी सेना के संग्रह में लगा है ॥ १-५ ॥

आरम्भसाम्ये यः सर्वसंदोहेन प्रयातस्य पार्ष्णि गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥ शून्यमूलो ह्यस्य सुकरो भवति नैकदेशवलप्रयातः कृतपार्ष्णिप्रतिविधान इति ॥ ७ ॥ बलोपादानसाम्ये यश्चलामित्रं प्रयातस्य पार्ष्णि गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ८ ॥ चलामित्रं प्रयातो हि सुखेनावृत्तसिद्धिः पार्ष्णिग्राहमुच्छि-
न्यान्न स्थितामित्रं प्रयातः ॥ ९ ॥ असौ हि दुर्गप्रतिहतः पार्ष्णिग्राहे च प्रतिनि-
वृत्तस्थितेनामित्रेणागृह्यते ॥ १० ॥ तेन पूर्वं व्याख्याताः ॥ ११ ॥

यदि तुल्य सामग्री के साथ दोनों ने आक्रमण किया है, तो जिस की सेना अधिक है, उसी की सहायता करनी चाहिए- इसी में अपना कार्य बन सकता है, क्योंकि इसकी राजधानी में सेना रहेगी ही नहीं, तो उसका वश में करना सुगम हो जावेगा, परन्तु जो अपनी थोड़ी सेना लेकर दूसरे के साथ आक्रमण में सम्मिलित हुआ है, वह अपने पार्ष्णि ग्राह (सहायता करके आक्रमण करने वाले) का प्रतीकार कर सकता है। जब दोनों आक्रमणकर्ता समान सेना लेकर शत्रु पर भपटे हों तो उनमें उसी की पार्ष्णि (पीठ) ग्रहण करनी चाहिए अर्थात् उसी की सहायता करनी चाहिए, जिसका शत्रु चञ्चल (कायर) हो। इसी में अपना काम बनेगा। जो कायर शत्रु पर आक्रमण करता है, उसको शीघ्र सिद्धि मिलती है-वह फिर अपने पूर्व के साथी राजा के भी उच्छेद करने में समर्थ हो सकेगा, परन्तु जो दृढ़ शत्रु पर आक्रमण करेगा, वह अपनी स्वार्थ-सिद्धि नहीं कर सकेगा। यह दुर्गों के सम्मुख लौट पड़ेगा। वहां से लौटा हुआ अपने पार्ष्णि ग्राह (साथी) के साथ पीछे से आक्रमण करने वाले शत्रु द्वारा पकड़ा जावेगा। इसी प्रकार हीन शक्ति या कुछ सेना लेकर आक्रमण करने वाले राजा के पार्ष्णि ग्राहियों की दशा समझ लेनी चाहिए ॥ ६-११ ॥

शत्रुसाम्ये यो धार्मिकाभियोगिनः पार्ष्णि गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १२ ॥
धार्मिकाभियोगी हि स्वेषां च द्वेष्यो भवति ॥ १३ ॥ अधार्मिकाभियोगी संप्रियः
॥ १४ ॥ तेन मूलहरतादात्तिककदर्याभियोगिनां पार्ष्णिग्रहणं व्याख्यातम् ॥ १५ ॥

जिन्होंने अपने समान शक्ति शत्रु पर आक्रमण किया, उनमें उसी की सहायता करनी उचित है। जिसने धार्मिक शत्रु पर आक्रमण किया है धार्मिक राजा पर आक्रमण करने वाला अपने ही मित्र मन्त्री आदि का अप्रिय हो जाता है। जो अधार्मिक राजा पर आक्रमण करता है, अपने पक्ष का अप्रिय नहीं हो सकता है। जो शत्रु अपने पक्ष का अप्रिय होकर नष्ट होता है, तो उसका पार्ष्णिग्राही (पीछा करने वाला या सहायता देने वाला) अपना काम बना लेता है। अधार्मिक पर आक्रमण करने वाला जब नष्ट ही नहीं होता-तो उसके पार्ष्णिग्राह को क्या लाभ हो सकता है। इसीसे कुल क्रमागत सम्पत्ति को अन्याय से भोगने वाला मूलहर, समय पर प्राप्त सम्पत्ति को व्यर्थ व्यय करने वाला तादात्विक, भृत्य या अपने को कष्ट पहुंचाकर कंजूसी द्वारा प्राप्त सम्पत्ति को इकट्ठे करने वाले कदये पर आक्रमण करने वाले राजा के पार्ष्णिग्राह (साथी या पीछेसे आक्रमणकारी) को कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, क्योंकि इसके साथी मूलहर अदिपर आक्रमण से से असन्तुष्ट न होंगे फिर इसका नाश नहीं-तो पार्ष्णिग्राह को लाभ कैसे हो सकता है ॥१२-१५॥

मित्राभियोगिनोः पार्ष्णिग्रहणे त एव हेतवः ॥ १६ ॥ मित्रममित्रं चाभियुज्जानयोर्यो ऽमित्राभियोगिनः पार्ष्णि गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १७ ॥ मित्राभियोगी हि सुखेनावप्तसंधिः पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ १८ ॥ सुकरो हि मित्रेण संधिर्नामित्रेणेति ॥ १९ ॥

मित्र के ऊपर आक्रमण करने वाले राजा के पार्ष्णिग्राह को वेही लाभ होंगे जो धार्मिक पर आक्रमण करने वाले के पार्ष्णिग्राह को होते हैं। मित्र और अमित्र पर आक्रमण करने वालों में जो अमित्र (शत्रु) पर आक्रमण करता है, उसकी जो पृष्ठ पर चलता है, वह अपना काम बनाता है मित्र के ऊपर चढ़ाई करने वाला तो शीघ्र संधि करके अपने पार्ष्णिग्राह को भी दब सकता है, क्योंकि अमित्र (शत्रु) से शीघ्र संधि नहीं हो सकती है, मित्र से शीघ्र हो जाना-सम्भव है ॥१६-१९॥

मित्रममित्रं चोद्धरतोर्योऽमित्रोद्धारिणः पार्ष्णि गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥२०॥ वृद्धमित्रो ह्यमित्रोद्धारी पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नेतरः स्वपक्षोपधाती ॥२१॥ तयोरलब्धलाभापगमने यस्यामित्रो महतो लाभाद्वियुक्तः न्यव्ययाधिको वा स पार्ष्णिग्राहो ऽतिसंधत्ते ॥ २२ ॥

मित्र और शत्रु-इन दोनों में से जो शत्रु के उच्छेद में प्रवृत्त हुआ है, उसीकी पार्ष्णिग्रहण करनी उचित है। इसी में अपना स्वार्थ बनाता है। जिसके मित्र बढ़े हुए हैं,

वह शत्रु का उच्छेद करके भी पार्ष्णिग्राह का भी उच्छेद कर देगा, परन्तु जो अपने पक्ष से बिगाड़ बैठता है, वह पार्ष्णिग्राह का उच्छेद नहीं कर सकेगा । मित्र या शत्रु के उच्छेद में प्रवृत्त राजाओं के विना कार्य सिद्ध हुए लौटने पर जिसका शत्रु, महान् लाभ से वञ्चित हुआ और जिसका जनक्षय और धन व्यय हो गया है, उसका पीछा करने वाला राजा अपना काम बना लेता है ॥२०-२२॥

लब्धलाभापगमने यस्यामित्रो लाभेन शक्त्या हीनः स पार्ष्णिग्राहो ऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ यस्य वा यातव्यः शत्रुर्विग्रहापकारसमर्थः स्यात् ॥ २४ ॥ पार्ष्णिग्राहयोरपि यः शक्यारम्भत्रलोपादानाधिकः स्थितशत्रुः पार्श्वस्थायी वा सो ऽतिसंधत्ते ॥ २५ ॥ पार्श्वस्थायी हि यातव्याभिसारो मूलावाधकश्च भवति, मूलावाधक एव पश्चात्स्थायी ॥ २६ ॥

लाभ प्राप्त करके लौटने पर भी जिसका शत्रु लाभ से और शक्ति से हीन हो गया-उसका भी पार्ष्णिग्राह अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेता है । जिसका आक्रमण करने योग्य राजा या शत्रु अपकार करने में समर्थ है, उसका पार्ष्णिग्राह पर [पीछा तकने वाला] राजा भी अपना काम बना सकता है । यदि दो पार्ष्णिग्राह राजा हों-तो उनमें जो ठीक २ कार्य का आरम्भ करना जानता है । जिसकी सेना अधिक है । जिसके शत्रु चुप हैं और जो अपने आक्रमण करने योग्य व्यक्ति के पास में ही रहता है, वही पार्ष्णिग्राह अपना कार्य सिद्ध करता है । जो पास में रहता है, वह चढ़ाई करने योग्य राजा पर ठीक समय पर चढ़ाई कर सकता है और राजधानी पर वाधा पहुंचा सकता है । जो दूर रहता है, वह मूलस्थान [राजधानी] को वाधा नहीं पहुंचा सकता है ॥२३-२६॥

पार्ष्णिग्राहास्त्रयो ज्ञेयाः शत्रोश्चेष्टानिरोधकाः ।

समन्तात्पृष्ठतो वर्गः प्रतिवेशौ च पार्श्वयोः ॥ २७ ॥

पार्ष्णिग्राह तीन प्रकार के होते हैं, (१) जो शत्रु की चेष्टा को सब ओर से रोकने वाला हो (२) जो पीछे से आक्रमण करने वाला हो, तथा (३) जो इधर उधर पड़ोस में लगा हो ॥२७॥

अरेर्नेतुश्च मध्यस्थो दुर्बलो ऽन्तर्धिरुच्यते ।

प्रतिघातो बलवतो दुर्गाटव्यपसारवान् ॥ २८ ॥

शत्रु और विजयाभिलाषी राजा के मध्य में जो दुर्बल राजा हो-वह अन्तर्धि कहाता है । जब बलवान् इसपर आक्रमण करता है, तो यह दुर्ग या वन में आश्रय लेता है ॥२८॥

मध्यमं त्वरिविजिगीष्णोर्लिप्समानयोर्मध्यमस्य पार्ष्णि गृह्णतोर्लब्धलाभा-
पगमने यो मध्यमं मित्राद्वियोजयत्यमित्रं च मित्रमाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २९ ॥
संधेयश्च शत्रुरपकुर्वाणो न मित्रं मित्रभावादुत्क्रान्तम् ॥ ३० ॥ तेनोदासीनलिप्सा
व्याख्याता ॥ ३१ ॥

जब मध्यम [अन्तर्धि] राजा को विजयी राजा या शत्रु-ये दोनों दावना चाहते हो,
उस समय मध्यम का साथ देकर कुछ लाभ प्राप्त करे और उस मध्यम को उसके मित्र
से हटाकर आप अपने शत्रुभूत इस मध्यम से मित्रता गांठ ले-तो इस तरह बहुत कुछ
स्वार्थ बन सकता है, क्योंकि यदि शत्रु उपकार करता दिखाई दे-तो उससे संधि कर
लेनी चाहिए, परन्तु मित्र भाव छोड़कर अपकार करने वाले मित्र से संधि रखना ठीक
नहीं है। इसी प्रकार उदासीन राजा जो मध्यम से मित्र है, उसपर शत्रु या दूसरी ओर
रहने वाला विजिगीषु राजा आक्रमण करे-तो आप उदासीन की सहायता करके अपने
लाभ निकाले ॥ २९-३१ ॥

पार्ष्णिग्रहणामियानयोस्तु मन्त्रयुद्धादभ्युच्चयः ॥ ३२ ॥ व्यायामयुद्धे हि
क्षयव्ययाभ्यामुभयोरवृद्धिः ॥ ३३ ॥ जित्वापि हि क्षीणदण्डकोशः पराजितो
भवतीत्याचार्याः ॥ ३४ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ सुमहतापि क्षयव्ययेन शत्रु-
विनाशो ऽभ्युपगन्तव्यः ॥ ३६ ॥

पार्ष्णि ग्राह और चढ़ाई करने वाले में वही विजयी होता है, जो मन्त्र युद्ध
करता है। व्यायाम युद्ध में तो जन क्षय और धन व्यय होकर दोनों का नाश
हो जाता है। युद्ध भूमि में शस्त्रास्त्र द्वारा शत्रु वध व्यायाम युद्ध होता है और गुप्त
रीति विष आदि द्वारा शत्रु का मरवा देना मन्त्र युद्ध कहाता है। यदि विजय हो
भी जावे तो भी सेना और कोश के क्षीण हो जाने के कारण राजा पराजित
हो जाता है ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य इसके विरुद्ध कहते हैं, कि
चाहे कितनी भी सेना का नाश या धन का व्यय हो जावे, परन्तु शत्रु का नाश
कर देना चाहिए ॥ ३२-३६ ॥

तुल्ये क्षयव्यये यः पुरस्ताद्व्यवलां घातयित्वा निःशल्यः पश्चाद्वशवलो
युध्येत सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३७ ॥ द्वयोरपि पुरस्ताद्व्यवलांघातिनोर्यो बहुलतरं
शक्तिमत्तरमत्यन्तदूष्यं च घातयेत्सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३८ ॥ तेनामित्राटवीवलघातो
व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

जब दोनों की सेनाओं का समान नाश हुआ और धन व्यय भी समान ही हुआ-तो भी इस समय राजा से विगड़ी हुई सेना हो तो उसे मरवा कर निष्कण्टक हो जाना चाहिए। जब अपने वशवर्ती सेना रह जाती है, तभी अपनी विजय होती है, यदि विगड़ी हुई दो सेनाओं को दो राजा समान रीति से नष्ट करके युद्ध करें तो उनमें जो अत्यन्त शक्तिशाली दुष्ट सेना का घात करके युद्ध करता है, वही विजयी होता है। इसी तरह शत्रु सेना और जंगली सेना को मरवा कर निष्कण्टक युद्ध करना चाहिए ॥ ३७-३६ ॥

पार्ष्णिग्राहो ऽभियोक्ता वा यातव्यो वा यदा भवेत् ।

विजिगीषुस्तदा तत्र नैत्रमेतत्समाचरेत् ॥ ४० ॥

जब विजयाभिलाषी राजा, पार्ष्णि ग्राह (पीछे से आक्रमण करने वाला) अभियोक्ता (चढ़ाई करने वाला) या यातव्या चढ़ाई किया जाने वाला हो तो उस दशा में उसको इस प्रकार नेतृत्व करना चाहिए ॥ ४० ॥

पार्ष्णिग्रा हो भवेन्नेता शत्रोर्मित्राभियोगिनः ।

विग्राह्य पूर्वमाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहाभिसारिणा ॥ ४१ ॥

जब शत्रु मित्र पर चढ़ाई करे-तो आप पार्ष्णिग्राह नेता बने और पार्ष्णि ग्राह के ढंग पर चलकर प्रथम शत्रु को अपने आक्रमण संज्ञक राजा के साथ लड़ा दे ॥ ४१ ॥

आक्रन्देनाभियुञ्जानः पार्ष्णिग्राहं निवारयेत् ।

तथाक्रन्दाभिसारेण पार्ष्णिग्राहाभिसारिणम् ॥ ४२ ॥

यदि आक्रन्द संज्ञक राजा त्वयं चढ़ाई कर दे, तो आप उस आक्रन्द से भिड़ जावे और उसके पार्ष्णि ग्राह को अपने पार्ष्णि ग्राह से लड़ा देवे ॥ ४२ ॥

अरिमित्रेण मित्रं च पुरस्तादववृद्धयेत् ।

मित्रमित्रमरेश्वापि मित्रमित्रेण वारयेत् ॥ ४३ ॥

शत्रु के मित्र से प्रथम अपने मित्र को भिड़ावे तथा शत्रु के मित्र के मित्र से अपने मित्र के मित्र को लड़ावे ॥ ४३ ॥

मित्रेण ग्राहयेत्पार्ष्णिमभियुक्तो ऽभियोगिनः ।

मित्रमित्रेण चाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहं निवारयेत् ॥ ४४ ॥

यदि कोई विजयाभिलाषी राजा पर चढ़ आवे तो वह अपने मित्र द्वारा उसका पीछा करवा के तथा आक्रन्द और पार्ष्णि ग्राह को अपने मित्र के मित्र द्वारा पीछे हटवावे ॥ ४४ ॥

एवं मण्डलमात्मार्थं विजिगीषुर्निवेशयेत् ।

पृष्ठतश्च पुरस्ताच्च मित्रप्रकृतिसंपदा ॥ ४५ ॥

इस प्रकार विजयेच्छुक राजा अपने राजमंडल को समुचित रीति से आगे पीछे ठोक रखे । इसमें मित्र संचक प्रकृति की सम्पत्ति का प्राधान्य रहता है ॥ ४५ ॥

कृत्स्ने च मण्डले नित्यं दूतान्गूढांश्च वासयेत् ।

मित्रभूतः सप्तानां हत्वा हत्वा च संवृतः ॥ ४६ ॥

इस सारे राजमंडल में नित्य-गुप्त दूतों का प्रवेश रखे । शत्रुओं का ऊपर से बनाघटी मित्र बना रहकर एक २ को चुनकर मरवा दे और आप अपने आकार को उदासीन बनाए रखे ॥ ४६ ॥

असंवृतस्य कार्याणि प्राप्तान्यपि विशेषतः ।

निःसंशयं विपद्यन्ते भिन्नः स्रव इवोदधौ ॥ ४७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे पार्ष्णिग्राहचिन्ता त्रयोदशो ऽध्यायः ॥ १३ ॥

आदितं ऽकादशशतः ॥ १११ ॥

जो अपने आकार या मन्त्र को छुपाकर नहीं रख सकता, उसके काम बनते २ भी समुद्र में टूटी नौका की तरह निश्चय नष्ट हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य नामक अधिकरण में पार्ष्णि ग्राह के विषय में विचार करने का तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



चौदहवां अध्याय

११८वां प्रकरण

हीनशक्ति-पूरणम्

इस प्रकरण में अपनी हीन शक्ति के पूर्ण करने का वर्णन किया जावेगा ।

सामवायिकैरेवमभियुक्तो विजिगीषुर्यस्तेषां प्रधानस्तं ब्रूयात् ॥ १ ॥ त्वया मे संधिः ॥ २ ॥ इदं हिरण्यम् ॥ ३ ॥ अहं च मित्रम् ॥ ४ ॥ द्विगुणा ते वृद्धिः ॥ ५ ॥ नार्हस्यात्मक्षयेण मित्रमुत्खानमित्रान्वर्धयितुम् ॥ ६ ॥ एते हि वृद्धास्त्वामेव परिभविष्यन्तीति ॥ ७ ॥

यदि किसी राजा पर बहुत से इकट्ठे हुए राजाओं ने आक्रमण कर दिया-तो विजयाभिलाषी राजा, उन में जिस राजा को प्रधान समझे-उससे इस प्रकार कहे, कि मैं तुम से सन्धि करना चाहता हूँ। यह तो मैं तुम्हें सुवर्ण देता हूँ। और मैं तुम्हारा मित्र रहूँगा-इस प्रकार तुम्हारा दुगुना बल बढ़ जावेगा। तुमको अपना जय करके बाहर से मित्र बने हुए अपने साथी शत्रुओं को नहीं बढ़ाना चाहिए। ये जब बहुत बढ़ जावेंगे तो आगे चल कर तुम्हें ही पराजित करेंगे ॥१-७॥

भेदं वा ब्रूयात् ॥ ८ ॥ अनपकारो यथाहमेतैः संभूयाभियुक्तस्तथा त्वाम-
प्येते संहितवलाः स्वस्था व्यसने वाभियोद्यन्ते ॥ ९ ॥ बलं हि चित्तं विकरोति
॥ १० ॥ तदेषां विधातयेति ॥ ११ ॥ भिन्नेषु प्रधानमुपगृह्य हीनेषु विक्रमयेत्
॥ १२ ॥ हीनाननुग्राह्य वा प्रधाने ॥ १३ ॥ यथा वा श्रेयो अभिमन्यते तथा,
वैरं वा परैर्ग्रहायित्वा विसंवादयेत् ॥ १४ ॥

इसके सिवा उनमें फूट डलवाने वाली ये बातें भी करे, कि देखो मैंने इन का क्या अपकार किया था, परन्तु इन्होंने मिलकर व्यर्थ मुझपर चढ़ाई कर दी, इसी तरह जब इनमें अधिक बल आ जावेगा और तुम पर कोई विपत्ति होगी-तो फौरन ये तुम पर भी चढ़ दौड़ेंगे। जब बल बढ़ जाता है, तब चित्त ठिकाने नहीं रहता है। तुमको इन्हें नष्ट कर देना चाहिए। यदि उन में कुछ फूट पड़ जावे, तो प्रधान राजाओं को साथ लेकर हीन बल वालों से लड़ जावे। यदि प्रधान फोड़ तोड़ में न आवे-तो हीन बल वालों को मिलाकर प्रधानों पर आक्रमण कर दे। सारांश यह है, कि जिस तरह अपना कल्याण समझे-उसी तरह उन शत्रुओं को परस्पर लड़ाकर अपना वैर पूरा करे ॥ ८-१४ ॥

फलभूयस्त्वेन वा प्रधानमुपजाप्य संधिं कारयेत् ॥ १५ ॥ अथोभयवेतनाः
फलभूयस्त्वं दर्शयन्तः सामवायिकानतिसंहिताः स्थ इत्युद्दूषयेयुः ॥ १६ ॥
दुष्टेषु संधिं दूषयेत् ॥ १७ ॥ अथोभयवेतना भूयो भेदमेषां कुर्युरेवं तद्यदस्माभिर्द-
र्शितमिति ॥ १८ ॥ भिन्नेष्वन्यतमोपग्रहेण वा चेष्टेत ॥ १९ ॥

बहुत सा धन भूमि आदि देकर प्रधान को तोड़ ले और उसके द्वारा ही उनसे भी सन्धि करले अथवा दोनों ओर से वेतन लेने वाले गुप्तचर प्रधान राजा का बहुत सा धन लेना प्रमाणित करके उन सारे संगठित राजाओं से कहे, कि प्रधान राजा ने तुम सबको इस प्रकार धोखे में डाल कर अपना काम बना लिया है। इस प्रकार इनके चित्त में खटाई डलवावे। जब झगड़ पड़े-तो अपनी सन्धि भी तोड़ देवे। इसी तरह फिर वे ही उभयवेतन गुप्तचर उन राजाओं से कहें, कि देखो, अब इसने सान्ध

तोड़ दी-वही बात निकली जो हम प्रथम कह रहे थे । जब ये भिन्न २ हो जावे, तो इनमें एक का साथ देकर दूसरे से युद्ध कर लेना चाहिए ॥ १५-१६ ॥

प्रधानाभावे सामवायिकानामुत्साहयितारं स्थिरकर्माणमनुरक्तप्रकृतिं लोभा-
द्भयाद्वा संधातमुपागतं विजिगीषोर्भीतं राज्यप्रतिसंवन्धं मित्रं चलामित्रं वा पूर्वा-
नुत्तराभावे साधयेत् ॥ २० ॥

यदि इन चढ़ाई करने वाला राजाओं में कोई खास प्रधान राजा न हो-तो इन सबको उत्तेजित करने वाले, दृढ़ता के साथ में अपने काम में लगे हुए, मन्त्री आदि प्रकृति का प्रेमी, किसी लाभ या भय से इस समूह में सम्मिलित हुआ, चढ़ाई किये हुए राजा के आक्रमण से प्रथम भयभीत हुआ, राज्य से सम्बन्ध रखने वाला मित्र या दुर्ग आदि रहित शत्रु को जहां तक हो तोड़ लेवे । जैसा २ इनमें मिले, उसी के अनुसार कार्य करे ॥ २० ॥

उत्साहयितारमात्मनिसर्गेण स्थिरकर्माणं सान्त्वप्रणिपातेनानुरक्तप्रकृतिं
कन्यादानयापनाभ्यां लुब्धमंशद्वैगुण्येन भीतमेभ्यः कोशदण्डानुग्रहेण स्वतो
भीतं विश्वासयेत् प्रतिभूप्रदानेन राज्यप्रतिसंवन्धमेक्रीभावोपगमनेन मित्रमुभयतः
प्रियहिताभ्यामुपकारत्यागेन वा चलामित्रमवधृतमनपकारोपकाराभ्याम् ॥ २१ ॥

सबको मड़वाले से राजा कहे “मैं पुत्र अमात्य सहित तुम्हारे अधीन हूँ” । दृढ़ता के साथ कार्य में संलग्न राजा से अपना पीछा छुड़ाने वाला राजा नम्रता के साथ प्रणाम करके अनुरक्त प्रकृति वाले राजा को कन्या का सम्बन्ध करके लोभी को दुगुना भाग देकर भयभीत को कोश और सेना देकर, अपने से भयभीत को प्रतिभू द्वारा विश्वास दिलाकर राज्य से सम्बन्ध रखने वाले से एकता स्थापित करके, प्रिय और हितकारी बातों से मित्र और उपकार करके दुर्ग रहित शत्रु को और स्थिर शत्रु को अपकार नहीं करने तथा उपकार करने की प्रतिज्ञा करके वश में करे ॥ २१ ॥

यो वा यथायोगं भजेत तं तथा साधयेत् ॥ २२ ॥ सामदानभेददण्डैर्वा
यथापत्सु व्याख्यास्यामः ॥ २३ ॥ व्यसनोपघातत्वरितो वा कोशदण्डाभ्यां
देशे काले कार्ये वावधृतं संधिमुपेयात् ॥ २४ ॥ कृतसंधिहीनमात्मानं प्रतिकुर्वीत
॥ २५ ॥ पक्षे हीनो बन्धुमित्रपक्षं कुर्वीत ॥ २६ ॥ दुर्गमविषह्यं वा ॥ २७ ॥
दुर्गमित्रप्रतिस्त्वंधो हि स्वेषां परेषां च पूज्यो भवति ॥ २८ ॥

इन समूह से आक्रमण करने वाले राजाओं में जो जिस तरह वश में होवे, उसको वैसे ही वश में कर लेवे । साम, दान, दण्ड, भेद इन चार उपायों द्वारा जिसके प्रयोग का

समय हो उसका प्रयोग करे। इन सबके प्रयोग करने की व्यवस्था हम आपसकरण में करेंगे। विजयाभिलाषुक राजा, अपने कष्ट को शीघ्र नाश करने के निमित्त अपने कोश या सेना से देशकालोपयोगी कार्य करके जिससे सन्धि हो सके उससे निश्चित प्रतिष्ठाओं के साथ सन्धि करले। सन्धि करने के अनन्तर जो अपने में न्यूनता हो उसके पूर्ण करने की चेष्टा करता रहे। यदि अपना पक्ष खण्डित हो रहा हो तो राजा अपने वन्धु और मित्रों के पक्ष को प्रथम संगठित करे। इसी तरह अभेद्य दुर्गों की रचना की चेष्टा में लग जावे। जिसके पास मित्र और दुर्गों का समूह विद्यमान होता है, वह अपने और दूसरों का पूज्य होता है ॥२१-२८॥

मन्त्रशक्तिहीनः प्राज्ञपुरुषोपचयं विद्यावृद्धसंयोगं वा कुर्वीत ॥ २९ ॥
तथा हि सद्यःश्रेयः प्राप्नोति ॥ ३० ॥ प्रभावहीनः प्रकृतियोगक्षेममिदौ यतेत
॥ ३१ ॥ जनपदः सर्वकर्मणां योनिः ॥ ३२ ॥ ततः प्रभावः ॥ ३३ ॥ तस्य
स्थानमात्मनश्च आपदि दुर्गम् ॥ ३४ ॥ सेतुबन्धः सस्यानां योनिः ॥ ३५ ॥
नित्यानुपत्तो हि वर्षगुणलामः सेतुवापेषु ॥ ३६ ॥

मन्त्र शक्ति से हीन राजा, बुद्धिमान् विद्वान् पुरुषों का संग्रह और विद्या वृद्ध अनुभवों पुरुषों की सङ्गति करता रहे। इस प्रकार उसे बहुत शीघ्र कल्याण की प्राप्ति होती है। प्रभाव से हीन राजा, अपने अमात्य आदि प्रकृतियों तथा प्रजा के योग जैसे [कल्याण] का प्रयत्न करे, क्योंकि जनपद (राष्ट्र) सारे कामों का कारण है। इसीसे दुर्ग और मेना की प्राप्ति और प्रभाव (रोआव) की उत्पत्ति होती है। इस प्रभाव का मूलस्थान दुर्ग है और दुर्ग से ही आपत्काल में अपनी भी रक्षा हो सकती है। सेतुबन्ध (जलाशय) अन्न-उत्पत्ति के हेतु हैं। सेतुबन्धों के समीप अन्न नित्य उत्पन्न हो सकता है। वर्षा से अन्न तो कभी र समय पर ही उत्पन्न होता है ॥२९-३६॥

वणिक्पथः परातिसंधानस्य योनिः ॥ ३७ ॥ वणिक्पथेन हि दण्डगूढ-
पुरुषांतिनयनं शस्त्रावरणयानवाहनकयश्च क्रियते ॥ ३८ ॥ प्रवेशो निर्नयनं च
॥ ३९ ॥ खनिः संग्रामोपकरणानां योनिः ॥ ४० ॥ द्रव्यवनं दुर्गकर्मणाम्
॥ ४१ ॥ यानस्थयोश्च ॥ ४२ ॥ हस्तिवनं हस्तिनाम् ॥ ४३ ॥ गवाधरयोष्ठाणां
च व्रजः ॥ ४४ ॥ तेषामलामे वन्धुमित्रकुलेभ्यः समार्जनम् ॥ ४५ ॥

व्यापारियों के मार्ग (सड़क) आदि शत्रु को चकमा देने का कारण माने गए हैं। वणिक्पथ से सेना, गुप्तचर पुरुषों का ले जाना और शस्त्र, कवच, सवारी आदि वस्तुओं

का विक्रय किया जा सकता है। दूसरे देश की वस्तुओं का लाना और अपनी ले जाना भी इन्हीं मार्गों से हो सकता है। खान, युद्ध की वस्तुओं के उत्पन्न करने का कारण है। दुर्ग की वस्तुओं की उत्पत्ति का स्थान द्रव्यवन है। इसी द्रव्यवन में यान और रथ आदि के बनाने के साधनों की उत्पत्ति होती है। हस्तिवन हाथियों की उत्पत्ति का केन्द्र है। गाय बैल, अश्व-रथ और ऊंटों की उत्पत्ति व्रज (गोष्ठ) में होती है। यदि पशु और पक्षियों की उत्तम नसल यहां न हो-तो अपने बन्धु या मित्रों के पास से मंगवा लेवे ॥३७-४५॥

उत्साहहीनः श्रेणीप्रवीरपुरुषाणां चोरगणाद्विकम्लेच्छजातीनां परापकारिणां गूढपुरुषाणां च यथालोभमुपचयं कुर्वीत ॥४६॥ परमित्रप्रतीकारमावलीयसं वा परेषु प्रयुज्जात ॥ ४७ ॥

उत्साह (वीरता) से हीन राजा, श्रेणी पुरुष, वीर पुरुष, चोर, गण, वनवासी भील म्लेच्छ जाति के पुरुष या शत्रु के अपकार में समर्थ गूढ़ पुरुषों का यथा योग्य संग्रह करे। शत्रु और उसके मित्रों का प्रतीकार या आवलीयस प्रकरण में कहे उपायों का शत्रुओं में प्रयोग करता रहे ॥४६-४७॥

एवं पक्षेण मन्त्रेण द्रव्येण च बलेन च ।

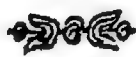
संपन्नः प्रतिनिर्गच्छेत्परावग्रहमात्मनः ॥ ४८ ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे हीनशक्तिपूरणं चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

आदितो द्वादशशतः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार बन्धु और मित्रों के पक्ष, विद्या वृद्ध पुरुषों के मन्त्रबल, द्रव्य और सेना से युक्त होकर राजा, शत्रु के निग्रह में तत्पर होवे ॥४८॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य नामक अधिकरण में अपनी हीन शक्ति के पूर्ण करने के उपाय वर्णन करने का चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ।



पन्द्रहवां अध्याय

११६-१२०वां प्रकरण

बलवता विगृह्योपरोध हेतवो दण्डोपनतवृत्तम्

इस अध्याय में प्रबल शत्रु के साथ विरोध करके दुर्ग प्रवेश के कारण और विजित शत्रु के व्यवहार का वर्णन किया जावेगा।

दुर्बलो राजा बलवताभियुक्तः तद्विशिष्टबलमाश्रयेत यमितरो मन्त्रशक्त्या नातिसंदध्यात् ॥१॥ तुल्यमन्त्रशक्तीनामायत्तसंपदो वृद्धसंयोगाद्वा विशेषः ॥२॥ विशिष्टबलाभावे समबलैस्तुल्यबलसङ्घैर्वा बलवतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभाव-शक्तिभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ३ ॥

जब कोई बलवान् राजा दुर्बल राजा पर आक्रमण करदे-तो वह दुर्बल राजा, उस आक्रमणकारी बलवान् राजा से भी अधिक बलशाली राजा का आश्रय लेवे, जो किसी भी तोड़ फोड़ से आक्रमणकारी के वश में न आ सके। यदि अनेक राजा मन्त्र और सेना शक्ति समान रखते हों-तो उनमें जिस पर अधिक सम्पत्ति या जिसके वृद्ध मन्त्री हों-उसका आश्रय लेवे यदि आक्रान्ता से अधिक शक्तिशाली कोई राजा न मिले-तो अपने समानकुल धन वाले या समान सेना वालों का ही आश्रय ले लेवे। इस प्रकार बलवान् का आश्रय लेकर तब तक उसका आश्रय लिये रहे-जब तक मन्त्र और प्रभाव शक्ति द्वारा अपने शत्रु पर अधिकार न प्राप्त हो जावे ॥१-३॥

तुल्यमन्त्रप्रभावशक्तिनां विपुलारम्भतो विशेषः ॥ ४ ॥ समबलाभावे हीनबलैः शुचिभिरुत्साहिभिः प्रत्यनीकभूतैर्बलवतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभावो-त्साहशक्तिभिरतिसंदध्यात् ॥ ५ ॥ तुल्योत्साहशक्तीनां स्वयुद्धभूमिलाभाद्विशेषः ॥ ६ ॥ तुल्यभूमीनां स्वयुद्धकाललाभाद्विशेषः ॥ ७ ॥ तुल्यदेशकालानां युग्यश-स्त्रावरणतो विशेषः ॥ ८ ॥

यदि तुल्य मन्त्र और प्रभाव वाले अनेक राजा हों-तो उनमें जिसने अधिक विशाल कार्य का आरम्भ कर रखा हो या जिसके पास बहुत अधिक सेना आदि हो उसका आश्रय लेना ही उत्तम है। यदि समान शक्ति वाला राजा भी आश्रय के निमित्त न मिल सके-तो हीन बल वाले, पवित्रात्मा, उत्साही, शत्रुभूत अनेक राजाओं का आश्रय लेकर बलवान् हो जावे, और तब तक शत्रु से भिड़ा रहे-जब तक मन्त्र (तोड़ फोड़) प्रभाव और उत्साह शक्ति से शत्रु को जीत न लिया जावे। इस प्रकार की शक्ति रखने

वाले वही राजा मिलते हों-तो उनमें उसका ही आश्रय लेवे जिस के पास युद्धोपयोगी भूमि हो। यदि अनेक राजाओं के पास ऐसी भूमि भी हो-तो भी जिसके पास युद्ध के निमित्त समय हो-उसका ही आश्रय ग्रहण करे और जो देश काल और शक्ति धारी भी अनेक राजा हों-तो जिस के पास वाहन, शस्त्र और कवच अधिक हों-उसका ही आश्रय ग्रहण करे ॥ ४-८ ॥

सहायाभावे दुर्गमाश्रयेत यत्रामित्रः प्रभूतसैन्योऽपि भक्त्यवसेन्धनोदको-
परोधं न कुर्यात् ॥ ९ ॥ स्वयं च क्षयव्ययाभ्यां युज्येत ॥ १० ॥ तुल्यदुर्गाणां
निचयापसारतो विशेषः ॥ ११ ॥ निचयापसारसंपन्नं हि मनुष्यदुर्गमिच्छेदितिः
कौटल्यः ॥ १२ ॥

यदि इन उपर्युक्त राजाओं में कोई भी सहायता देने वाला न मिल सके-
तो दुर्ग का आश्रय लेवे। दुर्ग भी ऐसा होना चाहिए, जिसका बहुत सी सेना धारी
शत्रु भी घेरा न डाल सके और अन्न भोजन, घास, लकड़ी जल आदि की रुकावट
न डाल सके। यदि वहां शत्रु आक्रमण करे-तो उसके जन धन का अधिक नाश होने
की सम्भावना होनी चाहिए। यदि आश्रय करने योग्य अनेक दुर्ग हों तो भी उसी दुर्ग
में आश्रय करना चाहिए, जिसमें तेल, नमक आदि वस्तुओं का संग्रह तथा सुरङ्ग से
निकल जाने का मार्ग हो। कौटल्याचार्य ऐसे ही दुर्ग को आश्रय के योग्य मानते हैं,
जिसमें नित्य की उपयोग की सामग्री का संग्रह और निकल जाने की सुरंग हो ॥ ९-१२ ॥

तदेभिः कारणैराश्रयेत ॥ १३ ॥ पार्ष्णिग्राहमासारं मध्यममुदासीनं वा
प्रतिपादयिष्यामि ॥ १४ ॥ सामन्ताद्विकृतकुलीनावरुद्धानामन्यतमेनास्य राज्यं
दारयिष्यामि वातयिष्यामि वा ॥ १५ ॥ कृत्यपक्षोपग्रहेण वास्य दुर्गे राष्ट्रे
स्कन्धावारे वा कोपं समुत्थापयिष्यामि ॥ १६ ॥ शस्त्राग्निरणप्रणिधानैरौपनिषदि-
कैर्वा यथेष्टमासन्नं हनिष्यामि ॥ १७ ॥ स्वयमधिष्ठितेन वा योगप्रणिधानेन
क्षयव्ययमेनमुपनेष्यामि ॥ १८ ॥

अधोलिखित कारणों के उपस्थित होने पर दुर्ग का आश्रय ग्रहण करना चाहिए
जब राजा यह समझे कि मैं दुर्ग का आश्रय लेने पर पार्ष्णि ग्राह, आसार, मध्यम और
उदासीन राजाओं को शत्रु के विरुद्ध खड़ा करदूंगा। किसी सामन्त, वनचर आक्रान्त
के विरोधी या बांधवों द्वारा इसका राज्य हरण करदूंगा या इसको मरवा डालूंगा। शत्रु
पक्ष के अमात्य आदि कर्मचारी वर्ग को अपने पक्ष में मिलाकर उसके दुर्ग, राष्ट्र, स्कन्धावार
[छावनी] में विद्रोह खड़ा करवा दूंगा। शस्त्र, अग्नि, रण और गुप्तचरों या औपनिषदिक

प्रकरण में कहे हुए उपायों द्वारा अपने पास में आते ही आक्रान्ता को मरवा दूंगा । अपने द्वारा प्रयुक्त किये हुए उपायों द्वारा शत्रु को जन और धन की हानि पहुंचा दूंगा तो वह दुर्ग का आश्रय लेलेवे ॥ १३-१८ ॥

क्षयव्ययप्रवासोपतप्ते वास्य मित्रवर्गे सैन्ये वा क्रमेणोपजापं प्राप्स्यामि ॥ १९ ॥ वीवधासारप्रसारवधेन वास्य स्कन्धावारावग्रहं करिष्यामि ॥ २० ॥ दण्डोपनयेन वास्य रन्ध्रमुत्थाप्य सर्वसंदोहेन प्रहरिष्यामि ॥ २१ ॥ प्रतिहतोत्साहेन वा यथेष्टं संधिमवाप्स्यामि, मयि प्रतिबन्धस्य वा सर्वतः कोपाः समुत्थास्यन्ति ॥ २२ ॥ निरासारं वास्य मूलं मित्राटवीदण्डैरुद्धातयिष्यामि ॥ २३ ॥ महतो वा देशस्य योगक्षेममिहस्थः पालयिष्यामि ॥ २४ ॥

यदि राजा की यह समझ में आ जावे, कि मैं इसकी सेना के नाश और धन के व्यय तथा प्रवास के क्लेशों से दुःखी इसके मित्र वर्ग या सेना में फूट डलवा दूंगा । शत्रु तक पहुंचने वाले खाद्य पदार्थ, मित्र सेना, घास, भूसा लकड़ी आदि का विनाश करके इसकी सेना को घेरा डालकर पीड़ित कर दूंगा । किसी प्रकार अपनी थोड़ी सेना इसकी सेना में पहुंचाकर और शत्रु सेना में हल चल उत्पन्न कराकर फिर अधिक सेना से आक्रमण करादूंगा । किसी भी तरह आक्रमण करने वाले शत्रु का उत्साह नष्ट करके अपनी इच्छानुसार सन्धि करा सकूंगा या मुझ पर आक्रमण करने के कारण सब ओर से राजा इसपर दूट पड़ेंगे । इसके मित्र बल को मार्ग में ही रोक कर इसकी राजधानी को अपने मित्र बल या वनचरवासी भीलों से नष्ट भ्रष्ट करवादूंगा । मैं यहां से अपने विशाल देश की देख-रेख करने में समर्थ हो सकूंगा-तो वह दुर्ग का आश्रय कर सकता है ॥ १९-२४ ॥

स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं वा मे सैन्यामिहस्थस्यैकस्थमविपक्षं भविष्यति ॥ २५ ॥ निम्नखातरात्रियुद्धविशारदं वा मे सैन्यं पथ्यावाधमुक्तमासन्ने कर्मणि करिष्यति ॥ २६ ॥ विरुद्धदेशकालमिहागतो वा स्वयमेव क्षयव्ययाभ्यां न भविष्यति ॥ २७ ॥ महाक्षयव्ययाभिगम्योऽयं देशो दुर्गाटव्यपसारवाहुल्यात् ॥ २८ ॥ परेषां व्याधिप्रायः सैन्यव्यायामानामलब्धभौमश्च तमापतद्नतः प्रवेक्ष्यति ॥ २९ ॥ प्रविष्टो वा न निर्गमिष्यतीति ॥ ३० ॥

यदि राजा यह उचित समझे कि मेरी भेजी या मित्र द्वारा भेजी हुई सेना, मेरे यहां स्थित होने पर भी संगठित होकर शत्रु का सामना करती रहेगी । नीचे गढ़दे, और रात्रि युद्ध में कुशल मेरी सेना, मार्ग की थकांत को उतारकर अपने सामने आये हुए

कार्य को अच्छी तरह पूरा कर देगी । शत्रु विरुद्ध देश काल में यहां आकर स्वयं जन धन नाश से युक्त हो जावेगा और हमारे ऊपर आक्रमण करने के योग्य नहीं रह सकेगा । इस प्रदेश में दुर्ग, वन और निकल जाने के बहुत मार्ग हैं, इससे शत्रु आक्रमण करेगा तो उसकी सेना का बड़ा नाश और धन का महान् व्यय होगा । शत्रु के आने पर उसको यहां व्याधियां घेर लेंगी, और यहां उसे सेना सञ्चार को कोई स्थान नहीं मिलेगा, इससे वह स्वयं आपत्ति में फँस जावेगा और आपत्ति में फँसकर उसका निकलना कठिन होगा तो वह दुर्ग का आश्रय ग्रहण कर लेवे ॥२५-३०॥

कारणाभावे बलसमुच्छ्रये वा परस्य दुर्गमुन्मुच्यापगच्छेत् ॥ ३१ ॥ अग्नि-
पतङ्गवदग्नित्रे वा प्रविशेत् ॥ ३२ ॥ अन्यतरमिद्विहिं त्यक्तात्मनो भवतीत्या-
चार्याः ॥ ३३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३४ ॥ संधेयतामात्मनः परस्य चोपलभ्य
संदधीत ॥ ३५ ॥ विपर्यये विक्रमेण सिद्धिमपसारं वा लिप्सेत ॥ ३६ ॥

यदि उपर्युक्त कारण दिखाई न देवे-और शत्रु की सेना बलवती हो तो-राजा दुर्ग छोड़कर निकल जावे । यदि निकल जाना असम्भव हो तो दीपक पर पतङ्ग की तरह शत्रु पर टूट पड़े । कभी २ दुर्बल राजा भी वीरता से आक्रमण करके विजयो हो जाता है । ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य इस बात को नहीं मानते हैं । वे तो दोनों की सन्धि की योग्यता को देखकर सन्धि करने का प्रथम उपदेश देते हैं । यदि सन्धि होना असम्भव हो जावे-तो पराक्रम द्वारा आक्रमण करे या निकलकर भाग जावे ॥३१-३६॥

संधेयस्य वा दूतं प्रेषयेत् ॥ ३७ ॥ तेन वा प्रेषितमर्थमानाभ्यां सत्कृत्य
ब्रूयात् ॥ ३८ ॥ इदं राज्ञः पण्यागारमिदं देवीकुमाराणां देवीकुमारवचनादिदं
राज्यमहं च त्वदर्पण इति ॥ ३९ ॥ लब्धसंश्रयः समयाचारिकवद्भर्तारि वर्तेत
॥ ४० ॥ दुर्गादीनि च कर्माण्यावाहविवाहपुत्राभिषेकाश्चपण्यहस्तिग्रहणसच्च-
यात्रांविहारगमनानि चानुज्ञातः कुर्वीत ॥ ४१ ॥ स्वभूम्यवस्थितप्रकृतिसंधि-
मुपघातमपसृतेषु वा सर्वमनुज्ञातः कुर्वीत ॥ ४२ ॥ दुष्टपौरजानपदो वा
न्यायवृत्तिरन्यां भूमिं याचेत ॥ ४३ ॥

यदि सन्धि होना सम्भव हो-तो सन्धि करने योग्य राजा के पास दूत भेजा जावे । यदि दूसरे राजा ने सन्धि के निमित्त दूत भेजा है, तो धन और मान से सत्कार करके उससे कहे, कि यह राजा के निमित्त भेंट दे और यह देवी और कुमारों द्वारा देवी और कुमारों को उपहार दी जा रही है । यह सारा राज्य और मैं तुम्हारे अधीन हूँ । जब दूत के कथन से विजेता का आश्रय मिल जावे, तो उस विजेता राजा के साथ सेवक

की तरह बर्ताव करे। दुर्ग आदि बनवाना, कन्या लेना या देना, यौव राज्याभिषेक, अश्वों का खरीदना, हाथियों का पकड़वाना, यज्ञ, यात्रा, उद्यान आदि की क्रीड़ा करना ये सब उसकी आज्ञा से करे। अपने देश में स्थित अमात्य आदि प्रकृति से मेल, तथा भागे हुए अमात्यों पर दण्ड व्यवस्था, सब अपने स्वामी विजेता राजा की आज्ञा के मिलने पर ही करे। यदि पुर या राष्ट्र के लोग, क्रान्ति करें-तो आप न्याय से रहकर अन्य भूमि में चले जाने की विजेता से आज्ञा मांगे ॥३७-४३॥

दूष्यवदुपांशुदण्डेन वा प्रतिकुर्वीत ॥ ४४ ॥ उचितां वा मित्राद्भूमिं दीयमानां न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ४५ ॥ मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतममदृश्यमाने भर्तरि पश्येत् ॥ ४६ ॥ यथाशक्ति चोपकुर्यात् ॥ ४७ ॥ दैवतस्वस्तिवाचनेषु तत्परा आशिषो वाचयेत् ॥ ४८ ॥ सर्वत्रात्मनिसर्गं गुणं ब्रूयात् ॥ ४९ ॥

यदि हो सके-तो दुष्ट शत्रु की तरह उन अन्याय वृत्ति क्रान्तिकारी पुरुषों को गुप्तचुप मरवा देवे। यदि विजेता किसी मित्र से छीनकर उत्तम भूमि भी प्रदान करे-तो उसे ग्रहण न करे। मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, कोई भी जब न होवे-तब अपने स्वामी विजेता राजा के पास जावे और यथाशक्ति उसका उपकार या सेवा करे। जब देवताओं के आराधन में स्वस्तिवाचन आदि हों-तो आप भी आशीर्वाद आदि में सम्मिलित होवें। सब जगह अपने आपको स्वामी के अधीन न होने की घोषणा कर दे ॥४४-४९॥

संयुक्तबलवत्सेवी विरुद्धः शङ्कितादिभिः ।

वर्तेत् दण्डोपनतो भर्तार्येवमवस्थितः ॥ ५० ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तं पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ आदितस्त्रयोदशशतः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार स्थित होकर पराजित राजा विजेता के सन्मुख व्यवहार करे और विजेता के बलशाली अमात्यों से अनुकूल और विरुद्ध रहने वाले लोगों से प्रतिकूल रहे ॥५०॥

इति श्री कौटिल्यअर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य अधिकरण में बलवान् के साथ व्यवहार करने के वर्णन का पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



सोलहवां अध्याय

१२१वां प्रकरण

दण्डोपनायि वृत्तम्

इस प्रकरण में पराजित राजा के साथ व्यवहार करने का वर्णन होगा ।

अनुज्ञातस्तद्विरणयोद्वेगकरं बलवान्विजिगीषुमाणो यतः सुभूमिः स्वर्तुवृ-
त्तिश्च स्वसैन्यानामदुर्गापसारः शत्रुरपार्ष्णिणरनपसारश्च ततो यायात् ॥ १ ॥ विप-
र्यये कृतप्रतोकारो यायात् ॥ २ ॥ सामदानाभ्यां दुर्बलानुपनमयेत् ॥ ३ ॥ भेद-
दण्डाभ्यां बलवत् ॥ ४ ॥

पूर्व में प्रतिज्ञा किये हुए सुवर्ण आदि को नहीं देने वाले राजा पर बलवान् विजयाभिलाषी राजा, अपने स्वामी की आज्ञानुसार उसपर चढ़ाई करदे । चढ़ाई का मार्ग बड़ा सुन्दर और सेना को उम्र ऋतु के अनुसार खाद्य पदार्थ आदि मिल जाते की सम्भावना होनी चाहिए । जिस राजा पर चढ़ाई की जावे वह दुर्ग हीन या अपसार (सुरङ्ग मार्ग) हीन हो तो बड़ी अच्छी बात है । शत्रु पार्ष्णिग्राह और मित्र बल से रहित होना चाहिए । इस दशा में चढ़ाई करने से अवश्य सिद्धि हो सकेगी । यदि शत्रु के ऊपर चढ़ाई करने के समय उपर्युक्त कोई भी सुभीते न हों-तो इन सब का उपाय करके चढ़ाई करे अर्थात् मार्ग सुचारु बनवाकर शत्रु के निकल भागने आदि का उपाय करके चढ़ाई करे । दुर्बल राजाओं को तो साम दान आदि से ही अपने वश में कर लेना चाहिए । जो बलवान् हों, उनको भेद और दण्ड से वश में लावे ॥१-४॥

नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपायानामनन्तरैकान्तराः प्रकृतीः साधयेत् ॥ ५ ॥
ग्रामारण्योपजीवित्रजवणिकपथानुपालनमुज्झितापसृतापकारिणां चार्पणमिति सा-
न्त्रमाचरेत् ॥ ६ ॥ भूमिद्रव्यकन्यादानमभयस्य चेति दानमाचरेत् ॥ ७ ॥
सामन्तादविकतकुलीनावरुद्धानामन्यतमोपग्रहेण क्रोशदण्डभूमिदाययाचनमिति
भेदमाचरेत् ॥ ८ ॥ प्रकाशकूटतूष्णीयुद्धदुर्गलम्भोपायैरभिन्नप्रग्रहणमिति दण्डमा-
चरेत् ॥ ९ ॥

साम आदि उपायों में किसी एक निश्चित उपाय को प्रयोग करना नियोग कहाता है । किसी उपाय के प्रयोग का अनिश्चय विकल्प और कई उपायों का एक साथ प्रयोग कर देना समुच्चय है । इन नियोग आदि के द्वारा विजयाभिलाषी राजा, शत्रु और मित्र राजा या अमात्य आदि को अपने वश में करता रहे । गांव और जंगल के जीव गाय भैंस आदि

तथा व्यापारोपयोगी जल स्थल मार्गों की रक्षा करना, छोड़कर चले गए या भागे हुए अपकारी मनुष्यों को खोज कर अर्पण कर देना आदि साम उपाय का प्रयोग कहा जाता है। भूमि, द्रव्य, कन्या और अभयदान ये-दान कहाते हैं। दुर्बल राजा के साथ इनका प्रयोग माना गया है। शत्रु राजा के सामन्त, या वनचर भील आदि तथा किसी पकड़े हुए उसके बान्धु-बान्धव को अपने अनुकूल बनाकर उसके द्वारा कोश, संना, भूमि या अपने दायभाग की याचना करवा देवे और इस प्रकार शत्रु पक्ष में फूट डलवावे। इसी प्रकार देशकाल की सूचना देकर प्रकाश युद्ध, छूट युद्ध, और गुप्त पुरुषों से शत्रु का मरवा देना रूप तूष्णीं युद्ध, एवं दुर्गलम्भोपाय में बताये हुए विष प्रयोग आदि उपायों द्वारा शत्रु के साथ दण्ड का प्रयोग करे ॥५-६॥

एवमुत्साहवतो दण्डोपकारिणः स्थापयेत् ॥ १० ॥ स्वप्रभाववतः कोशो-
पकारिणः प्रज्ञावतो भूम्युपकारिणः ॥ ११ ॥ तेषां पण्यपत्तनग्रामखनिसंजातेन
रत्नतारकुप्येन द्रव्यहस्तिवनव्रजसमुत्थेन यानवाहनेन वा यद्वहुश उपकरोति
तच्चित्रभोगम् ॥ १२ ॥ यदण्डेन कोशेन वा महदुपकरोति तन्महाभोगम् ॥ १३ ॥
यदण्डकोशभूमिरुपकरोति तत्सर्वभोगम् ॥ १४ ॥

राजा, जो वीरता आदि गुणों से युक्त हों-उन को सेनापति आदि पद पर नियुक्त करे। जिनका प्रभाव अधिक हो, उनको कोश सञ्चय पर और बुद्धिमान पुरुषों को भूमि के कार्य पर नियुक्त करे। इन साम आदि उपायों से वश में किये हुए राजाओं में जो बड़े २ बाजार नगर गांव, या खान से उत्पन्न रत्न (मणि आदि) सार (चन्दन आदि) कुप्य (शंख वस्त्र आदि) तथा द्रव्य वन, हस्तिवन या बैल आदि द्वारा बने हुए रथ, सवारी से बहुत सा उपकार करता है, वह चित्र भोग कहाता है। जो अधिकृत राजा सेना या कोश द्वारा बड़ा उपकार करता है, वह महाभोग और जो सेना, कोश और भूमि आदि सब कुछ अर्पण कर देता है, वह सर्व भोग कहाता है ॥१०-१४॥

यदमित्रमेकतः प्रतिकरोति तदेकतोभोगि ॥ १५ ॥ यदमित्रमासारं
चोपकरोति तदुभयतोभोगि ॥ १६ ॥ यदमित्रासारप्रतिवेशाटविकान्सर्वतः
प्रतिकरोति तत्सर्वतोभोगि ॥ १७ ॥ पार्णिग्राहश्चाटविकः शत्रुमुख्यः शत्रुर्वा
भूमिदानसाध्यः कश्चिदासाद्येत ॥ १८ ॥ निगुण्या भूम्यैनमुपग्राहयेत् ॥ १९ ॥
अप्रतिमंवद्धया दुर्गस्थम् ॥ २० ॥ निरुपजीव्ययाटविकम् ॥ २१ ॥ प्रत्यादेयया
तत्कुलीनम् ॥ २२ ॥ शत्रोरुपच्छिन्नया शत्रोरुपरुद्धम् ॥ २३ ॥ नित्यामित्रया
श्रेणीबलम् ॥ २४ ॥ बलवत्सामन्तया संहतबलम् ॥ २५ ॥ उभाभ्यां युद्धे

प्रतिलोमम् ॥ २६ ॥ अलब्धव्यायामयोत्साहिनम् ॥ २७ ॥ शून्ययारिपक्षीयम्
॥ २८ ॥ कर्शितयोपवाहितम् ॥ २९ ॥ महाक्षयव्ययनिवेशया गतप्रत्यागतम्
॥ ३० ॥ अनपाश्रयया प्रत्यपसृतम् ॥ ३१ ॥ परेणानधिवास्यया स्वयमेव
भर्तारमुपग्राहयेत् ॥ ३२ ॥

जो मित्र राजा एक शत्रु का प्रतीकार करता है, वह एकतो भोगी होता है। जो शत्रु और आसार (उसके मित्र) दोनों का प्रतीकार कर देता है, वह उभयतो भोगी कहाता है। जो शत्रु आसार उसके पड़ोसी, वनचर भील सबका प्रतीकार कर देता है, वह सर्वतो भोगी होता है। पार्ष्णिग्राह वनचर शत्रु के मुख्य अमात्य या स्वयं शत्रु कुछ भूमि लेकर वश में आना चाहे, तो उनको गुणहीन साधारण भूमि देकर वश में करले। यदि ये दुर्ग में स्थित हों तो इनको अच्छी भूमि देवे, परन्तु वह भूमि अपने राज्य के मध्य में न होवे। जिस में अन्न आदि उत्पन्न न हो सके-ऐसी भूमि वनचरों को देकर टरका देवे। शत्रु राजा के कुलीन पुरुषों को ऐसी भूमि देवे-जो फिर लोटायी जा सके। शत्रु के पकड़े हुए राजकुमार को शत्रु से छीनी हुई भूमि दे देवे। किसी समूह के साथ मेल करना हो-तो उसको ऐसी भूमि देवे, जिसमें नित्य शत्रु खड़े होते हों। नेता वाले सेना के समूह को ऐसी भूमि देवे, जिस के समीप कोई अन्य बलवान् राजा रहता हो। कूट युद्ध करके रहने वाले, राजा को शत्रु के नित्य उपद्रव से युक्त और बलवान् सामन्त वाली भूमि देवे। बल वीरतादि युक्त शत्रु को ऐसी भूमि देवे, जिसमें सेना व्यायाम (कवायद) आदि न कर सके। शत्रु पक्ष के अमात्य आदिको शून्य स्थान प्रदान करे। जो प्रतिज्ञा तोड़ कर युद्ध में प्रवृत्त हो गया हो, उसे अन्न उत्पन्न करने में निर्वल भूमि का प्रदान करे। जो शत्रु से मिलकर अपने से फिर मिलना चाहता हो, उसे बड़ेजन और धन के नाश से बसने वाली भूमि देवे। शत्रु से डर कर भागे हुए सामन्त को फिर दुर्ग आदि से रहित भूमि देवे। जिस भूमि पर शत्रु का अधिकार होना असम्भवसा हो, उस भूमि को स्वयं अपने सच्चे स्वामी को समर्पित करे ॥ १५-३२ ॥

तेषां महोपकारं निर्विकारं चानुवर्तयेत् ॥ ३३ ॥ प्रतिलोममुपांशुनां
साधयेत् ॥ ३४ ॥ उपकारिणमुपकारशक्त्या तोषयेत् ॥ ३५ ॥ प्रयासतश्चार्थ-
मानौ कुर्यात् ॥ ३६ ॥ व्यसनेषु चानुग्रहं स्वयमागतानां यथेष्टदर्शनं प्रतिवि-
धानं च कुर्यात् ॥ ३७ ॥ परिभवापघातकुत्सातिवादांश्चैषु न प्रयुञ्जीत ॥ ३८ ॥
दत्त्वाचाभयं पितेवानुगृहणीयात् ॥ ३९ ॥ यश्चास्यापकुर्यात्तद्दोषमभिविख्याप्य
प्रकाशमेनं धातयेत् ॥ ४० ॥

इन में सबे हृदय से उपकार करने वाले राजा के साथ विजेता, शुद्ध हृदय से व्यवहार करे। जो छल के साथ व्यवहार करता हो, उसे गुप्त रीति से मरवा डाले। जो उपकार करने वाला है, उसे उपकार से वश में लावे और उनके परिश्रम के अनुसार उन्हें धन और मान प्रदान करे। जब उन पर कोई विपत्ति आवे-अनुग्रह दिखावे। आये हुए सामन्तों से स्वयं मिले और उनके कष्टों का प्रतिविधान (इलाज) भी कर देवे। इन जीते हुए राजाओं की पराजय के गीत, कटु वाक्य, निन्दा या इनकी किसी बात को बहुत बढ़ा कर न कहे, परन्तु जो विजयी राजा का अपकार करे, उसके उस दोष को प्रमाणित करके उसे प्रकाश रूप में मरवा देवे ॥ ३३-४० ॥

परोद्वेगकारणाद्वा दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेत ॥ ४१ ॥ न च हतस्य भूमि
द्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत ॥ ४२ ॥ कुल्यानप्यस्य स्वेषु पात्रेषु स्थापयेत् ॥ ४३ ॥
कर्मणि मृतस्य पुत्रं राज्ये स्थापयेत् ॥ ४४ ॥ एवमस्य दाण्डोपनताः पुत्रपौत्रा-
ननुवर्तन्ते ॥ ४५ ॥ यस्तूपनतान्हत्वा वध्ना वा भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत
तस्योद्विग्नं मण्डलमभावायांतिष्ठते ॥ ४६ ॥ ये चास्यामात्याः स्वभूमिप्रायत्तास्ते
चास्योद्विग्ना मण्डलमाश्रयन्ते ॥ ४७ ॥ स्वयं राज्यं प्राणान्वास्याभिमन्यन्ते ॥ ४८ ॥

यदि प्रकाश में बध करवाने से अन्य राजाओं में हलचल खड़ी हो जावेगी-तो दाण्ड कर्मिक प्रकरण में कहे हुए ढंग से उन्हें गुप्तचुप मरवा देवे। मरवाए हुए राजा की भूमि, द्रव्य पुत्र और स्त्रियों पर कभी आप अधिकार न करे, किन्तु उसके वंशजों को उनकी योग्यता के अनुसार ठिकानों पर नियुक्त करे। यदि किसी युद्ध कर्म आदि में कोई सामन्त राजा या शत्रु राजा मारा जावे, तो उसके पुत्र को ही उसके राज्य पर बैठा दिया जावे। यदि वरा में किये हुए राजाओं के साथ इस प्रकार वर्तान किया जावेगा तो उनके पुत्रों पौत्र भी अपने पुत्र पौत्र के अनुगामी चले जावेंगे। जो राजा अपने जीते हुए सामन्तों को मरवा देता या बन्धन में डाल देता है, तथा उसकी भूमि, द्रव्य, पुत्र और स्त्रियों को छीनता है, उससे अनेक राजा विगड़ बैठते हैं, और वे उसके नारा का प्रयत्न करने लगते हैं। इस राजा के अपनी २ भूमि के त्वामी अमात्य भी बदरा जाते हैं, और उस विद्रोही राज मण्डल से मिल जाते हैं जो इस राजा के राज्य या प्राणों के गाहक बन जाते हैं ॥ ४१-४८ ॥

स्वभूमिषु च राजानः तस्मात्सामानुपालिताः ।

भवन्त्यनुगुणा राज्ञः पुत्रपौत्रानुवर्तिनः ॥ ४९ ॥

इति पाङ्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे दण्डोपनायिवृत्तं षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

आदितश्चतुर्दशशतः ॥ ११४ ॥

उपयुक्त साम आदि उपायों द्वारा जीते हुए शत्रुओं को उनकी भूमि प्रदान करके जो अपने अनुकूल बना लेता है, उनके पुत्र पौत्र भी राजा के अनुगामी बन जाते हैं ॥४६॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत पाङ्गुण्य अधिकरण में पराजित राजा के साथ किये जाने वाले व्यवहार के वर्णन का सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



सत्रहवां अध्याय

१२२-१२३वां प्रकरण

सन्धि-कर्म सन्धि मोक्षः

इस प्रकरण में संधि विषयक वर्णन किया जावेगा ।

शमः संधिः समाधिरित्येकोऽर्थः ॥ १ ॥ राज्ञां विश्वासोपगमः शमः संधिः समाधिरिति ॥ २ ॥ सत्यं शपथो वा चलः संधिः ॥ ३ ॥ प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा स्थावरः इत्याचार्याः ॥ ४ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ५ ॥ सत्यं वा शपथो वा परब्रह्म च स्थावरः संधिः ॥ ६ ॥ इहार्थ एव प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा बलापेक्षः ॥ ७ ॥ संहिताः स्म इति सत्यसंधाः पूर्वे राजानः सत्येन संदधिरे ॥ ८ ॥

शम, संधि और समाधि-ये पर्यायवाची शब्द हैं । इस शम, संधि-या समाधि से ही राजाओं में परस्पर विश्वास की नींव पड़नी है । जो संधि सत्य का विश्वास दिलाकर या शपथ के आधार पर होती है, वह स्थिर नहीं होती, परन्तु जो प्रतिभू (जामिन) या राजकुमार को रखकर संधि की जाती है, वह दृढ़ होती है ऐसा आचार्यों का मत है, परन्तु कौटल्याचार्य-सत्य की शपथ खाकर जो संधि की जाती है, उसे स्थायी मानते हैं । उनका ख्याल है, कि इस लोक और परलोक के बिगड़ने के डर से योग्य मनुष्य इस संधि को नहीं तोड़ सकते हैं । प्रतिभू और राजकुमार आदि को प्रतिग्रह के रूप में रखकर जो संधि की जाती है, वह इस लोक के यश अपयश पर ही निर्भर है या जब तक बल नहीं है, तभी तक चलती है । हम तुम संधि करके एक रहेंगे-इस तरह बहुत से पूर्वज सत्य प्रतिज्ञा राजाओं ने अपने कथन को अन्त तक निभाया है ॥१-८॥

तस्यातिक्रमे शपथेन अग्न्युदकसीताप्राकारलोम्हास्तिस्कन्धाथपृष्ठरथो-
पस्थशस्त्ररत्नबीजगन्धरससुवर्णहिरण्यान्यालेभिरे ॥ ९ ॥ हन्युरेतानि त्यजेयुश्चैनं
यः शपथमतिक्रामेदिति ॥ १० ॥ शपथातिक्रमे महतां तपस्विनां मुख्यानां वा
प्रातिभाव्यवन्धः प्रतिभूः ॥ ११ ॥ तस्मिन्यः परावग्रहसमर्थान्प्रतिभूवो गृह्णाति
सो ऽतिसंधत्ते ॥ १२ ॥ विपरीतोऽतिसंधीयते ॥ १३ ॥

जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा का अतिक्रमण करता है, उसे शपथ पूर्वक अग्नि, जल, हल, प्राकार (दीवार) लोष्ठ (मिट्टी का ढेला) हाथी का स्कन्ध, अग्न्युदक, रथ की बैठक, शस्त्र, रत्न, बीज, गन्ध, घृतादिरस, सुवर्ण और तपाये हुए हिरण्य को छूना पड़ता है : जो शपथ का अतिक्रमण करता है, उसको ये वस्तु त्याग देनी हैं, या मार डालनी हैं। यदि कोई शपथ का अतिक्रमण करदे-तो बड़े २ तपस्वी या मुख्य पुरुषों को बीच में डालकर प्रतिभू बनाले। उनमें जो शत्रु के रोकने में समर्थ हो-उसीको प्रतिभू बनावे। ऐसा प्रतिभू बनाने वाला ही अपना कार्य बना सकता है। जो इसके विपरीत करता है, वह धोखा खाता है ॥९-१३॥

बन्धुमुख्यप्रग्रहः प्रतिग्रहः ॥ १४ ॥ तस्मिन्यो दूष्यादूष्यामात्यं दूष्यापत्यं
वा ददाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १५ ॥ विपरीतो ऽतिसंधीयते ॥ १६ ॥ प्रतिग्रहग्र-
हणविश्वस्तस्य हि परः छिद्रेषु निरपेक्षः प्रहरति ॥ १७ ॥ अपत्यसमाधौ तु
कन्यापुत्रदाने दत्तु कन्यामतिसंधत्ते ॥ १८ ॥ कन्या ह्यदायादा परेषामेवार्थाय
क्लेशाय च विपरीतः पुत्रः ॥ १९ ॥

शत्रु राजा के बन्धु या मुख्य पुरुषों को रत्न लेना, प्रतिग्रह होता है। इसमें जो राजा दुष्ट अमात्य तथा दुष्ट पुत्रादि को प्रदान करता है, वह अपना कार्य बना लेता है और जो सचाई से अपने पुत्र आदि को उस राजा के अधीन कर देता है, वह अपना कार्य बिगाड़ लेता है। प्रतिगृहीत राजकुमार आदि के कारण शत्रु राजा को तो विश्वास रहता है, परन्तु विजयाभिलाषी राजा, अपने शत्रु राजा की ब्रूटि देखकर बिना संकोच प्रहार कर देता है। सम्मान के प्रतिग्रह की शर्त में जो कन्या को प्रतिग्रह रूप में रख देता है, वह जीतता है, क्योंकि कन्या राज्य की अधिकारिणी स्वयं नहीं है। वह तो दूसरों की धरोहर और पिता के कष्ट का कारण ही है। पुत्र को प्रतिग्रह रूप में रखने से स्वार्थ की हानि हो जाती है ॥१४-१९॥

पुत्रयोरपि जात्यं शूरं प्राज्ञं कृतास्त्रमेकपुत्रं वा ददाति सो ऽतिसंधीयते
॥ २० ॥ विपरीतो ऽतिसंधत्ते ॥ २१ ॥ जात्यादजात्यो हि लुप्तदायादसंतान-

त्वादाधातुं श्रेयान् ॥ २२ ॥ प्राज्ञादप्राज्ञो मन्त्रशक्तिलोपात् ॥ २३ ॥ शूरादशूर
उत्साहशक्तिलोपात् ॥ २४ ॥ कृतास्त्रादकृतास्त्रः प्रहर्तव्यसंपन्नोपात् ॥ २५ ॥
एकपुत्रादनेकपुत्रो निरपेक्षत्वात् ॥ २६ ॥

दो पुत्रों में से जो अपने कुलीन, शूरवीर बुद्धिमान, विद्या में कुशल, एक मात्र पुत्र को उसे सौंप देता है, वह भी अपना कार्य नष्ट कर लेता है। मूर्ख कायर पुत्र को प्रतिग्रह रूप में भी रख देने से अपने स्वार्थ की सिद्धि ही हांती हैं। जो अपनी जाति की स्त्री में उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसे पुत्र को शत्रु राजा को सौंप देने पर कोई हानि नहीं है। उसे राज्य में कोई अधिकार नहीं है और न वह सत्य अर्थ में सन्तान ही है। बुद्धिमान की अपेक्षा बुद्धिहीन को शत्रु राजा के पास भेज देना उत्तम है, क्योंकि उससे कठिनाई के समय कोई मन्त्रणा आदि का लाभ नहीं है। शूरवीर की अपेक्षा कायर पुत्र शत्रु राजा को सौंपा जावे, क्योंकि उससे कोई वीरता का कार्य होने की आशा नहीं है। अस्त्र विद्या में कुशल पुत्र की अपेक्षा अस्त्र विद्या में अकुशल पुत्र का प्रतिग्रह करना उचित है, क्योंकि उससे कोई युद्ध में प्रहार की आशा नहीं है। इकलौते पुत्र की अपेक्षा अनेक पुत्रों वाला पुत्र को प्रतिग्रह रूप में रखे, क्योंकि अनेक पुत्र होने पर एक पुत्र के कारण उससे उलम्ह रहना नहीं पड़ेगा ॥२०-२६॥

जात्यप्राज्ञयोर्जात्यमप्राज्ञमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तते ॥२७॥ प्राज्ञमजात्यं मन्त्राधिकारः ॥२८॥ मन्त्राधिकारेऽपि वृद्धसंयोगाज्जात्यः प्राज्ञमतिसंधत्ते ॥२९॥ प्राज्ञशूरयो प्राज्ञमशूरं मतिकर्मणां योगोऽनुवर्तते ॥३०॥ शूरमप्राज्ञं विक्रमाधिकारः ॥३१॥ विक्रमाधिकारेऽपि हस्तिनमिव लुब्धकः प्राज्ञः शूरमतिसंधत्ते ॥३२॥

कुलीन और बुद्धिमान पुत्र में जो कुलीन और मूर्ख भी पुत्र होता है, तो भी राज्य का अधिकार मूर्ख पुत्र को मिलता है कुल विहीन बुद्धिमान पुत्र तो मन्त्रणा का अधिकारी है। मन्त्र के अधिकारी होने पर भी कुलीन पुत्र ही बुद्धिमान से अधिक श्रेष्ठ माना गया है। बुद्धिमान और शूरवीर पुत्र में बुद्धिमान कायर पुत्र में भी बुद्धि के कार्यों का भोग मिलता है। बुद्धि विहीन शूरवीर में पराक्रम होता है। यद्यपि मूर्ख पराक्रमी पराक्रम कर सकता है, परन्तु जैसे लुब्धक, हाथी को पकड़ लेता है, वैसे ही बुद्धिमान, पराक्रमी को वश में कर सकता है ॥२७-३२॥

शूरकृतास्त्रयोः शूरमकृतास्त्रं विक्रमव्यवसायोऽनुवर्तते ॥ ३३ ॥ कृतास्त्रमशूरं लक्षलम्भाधिकारः ॥ ३४ ॥ लक्षलम्भाधिकारेऽपि स्थैर्यप्रतिपत्त्यसंमोहैः

शूरः कृतास्त्रमतिसंधत्ते ॥ ३५ ॥ बह्वैकपुत्रयोर्वहुपुत्र एकं दत्त्वा शेषवृत्तिस्तब्ध
संधिमतिक्रामति नेतरः ॥ ३६ ॥ पुत्रसर्वस्वदाने संधिश्चेत्पुत्रफलतो विशेषः
॥ ३७ ॥ समफलयोः शक्तप्रजननतो विशेषः ॥ ३८ ॥ शक्तप्रजननयोरप्युप-
स्थितप्रजननतो विशेषः ॥ ३९ ॥ शक्तिमत्येकपुत्रे तु लुप्तपुत्रोत्पत्तिरात्मानमाद-
ध्यान्नचैकपुत्रमिति ॥ ४० ॥

पराक्रमी और अस्त्र विद्या में कुशल पुत्र में शूर, अस्त्र विद्या में अकुशल पुत्र में पराक्रम रहता है। पराक्रम हीन अस्त्र विद्या में कुशल पुत्र में लक्ष बँधने की चतुराई होती है। यद्यदि कृतास्त्र लक्ष्य बँध लेता है तोभी धीरता, ज्ञान और असंमोह के कारण शूरवीर कृतास्त्र से श्रेष्ठ माना गया है। एक पुत्र और बहुत से पुत्रों में बहुत पुत्र होना श्रेष्ठ है, क्योंकि एक पुत्र को देकर शेष पुत्रों पर राजा अभिमान करके सन्धि का अतिक्रमण कर सकता है। एक पुत्र वाला ऐसा नहीं कर सकता है। पुत्र और सर्वस्वदान करने पर संधि होतो पुत्र के पुत्र उत्पन्न होने पर पुत्र को भेज दिया जावे-तो अधिक हानि नहीं है। यदि दो पुत्र, होतो जो सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो-उसकी अपेक्षा दूसरे को भेज देवे। दो सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ पुत्रों के होने पर जो शीघ्र सन्तान उत्पन्न करने वाला हो-उसे बचा रखना चाहिए। यदि सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ एक ही पुत्र हो और आप सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति से हीन हो गया हो-तो अपने कोही शत्रु को सौंप देवे, परन्तु अपने एकलोते पुत्र को कभी न सौंपे ॥३३-४०॥

अभ्युच्चीयमानः समाधिमोक्षं कारयेत् ॥ ४१ ॥ कुमारासन्नाः सत्तिणः
कारुशिल्पिव्यञ्जनाः कर्माणि कुर्वाणाः सुरङ्गया रात्रावुपखानयित्वा कुमारमपह-
रेयुः ॥ ४२ ॥ नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवस्रवकसौभिका वा पूर्वप्रशि-
हिताः परमुपतिष्ठेरन् ॥ ४३ ॥ ते कुमारं परम्परयोपतिष्ठेरन् ॥ ४४ ॥ तेषामनि-
यतकालप्रवेशस्थाननिर्गमनानि स्थापयेत् ॥ ४५ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनो वा रात्रौ प्रति-
ष्ठेत ॥ ४६ ॥ तेन रूपाजीवा भार्याव्यञ्जनाश्च व्याख्याताः ॥ ४७ ॥

जब अपने भीतर अधिक शक्ति हो जावे, तो सन्धि को तोड़ देवे। राजकुमार के समीपवर्ती कारीगर, शिल्पी आदि के वेष में रहने वाले सन्त्री आदि गुप्तचर अपने २ काम करते हुए सुरंग खोद कर रात में राजकुमार को ले उड़े। नट, नर्तक, गायक, वादक वाग्जीवन, स्तुति पाठक, तलवार आदि के खेल दिखाने वाले तथा आकाश में उड़ने वालों का वेष धारण किये हुए गुप्तचर शत्रु राजा तक पहुँचे। इसी परम्परा के अनुसार ये

राजकुमार तक भी पहुंच जावें । वह राजकुमार भी उन नटादि का हर समय आना जाना रहना मन्जूर करा लेवे, फिर उनका ही वेप बनाकर रात में निकल जावे । इसी तरह वेश्या या भार्या के रूप में पहुंचे हुए गुप्तचर राजकुमार को छुड़ा लेवें ॥ ४१-४ ॥

तेषां वा तूर्यभाण्डफेलां गृहीत्वा निर्गच्छेत् ॥ ४८ ॥ सूदारालिकस्ताप-
कसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारकैर्वा द्रव्यवस्त्रभाण्डफेलाशयनासनसं-
भोगैर्निहियेत् ॥ ४९ ॥ परिचारककच्छद्मना वा किञ्चिदरूपवेलायामादाय निर्ग-
च्छेत् ॥ ५० ॥ सुरङ्ग मुखेन वा निशोपहारेण ॥ ५१ ॥ तोयाशये वा वारुणं
यौगमातिष्ठेत् ॥ ५२ ॥

जब नट नर्तक आदि गाने बजाने को घर में आने जाने लगे-तो मौका पाकर उनके चाजे वर्तन पेटी आदि उठाकर सेवक के रूप में चलता बने । इसी तरह रसोइये, हलवाई, स्नान कराने, शरीर ढवाने विस्तर बिछाने वाले, नाई, शृङ्गार कर्ता, जल पिलाने वाले, सेवकों का वेप बनाकर किसी वस्तु वस्त्र वर्तन, पेटी, शय्या, आसन आदि भोग विलास की सामग्री को लेकर राजकुमार निकल सकता है । राजकुमार जब चाहे-तब नौकर का वेप बनाकर अंधेरी रात में जो कुछ भी चीज हाथ लगे-लेकर चल देवे । या सुरङ्ग के मार्ग से निकल सकता है या रात में भूतवर्ति का बहाना बनाकर जा सकता है जलाशय पर वारुण नामक भोग का अनुष्ठान न करके शत्रु राजा के बन्धन से राज-कुमार छुटकारा पा सकता है ॥ ४८-५२ ॥

वैदेहकव्यञ्जना वा पक्वान्नफलव्यवहारेणारक्षिषु समवचारयेयुः ॥ ५३ ॥
दैवतोपहारश्चाद्धग्रहवर्णनिमित्तमारक्षिषु मदनयोग युक्तमन्नपानं रसं वा प्रयुज्याप-
गच्छेत् ॥ ५४ ॥ आरक्षकप्रोत्साहनेन वा ॥ ५५ ॥ नागरककुशीलवचिकित्सका-
पूपिकव्यञ्जना वा रात्रौ समृद्धगृहाण्यादीपयेयुः ॥ ५६ ॥ आरक्षिणो वैदेहकव्य-
ञ्जना वा पण्यसंस्थामादीपयेयुः ॥ ५७ ॥ अन्यद्वा शरीरं निक्षिप्य स्वगृहमादी-
पयेदनुपातभयात्ततः संधिच्छेदखातसुरङ्गाभिरपगच्छेत् ॥ ५८ ॥

व्यापारी के वेप में घूमने वाले गुप्तचर पक्वान्न या फलों के व्यवहार से पहरे-दारों को विष देदेवे अथवा देवता के प्रसाद श्राद्ध या प्रीति भोजन के बहाने से पहरेदारों को घतूरे आदि से मिले हुए अन्नपान या विष दे करके राजकुमार निकल जावे । अपने रक्षक पहरेदारों को बहुत से धन देने का लोभ देकर भी शत्रु राजा के प्रति ग्रह से छुटकारा पाया जा सकता है । नागर रक्षक, नट, वैद्य, मिठाई के खोमचे बेचने

वालों का रूप बनाकर रात में मालदारों के घर में आग लगा देवे और फिर आप निकल जावे। ये पहरेदार या व्यापारी के वेप में घूमने वाले गुप्तचर वाजार की दुकानों में आग लगावे। किसी मृतक का शरीर अपने घर में डालकर राजकुमार ही स्वयं आग लगाकर अपने मकान की खिड़की, छेक, गडढे, सुरङ्ग आदि से चलेता वने। इस कार खोज करने का भी भय नहीं रहेगा ॥ ५३-५८ ॥

काचकुम्भभाण्डभारव्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत ॥ ५९ ॥ मुण्डजटिलानां प्रवासनान्यनुप्रविष्टो वा रात्रौ तव्यञ्जनः प्रतिष्ठेत ॥ ६० ॥ विरूपव्याधिकरणा-रण्यचरच्छद्मनामन्यतमेन वा ॥ ६१ ॥ प्रेतव्यञ्जनो वा गृहैर्निहियेत ॥ ६२ ॥ प्रेतं वा स्त्रीवेपेणानुगच्छेत् ॥ ६३ ॥ वनचरव्यञ्जनाश्चैनमन्यतो यान्तमन्यतोऽपदिशेयुः ॥ ६४ ॥ ततोऽन्यतो गच्छेत् ॥ ६५ ॥ चक्रचराणां वा शकटवा-टैरपगच्छेत् ॥ ६६ ॥

लकड़हारा, कहार या अश्व के सामान के ले जाने वाले सेवक के रूप में राजकुमार रात में प्रस्थान कर देवे। जब मुँड मुड़ाये हुए या जटाधारी साधु नगर से बाहर जावे-तो उनका सा वेप बनाकर राजकुमार भी रात में चल देवे। इसी तरह अपना रूप बिगाड़े या रोगी का सा आकार बनाकर या वनचर बीलों का वेप धारण करके राजकुमार वडां से निकले या गुप्तचर मृतक की तरह राजकुमार को अर्थी में डालकर ले जावे अथवा किसी मुर्दे के साथ जाने वाली स्त्रियों में स्त्री का वेप बनाकर-मिलकर राजकुमार चल देवे। जब राज-पुरुष राजकुमार की खोज में निकले-तो वनचर के वेप में घूमने वाले गुप्तचर अन्य ओर गये हुए राजकुमार से विपरीत दिशा में उन अन्वेपकों को भेज देवे। राजकुमार तो अन्य मार्ग से ही निकाल जावे या गाड़ी चलाने वालों के साथ गाड़ी के मार्ग से निकल जावे ॥ ५९-६६ ॥

आसनं चानुपाते सत्त्वा गृहणीयात् ॥ ६७ ॥ सत्त्वाभावे हिरण्यं रणविद्धं वा भक्षजातमुभयतः पन्थानमुत्सृजेत् ॥ ६८ ॥ ततोऽन्यतोऽपगच्छेत् ॥ ६९ ॥ गृहीतो वा सामादिभिरनुपातमतिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ रसविद्धेन वा पन्थ्य (पाथेय) दानेन ॥ ७१ ॥ वारुणयोगाग्निदाहेषु वा शरीरमन्यदाधाय शत्रुमभियुज्जीत पुत्रो मे त्वया हत इति ॥ ७२ ॥

यदि खोजने वाले समीप आ पहुँचे-तो राजकुमार किसी निर्जन स्थान में छुप जावे। यदि छुपने की जगह न होवे-तो मार्ग में सुवर्ण बखेर देवे और विष मिश्रित मिठाई रख देवे-जब खोजने वाले सुवर्ण चुनने लगे या मिठाई खा जावे-तो आप अन्य

मार्ग से खसक जावे । यदि किसी तरह वे पकड़ ही लेवे-तो साम आदि उपायों से उन के पास से चल देवे या विष मिले हुए अन्न को देकर उन्हें मार देवे या बेहोश करके चल देवे । वारुण योग या अग्नि दाह में अन्य शरीर को डालकर शत्रु पर राजा दोष लगावे, कि तुमने हमारा राजकुमार मरवा दिया-इस मन्त्र में शत्रु राजा उसकी खोज नहीं करावेगा ॥ ५७-७२ ॥

उपात्तच्छत्रशस्त्रो वा रात्रौ विक्रम्य रक्षिषु ।

शीघ्रपातैरपसरेदूढप्रणिहितैः सह ॥ ७३ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे संधिकर्मसंधिमोक्षः सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

आदितः पञ्चदशशतः ॥ ११५ ॥

राजकुमार शस्त्र लेकर और पहरेदारों को रात में मारकर अपने गुप्तचरों के साथ शीघ्रगामी सवारी द्वारा शत्रु के देश से भाग निकले ॥ ७३ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में सन्धि कम और राज-

कुमार के छुड़ाने के उपायों के वर्णन का सत्रहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



अठारहवां अध्याय

१२४-१२६वां प्रकरण

मध्यम चरितमुदासीन चरितं मण्डल चरितम्

इस प्रकरण में मध्यम उदासीन और अन्य राजमण्डल के व्यवहार का वर्णन किया जावेगा ।

मध्यमस्यात्मतृतीया पञ्चमी च प्रकृती प्रकृतयः ॥ १ ॥ द्वितीया च चतुर्थी षष्ठी च विकृतयः ॥ २ ॥ तच्चेदुभयं मध्यमोऽनुगृह्णीयाद्विजिगीषुर्मध्यमानुलोमः स्यात् ॥ ३ ॥ न चेदनुगृह्णीयात्प्रकृत्यनुलोमः स्यात् ॥ ४ ॥

आप और अपने मित्र तथा मित्र के मित्र ये मध्यम राजा के प्रकृति और शत्रु, शत्रु के मित्र तथा शत्रु के मित्र के मित्र-ये विकृति कहाते हैं । मध्यम राजा अपने इन दोनों प्रकृति और विकृति को अनुग्रह पूर्वक अनुकूल बनाके रखे और विजयाभिलाषी राजा अपने मध्यम राजा को प्रसन्न रखे । यदि मध्यम अपने विकृति राजाओं को अनुकूल न रख सके-तो उसे अपने प्रकृति राजाओं को तो अनुकूल बनाये ही रखना चाहिए ॥ १-४ ॥

मध्यमश्चेद्विजिगीषोर्मित्रं मित्रं भावि लिप्सेत मित्रस्यात्मनश्च मित्राण्यु-
त्थाप्य मध्यमाच्च मित्राणि भेदपित्वा मित्रं त्रायेत् ॥ ५ ॥ मण्डलं वा प्रोत्सा-
हयेत् ॥ ६ ॥ अतिप्रवृद्धोऽयं मध्यमः सर्वेषां नो विनाशायाम्युत्थितः संभ्रूयाम्य
यात्रां विहनाम इति ॥ ७ ॥ तच्चेन्मण्डलमनुग्रहणीयान्मध्यमावग्रहेयात्मानमुप-
वृंहयेत् ॥ ८ ॥

यदि मध्यम विजेता राजा के दृढ़ मित्र को अपने अधीन करना चाहे, तो राजा
अपने मित्र या अपने ही मित्रों को उत्तेजित करके और मध्यम के मित्रों में फूट
डलवाकर अपने मित्र की रक्षा करे। यदि हो सके तो मध्यम राजा के विरुद्ध राजमण्डल
को भड़का देवे। यह मध्यम राजा बहुत बड़ गया है। यह हमारे और तुम्हारे विनाश
की चेष्टा में संलग्न है। अब हम तुम मिलकर इसकी चढ़ाई का मुझबला करें।
यदि राजमण्डल भड़क कर सहायता देने को तय्यार हो जावे-तो मध्यम राजा का अवग्रह
करके विजयाभिलाषी राजा अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेवे ॥ ५-८ ॥

नचेदनुग्रहणीयात्कोशदण्डाभ्यां मित्रमनुग्रह्य ये मध्यमद्वेषिणो राजानः
परस्परानुगृहीता वा बहवस्तिष्ठेयुरेकसिद्धौ वा बहवः सिद्धयेयुः परस्पराद्वा शङ्किता
नोत्तिष्ठेरंस्तेषां प्रधानमेकमासन्नं वा सामादानाभ्यां लभेत् ॥ ९ ॥ द्विगुणो
द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम् ॥ १० ॥ एवमभ्युच्चितो मध्यममवग्रहणीयात् ॥ ११ ॥

यदि सारा राजमण्डल, मध्यम राजा के विरुद्ध न भड़के-तो राजा कोश और सेना
द्वारा अपने मित्र की सहायता करके जो परस्पर सहायता के वचन में बद्ध मध्यम राजा
के बहुत से शत्रु हों-उनको मिला ले या एक प्रधान के मिलने से सब मिल जावे-तो
उसे अपनी ओर कर लेवे। यदि परस्पर शङ्का रहने से वे न विगड़ते हों-तो उनमें समीप
वर्ती किसी प्रधान राजा को साम दान से अपनी ओर मिलाने की चेष्टा करे इस प्रकार
दूसरे की सहायता मिलते ही विजेता दुगुने और तीसरे की सहायता प्राप्ति होते ही
तिगुने बल वाला हो जाता है। इस प्रकार उन्नत होकर मध्यम राजा को पकड़ लेवे ॥ ९-११ ॥

देशकालातिपत्तौ वा संघाय मध्यमेतरमित्रस्य साचिव्यं कुर्यात् दूयेषु वा
कर्मसंघिम् ॥ १२ ॥ कर्शनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत प्रतिस्तम्भयेदेनमहं
त्वा त्रायेय इत्याकर्शनात् ॥ १३ ॥ कर्शितमेवं त्रायेत् ॥ १४ ॥

यदि देश काल अनुकूल नहो-तो मध्यम राजा और अपने मित्र की सन्धि करा
देने में आप प्रधान बन जावे। यदि इतने पर भी मध्यम राजा न माने-तो उस

से विगड़े हुए अमात्य आदि से गुप्तचर सन्धि करके उपद्रव खड़ा कर देवे। यदि किसी उद्धत मित्र को दुर्बल बनाना है और उसपर मध्यम राजा चढ़ाई करता है, तो उस मित्र को वचन देकर युद्ध के लिए तैयार कर देवे, कि मैं तेरी रक्षा करूंगा। जब मध्यम राजा उसको दुर्बल करदे-तब उसकी रक्षा में तत्पर हो जावे ॥ ११-१४॥

उच्छेदनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत कर्षितमेतं त्रायेत मध्यमवृद्धि-
भयात् ॥ १५ ॥ उच्छिन्नं वा भूम्यनुग्रहेण हस्ते कुर्यादन्यत्रापसारभयात् ॥ १६ ॥
कर्षणीयोच्छेदनीययोश्चेन्मित्राणि मध्यमस्य साचिव्यकराणि स्युः पुरुषान्तरेण
संधीयेत ॥ १७ ॥ विजिगीष्योस्तयोर्मित्राण्यवग्रहसमर्थानि स्युः संधि-
मुपेयात् ॥ १८ ॥

किसी उच्छेद के योग्य उद्दण्ड मित्र पर यदि मध्यम राजा चढ़ाई करदे-तो इस मित्र के क्षीण हो जाने पर इसकी अवश्य सहायता करे-अन्यथा मध्यम राजा बल-वान् हो जावेगा। यदि उसका राज्य छीन लिया गया है, तो अपने पास से भूमि देकर उसे अपनी ओर मिलाए रखे-कि वह दूसरे के अधीन न हो जावे। यदि क्षीण बनाने योग्य या उखाड़ने योग्य राजाओं के साथ मित्र विजेता पर आक्रमण करना चाहें, तो किसी पुरुष को बीच में डालकर राजा मध्यम से भी सन्धि कर लेवे। यदि विजेता के क्षीण करने योग्य और उखाड़ने योग्य मित्रों के मित्र अपने पकड़ लेने में समर्थ हों-तो इनसे ही सन्धि कर लेवे ॥ १५-१८॥

अमित्रं वास्य मध्यमो लिप्सेत संधिमुपेयात् ॥ १९ ॥ एवं स्वार्थश्च
कृतो भवति मध्यमस्य प्रियं च ॥ २० ॥ मध्यमश्चेत्स्वमित्रं मित्रभावि लिप्सेत
पुरुषान्तरेण संदध्यात् ॥ २१ ॥ सापेक्षं वा नार्हसि मित्रमुच्छेत्तुमिति वारये-
दुपेक्षेत वा मण्डलमस्य कुप्यतु स्वपक्षध्यादिति ॥ २२ ॥

यदि मध्यम राजा किसी शत्रु पर चढ़ाई करे-तो राजा को चाहिए कि वह मध्यम राजा से संधि कर लेवे। इस प्रकार अपनी स्वार्थ सिद्धि और मध्यम से प्रीति हो जाती है। यदि मध्यम अपने ही किसी मित्र भावि संज्ञक मित्र को अधीन करना चाहे-तो अन्य पुरुष [सेनापति आदि] द्वारा विजयाभिलाषी राजा-मध्यम राजा से संधि कर लेवे। यदि उस मित्र से अपना स्वार्थ बनता हो-तो मध्यम राजा को यह कहकर अनुत्साहित कर देवे, कि मित्र पर चढ़ाई करना उचित नहीं है। यदि मित्र पर आक्रमण करने से मध्यम राजा का मन्त्रि मण्डल कुपित होता हो-तो आप इस झगड़े का दूर से ही समाशा-

देखे। अपने पक्ष पर आक्रमण करने से अपने मन्त्रि मण्डल का कुपित होना बहुत कुछ सम्भव है ॥१६-२२॥

अमित्रमात्मनो वा मध्यमो लिप्सेत् ॥ २३ ॥ कोशदण्डाभ्यामेनमदृश्य-
मानो ऽनुगृह्णीयात् ॥ २४ ॥ उदासीनं वा मध्यमो लिप्सेत् ॥ २५ ॥
उदासीनाद्धियतामिति ॥ २६ ॥ मध्यमोदासीनो यो मण्डलस्याभिप्रेतस्तमा-
श्रयेत् ॥ २७ ॥ मध्यमचरितेनोदासीनचरितं व्याख्यातम् ॥ २८ ॥ उदासीनश्चेन्मध्यमं
लिप्सेत् यतः शत्रुमतिसंदर्भ्यान्मित्रस्योपकारं कुर्यादुदासीनं वा दण्डोपकारिणं
लभेत् ततः परिणमेत् ॥ २९ ॥ एवमुपवृत्त्यात्मानमरिप्रकृतिं, कर्शयेन्मित्रप्रकृतिं
चोपगृह्णीयात् ॥ ३० ॥

यदि मध्यम राजा अपने किसी शत्रु पर आक्रमण कर रहा हो-तो छुपे २ उसकी धन और सेना से सहायता करे। यदि मध्यम राजा किसी उदासीन राजा पर चढ़ाई करे-तो मध्यम उदासीन से बिल्कुल लड़ जावे-इसालए उपेक्षा से देखता रहे और फिर युद्ध छिड़ने पर मध्यम और उदासीन राजा में जो अपने मण्डल को अभीष्ट हो-उसकी सहायता कर देवे। मध्यम के विषय में जो कुछ कहा गया है-वही उदासीन भी ऐसा करने लगे-तो उसके साथ भी मध्यम का सा ही आचरण किया जावे। यदि उदासीन राजा मध्यम को दवाना चाहे, तो जिसकी सहायता करने से शत्रु का अपकार और मित्र का उपकार हो सके-उसकी सहायता करे। जहां तक हो-उदासीन को अपनी सेना की सहायता दे देवे और होने वाले परिणाम को देखे। इस प्रकार अपनी वृद्धि करके शत्रु का अपकार और मित्र के उपकार में समर्थ हो जावे ॥२३-३०॥

सत्यप्यमित्रभावे तस्यानात्मवान्नित्यापकारी शत्रुः शत्रुसहितः पार्श्विग्राहो
वा व्यसनी यातव्यो व्यसने वा नेतुरभियोक्त्यरिभाविनः ॥ ३१ ॥ एकार्था-
भिप्रयातः पृथगर्थाभिप्रयातः संभूययात्रिकः संहितप्रयाणिकः स्वार्थाभिप्रयातः
सामुत्थायिकः कोशदण्डयोरन्यतरस्य क्रेता विक्रेता द्वैधीभाविक इति
मित्रभाविनः ॥ ३२ ॥ सामन्तो बलवतः प्रतिघातोऽन्तर्धिः प्रतिवेशो वा बलवतः
पार्श्विग्राहो वा स्वयमुपनतः प्रतापोपनतो वा दण्डोपनत इति भृत्यभाविनः
सामन्ताः ॥ ३३ ॥ तैर्भूम्येकान्तरा व्याख्याताः ॥ ३४ ॥

जब शत्रु भाव उत्पन्न होता है, तो आत्मगुण से रहित नित्य अपकार करने वाला द्वेषी, शत्रु-खड़ा हो जाता है। उसी शत्रु की सहायता से उसका पार्श्विग्राह

(पीछे से उपद्रव करने वाला) शत्रु बन जाता है। किसी संकट में फंसे हुए चढ़ाई करने योग्य राजा पर जो चढ़ाई करने को किसी अन्य को उत्साहित कर देता है-ये शत्रु भावी सामन्त कहाते हैं। विजेता के साथ एक स्वार्थ रखकर कर चलने वाला, अथवा दूसरे अभिप्राय से विजेता की सहायता में तत्पर, विजेता के साथ २ उसीके अभिप्राय के अनुकूल चलने वाला, विजेता संधि नियमों के अनुसार साध देने वाला, विजेता के स्वार्थ के निमित्त चढ़ दौड़ना, विजेता के अभिप्रायानुसार शत्रु स्थानों का बसाने वाला कोश या सेना को परस्पर बेचना या खरीदना, तथा द्वैधी भाव से अपना काम निकालने वाला, सामन्त मित्र भावी होता है। बलवान् से दबाया हुआ, बीच में पड़ा हुआ, पड़ोसी, बलवान् का पार्ष्णि ग्राह स्वयं आमा हुआ, अपने प्रताप से दबाया हुआ, या सेना द्वारा वश में किया हुआ, सामन्त भृत्यभावी कहाते हैं। एक देश के अन्तर से राज्य करने वाले राजाओं की भी यही व्यवस्था है, अर्थात् वे भी शत्रुभावी, मित्रभावी और भृत्यभावी बन जाते हैं ॥ ३१-३४ ॥

तेषां शत्रुविरोधे यन्मित्रमेकार्थतां व्रजेत् ।

शक्त्या तदनुगृहणीयाद्विपहेतु यथा परम् ॥ ३५ ॥

यदि इन उपर्युक्त राजाओं में किसी से मित्रता और उनका शत्रु से विरोध होने पर उनकी अपनी शक्ति से सहायता करे-जिसके द्वारा वह अपने शत्रु के आक्रमण को सह सके ॥ ३५ ॥

प्रसाध्य शत्रुं यन्मित्रं वृद्धं गच्छेदवश्यताम् ।

सामन्तैकान्तराभ्यां तत्प्रकृतिभ्यां विरोधयेत् ॥ ३६ ॥

जो मित्र, शत्रु को जीतकर अपने को भी आख दिखाने लगे और प्रेम भाव न रखे-तो उसके सामन्त या एकावासी पड़ोसी राजाओं तथा उसके अमात्य आदि से उसका विरोध करा देवे ॥ ३६ ॥

तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां भूमिं वा तस्मै हारयेत् ।

यथावानुग्रहापेक्षं वश्यं तिष्ठेत्तथा चरेत् ॥ ३७ ॥

अपने वंश में नहीं रहने वाले मित्र के वन्धु-बान्धव या पकड़े हुए अमात्य आदि को भड़काकर उसकी भूमि का अपहरण करवा देवे। सारांश यह है, कि जिस तरह हो सके-उसे इतना अनुरोधित किया जावे, कि वह अपने अनुग्रह की इच्छा करके सदा वंश में रहता चला जावे ॥ ३७ ॥

नोपकुर्यादमित्रं वा गच्छेद्यदतिकर्षितम् ।

तदहीनमवृद्धं च स्थापयेन्मित्रमर्थवित् ॥ ३८ ॥

जो मित्र दुर्बल होकर उपकार करने में असमर्थ सा होगया या शत्रु से मिल जाने की जिसकी आशङ्का होगई-उस मित्र को नीतिमान् राजा शक्ति हीन और ऐश्वर्ये कीर्ण ही बना रहने देवे ॥३८॥

अर्थयुक्त्या चलं मित्रं संधिं यदुपगच्छति ।

तस्यापगमने हेतुं विहन्यान् चलेद्यथा ॥ ३९ ॥

जो चञ्चल प्रकृति मित्र, धन के लालच से सन्धि करता है, उसके दूसरे से मिलने की शंका को अपने पास से धन देकर विजेता नष्ट कर देवे जिससे वह शत्रु से न मिल सके ॥३९॥

अरिसाधारणं यद्वा तिष्ठेत्तदरितः शठम् ।

भेदयेद्भिन्नमुच्छिन्द्यात्ततः शत्रुमनन्तरम् ॥ ४० ॥

जो मित्र शत्रु से मिल जावे, प्रथम उसका शत्रु से भेद करावे और जब उनमें फूट पड़ जावे-तब उस मित्र को नष्ट कर देवे और उसके अनन्तर अपने शत्रु का भी उच्छेद कर देवे ॥४०॥

उदासीनं च यत्तिष्ठेत्सामन्तस्तद्विरोधयेत् ।

ततो विग्रहसंतप्तमुपकारे निवेशयेत् ॥ ४१ ॥

जब कोई राजा अपने से उदासीन हो जावे-तो उसका उसके सामन्तों से झगड़ा करा देवे । जब वह विग्रह में उलझ जावे-तो फिर उसको अपने उपकार की ओर प्रवृत्त कर लेवे ॥४१॥

अमित्रं विजिगीषुं च यत्संचरति दुर्बलम् ।

तद्वचनेनानुगृहणीयाद्यथा स्यान्न पराङ्मुखम् ॥ ४२ ॥

अपनीय ततो ऽन्यस्यां भूमौ वा संनिवेशयेत् ।

निवेश्य पूर्वं तत्रान्यदण्डानुग्रहहेतुना ॥ ४३ ॥

जो राजा अपनी दुर्बलता के कारण विजेता के शत्रु से या विजेता से मिलना चाहता है, तो विजयाभिलाषी राजा, उसको सेना की अवश्य सहायता देवे-जिससे, वह विरोध को न प्राप्त होवे अथवा उसको उस स्थान से हटा कर दूसरे स्थान पर रख देवे जहां शत्रु से मिलने की सम्भावना न हो और उसकी भूमि में दण्ड और अनुग्रह समर्थ किसी अधिकारी को भेज देवे ॥४२-४३॥

अपकुर्यात्समर्थं वा नोपकुर्याद्यदापदि ।

उच्छिन्धादेव तन्मित्रं विश्वस्याङ्गमुपस्थितम् ॥ ४४ ॥

जो मित्र समर्थ होकर अपकार करे और संकट के समय सहायता न करे तो उस मित्र को विश्वास देकर अपनी मुट्ठी में ले लेवे और फिर उसे उखाड़ देवे ॥४४॥

मित्रव्यसनतो वारिरुत्तिष्ठेद्यो ऽनवग्रहः ।

मित्रेणैव भवेत्साध्यः छादितव्यसनेन सः ॥ ४५ ॥

यदि कोई उद्धत शत्रु, अपने मित्र की विपत्ति का लाभ उठाकर अपनी स्वार्थ सिद्धि में तत्पर हो जावे, तो उसके व्यसन को छुपाकर अपने मित्र द्वारा ही अपने शत्रु को पराजित करा देवे ॥४५॥

अमित्रव्यसनान्मित्रमुत्थितं यद्विरज्यति ।

अरिव्यसनसिद्ध्या तच्छत्रुणैव प्रसिद्ध्यति ॥ ४६ ॥

जो मित्र अपने शत्रु पर विपत्ति आनेके कारण उन्नत हुआ है, वह मित्र भी यदि अपने से विरक्त हो जावे, तो शत्रु की विपत्ति हट जाने पर उसे शत्रु द्वारा ही पराजित करा देवे ॥४६॥

वृद्धिं क्षयं च स्थानं च कर्शनोच्छेदनं तथा ।

सर्वोपायान्समादध्यादेतान्यश्वार्थशास्त्रवित् ॥ ४७ ॥

जो नीति शास्त्र का जानने वाला राजा है, वह अपनी वृद्धि, शत्रु का क्षय, यथावस्था में स्थित, शत्रु या उद्धत मित्र की क्षीणता या उच्छेदता आदि सारे उपायों को समया-नुकूल करता रहे ॥४७॥

एवमन्योन्यसंचारं षाड्गुण्यं यो ऽनुपश्यति ।

स बुद्धिनिगडैर्बद्धैरिष्टं क्रीडति पार्थिवैः ॥ ४८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मध्यमचरितमुदासीनचरितं मण्डल-

चरितमष्टादशोऽध्यायः आदितः षोडशशतः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार जो राजा एक दूसरे से अनुबद्ध इन छः सन्धि विग्रह आदि उपायों का ठीक २ प्रयोग करता है, वह अपनी बुद्धि रूपी सांकल से बँधे हुए राजाओं से अपने अभीष्ट को सिद्ध करता रहता है ॥४८॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत षाड्गुण्य अधिकरण में मध्यम आदि के

चरित का अष्टारहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१२७वां प्रकरणम्

प्रकृतिव्यसनवर्गः

इस प्रकरण में राजाओं पर आने वाली विपत्तियों के चक्करों का वर्णन किया जावेगा।

व्यसनयौगपद्ये सौकर्यतां यातव्यं रक्षितव्यं चेति व्यसनचिन्ता ॥ १ ॥

दैवं मानुषं वा प्रकृतिव्यसनमनयापनयाम्यां संभवति ॥ २ ॥

जब शत्रु और विजयाभिलाषी राजा पर एक साथ विपत्ति आवे-तो उस समय अपनी रक्षा करनी चाहिए या शत्रु पर आक्रमण करना उचित है इस विचार को व्यसन चिन्ता कहते हैं। दैव और मानुष जो प्रकृतियों के संकट हैं-वे सन्धि आदि की उचित व्यवस्था न करने रूप अनय तथा शत्रुओं से पीड़ित होते रहने रूप अपनय से होते हैं ॥१-२॥

गुणप्रातिलोम्यमभावः प्रदोषः प्रसङ्गः पीडा वा व्यसनम् ॥ ३ ॥ व्यस्य-
त्येनं श्रेयस इति व्यसनम् ॥ ४ ॥ स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्रव्यस-
नानां पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः ॥ ५ ॥ नेति भारद्वाजः ॥ ६ ॥ स्वाम्यमात्य-
व्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ७ ॥ मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कर्मानुष्ठान-
मायव्ययकर्म दण्डप्रणयनममित्राटवीप्रतिषेधो राज्यरक्षणं व्यसनप्रतीकारः कुमार-
रक्षणमभिषेकश्च कुमाराणामायत्तममात्येषु ॥ ८ ॥ तेषामभावे तदभावश्छिन्नपक्-
स्येव राजश्वेष्टानाशो व्यसनेषु चासन्नाः परोपजापाः ॥ ९ ॥ वैगुण्ये च शास्त्र-
बाधः प्राणान्तिकचरत्वाद्वाज्ञ इति ॥ १० ॥

सन्निवि विग्रह आदि गुणों का विरोध, उनका अभाव, या उनका अनुचित प्रयोग, कोप आदि से उनकी व्यवस्था, विषयों में आसक्ति और शत्रुओं द्वारा पीड़ित होना ये पांच व्यसन कहाते हैं। उपर्युक्त परिस्थिति राजा को उसके सुख से वञ्चित कर देती हैं इससे ये व्यसन कहाती हैं यही व्यसन शब्द का शब्दार्थ है। स्वामी (राजा) अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र पर आई हुई विपत्तियों में पीछे की अपेक्षा पहली अधिक भयावह मानी जाती हैं, परन्तु इस बात को भारद्वाज आचार्य नहीं मानते हैं। वे तो स्वामी और अमात्य के व्यसन में स्वामी की अपेक्षा अमात्य पर आये हुए संकट को अधिक दुःख दायी मानते हैं, क्योंकि मन्त्र, मन्त्र फल की प्राप्ति, कामों का अनुष्ठान, आयव्यय, सेना की रक्षा, शत्रु और वनचरों का प्रतीकार, राज्य रक्षा, व्यसन की रूकावट करना, कुमार रक्षण और कुमारों के अभियेकन्ये सारी बातें अमात्यों के अधीन होती हैं। यदि अमात्यों को कोई हानि पहुंचेगी तो इन सारे कार्यों का विनाश होगा। अमात्य के विना पर कटे पत्नी की सी दशा राजा की हो जाती है। वह व्यसन के उपस्थित होने पर कुछ भी चेष्टा नहीं कर पाता है। ये अमात्य आदि राजा के समीप रहने से शत्रु द्वारा तोड़ फोड़ लिए जाते हैं। यदि ये विगड़ उठे तो राजा के प्राणों की बाधा खड़ी हो जाती है, क्योंकि ये राजा के प्राणों के साथ रहते हैं ॥३-१०॥ :

नेति कौटल्यः ॥ ११ ॥ मन्त्रिपुरोहितादिभृत्यवर्गमध्यक्षप्रचारं पुरुषद्रव्य-
प्रकृतिव्यसनप्रतीकारमेधनं च राजैव करोति ॥ १२ ॥ व्यसनिषु वामात्येष्वन्या-
नव्यसनिनः करोति ॥ १३ ॥ पूज्यपूजने दूष्यावग्रहे च नित्ययुक्तस्तिष्ठति ॥ १४ ॥
स्वामी च संपन्नः स्वसंपद्भिः प्रकृतीः संपादयति ॥ १५ ॥ स्वयं यच्छीलस्त-
च्छीलाः प्रकृतयो भवन्ति ॥ १६ ॥ उत्थाने प्रमादे च तदायत्तत्वात् ॥ १७ ॥
तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ॥ १८ ॥

कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते। वे कहते हैं, कि मन्त्री, पुरोहित आदि पूज्यवर्ग, भृत्य वर्ग, अध्यक्ष नियुक्ति, अमात्य और सेना तथा जनपद और दुर्ग आदि पर आई हुई विपत्तियों का प्रतीकार तथा इनकी उन्नति का कारण राजा ही है। यदि अमात्य व्यसन में फंस गए-तो उनके स्थान पर अन्य व्यसनहीन अमात्यों को राजा नियुक्त कर सकता है। पूज्य के पूजन और दुष्ट के निग्रह में राजा ही तत्पर होता है। यदि राजा योग्य हो, तो वह अपनी प्रकृति से अमात्य आदि को सम्पत्ति युक्त बना सकता है। राजा जिस आचरण का होता है, उसके अमात्य आदि भी उसी आदत के हो जाते हैं। इनकी

उन्नति और अवनति राजा के हाँ अधीन है। इन सातों प्रकृतियों में मुख्य प्रकृति, राजा ही माना गया है ॥११-१८॥

अमात्यजनपदव्यसनयोर्जनपदव्यसनं गरीय इति विशालाक्षः ॥१९॥ कोशो दण्डः कुप्यं विष्टिर्वाहनं निचयाश्च जनपदादुत्तिष्ठन्ते ॥ २० ॥ तेषामभावो जनपदाभावे स्वाम्यमात्ययोश्चानन्तर इति ॥ २१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ अमात्यमूलाः सर्वारम्भाः ॥ २३ ॥ जनपदस्य कर्मसिद्धयः स्वतः परतश्च योग-क्षेमसाधनं व्यसनप्रतीकारः शून्यनिवेशोपचयौ दण्डकरानुग्रहश्चेति ॥ २४ ॥

अमात्य और जनपद में संकट उपस्थित होने पर जनपद व्यसन भारी माना जाता है—यह विशालाक्ष आचार्य का मत है। कोश, सेना, वस्त्र, लोहा, ताँबा आदि भृत्य वर्ग, घोड़े, ऊँट आदि की सवारी, घृत तथा अन्नादि सारे जनपद से ही प्राप्त होते हैं। यदि जनपद की क्षति होगी—तो इनकी स्वयं क्षति हो जावेगी। कुछ दिन इन उपयुक्त वस्तुओं के न मिलने से राजा और अमात्य का भी नाश ही समझना चाहिए, परन्तु कौटल्याचार्य इस मत के विरुद्ध हैं। वे तो जनपद के सारे कार्यों को अमात्य के अधीन ही मानते हैं। जनपद के दुर्ग कृषि आदि कार्यों की सिद्धि, राजकीय परिवार और अन्तपाल आदि द्वारा क्षेम साधन, विपत्तियों का प्रतीकार, निर्जन स्थानों का वसाना, उनकी वृद्धि करना, दंड देना और राज्य कर का संग्रह आदि सारे कार्य अमात्यों के बिना नहीं हो सकते हैं ॥ १०-२४ ॥

जनपददुर्गव्यसनयोर्दुर्गव्यसनमिति पाराशराः ॥ २५ ॥ दुर्गे हि कोश-दण्डोत्पत्तिरापदि स्थानं च जनपदस्य शक्तिमत्तराश्च पौरजानपदेभ्यो नित्याश्चापदि सहाया राज्ञो जानपदास्त्रमित्रसाधारणा इति ॥ २६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २७ ॥ जनपदमूला दुर्गकोशदण्डसेतुवार्तारम्भाः शौर्यं स्थैर्यं दाक्ष्यं बाहुल्यं च जानपदेषु ॥ २८ ॥ पर्वतान्तर्द्वीपाश्च दुर्गा नाध्युष्यन्ते जनपदाभावत् ॥ २९ ॥ कर्षकप्राये तु दुर्गव्यसनमायुधीयप्राये तु जनपदे जनपदव्यसनमिति ॥ ३० ॥

जनपद (राष्ट्र) और दुर्ग व्यसन—में दुर्ग व्यसन अधिक महत्व शाली है—यह पाराशर का मत है। दुर्ग के अधीन ही कोश और सेना होती है। शत्रु द्वारा आपत्ति खड़ी करने पर दुर्ग में ही रक्षा मिलती है। नगर और जनपदवासियों को जनपद की अपेक्षा दुर्ग अधिक शक्तिशाली प्रतीत होते हैं। राजा को विपत्ति में दुर्ग ही सहायक होते हैं। जनपद वासी तो एक अमित्र के तुल्य व्यक्ति माने जाते हैं। परन्तु कौट-

ल्याचार्य इस मत को भी नहीं मानते । वे तो दुर्ग, कोश, सेना, सेतुबन्धन, कृषिव्यापार शूरता, धैर्य, चतुराई, और संख्या का बाहुल्य भी जनपद के अधीन ही मानते हैं । यदि नगर या राष्ट्र न हो-तो पर्वत तथा द्वीपों के दुर्ग भी सूने पड़े रहते हैं । जिस प्रदेश में किसानों का प्राधान्य हो वहां दुर्ग व्यसन और आयुध प्रधान जनपद में जनपद व्यसन बलवान् है ॥ २५-३० ॥

दुर्गकोशव्यसनयोः कोशव्यसनमिति पिशुनः ॥ ३१ ॥ कोशमूलो हि दुर्गसंस्कारो दुर्गरक्षणं च ॥ ३२ ॥ दुर्गः कोशादुपजाप्यः परेषाम् ॥ ३३ ॥ जनपदमित्रामित्रनिग्रहो देशान्तरितानामुत्साहनं दण्डबलव्यवहारः ॥ ३४ ॥ कोशमादाय च व्यसने शक्यमपयातुं न दुर्गमिति ॥ ३५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३६ ॥ दुर्गर्पणः कोशो दण्डस्तूष्णीयुद्धं स्वपक्षनिग्रहो दण्डबलव्यवहार आसारप्रतिग्रहः परचक्राटवीप्रतिषेधश्च ॥ ३७ ॥ दुर्गभावे च कोशः परेषाम् ॥ ३८ ॥ दृश्यते हि दुर्गवतामनुच्छित्तिरिति ॥ ३९ ॥

दुर्ग और कोश के व्यसन-में कोश व्यसन को पिशुन (नारद) आचार्य अधिक महत्व देते हैं । दुर्गों की मरम्मत और दुर्ग रक्षा कोश के ही अधीन है । कोश से ही दुर्ग की स्थिति है और कोश से ही शत्रु के वीरों को तोड़कर शत्रु का दुर्ग जीता जा सकता है । कोश के द्वारा ही जनपद, मित्र, शत्रु पर आतङ्क जमायाजा सकता है । इसी के बल पर दूर देशों के राजाओं को भी अपनी सहायता के लिए उभारा जा सकता है तथा सैनिक शक्ति का संग्रह भी कोश पर ही निर्भर है । कोश के आश्रय से ही व्यसन से छुटकारा पाया जा सकता है, केवल दुर्ग के आश्रय कुछ नहीं बन सकता है । कौटल्याचार्य इस मत को ठीक नहीं मानते हैं । वे तो कोश और सेना की रक्षा भी दुर्ग के अधीन मानते हैं । तूष्णीं युद्ध (गुप्तचुप मरवा देना) अपने पक्ष का दबाना, सेना की शक्ति का सञ्चार, आसार संज्ञक राजा का निग्रह, शत्रु समूह और वनवासी भीलों का निराकरण ये सब कुछ दुर्ग के आश्रय से ही होते हैं । यदि दुर्ग न हो-तो कोश ही दूसरों के पंजे में चला जावेगा । जिनके पास दृढ़ दुर्ग होते हैं, उनका उच्छेद नहीं हो सकता है ॥ ३१-३९ ॥

कोशदण्डव्यसनयोर्दण्डव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ४० ॥ दण्डमूलो हि मित्रामित्रनिग्रहः परदण्डोत्साहनं स्वदण्डप्रतिग्रहश्च ॥ ४१ ॥ दण्डभावे च ध्रुवः कोशविनाशः ॥ ४२ ॥ कोशभावे च शक्यः कुप्येन भूम्या परभूमि-स्वयंग्रहेण वा दण्डः पिण्डयितुम् ॥ ४३ ॥ दण्डवता च कोशः ॥ ४४ ॥

स्वामिनश्चासन्नवृत्तित्वादमात्यसधर्मा दण्ड इति ॥ ४५ ॥ नेति कौटल्यः
 ॥ ४६ ॥ कोशमूलो हि दण्डः ॥ ४७ ॥ कोशाभावे दण्डः परं गच्छति
 ॥ ४८ ॥ स्वामिनं वा हन्ति ॥ ४९ ॥ सर्वाभियोगकरश्च ॥ ५० ॥ कोशो
 धर्मकामहेतुः ॥ ५१ ॥ देशकालकार्यवशेन तु कोशदण्डयोरन्यतरः प्रमाणीभ-
 वति ॥ ५२ ॥ लब्धपालनो हि दण्डः कोशस्य ॥ ५३ ॥ कोशः कोशस्य
 दण्डस्य च भवति ॥ ५४ ॥ सर्वद्रव्यप्रयोजकत्वात्कोशव्यसनं गरीय इति ॥ ५५ ॥

कोश और सेना के संकट उपस्थित होने पर सेना का व्यसन अधिक क्लेश
 दायी है ऐसा कौणपदन्त आचार्य मानते हैं। सेना के होने से ही मित्र और शत्रु का
 निग्रह होता है, दूसरे की सेना को साथ मिलाया जा सकता है तथा अपनी सेना की वृद्धि
 भी सेना के अधीन ही है। यदि सेना न हो-तो निश्चय कोश का विनाश होकर रहेगा।
 कोश न भी होवे-तो कुप्य (वस्त्राभरण) तथा भूमि द्वारा या शत्रु की भूमि के ग्रहण से
 सेना इकट्ठी की जा सकती है। जिस के पास सेना है, उसी के पास कोश रह सकता
 है। स्वामी के साथ सर्वदा रहने से जैसे अमात्य राजा की उन्नति के कारण हैं वैसे
 ही सेना को समझना चाहिए, कौटल्याचार्य इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं। वे तो कोश
 के अधीन सेना को मानते हैं। यदि कोश न हो-तो सेना शत्रु के पास चली जाती है या
 स्वामी को ही मार डालती है। कोश के अभाव में सेना सारे झगड़े खड़े कर देती है।
 कोश धर्म और काम का हेतु माना गया है। देश और काल के अनुसार कभी सेना
 और कभी कोश की प्रधानता मानी गई है। कोश की उपलब्धि और उसका पालन सेना
 के अधीन है, परन्तु कोश तो सेना और कोश दोनों का रक्षक है। सारी वस्तुओं की
 प्राप्ति का साधन कोश होनेसे कोश का व्यसन अधिक क्लेश कर मानना चाहिए ॥४०-५५॥

दण्डमित्रव्यसनयोर्मित्रव्यसनमिति वातव्याधिः ॥ ५६ ॥ मित्रमभृतं
 व्यवहितं च कर्म करोति ॥ ५७ ॥ पार्थिवग्राहमासारममित्रमाटविकं च
 प्रतिकरोति ॥ ५८ ॥ कोशदण्डभूमिश्चोपकरोति व्यसनावस्थायोगमिति ॥ ५९ ॥
 नेति कौटल्यः ॥ ६० ॥ दण्डवतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्यमित्रो वा मित्रभावे
 ॥ ६१ ॥ दण्डमित्रयोस्तु साधारणे कार्ये सारतः स्वयुद्धदेशकाललाभादि-
 शेषः ॥ ६२ ॥ शीघ्राभियाने त्वमित्राटविकाभ्यन्तरकोपे च न मित्रं विद्यते ॥ ६३ ॥
 व्यसनयौगपद्ये परवृद्धौ च मित्रमर्थयुक्तौ तिष्ठति ॥ ६४ ॥ प्रकृतिव्यसनसंप्र-
 धारणमुक्तमिति ॥ ६५ ॥

सेना और मित्र के व्यसन में मित्र व्यसन भारी माना जाता है, ऐसा बात व्याधि (उद्धव) आचार्य का मत है, क्योंकि मित्र, विना द्रव्य लिए आपत्ति के कर्मों का प्रतीकार कर देता है। वह पार्ष्णिप्राह, (चढ़ाई के अनन्तर पीछे से उपद्रव करने वाला) आसार, शत्रु, और वनचर भीलों के प्रतीकार करने में भी समर्थ होता है। कोश, सेना, और भूमि द्वारा अपने मित्र के संकट को हटा देने की चेष्टा करता है। कौटल्याचार्य इस मत के विरुद्ध है। सेना की शक्ति रखने वाले राजा के मित्र तो मित्र रहते ही हैं, परन्तु उसके तो शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। दण्ड और मित्र दोनों की समान उपयोगिता समान है, परन्तु युद्ध देश और काल की योग्यता के अनुसार उनकी उत्तमता या लघुता का विचारकर सेना चाहिए। शीघ्र चढ़ाई करने तथा शत्रु वनचर राजा, या अपने अमात्य आदि के कुपित होने पर मित्र का अधिक उपयोग नहीं है। यदि दोनों पर एक साथ विपत्ति आवे तथा शत्रु के बढ़ जाने पर मित्र ही अर्थ सिद्धि में सहायक होता है। यहां तक प्रकृति व्यसन का निर्णय किया गया ॥५६-६५॥

प्रकृत्यवयवानां तु व्यसनस्य विशेषतः ।

बहुमावो ऽनुरागो वा सारो वा कार्यसाधकः ॥ ६६ ॥

स्वामी, अमात्य आदि प्रकृतियों के युवराज मन्त्र परिषद आदि अवयवों तथा प्रकृतियों पर यदि एक साथ संकट उपस्थित हो और उस समय उन अवयवों का यदि अपनी २ प्रकृति पर अधिक भक्ति या प्रीति हो-तो कार्य की शीघ्र सिद्धि हो जाती है ॥६६॥

द्वयोस्तु व्यसने तुल्ये विशेषो गुणतः क्षयात् ।

शेषप्रकृतिसाद्गुणं यदि स्यान्नाभिधेयकम् ॥ ६७ ॥

यदि विजयाभिलाषी राजा और उसके शत्रु में समान व्यसन आ गया हो-तो उनके गुण की अधिकता और न्यूनता पर व्यसन की हानि और वृद्धि हो सकती है। यदि उनकी अमात्य आदि प्रकृति की श्रेष्ठता रहेगी-ता उसकी कार्य सिद्धि होगी ऐसी अवस्था में चढ़ाई करना श्रेष्ठ नहीं है ॥६७॥

शेषप्रकृतिनाशस्तु यत्रैकव्यसनाद्भवेत् ।

व्यसनं तद्गरीयः स्यात्प्रधानस्येतरस्य वा ॥ ६८ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे प्रकृतिव्यसनवर्गः प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

आदितः सप्तदशशतः ॥ ११७ ॥

यदि एक ओर से एक प्रकृति पर व्यसन आने पर शेष प्रकृति का भी नाश हो जावे-तो वह व्यसन चाहे, प्रधान प्रकृति पर या अग्रवान प्रकृति पर हो- उसे भारी ही समझना चाहिए ॥६८॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में प्रकृतियों के
व्यसन की व्याख्या का पहला अध्याय समाप्त हुआ ।



दूसरा अध्याय

१२८वां प्रकरण

राजराज्ययोन्यसन चिन्ता

इस प्रकरण में राजा और उसके राज्य पर आने वाले संकट के विषय में वर्णन होगा ।

राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः ॥ १ ॥ राज्ञोऽभ्यन्तरो बाह्यो वा कोप इति ॥ २ ॥ अहिभयादभ्यन्तरः कोपो बाह्यकोपात्पापीयान् ॥ ३ ॥ अन्तरमात्य-कोपश्चान्तःकोपात् ॥ ४ ॥ तस्मात्कोशदण्डशक्तिमात्मसंस्थां कुर्वीत् ॥ ५ ॥

स्वामी आदि सात प्रकृतियों को संक्षेप में राजा और राज्य इन भागों में विभक्त किया जा सकता है । राजा और राजा का मित्र राजा प्रकृति और शेष अमात्य आदि राज्य प्रकृति में सम्मिलित हैं । राजा के ऊपर आभ्यन्तर और बाह्य दो प्रकार का कोप होता है । घर में रहने वाले सर्प की तरह अमात्य आदि का भीतरी कोप अधिक भयावह है, उतना शत्रु का बाहरी कोप हानि कारक नहीं है । इस आभ्यन्तर कोप में भी समीप के अमात्यों का कोप अधिक दुःखदायी है, उतना दूर के अमात्यों का कोप नहीं है, इसलिए विजयाभिलाषी राजा कोश और सेना शक्ति को सर्वदा अपने अधीन रखे ॥१-५॥

द्वैराज्यवैराज्ययोर्द्वैराज्यमन्योन्यपक्षद्वेषानुरागाभ्यां परस्परसंघर्षेण वा वि-
नश्यति ॥ ६ ॥ वैराज्यं तु प्रकृतिचित्तग्रहणपेक्षियथास्थितमन्यैर्भुज्यत इत्या-
चार्याः ॥ ७ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ८ ॥ पितापुत्रयोर्भ्रात्रोर्वा द्वैराज्यं तुल्ययोग-
क्षेमममात्यावग्रहं वर्तयेतेति ॥ ९ ॥ वैराज्ये तु जीवतः परस्याच्छिद्य नैतन्ममेति
मन्यमानः कर्षयत्यपवाहयति ॥ १० ॥ पर्यं वा करोति ॥ ११ ॥ विरक्तं वा
परित्यज्यापगच्छतीति ॥ १२ ॥

दो राजाओं से अधिकृत राज्य और राजा से हीन राज्य से हीन राज्य में द्वै राज्य शीघ्र नष्ट होता है, क्योंकि कि उन दोनों पक्ष में परस्पर के राग द्वेष से या परस्पर के संघर्ष द्वै राज्य में अधिक विघ्न रहता है, परन्तु राजा से हीन राज्य तो प्रजा के चित्त के

अनुकूल चलता हुआ, सबके उपभोग का साधन बन जाता है ऐसा आचार्य लोग मानते हैं। इस मत को कौटल्याचार्य नहीं मानते हैं। वे तो द्वै राज्य का भगड़ा पिता पुत्र या दो भाईयों में होता है-ऐसा कहते हैं। यह भगड़ा एक कुल का होने से इनका एकसा स्वार्थ होता है-इससे मन्त्रियों द्वारा यह शीघ्र निबटाया जा सकता है। राजाहीन राज्य को तो समग्र रूप में छीनकर विजेता, अपना न मान कर क्षीण कर देता है और अपने में मिला लेता है या बेच देता है। यदि इस राष्ट्र की प्रजा विरक्त हुई तो उसे छोड़कर चल देता है ॥६-१२॥

अन्धश्चलितशास्त्रो वा राजेति ॥ १३ ॥ अशास्त्रचक्षुरन्धो यत्किंचनकारी दृढाभिनिवेशी परग्रणेयो वा राज्यमन्यायेनोप हन्ति ॥ १४ ॥ चलितशास्त्रस्तु यत्र शास्त्राच्चलितमतिर्भवति शक्यानुनयो भवतीत्याचार्याः ॥ १५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १६ ॥ अन्धो राजा शक्यते सहायसंपदां यत्र तत्र वा पर्यवस्थापयितुमिति ॥ १७ ॥ चलितशास्त्रस्तु शास्त्रादन्यथाभिनिविष्टबुद्धिरन्यायेन राज्यमात्मानं चोपहन्तीति ॥ १८ ॥

शास्त्र हीन अन्धे और शास्त्र का आचरण नहीं करने वाले राजा में कौन सा राज्य श्रेष्ठ है-तो जो शास्त्र हीन है, वह अन्धा है। वह जो कुछ करता है—बड़े हठ और दुराग्रह से करता है। दूसरे के कथन पर चल देता है और राज्य को अन्याय से नष्ट कर डालता है, परन्तु जो शास्त्र के अनुसार नहीं करता है, और शास्त्र जानता है, वह जब शास्त्र से डिगता है, तब अमात्य आदि समझा कर उसे फिर अपने स्थान पर ला सकते हैं। ऐसा आचार्य कहते हैं, परन्तु कौटल्याचार्य कहते हैं कि यह बात मान्य नहीं है। उनका मत है, कि शास्त्र हीन अन्धे राजा को मन्त्रि आदि अपनी बुद्धि के अनुसार ले चल सकते हैं, परन्तु जो स्वल्प शास्त्र केज्ञान से दग्ध है, वह अभिमान वश अन्याय से अपने राज्य और अपने आपको नष्ट कर लेता है ॥१३-१८॥

व्याधितो नवो वा राजेति ॥ १९ ॥ व्याधितो राजा राज्योपघातममात्यमूलं प्राणावाधं वा राज्यगूलमवाप्नोति ॥ २० ॥ नवस्तु राजा स्वधर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिः प्रकृतिरञ्जनोपकारैश्चरतीत्याचार्याः ॥ २१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ व्याधितो राजा यथाप्रवृत्तं राजप्रणिधिमनुवर्तयति ॥ २३ ॥ नवस्तु राजा बलावर्जितं ममेदं राज्यमिति यथेष्टमनवग्रहश्चरति ॥ २४ ॥ सामुत्थयिकैरवगृहीतो वो राज्योपघातं मर्षयति ॥ २५ ॥ प्रकृतिष्वरूढः सुखः समुच्छेत्तु भवति ॥ २६ ॥

रोग से व्याप्त और नवीन राजा में कौन श्रेष्ठ है । इस विषय में आचार्य कहते हैं, कि व्याधि ग्रस्त राजा, अमात्यों द्वारा राज्य का नाश करता है, या राष्ट्र की जनता द्वारा प्राप्त खो बैठता है, किन्तु नया राजा, अपने धर्म, अनुग्रह, दान, मान आदि कर्मों से प्रजा को प्रसन्न करता रहता है । इस बात को भी कौटल्याचार्य नहीं मानते हैं । वे कहते हैं, कि रोगी राजा प्राचीन रीति के अनुसार राज्य कार्य चलाता रहता है, परन्तु नवीन राजा, बल से जीते हुए राज्य को “यह मेरा जीता हुआ है” ऐसा समझकर निरंकुश रूप से व्यवहार करता है । जब नवीन राजा को इकट्ठे होकर अन्य राजा घेर लेते हैं-तो वह राज्य के विनाश को सह लेता है । उसका प्रजा पर अधिकार न होने से उसे शत्रु शीघ्र उखाड़ भी देते हैं ॥१६-२६॥

व्याधिते विशेषः पापरोग्यपापरोगी च ॥ २७ ॥ नवे ऽप्यभिजातो ऽनभिजात इति ॥ २८ ॥ दुर्बलोऽभिजातो बलवाननभिजातो राजेति ॥ २९ ॥ दुर्बलस्याभिजातस्योपजापं दौर्बल्यापेक्षाः प्रकृतयः कृच्छ्रं णोपगच्छन्ति ॥ ३० ॥ बलवत्स्थानभिजातस्य बलापेक्षाः सुखेनेत्याचार्याः ॥ ३१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ दुर्बलमभिजातं प्रकृतयः स्वयमुपनमन्ति, जात्यमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तत इति ॥ ३३ ॥ बलवत्स्थानभिजातस्योपजापं विसंवादयन्ति अनुरागे सार्वगुण्यमिति ॥ ३४ ॥ प्रयासवधात्सस्यवधो मुष्टिवधात्पापीयान् ॥ ३५ ॥ निराजीवत्वादवृष्टिरतिवृष्टित इति ॥ ३६ ॥

रोगी राजा भी दो प्रकार का होता है, एक पाप रोगी दूसरा अपाप रोगी । नया राजा भी कुलीन और अकुलीन दो प्रकार का माना गया है । इनमें भी दुर्बल कुलीन अच्छा होता है या बलवान् अकुलीन राजा श्रेष्ठ माना जाता है । यदि राजा कुलीन और दुर्बल है, तो उसकी प्रजा उसकी दुर्बलता को देख कर कुलीनता के कारण भी कठिनार्थ से उसके अनुहृत्य होती है । यदि राजा बलवान् है, परन्तु वह अकुलीन है, तो भी उसकी अकुलीनता के कारण उसके बल को देख कर प्रजा सुख से उसके अनुकूल हो सकती है ऐसा आचार्य मानते हैं । परन्तु कौटल्याचार्य इस मत के विरुद्ध हैं, वे कहते हैं, कि यदि राजा कुलीन और दुर्बल है, तो भी उसकी कुलीनता के कारण प्रजा उससे स्वयं भुक्त जावेगी, क्योंकि जो कुलीन है, उसके साथ ही अमात्य आदि प्रकृति रहती है । बलवान् और अकुलीन राजा की प्रजा फूट जाती है, क्योंकि उस में अनुराग नहीं है, और अनुराग में सारे गुण हैं । बीज न बोने पर अन्न की अप्राप्ति की

अपेक्षा उत्पन्न अन्न का विनाश अधिक बुरा होता है। अतिवृष्टि की अपेक्षा अनावृष्टि अधिक हानिकारी है, क्योंकि अवृष्टि में कुछ भी जीविका नहीं हो सकती है। अति वृष्टि में कहीं २ वास तो हो ही जाता है ॥ २७-३६ ॥

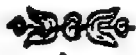
द्वयोर्द्वयोर्व्यसनयोः प्रकृतीनां वलावलम् ।

पारम्पर्यक्रमेणोक्तं याने स्थाने च कारणम् ॥ ३७ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमेऽधिकरणे राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता द्वितीयो-
ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितोऽष्टादशशतः ॥ ११८ ॥

जब दोनों राजा और शत्रु में व्यसन उत्पन्न हो-तो उनकी प्रकृति का वलावल देखना चाहिए। व्यसन की न्यूनता में मान और अधिकता में चुपचाप बैठे रहना ही, शास्त्रानुसार माना गया है ॥ ३७ ॥

इतिश्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में राजा और राज्य रूप प्रकृति के व्यसन की चिन्ता का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



तीसरा अध्याय

१२६वां प्रकरण

पुरुषव्यसनवर्गः

इस प्रकरण में पुरुषों में होने वाले व्यसनों के विषय में वर्णन किया जावेगा ।

अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः ॥ १ ॥ अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति ॥ २ ॥ तानुपदेक्ष्यामः ॥ ३ ॥ क्रोधजस्त्रिवर्गः ॥ ४ ॥ कामजश्चतुर्वर्गः ॥ ५ ॥ तयोः क्रोधो गरीयान् ॥ ६ ॥ सर्वत्र हि क्रोधश्चरति ॥ ७ ॥ प्रायशश्च क्रोपवशा राजानः प्रकृतिक्रोपैर्हताः श्रूयन्ते ॥ ८ ॥ कामवशाः क्षयव्यसननिमित्तमतिव्याधिभिरिति ॥ ९ ॥

अविद्या युक्त और अशिचित होना-पुरुष पर विपत्ति आने का हेतु है। जो अशिचित होता है, वह व्यसन के दोषों को नहीं पहचान सकते हैं। हम उनको यहां गिना देते हैं। क्रोध से उत्पन्न तीन दोष और काम से उत्पन्न चार दोष माने गये हैं। इनमें क्रोध अधिक दूषित माना गया है, क्योंकि क्रोध सब जगह अधिकार रखता है। अक्सर क्रोध में मरे हुए राजा प्रकृति के क्रोध से नष्ट हुए सुने गए हैं। काम के वशीभूत

राजा क्षय और विपत्ति में उलझ कर अत्यन्त व्याधियों से युक्त होकर नष्ट होतं देखे गए हैं ॥ १-६ ॥

नेति भारद्वाजः ॥ १० ॥ सत्पुरुषाचारः क्रोपो वैरायतनमवज्ञातवधो
भीतमनुष्यता च ॥ ११ ॥ नित्यश्च क्रोपेन संबन्धः - पापप्रतिषेधार्थः ॥ १२ ॥
कामः सिद्धिलाभः, सान्त्वं त्यागशीलता संप्रियभावश्च ॥ १३ ॥ नित्यश्च
कामेन संबन्धः कृतकर्मणः फलोपभोगार्थ इति ॥ १४ ॥

भारद्वाज (द्रोण) इस मत को नहीं मानते हैं, क्योंकि तिरस्कारके समय कोप करना सत्पुरुषों का व्यवहार है। कोप से ही शत्रु वध करके घेर लिता जाता है। तिरस्कार करने वाले का वध किया जा सकता है और सारे दुष्ट जन डरते रहते हैं। कोप के साथ नित्य सम्बन्ध हो-तो सदा पाप का क्षय होता रहेगा। सिद्धि लाभ का नाम काम है। इसी के कारण शक्ति, त्याग शीलता और मनुष्यों में प्रेम भाव जागृत होता है। काम का नित्य सम्बन्ध अपने किये उत्तोग का फल देने वाला है ॥ १०-१४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १५ ॥ द्वेष्यता शत्रुवेदनं दुःखासङ्गश्च क्रोपः ॥ १६ ॥
परिभवो द्रव्यनाशः पाटचरद्य तकारलुब्धकगायकवादकैश्चानर्थैः संयोगः कामः
॥ १७ ॥ तयोःपरिभवाद्द्वेष्यता गरीयसां ॥ १८ ॥ परिभूतः स्वैः परैश्चाप-
गृह्यते, द्वेष्यः समुच्छिद्यत इति ॥ १९ ॥ द्रव्यनाशाच्छत्रुवेदनं गरीयः ॥ २० ॥
द्रव्यनाशः कोशावाधकः ॥ २१ ॥ शत्रुवेदनं प्राणावाधकमिति ॥ २२ ॥
अनर्थसंयोगाद्दुःखसंयोगो गरीयान् ॥ २३ ॥ अनर्थसंयोगो मुहूर्तप्रीतिकरो-
दीर्घक्लेशकरो दुःखानामासङ्ग इति ॥ २४ ॥ तस्मात्क्रोपो गरीयान् ॥ २५ ॥

कौटल्याचार्य इस मत को नहीं मानते हैं। वे कहते हैं, कि कोप से सदा द्वेष, शत्रु उत्पत्ति और दुःखों की प्राप्ति होने लगती है। काम पराजय और द्रव्य नाश कर देता है, तथा चोर, जुआरी, शिकारी, गायक, वादक, आदि अनर्थकारी वस्तुओं के साथ काम का सम्बन्ध है। इनमें परिभव की अपेक्षा द्वेष अधिक दुःखदायी है। जिसका तिरस्कार हो जाता है, उसका अपना पर या अपमान करते हैं, परन्तु जिस से सब का द्वेष हो जाता है, उसे सब उखाड़ देते हैं द्रव्य नाश की अपेक्षा शत्रु उत्पन्न होना अधिक क्लेश कर है। द्रव्य का नाश होना कोश का घातक है। परन्तु शत्रु की उत्पत्ति, प्राण नाशक हो जाती है। अनर्थ वस्तुओं के संयोग से दुःख का संयोग अधिक दुःख प्रद है। अनर्थकारी वस्तुओं का संयोग तो थोड़ी देर प्रीति भी उत्पन्न कर देता है, परन्तु दुःखों का संयोग दीर्घ

काल तक क्लेश करने वाला है, इस से कोप को काम की अपेक्षा अधिक दुःखदायी माना है ॥ १५-२५ ॥

वाक्पारुष्यमर्थदूषणं दण्डपारुष्यमिति ॥ २६ ॥ वाक्पारुष्यं गरीय इति विशालाक्षः ॥ २७ ॥ पुरुषमुक्ता हि तेजस्वी तेजसा प्रत्यारोहति ॥ २८ ॥ दुरुक्तशल्प्यं हृदि निखातं तेजःसंदीपनमिन्द्रियोपतापि चेति ॥ २९ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३० ॥ अर्थपूजावाक्छल्यमपहन्ति, वृत्तिविलोपस्त्वर्थदूषणम् ॥ ३१ ॥ अदानमादानं विनाशः परित्यागो वार्थस्येत्यर्थदूषणम् ॥ ३२ ॥

वाक्य रूप्य, अर्थ दूषण और दण्ड पारुष्य ते तीनों कोप का त्रिवर्गकहाता है। वाक्यारुष्य और अर्थ दूषण में वाक्पारुष्य अधिक बुरा है यह विशालाक्ष आचार्य कहते हैं। जिस पुरुष पर कठोर वचनों से आक्रमण किया जावेगा, वह तेजस्वी भी अपने तेज के कारण उसपर विगड़ उठेगा। कटु वचन बाण, हृदय में गड़ जाता है। उससे तेज चमक उठता है, और इन्द्रियां व्याकुल हो उठती हैं। कौटल्याचार्य इस मत का खण्डन करते हैं, वे कहते हैं, कि धन के द्वारा पूजा कर देने पर वाणी का बाण भी निकल जाता है। किसी की वृत्ति का नाश कर देना ही अर्थ दूषण कहाता है। किसी को कुछ न देना, दंड आदि के द्वारा धन खींचना, धन का विनाश और रक्षा करने योग्य धन की रक्षा न करना इस तरह चार प्रकार का अर्थ दूषण होता है ॥ २६-३२ ॥

अर्थदूषणदण्डपारुष्ययोरर्थदूषणं गरीय इति पाराशराः ॥ ३३ ॥ अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥ ३४ ॥ अर्थप्रतिबन्धश्च लोको वर्तते ॥ ३५ ॥ तस्योपधातो गरीयानिति ॥ ३६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ सुमहताप्यर्थेन न कश्चन शरीरविनाशमिच्छेत् ॥ ३८ ॥ दण्डपारुष्याच्च तमेव दोषमन्येभ्यः प्राप्नोति ॥ ३९ ॥ इति कोपजस्त्रिवर्गः ॥ ४० ॥

अर्थ दूषण और दंड पारुष्य में अर्थ दूषण को पाराशराचार्य अधिक महत्त्व देते हैं, क्योंकि धर्म और काम दोनों अर्थ के अधीन हैं। यह सारा संसार ही धन की डोरी से बंधा हुआ घूमता है, इस लिए अर्थ का दूषण दंडपारुष्य से अधिक क्लेशकर है, परन्तु कौटल्याचार्य ऐसा स्वीकार नहीं करते हैं, वे कहते हैं, कि कितना भी धन मिले कोई धन के कारण अपने शरीर का नाश नहीं होने देता है, किन्तु दंड के भय से उसी धन को अन्य को समर्पित कर देता है और प्रसन्नता के साथ अर्थ दोष को स्वीकार करता है। यह कोप से उत्पन्न त्रिवर्ग का विवेचन हुआ ॥ ३३-४० ॥

कामजस्तु ॥ ४१ ॥ मृगया द्यूतं स्त्रियः पानमिति चतुर्वर्गः ॥ ४२ ॥
 तस्य मृगयाद्य तयोर्मृगया गरीयसाति पिशुनः ॥ ४३ ॥ स्तेनाभिन्नव्यालदाव
 प्रस्वलनभयदिङ्मोहाः क्षुत्पिपासे च प्राणावाधस्तस्याम् ॥ ४४ ॥ द्यूते तु
 जितमेवाक्षविदुषा यथा जयत्सेनदुर्योधनाभ्यामिति ॥ ४५ ॥ नेति कौटल्यः
 ॥ ४६ ॥ तयोरप्यन्यतरपराजयोऽस्तीति नलयुधिष्ठिराभ्यां व्याख्यातम्
 ॥ ४७ ॥ तदेव विजितद्रव्यमामिषं वैरवन्धश्च ॥ ४८ ॥ सतोऽर्थस्य विप्रतिपत्ति-
 रसत्तश्चार्जनमप्रतिभुक्तनाशो मूत्रपुरीषधारणवुभुक्षादिभिश्च व्याधिलाभ इति
 द्यूतदोषाः ॥ ४९ ॥ मृगयायां तु व्यायामः श्लेष्मपित्तमेदःस्वेदनाशश्चले च काये
 लक्षपरिचयः कोपभयस्थानेहितेषु च मृगाणां चित्तज्ञानमनित्ययानं चेति ॥ ५० ॥

मृगया (शिकार) द्यूत (जुआ) स्त्री प्रसंग और सुरापान-यह कामज चतुर्वर्ग माना गया है। इस मृगया और द्यूत में मृगया अधिक व्यसन है, ऐसा पिशुनाचार्य कहते हैं, क्योंकि मृगया में चोर, शत्रु, हिंसक जन्तु, दावानल, पर्वत आदि से गिरने, मार्ग भूल जने तथा भूख-प्यास का बड़ा ही भय रहता है-यहां तक कि कभी २ प्राणों पर भी आवनती है द्यूत में तो पांसों का खिलाड़ी जीत ही लेता है, जैसे जयत्सेन और दुर्योधन ने जुआ के द्वारा विजयी होकर राज्य प्राप्त किया। कौटल्याचार्य, इसे नहीं मानते। वे कहते हैं, कि जुआ की जीत अन्त में पराजय करा देती है। नल और युधिष्ठिर की इसी तरह तो विजय हुई है। दूसरी बात यह है, कि जुए में जीता हुआ धन मनुष्य के मांस के तुल्य होता है और उसमें वैर का सिलसिला चल पड़ता है। धर्म पूर्वक कमाए हुए धन का दुरुपयोग, अधर्म से उपार्जन, विना भोग नाश, मूत्र पुरीष रोकने और भूत्वे मरने से जुआरी प्रायः बीमार हो जाते हैं-ये सारे द्यूत के ही तो दोष हैं। मृगया में व्यायाम, कफ, पित्त, मेद और स्वेद (पसीना) का नाश, चञ्चल और स्थिर शरीर पर लक्ष्य वैधने का अभ्यास कोप और भय से स्थानों पर होने वाली चेष्टाओं के द्वारा प्राणियों के चित्तों की दशा का परिचय और पैदल चलने का अभ्यास-ये मृगया में गुण भी हैं ॥ ४१-५० ॥

द्य तस्त्रीव्यसनयोः कैतवव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ५१ ॥ सातत्येन हि निशि प्रदीपे मातरि च मृतायां दीव्यत्येव कितवः ॥ ५२ ॥ कृच्छ्रे च प्रतिपृष्टः कुप्यति ॥ ५३ ॥ स्त्रीव्यसनेषु तु स्नानप्रतिकर्मभोजनभूमिषु भवत्येव धर्मार्थपरिग्रहः ॥ ५४ ॥ शक्या च स्त्री राजहिते नियोक्तुम् ॥ ५५ ॥ उपांशुदण्डेन व्याधिना वा व्यावर्तयितुमवसावयितुं वेति ॥ ५६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ५७ ॥

सप्रत्यादेयं द्यूतं निष्प्रत्यादेयं स्त्रीव्यसनमदर्शनं कार्यनिर्वेदः कालातिपातनाद-
नर्थधर्मलोपश्च तन्त्रदौर्बल्यं पानानुबन्धश्चेति ॥ ५८ ॥

द्यूत और स्त्री व्यसन में द्यूत को कौणपदन्त अधिक बुरा बताते हैं, क्योंकि लगतार रात दिन, यहां तक कि माता के मरी पड़ी रहने पर भी जुआरी जुआ खेलता देखा गया है। जब उस पर संकट आ पड़ता है, और कोई कुछ पूछता है, तो वह उलटा उसपर भड़क उठता है। स्त्री व्यसनी से तो स्नान, वस्त्र आदि धारण या भोजनशाला में धर्म अर्थ सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों की चर्चा चलाई जा सकती है। कामी राजा को फंसाने वाली स्त्री ही राजा को उसके हित में लगाने में प्रवृत्त की जा सकती है। जिस स्त्री में राजा फंसा है, उसे गुपचुप मरवा कर या औषध द्वारा रोगी बनाकर अलग किया जा सकता या राजा को उससे हटा कर सन्हाला जा सकता है। परन्तु कौटल्याचार्य इसे भी नहीं स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, कि द्यूत में गई हुई वस्तु फिर जीत ली जाती है, परन्तु स्त्रियों को सौंपी हुई वस्तु फिर नहीं आती, स्त्री व्यसनी राजा तो कभी दर्शन ही नहीं देता। उसे काम करने से रतानि सी हो जाती है। प्रत्येक कार्य में विलम्ब कर देने से कार्य और धर्म की हानि होती रहती है; इससे राज्य शासन व्यवस्था ढीली पड़ जाती है। स्त्री व्यसनी राजा को सुगपान की चाट भी अवश्य लगकर रहती है ॥५१-५८॥

स्त्रीपानव्यसनयोः स्त्रीव्यसनमिति वातव्याधिः ॥ ५९ ॥ स्त्रीषु हि बालि-
श्यमनेकविधं निशान्तप्रणिधौ व्याख्यातम् ॥ ६० ॥ पाने तु शब्दादीनामिन्द्रि-
यार्थानामुपभोगः प्रीतिदानं परिजनपूजनं कर्मश्रमवधश्चेति ॥ ६१ ॥ नेति कौट-
ल्यः ॥ ६२ ॥ स्त्रीव्यसने भवत्यपत्योत्पत्तिरात्मरक्षणं चान्तर्दारेषु विपर्ययो वा
ब्राह्मेष्वागम्येषु सर्वोच्छ्रित्तिः ॥ ६३ ॥ तदुभयं पानव्यसने ॥ ६४ ॥ पानसंपत्
संज्ञानाशोऽनुन्मत्तस्योन्मत्तत्वमप्रेतस्य प्रेतत्वं कौपीनदर्शनं श्रुतप्रज्ञाप्राणवित्त-
मित्रहानिः सङ्घिर्वियोगोऽनर्थसंयोगस्तन्त्रीगीतनैपुण्येषु चार्थघ्नेषु प्रसङ्ग
इति ॥ ६५ ॥

स्त्री व्यसन और सुरापान में वात व्याधि आचार्य, स्त्री व्यसन का अधिक दुःखदायी मानते हैं, क्योंकि स्त्रियों में अनेक प्रकार की मूर्खताएँ होती हैं। ये पति के मारने तक के पड़्यन्त्र में सम्मिलित देखी गई हैं, जिसका वरान निशान्तप्रणिधि नामक प्रकरण में किया जा चुका है। मद्यपान से तो शब्दादि इन्द्रियों के भोगों में अधिक आनन्द बढ़ जाता है। इसमें प्रीति पूर्वक दान, परिजन का आदर और काम करने की थकावट दूर होने के गुण भी विद्यमान हैं। कौटल्याचार्य इस मत को ठीक नहीं समझते हैं। वे

कहते हैं, कि स्त्री व्यसन में पुत्रोत्पत्ति और अपनी रक्षा हो सकती है, परन्तु यह तभी होना सम्भव है, जब यह व्यसन अपनी विवाहित स्त्रियों में हो । गरिका आदि बाह्य अगम्य स्त्रियों से तो सर्वनाश ही होता है, परन्तु सुरापान में सब प्रकार से नाश होता है, और पुत्र आदि की प्राप्ति की तरह कुछ नहीं प्राप्त होता । सुरापान में संज्ञाका नाश तथा पागल नहीं होने पर भी पागल हो जाता है । इसमें बिना मरे ही मनुष्य मृतक की तरह पड़ा रहता है । उसकी सारी लंगोटी खुल जाती है अर्थात् सारे पाप खुल जाते हैं । शास्त्रज्ञान, बुद्धि, प्राण, धन और मित्र की हानि होती है । सज्जनों का वियोग, अनर्थ कार्यों का संयोग, गाने बजाने में कुशल नट-नर्तक आदि धन नाश करने वाले लोगों की सङ्गति के सिवा और कुछ नहीं मिलता ॥५६-६५॥

द्य तमद्ययोः द्य तमेकेषाम् ॥ ६६ ॥ पणनिमित्तो जय पराजयो वा प्राणिषु निश्चेतेनेषु वा पक्षद्वैधेन प्रकृतिकोपं करोति ॥६७॥ विशेषतश्च सङ्घानां सङ्घधर्मिणां च राजकुलानां द्य तनिमित्तो भेदः, तन्निमित्तो विनाश इति ॥ ६८ ॥ असत्प्रग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति ॥ ६९ ॥

द्यूत और मद्य के व्यसन में द्यूत को कोई २ आचार्य अधिक हानिकर बताते हैं । द्यूत में जो दाव लगता है, उससे जय और पराजय होता है । प्राणी या अप्राणी दोनों प्रकार के दावों में क्रोध का आविर्भाव होता है । समूह बनाकर रहने वाले या सेना के साथ अपनी जीवन यात्रा चलाने वाले राजकुलों में जुआ से फूट पड़ती देखी गई है । इस फूट से उनका नाश हो गया है । इस सुरापान में असत्पुरुषों का संग्रह होता है, इससे द्यूत का व्यसन बहुत ही बुरा है । इसके बढ़ने से सारा राज्य-चक्र दुर्बल हो जाता है ॥६६-६९॥

असतां प्रग्रहः कामः क्रोधश्चावग्रहः सताम् ।

व्यसनं दोषबाहुल्यादत्यन्तमुभयं मतम् ॥ ७० ॥

तस्मात्क्रोधं च कामं च व्यसनारम्भमात्मवान् ।

परित्यजेन्मूलहरं वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ॥ ७१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे पुरुषव्यसनवर्गस्तृतीयो ऽध्यायः ॥३॥

आदित एकोनविंशतो ऽध्यायः ॥ ११६ ॥

काम और क्रोध-इन दोनों में असत्पुरुषों का आदर और सत्पुरुषों का तिरस्कार होता है, इस कारण से ये दोनों काम और क्रोध बड़े ही व्यसन माने जाते हैं ।

आत्माभिमानी वृद्धसेवी जितेन्द्रिय, पुरुष, सर्वनाश करने वाले सब व्यसनों के मूल इन काम और क्रोध का अच्छी तरह परित्याग कर देवे ॥७०-७१॥

इतिश्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में पुरुष व्यसन के वर्णन का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



चौथा अध्याय

१३०-१३२वां प्रकरण

पीडनवर्गः स्तम्भवर्गः, कोशसङ्गवर्गः

इस प्रकरण में राष्ट्र की पीड़ा, राजकीय धन की रुकावट, तथा कोश के द्रव्य के कोश तक न पहुंचने का वर्णन किया जावेगा ।

दैवंपीडनमग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरक इति ॥ १ ॥ अग्न्युदकयोरग्निपीडनमप्रतिकार्यं सर्वदाहि च ॥२॥ शक्योपगमनं तार्यावाधमुदकपीडनमित्याचार्याः ॥ ३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४ ॥ अग्निग्राममर्धग्रामं वा दहति ॥ ५ ॥ उदकवेगस्तु ग्रामशतप्रवाहीति ॥ ६ ॥

अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष, और महामारी ये पांच राष्ट्र पर आने वाली दैवी आपत्ति होती है । अग्नि और जल बाधा में अग्नि बाधा अत्यन्त पीड़ा जनक है । एक दम इसका कोई प्रतीकार नहीं किया जा सकता है । और यह सबको जला डालती है । जल पीड़ा में नौका आदि से उसका उपाय किया जा सकता है । ऐसा अनेक आचार्य कहते हैं, परन्तु कौटिल्याचार्य इसे भी नहीं मानते हैं । वे कहते हैं, कि अग्नि एक गांव आधा गांव को जलाकर शान्त हो जाती है, परन्तु जल प्रवाह सैकड़ों गांवों को ठण्डा कर देता है ॥१-६॥

व्याधिर्दुर्भिक्षयोर्व्याधिः प्रेतव्याधितापसृष्टपरिचारकव्यायामोपरोधेन कर्माण्युपहन्ति ॥ ७ ॥ दुर्भिक्षं पुनरकर्मोपवाति हिरण्यपशुकरदायि चेत्याचार्याः ॥ ८ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ९ ॥ एकदेशपीडनो व्याधिः शक्यप्रतीकारश्च ॥१०॥ सर्वदेशपीडनं दुर्भिक्षं प्राणिनामजीवनायेति ॥ ११ ॥ तेन मरको व्याख्यातः ॥ १२ ॥

व्याधि और दुर्भिक्ष में व्याधि, अधिक कष्टकारी होती है । व्याधि द्वारा मृत्यु तो हो ही जाती है, परन्तु रोगी की सेवा में लग जाने से कृषि व्यापार आदि सारे काम भी

चापट हो जाते हैं। दुर्भिक्ष में काम धन्वे वन्द नहीं होते और सुवर्ण तथा पशु के रूप में कर भी चुकाया जा सकता है। ऐसा आचार्य मानते हैं। कौटल्याचार्य इसे नहीं मानते। क्योंकि व्याधि एक देश में पीड़ा पहुंचाती है, और उसका प्रतीकार भी किया जा सकता है, परन्तु दुर्भिक्ष, सब देश को पीड़ा पहुंचाता है और प्राणियों के नाश के लिए होता है। यही बात महामारी के सम्यन्ध में समझनी चाहिए ॥८-१२॥

क्षुद्रकमुख्यक्षययोः क्षुद्रक्षयः कर्मणामयोगक्षेमं करोति ॥ १३ ॥ मुख्य-
क्षयः कर्मानुष्ठानापराधधर्मेत्याचार्याः ॥ १४ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १५ ॥ शक्यः
क्षुद्रक्षयः प्रति सधातुं बाहुल्यात्क्षुद्रकाणाम् मुख्यक्षयः ॥ १६ ॥ सहस्रेषु हि मुख्यो
भवत्यको न वा सत्त्वप्रज्ञाधिक्यात्तदाश्रयत्वात्क्षुद्रकाणामिति ॥ १७ ॥

छोटे २ कर्मचारी और मुख्य कर्मचारी गण में छोटे कर्मचारी गण का विनाश कार्य की हानि करने वाला है। मुख्य कार्य कर्ता तो केवल देख रेख करते हैं, इससे उनके क्षय में देख रेख की कमी हो जाती है पर काम तो होता ही रहता है यह पृवाचार्यों का मत है। कौटल्य इस मत को श्रेष्ठ नहीं कहते वे तो क्षुद्र कर्मचारियों के क्षय की अपेक्षा मुख्य कर्मचारियों के क्षय को अधिक दुःखदायी मानते हैं। छोटे २ मनुष्य बहुत मिल सकते हैं, इससे उनका काम करवाया जा सकता है, पर मुख्य कर्मचारी का मिलना कठिन है। सहस्रों में कोई एक मुख्य पुरुष उत्पन्न होता है। किसी २ में ही मानसिक बल और बुद्धि की श्रेष्ठता होती है। क्षुद्र लोग तो मुख्य मनुष्य के आश्रय पर रहते हैं ॥१३-१७॥

स्वचक्रपरचक्रयोः स्वचक्रमतिमात्राभ्यां दण्डकराभ्यां पीडयत्यशक्यं च
वारयितुम् ॥ १८ ॥ परचक्रं तु शक्यं प्रतियोद्धमपसारेण संधिना वा मोक्ष-
यितुमित्याचार्याः ॥ १९ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २० ॥ स्वचक्रपीडनं प्रकृतिपुरुष-
मुख्योपग्रहविधाताभ्यां शक्यते वारयितुमेकदेश वा पीडयति ॥ २१ ॥
सर्वदेशपीडनं तु परचक्रं विलापवातदाहविध्वंसनोपवाहनैः पीडयतीति ॥ २२ ॥

अपनी राजशक्ति और परकीय राजशक्ति में अपनी राजशक्ति दुःखदायिनी कहनी चाहिए। यह बहुत कर और दण्ड से मनुष्यों को आतुर कर देता है। और इसका प्रतीकार करना भी कठिन है। दूसरी राजशक्ति से युद्ध किया जा सकता है या उससे वचकर निकला जा सकता है अथवा सन्धि द्वारा भी छुटकारा हो जाता है कौटल्याचार्य इसके विरोध में कहते हैं-कि अपने राज्य में होने वाले कष्टों का निराकरण अमात्य आदि पीड़ा पहुंचाने वाले मुख्य पुरुषों के अनुकूल करने या नाश कर देने से हो सकता है। यदि वे पीड़ा भी पहुंचावे-तो किसी एक अङ्ग को पहुंचा सकते हैं, परन्तु पराया राजा तो

धनापहरण. मारकाट, अग्निदाह, विध्वंस और देश निकाले आदि से भारी पीड़ा पहुंचाने का कारण बन सकता है ॥१८-२२॥

प्रकृतिराजविवादयोः प्रकृतिविवादः प्रकृतीनां भेदकः पराभियोगानावहति ॥ २३ ॥ राजविवादस्तु प्रकृतीनां द्विगुणभक्तवेतनपरिहारकरो भवतीत्याचार्याः ॥ २४ ॥ नेति कौटल्यः ॥ २५ ॥ शक्यः प्रकृतिविवादः प्रकृतिमुख्योपग्रहेण कलहस्थानापनयनेन वा वारयितुम् ॥ २६ ॥ विवदमानास्तु प्रकृतयः परस्परसङ्घर्षेणोपकुर्वन्ति ॥ २७ ॥ राजविवादस्तु पीडनोच्छेदनाय प्रकृतीनां द्विगुणव्यायामसाध्य इति ॥ २८ ॥

अमात्य आदि प्रकृति और राजाओं के विवाद में अमात्य आदि प्रकृतियों का विवाद अधिक बुरा है। इसमें अमात्यों में परस्पर फूट पड़ जाती है, जिससे शत्रु को अपना कार्य बनाने में बड़ी मदद मिलती है। राजाओं का झगड़ा तो भृत्यों के भत्ते और वेतन को दुगुना कर देता है तथा प्रजा को बहुत से कर मुआफ करवा देता है। यह आचार्यों का मत है-इसपर कौटल्याचार्य कहते हैं, ऐसी बात नहीं है। अमात्यों का झगड़ा, मुख्य झगड़ालू के दण्ड देने या कलह स्थान से दूर हटा देने से रोका जा सकता है। यदि अमात्य आदि प्रकृति परस्पर झगड़ बैठें तो एक दूसरे के संघर्ष में वे राजा का उपकार कर देती हैं। परन्तु राजाओं का झगड़ा प्रजा के पीड़ा और नाश के लिए होता है। इसके शान्त करने में अमात्यों के झगड़े की अपेक्षा दुगुना बल लगाना पड़ता है ॥२३-२८॥

देशराजविहारयोः देशविहारस्त्रैकाल्येन कर्मफलोपघातं करोति ॥ २९ ॥ राजविहारस्तु कारुशिल्पिकुशीलववाग्जीवनं वैदेहकोपकारं करोतीत्याचार्याः ॥ ३० ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ देशविहारः कर्मश्रमवधार्थमल्पं भक्षयति ॥ ३२ ॥ भक्षयित्वा च भूयः कर्मसु योगं गच्छति ॥ ३३ ॥ राजविहारस्तु स्वयं बल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागारकार्योपग्रहैः पीडयतीति ॥ ३४ ॥

अमात्य आदि प्रजा का खेल कूद में लग जाना या राजा के खेल कूद में लग जाना में अमात्य आदि प्रजा का खेल कूद में लग जाना अधिक हानिकारी है, क्योंकि इससे तीनों कालों में होने वाले कृषि आदि आवश्यक कार्यों का नाश हो जाता है। राजा के खेल कूद में लग जाने से तो कभी २ कारीगर मिल्ही, नट-नर्तक, कथा कहानी कहने वाले भाट और व्यापारियों का उपकार हो जाता है। ऐसा पूर्वाचार्य मानते हैं। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि प्रजाजन या अमात्य आदि का खेल कूद, थकावट को दूर करने वाला

होता है और उसमें थोड़ा सा खाना पीना भी हो जाता है। प्रजाजन खा पीकर फिर काम में लग जाते हैं। राजा के खेल कूद, में तो राजा या उसके प्रिय पुरुष, कर आदि के द्वारा अधिक धन छीनकर प्रजा के पण्यगार आदि के कार्यों को हानि पहुंचाकर प्रजा को पीड़ित कर डालते हैं ॥२६-३१॥

सुभगाकुमारयोः कुमारः स्वयं वल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यगारकार्यो-
पग्रहैः पीडयतीति ॥ ३५ ॥ सुभगा विलासोपभोगेनेत्याचार्याः ॥ ३६ ॥
नेति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ शक्यः कुमारो मन्त्रिपुरोहिताभ्यां वारयितुं न सुभगा
वाल्लियादनर्थ्यजनसंयोगाच्चेति ॥ ३८ ॥

राजरानी और राजकुमार के खेल कूद में राजकुमार का खेल कूद अधिक हानि-
कारो है। यह स्वयं या अपने प्रिय पुरुषों के द्वारा कर प्रेम, पण्यशाला तथा अन्य कार्यों
को रोककर धन इकट्ठा करके प्रजा को पीड़ा पहुंचाता है। रानी तो केवल विलास की
सामग्री पुष्प आदि में थोड़ा ही व्यय कर सकती है। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि राजकुमार
को मन्त्री और पुरोहित रोक सकते हैं, परन्तु राज रानियां नहीं रोकी जा सकती। वे
बहुत मूर्खता या घमण्ड में भरा होती हैं और नटनर्तक जैसे अनुचित पुरुषों से
घिरी होती हैं ॥३५-३८॥

श्रेणीमुख्ययोः श्रेणी बाहुल्यादनवग्रहा स्तेयसाहसाभ्यां पीडयति ॥३९॥
मुख्यः कार्यानुग्रहविधाताभ्यामित्याचार्याः ॥ ४० ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४१ ॥
सुव्यावर्त्या श्रेणी समानशीलन्यसनत्वात्, श्रेणीमुख्यैकदेशोपग्रहेण वा ॥४२॥
स्तम्भयुक्तो मुख्यः परप्राणद्रव्योपधाताभ्यां पीडयतीति ॥ ४३ ॥

श्रेणी (पार्टी) बनाकर रहने वाले गिरोह और मुख्य कर्मचारी में डाके आदि
डालने वाली श्रेणी ही अधिक दुःखदायिनी मानी जाती है। इनकी संख्या बहुत होती है,
इससे यह वश में नहीं आती और चोरी तथा डाके के द्वारा प्रजा को पीड़ा पहुंचाती है।
मुख्य पुरुष तो कार्य करने में रिश्वत या काम के बिगाड़ने से ही थोड़ी हानि पहुंचा
सकता है ऐसा अन्य आचार्यों ने कहा है। इसपर कौटल्याचार्य कहते हैं, कि डाका आदि
डालने वालों के गिरोह को थोड़े ही परिश्रम से रोका जा सकता है, क्योंकि ग्रामीण जनता
भी उनकी तरह बलवती और उनसे लड़ने में समर्थ होती है। श्रेणी (गिरोह) के किसी
मुख्य पुरुष को अपनी ओर मिला लेने से भी उनका प्रतीकार किया जा सकता है। इसके
विपरीत राजकीय मुख्य पुरुष राज्य का स्तम्भ होता है। वह प्रजा के प्राण और द्रव्य
दोनों छीनकर बड़ी हानि पहुंचा देता है ॥३९-४३॥

संनिधातृसमाहर्त्रोस्संनिधाता कृतविदूषणात्ययाभ्यां पीडयति ॥ ४४ ॥
 समाहर्ता करणाधिष्ठितः प्रदिष्टफलोपभोगी भवतीत्याचार्याः ॥ ४५ ॥ नेति
 कौटल्यः ॥ ४६ ॥ संनिधाता कृतावस्थमन्यैः कोशप्रवेश्यं प्रतिगृह्णाति ॥ ४७ ॥
 समाहर्ता पूर्वमर्थमात्मनः कृत्वा पश्चाद्राजार्थं करोति, प्रणाशयति वा, परस्वा-
 दाने च स्वप्रत्ययश्चरतीति ॥ ४८ ॥

कोष या भण्डार में वस्तु रखने वाला अधिकारी से संनिधाता और कर संग्रह करने वाला समाहर्ता में संनिधाता (धन को कोष में रखने वाला) वस्तुओं में दोष निकालकर तथा जुर्माना आदि करके प्रजा को अधिक दुःखी कर सकता है । समाहर्ता तो अपने काम पर लगा हुआ अपने वेतन मात्र का भोगी होता है । ऐसा ही पूर्वाचार्य मानते आये हैं । कौटल्याचार्य कहते हैं, कि संनिधाता अधिकारी तो अन्य राजकीय कर्मचारी द्वारा रखी हुई वस्तुओं को अपने कोष में रखता है, परन्तु समाहर्ता तो धन को प्रथम अपने अधीन करता है और पीछे राजा को सौंपता है । यह चाहे-तो प्रजा के धन का नाश कर सकता है । यह कर ग्रहण करने के समय अपनी इच्छानुसार चलता है । इससे समाहर्ता ही अधिक क्लेश पहुंचा सकता है ॥ ४४-४८ ॥

अन्तपालवैदेहकयोरन्तपालश्चोरप्रसङ्गदेयात्यादानाभ्यां वणिक्पथं पीडयति ॥ ४९ ॥ वैदेहकास्तु पण्यप्रतिपण्यानुग्रहैः प्रसाधयन्तीत्याचार्याः ॥ ५० ॥
 नेति कौटल्यः ॥ ५१ ॥ अन्तपालः पण्यसंपातानुग्रहेण वर्तयति ॥ ५२ ॥
 वैदेहकास्तु संभूय पण्यानामुत्कर्षापकर्षं कुर्याणाः पणे पणशतं कुम्भे कुम्भशत-
 मित्याजीवन्ति ॥ ५३ ॥

सीमापालक और व्यापारी के मध्य में कौन प्रजा का अधिक क्लेश का कारण है-इस प्रश्न के उत्तर में सीमापालक को ही अधिक कष्टदायी मानना चाहिए । यह चोरों के द्वारा व्यापारियों को लुटवाकर या अधिक कर ग्रहण करके प्रजा को पीड़ा पहुंचाता है । व्यापारी लोग तो बेचने की या खरीदने की वस्तु इधर उधर पहुंचा कर प्रजा का सुख सम्पादन करते हैं । ऐसा आचार्य मानते हैं । कौटल्याचार्य कहते हैं, कि अन्तपाल (सीमापालक) बेचने की चीजों के आने जाने की व्यवस्था करने से सबकी वृत्ति चलाने का कारण है । व्यापारी लोग मिलकर वस्तुओं का भाव बढ़ा देते हैं और एक २ रुपये की वस्तु के सौ २ रुपये छीन लेते हैं । एक कुम्भ के सौ कुम्भ लेते हैं । इनका तो यह आजीवन करने का ढंग ही है ॥ ४९-५३ ॥

अभिजातोपरुद्धा भूमिः पशुव्रजोपरुद्धा चेति ॥ ५४ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिः महाफलाप्यायुधीयोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुं व्यसनाबाधभयात् ॥ ५५ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कृषियोग्या क्षमा मोक्षयितुम्, विवर्तत हि क्षेत्रेण बाध्यत इत्याचार्याः ॥ ५६ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ५७ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिस्त्यन्तमहोपकारापि क्षमा मोक्षयितुम् व्यसनाबाधभयात् ॥ ५८ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कोशवाहनोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुमन्यत्र सन्त्यवाशोपरोधादिति ॥ ५९ ॥

राज्य में दो तरह की भूमि छोड़ने योग्य होती है । एक तो वंशजों से घेरी हुई दूसरी गोवंश द्वारा घेरी हुई होती है । अपने ही कुल में उत्पन्न हुए पुरुषों द्वारा घेरी हुई भूमि बहुत कुछ फल देती है-तो भी उसे उनको नहीं चाहिए, यदि उससे सेना के सञ्चय का काम होता हो, क्योंकि सेना से विपत्ति को दूर रखा जा सकता है । पशु समूह में घिरी हुई भूमि को दिया जा सकता है और उसमें कृषि करायी जा सकती है । क्योंकि पशुओं की भूमि से क्षेत्र होना अच्छा है । कौटल्य-आचार्य-पूर्वाचार्यों के इस मत को न मानकर कहते हैं, कि अपने कुल वाली से घेरी हुई भूमि अत्यन्त उपकार करने वाली होने पर भी जागीर में दे देनी चाहिए, क्योंकि विपत्ति तो अपने परिवार के पुरुषों से ही आती है । पशुओं के चरने के योग्य भूमि किसी को इनाम में नहीं देनी चाहिए, क्योंकि वह कोश और वाहन के योग्य होती है । यदि चरागाह से खेतों में नुकसान होता हो-तो चरागाह को भी खेती के योग्य बनाकर जागीर आदि इनाम में दिया जा सकता है ॥५४-५९॥

प्रतिरोधकाटविक्रयोः प्रतिरोधकाः रात्रिसत्त्वपराः शरीराक्रमिणो नित्याः शतसहस्रापहारिणः प्रधानकोपकाश्च ॥ ६० ॥ व्यवहिताः प्रत्यन्तारण्यचराश्चाटविकाः प्रकाशा दृश्याश्चरन्त्येकदेशघातकाश्चेत्याचार्याः ॥ ६१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ प्रतिरोधकाः प्रमत्तस्यापहरन्ति ॥ ६३ ॥ अल्पाः कुण्ठाः सुखा ज्ञातुं ग्रहीतुं च ॥ ६४ ॥ स्वदेशस्थाः प्रभूता विक्रान्ताश्चाटविकाः ॥ ६५ ॥ प्रकाशयोधिनोऽपहर्तारो हन्तारश्च देशानां राजसधर्माण इति ॥ ६६ ॥

प्रतिरोधक (लुटेरे) और आटविक में प्रतिरोधक अधिक भयकारी है । ये रात में खुल्लम खुल्ला घूमने वाले, शरीर पर आघातकारी, नित्य सैकड़ों हज़ारों छीन ले जाने वाले और राष्ट्र के प्रधान २ पुरुषों को क्रुपित कर देने वाले होते हैं । आटविक, अपने देश

के जंगलों में खुले घूमते हुए भी दूर रहते हैं। ये देश के किसी छोटे मोटे २ प्रान्त को कभी २ पीड़ा पहुंचा देते हैं। ऐसा अन्य आचार्यों का मत है। कौटिल्याचार्य कहते हैं, कि प्रतिरोधका प्रमादी पुरुष के यहां डाका डालते हैं। ये संख्या में थोड़े और मूर्ख से होते हैं। इनको सुख पूर्वक जाना या पकड़ा जा सकता है। आटविक लोग, खुले लड़ते हैं। ये धन छीन लेते हैं और देशों के देश का नाश कर देते हैं। इनको तो आक्रमण करने वाले दूसरे राजा ही समझना चाहिए ॥६०-६६॥

मृगहस्तिवनयोः मृगाः प्रभूताः प्रभूतमांसचर्मोपकारिणो मन्दग्रासाव-
क्लेशिनः सुनियम्याश्च ॥ ६७ ॥ विपरीता हस्तिनो गृह्यमाणा दृष्टाश्च
देशविनाशायेति ॥ ६८ ॥ स्वपरस्थानीयोपकारयोः स्वस्थानीयोपकारो धान्य-
पशुहिरण्यकुप्योपकारो जानपदानामापघातमधारणः ॥ ६९ ॥ विपरीतः परस्था-
नीयोपकारः, इति पीडनानि ॥ ७० ॥

मृग और हस्तिवन में हस्तिवन दुःखदायी है। मृग बहुत होते हैं और बहुत से मांस और चर्म के द्वारा उपकार कर देते हैं। ये थोड़ा खाते हैं और थोड़ा क्लेश देते हैं। इनको सरलता से बांधा जा सकता है। हाथी इनसे विपरीत थोड़े और क्लेश का है। जब इन्हें पकड़ते हैं, तो ये बहुतों को मार बैठते हैं। अपने नगर और दूसरे राजा के नगर में वस्तु बेचकर कौन से नगर को उपकार पहुंचाना चाहिए। धान्य, पशु, सुवर्ण, वस्त्र, वर्तन आदि पदार्थों का अपने देश में बेचने से अपने देश के मनुष्यों का उपकार होकर आपत्ति में रक्षा होती है। दूसरे देश के नगर का उपकार जलटी हानि करने वाला है। यहां तक प्रजा पीड़न का वर्णन किया गया ॥६७-७०॥

आभ्यन्तरो मुख्यस्तम्भो बाह्यो मित्राटवीस्तम्भ इति स्तम्भवर्गः ॥७१॥

अपने ही मुख्य पुरुषों द्वारा धन का रोका जाना आभ्यन्तर और मित्र तथा आट-
विक द्वारा धन का रोका जाना बाह्य, मुख्य स्तम्भ कहाता है। स्तम्भ वर्ग इतना ही है ॥७१॥

ताभ्यां पीडनैर्यथोक्तैश्च पीडितः सक्तो मुख्येषु परिहारोपहतः ।

प्रकीर्णो मिथ्यासंभृतः सामन्ताटवीभृत इति कोशसङ्गाः ॥ ७२ ॥

आभ्यन्तर और बाह्य इन दोनों प्रकार के स्तम्भों से स्तम्भित, पूर्वोक्त पीड़न द्वारा पीडित (घटाया हुआ) मुख्य पुरुषों के व्यवहार में आया हुआ, मुआफी के कारण न्यून हुआ, इधर उधर बिलरा हुआ, अन्याय से एकत्रित यथा सामन्त और आटविक पुरुषों से छीना हुआ, धन, कोश में नहीं पहुंच सकता है। यह कोश सङ्ग कहाता है ॥७२॥

पीडनानामनुत्पत्तावुत्पन्नानां च वारणे ।

यतेत देशवृद्धयर्थं नाशे च स्तम्भसङ्गयोः ॥ ७३ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे पीडनवर्गः स्तम्भवर्गः कोशसङ्गवर्गः
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो विंशतिशतोऽध्यायः ॥ १२० ॥

पूर्वोक्त पीडन के उत्पन्न न होने देने और उत्पन्नों के रोकने तथा स्तम्भ वर्ग और
कोश सङ्ग वर्ग के नाश का अपने देश की वृद्धि निमित्त राजा सर्वदा प्रयत्न
करता रहे ॥७३॥

इति श्रीकौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में पीडनवर्ग आदि
के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पांचवां अध्याय

१-३-१३४वां प्रकरण

बलव्यसनावर्गा मित्रव्यसनवर्गोश्च ।

इस प्रकरण में अपनी सेना और मित्रपर आने वाले संकटों का वर्णन किया जावेगा
बलव्यसनानि ॥ १ ॥ अमानितं विमानितममृतं व्याधितं नवागतं दूरयातं
परिश्रान्तं परिक्षीणं प्रतिहतं हताग्रवेगमनृतुप्राप्तमभूमिप्राप्तमाशानिर्वेदि परिसृप्तं
कलत्रगर्हन्तः शल्यं कुपितमूलं भिन्नगर्भमपसृतमतिक्षिप्तमुपनिविष्टं समाप्तमुप-
रुद्धमुपक्षिप्तं छिन्नधान्यपुरुषवीवधं स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं दूष्ययुक्तं दुष्टपार्ष्णि-
ग्राहं शून्यमूलमस्त्रामिसंहतं भिन्नकूटमन्धमिति ॥ २ ॥

अमानित, विमानित, अमृत, व्याधित, नवागत, दूरयात, परिश्रान्त, परिक्षीण,
प्रतिहत, हताग्रवेग, अनृतुप्राप्त, अभूमिप्राप्त, आशानिर्वेदि, परिसृप्त, कलत्रगर्हि, अन्तः शल्य,
कुपितमूल, भिन्नगर्भ, अपसृत, अतिक्षिप्त, उपनिविष्ट, समाप्त, उपरुद्ध, उपक्षिप्त, छिन्नधान्य,
छिन्न पुरुष वीवध, स्वविक्षिप्त, मित्रविक्षिप्त, दूष्ययुक्त, दुष्ट पार्ष्णिग्राह, शून्यमूल, अस्त्रामि-
संहत, भिन्नकूट, और अन्ध ये चौतीस प्रकार के सेना के व्यसन होते हैं ॥१-२॥

तेषाममानितविमानितयोरमानितं कृतार्थमानं युष्येत न विमानितमन्तः
कोपम् ॥ ३ ॥ अभृतं व्याधितयोरभृतं तदात्वकृतवेतनं युष्यते न व्याधित-

मकर्मण्यम् ॥ ४ ॥ नवागतदूरायातयोर्नवागतमन्यत उपलब्धदेशमनवमिश्रं युध्येत न दूरायातमायतगतपरिक्लेशम् ॥ ५ ॥

इनमें अमानित और विमानित सेना में अमानित सेना आदर कर देने पर लड़ जाती है, परन्तु विमानित, समय पर युद्ध नहीं कर सकेगी, क्योंकि उसके भीतर क्रोध भरा हुआ रहता है। जिसका आदर नहीं किया गया वह अमानित और जिसका तिरस्कार कर दिया गया हो-उसे विमानित कहा जाता है। अमृत और व्याधित सेना में अमृत सेना वेतन चुका देने पर लड़ सकती है, पर रोगी सेना अकर्मण्य होने से नहीं लड़ सकती। जिसका वेतन नहीं दिया जाता हो, उसे अमृत और रोगिणी सेना को व्याधित कहते हैं। नवागत और दूरायात सेना में नवागत सेना अन्य से इस प्रदेश का वृत्तान्त जानकर युद्ध करने खड़ी हो सकती है, परन्तु दूरायात सेना थकी रहने के कारण युद्ध करने में समर्थ नहीं होती। नई आई हुई नवायात और दूर से आई हुई दूरायात सेना होती हैं ॥३-५॥

परिश्रान्तपरिचीणयोः परिश्रान्तं स्नानभोजनस्वप्नलब्धविश्रामं युध्येत न परिचीणमन्यत्राहवे चीणयुग्यपुरुषम् ॥ ६ ॥ प्रतिहतहताग्रवेगयोः प्रतिहतमग्रपातभग्नं प्रवीरपुरुषसंहतं युध्येत न हताग्रवेगमग्रपातहतप्रवीरम् ॥ ७ ॥ अनृतत्वभूमिप्राप्तयोरनृतप्राप्तं यथर्तुयोग्यशस्त्रावरणं युध्येत नाभूमिप्राप्तमवरुद्धप्रसारव्यायामम् ॥ ८ ॥

परिश्रान्त और परिचीण सेना में परिश्रान्त सेना, स्नान, भोजन, शयन आदि द्वारा विश्राम करके युद्ध कर सकती है, परन्तु परिचीण नहीं कर सकती, क्योंकि उसके किसी दूसरे युद्ध में योग्य सैनिक मर चुके हैं। थकी हुई सेना का नाम परिश्रान्त और न्यून हुई सेना का नाम परिचीण है। प्रतिहत और हताग्रवेग सेना में प्रतिहत सेना अपने प्रथम आक्रमण में भागे हुए वीर सैनिकों की परवा न करके वीर पुरुषों के द्वारा लड़ सकती है, परन्तु जिसके अग्र भाग के वीर मारे गए वह हताग्रवेग सेना नहीं लड़ सकती है। आक्रमण के समय जिसके वीर भागे वह प्रतिहत और जिसके वीर मारे जावें वह हताग्रवेग सेना कहाती है। अनृत प्राप्त, और अभूमि प्राप्त सेना में ऋतु के अनुकूल शस्त्र कवच आदि प्राप्त होने पर अनृत प्राप्त सेना लड़ सकती है, पर अभूमि प्राप्त नहीं लड़ सकती, क्योंकि उसके निकलने या पराक्रम दिखाने का स्थान ही नहीं होता है। जिसके लड़ने की ऋतु योग्य नहीं है, वह ऋतु प्राप्त और जिसके योग्य भूमि नहीं है। वह अभूमि प्राप्त सेना कहाती है ॥६-८॥

आशानिर्वेदिपरिसृप्तयोराशानिर्वेदि लब्धाभिप्रायं युध्येत न परिसृप्तमपसृ-
तमुख्यम् ॥ ९ ॥ कलत्रगर्हन्तःशल्ययोः कलत्रगर्हन्मुख्य कलत्रं युध्येत नान्तः-
शल्यमन्तरमित्रम् ॥ १० ॥ कुपितमूलमिन्नगर्भयोः कुपितमूलं प्रशमितकोपं सा-
मादिभिर्युध्येत न मिन्नगर्भमन्योन्यस्याद्भिन्नम् ॥ ११ ॥

आशानिर्वेदी और परिसृप्त सेना में आशा-निर्वेदी सेना अपनी आशा पूर्ण होने पर लड़ सकती है, परन्तु परिसृप्त सेना नहीं लड़ सकती, क्योंकि उसका नेता नष्ट हो रहा है। जिसकी इच्छा पूर्ण न की गई हो, वह आशा निर्वेदी और जिसका मुख्य नेता नहीं रहा वह अपसृप्त सेना कहाती है। कलत्रगर्ही और अन्तः शल्य सेना में कलत्रगर्ही सेना अपने कलत्रों (स्त्रियों) का मोह छोड़कर लड़ सकती है, परन्तु अन्तःशल्य नहीं लड़ सकती क्योंकि वह भीतरी कांटा मानती है। जो अपनी स्त्रियों को युद्ध में विभ्रमाने, वह कलत्रगर्ही और जो भीतर द्वेष माने, वह अन्तः शल्य होती है। कुपित मूल और मिन्न गर्भ सेना में कोप शान्त हो जाने पर कुपित मूल समझाने पर लड़ सकती है, परन्तु एक दूसरे से वैर मानने वालों नहीं लड़ सकता क्योंकि वे तो परस्पर फूट में लिप्त होती हैं। किसी कारण से कुपित सेना कुपित मूल और आपस में शत्रुता रखने वाले मिन्न गर्भ होती हैं ॥९-११॥

अपसृतातिक्षिप्तयोरपमृतमेकराज्यातिक्रान्तममन्त्रव्यायामाभ्यां सत्रिमित्रा-
पाश्रयं युध्येत नातिक्षिप्तमनेकराज्यातिक्रान्तं ब्रह्माघत्वात् ॥ १२ ॥ उपनिविष्ट-
समाप्तयोरुपनिविष्टं पृथग्यानस्थानमतिमन्धातारं युध्येत न समाप्तं परिणतैक-
स्थानयानम् ॥ १३ ॥ उपरुद्धपरिक्षिप्तयोरुपरुद्धमन्यतो निष्क्रम्योपरोद्धारं प्रति-
युध्येत न परिक्षिप्तं सर्वतः प्रतिरुद्धम् ॥ १४ ॥

अपसृत और अतिक्षिप्त सेना में अपमृत सेना, एक राज्य से दबायी होने के कारण तथा मन्त्र और कवायद के अभाव से युद्ध नहीं कर सकती है, परन्तु यदि उसे साथी और मित्रों का सहारा मिल जावे, तो वह युद्ध कर सकती है पर अतिक्षिप्त नहीं कर सकती, क्योंकि उसे अनेक राज्यों ने दबा रखा है तथा वह बहुत बाधाओं से युक्त है। एक राज्य से दबायी अपसृत और अनेक राज्यों से व्याकुल की हुई सेना अतिक्षिप्त कहाती है। उपनिविष्ट और समाप्त सेना में उपनिविष्ट सेना पृथक् २ यान और स्थान होने से अपने सम्मुख के शत्रु से लड़ भी सकती है, परन्तु समाप्त सेना नहीं लड़ सकती, क्योंकि उसकी शत्रु के साथ २ रहन सहन होती है। शत्रु से सन्वन्ध रख कर साथ साथ चलने वाली

उपनिविष्ट और पृथक् २ चलने वाली समाप्त सेना कहाती है । उपरुद्ध और परिक्षिप्त सेना में उपरुद्ध, अन्य के द्वारा छुटकरा पाकर रोकने वाले से लड़ जाती है, परन्तु परिक्षिप्त नहीं लड़ सकती, क्योंकि वह सब ओर से घिर जाती है । एक ओर से घिरी हुई उपरुद्ध और सब ओर से घिरी हुई परिक्षिप्त होती है । ॥१२-१४॥

छिन्नधान्यपुरुषवीवधयोः छिन्नधान्यमन्यतो धान्यमानीय जङ्गमस्थावराहारं वा युध्येत न छिन्नपुरुषवीवधमनभिसारम् ॥ १५ ॥ स्वविक्षिप्तमित्रविक्षिप्तयोः स्वविक्षिप्तं स्वभूमौ विक्षिप्तं सैन्यमापदि शक्यमवस्रावयितुं न मित्रविक्षिप्तं विप्रकृष्टदेशकालत्वात् ॥ १६ ॥

छिन्नधान्य और पुरुषवीवध सेना में छिन्नधान्य सेना अन्य स्थान से धान्य लाकर या मृगादि का मांस और फल खाकर भी लड़ सकती है, परन्तु पुरुषवीवध सेना नहीं लड़ सकती, क्योंकि वह सब तरह के सामान के लाने लिवाने में असमर्थ होती है । जिसके पास धान्य न रहा हो, वह छिन्नधान्य और जिसका अन्न घास मँगाने का ही सम्बन्ध न हो उसे छिन्नपुरुषवीवध सेना कहते हैं । स्वविक्षिप्त और मित्र विक्षिप्त सेना में स्वविक्षिप्त सेना अपनी ही भूमि में बिखरी होने से आपत्काल में बुलाई जा सकती है और वह युद्ध कर सकती है, परन्तु मित्रविक्षिप्त युद्ध नहीं कर सकती, क्योंकि वह दूर देश में गई होती है । जो अपने देश में कहीं तैनात हो-वह स्वविक्षिप्त और जो मित्र के कार्यों के लिए कहीं दूर भेजी गई-वह मित्रविक्षिप्त सेना होती है ॥१५-१६॥

दूष्ययुक्तदुष्टपार्ष्णिग्राहयोर्दूष्ययुक्तमाप्तपुरुषाधिष्ठितमसंहतं युध्येत न दुष्ट-पार्ष्णिग्राहं पृष्ठाभिघातत्रस्तम् ॥ १७ ॥ शून्यमूलास्वामिसंहतयोः शून्यमूलं कृतपौरजानपदारक्षं सर्वसंदोहेन युध्येत नास्वामिसंहतं राजसेनापतिहीनम् ॥ १८ ॥ भिन्नकूटान्धयोर्भिन्नकूटमन्याधिष्ठितं युध्येत नान्धमदेशिकमिति ॥ १९ ॥

दूष्य युक्त और दुष्ट पार्ष्णिग्राह में दूष्य युक्त सेना अपने आप पुरुषों के योग से असंगठित हो जाने से लड़ सकती है, परन्तु दुष्ट पार्ष्णिग्राह वाली सेना नहीं लड़ सकती, क्योंकि दुष्ट पार्ष्णिग्राह तो पीछे से घात के लिए आतुर होता है । दुष्ट अमात्य आदि से युक्त, दूष्य युक्त और बिगड़े हुए पार्ष्णिग्राह (पीछे के राजा) से युक्त होने से दुष्ट पार्ष्णिग्राह सेना कहाती है । शून्यमूल और अस्वामी संहत सेना में शून्यमूल, पुरवासी और जनपद के पुरुषों की सहायता से सम्पूर्ण शक्ति लगाकर लड़ सकती है, परन्तु अस्वामि संहत नहीं लड़ सकती, क्योंकि उसका राजा या अन्य धीर कोई सेनापति नहीं होता है । राजधानी में बहुत थोड़ी बची सेना शून्यमूल, और जिसका कोई सेनापति न हो, उसे अस्वामि

संहत सेना कहते हैं। भिन्नकूट और अन्ध सेना में अन्य अध्यक्ष का सहारा लेकर भिन्न कूट सेना युद्ध कर सकती है, परन्तु अन्ध सेना नहीं लड़ सकती है, क्योंकि वह शत्रु के व्यवहार को कुछ नहीं जानती है। जिसका अध्यक्ष दूसरी ओर मिल गया वह भिन्नकूट और जो शत्रु के विषय में विल्कुल अज्ञान रखती हो-वह अन्ध सेना कहाती है ॥१७-१८॥

दोषशुद्धिर्बलावापः सन्नस्थानातिसंहितम् ।

सन्धिश्चोत्तरपक्षस्य बलव्यसनसाधनम् ॥ २० ॥

सेना के साथ किये गए दुर्व्यवहारों का लोप करना, दूसरी सेना से अपनी सेना को बलोत्साह सहित कर देना, दुर्ग वन आदि में सेना की स्थिति करना तथा बलवान् पक्ष से सन्धि करना-ये सेना के दोषों के नाश करने के साधन हैं ॥ २० ॥

रक्षेत्स्वदण्डं व्यसने शत्रुभ्यो नित्यमुत्थितः ।

प्रहरेद्दण्डरन्ध्रेषु शत्रूणां नित्यमुत्थितः ॥ २१ ॥

विजयाभिलाषी राजा, संकट के समय शत्रुओं से अपनी सेना की बड़ी सावधानी से रक्षा करे। तथा सावधानी के साथ ही जब शत्रुओं में कहीं छिद्र देखे-तो फौरन उनपर प्रहार करदे, यहां तक बल व्यसन वर्ग का विवेचन किया गया ॥ २१ ॥

अभियातं स्वयं मित्रं संभूयान्यवशेन वा ।

परित्यक्तमशक्त्या वा लोभेन प्रणयेन वा ॥ २२ ॥

अपने स्वार्थ या अन्य किसी कारण से अपनी सेना सजाकर शत्रु पर चढ़ाई करने पर जो राजा, अपनी अशक्ति, लोभ, प्राणों के मोह से अपने उस मित्र की सहायता नहीं करता-तो वह मित्र बिगड़ जाता है, वह फिर वश में कठिनता से आता है ॥ २२ ॥

विक्रीतमभियुञ्जाने संग्रामे वापवर्तिना ।

द्वैधीभावेन वा मित्रं यास्यता वान्यमन्यतः ॥ २३ ॥

युद्ध के छिड़जाने पर धन आदि से अपने को बेच कर जो राजा लौट आता है, या द्वैधी भाव के ढंग पर मित्र के साथ चलता है, या अन्य ओर चल देता है-उसका मित्र फिर कठिनाई से प्रेमी बनता है। राजा और शत्रु से मिलना और दूसरी ओर मित्र से मिलना द्वैधी भाव कहाता है ॥ २३ ॥

पृथग्वा सह याने वा विश्वासेनातिसंहितम् ।

भयावमानालस्यैर्वा व्यासनान्न प्रमोचितम् ॥ २४ ॥

पृथक् २ आक्रमण करने या साथ २ आक्रमण करने पर अत्यन्त विश्वास में आया हुआ मित्र, जब शत्रु के भय या मित्र विषयक अपमान या आलस्य से विजयाभिलाषी राजा द्वारा नहीं छोड़ा जाता, तो वह मित्र बिगड़ जाता है-और उस धोखे के कारण वह फिर कष्ट से मित्र बनता है ॥ २४ ॥

अवरुद्धं स्वभूमिभ्यः समीपाद्वा भयाद्गतम् ।

आच्छेदनाददानाद्वा दत्त्वा वाप्यवमानितम् ॥ २५ ॥

अपनी ही भूमि में धोखे या अपने ही मनुष्यों से वध तथा बन्धन का भय प्राप्त होने या कुछ छीन लेने तथा देने योग्य न देने से एवं देकर अपमानित करने से मित्र रुष्ट हो जाता है-और वह फिर कठिन्ता से प्रसन्न हो सकेगा ॥ २५ ॥

अत्याहारितमर्थं वा स्वयं परमुखेन वा ।

अतिभारे नियुक्तं वा भङ्क्त्वा परमवस्थितम् ॥ २६ ॥

अपने आप या किसी दूसरे के द्वारा धन के छीन लेने पर या अत्यन्त कठिन कार्य में उलझा देने पर शत्रु को जीत कर आया हुआ मित्र बिगड़ उठता है और वह फिर प्रसन्न नहीं हो सकता है ॥ २६ ॥

उपेक्षितमशक्त्या वा प्रार्थयित्वा विरोधितम् ।

कृच्छ्रेण साध्यते मित्रं सिद्धं चाशु विरज्यति ॥ २७ ॥

अपनी अशक्ति के कारण उपेक्षित (परवाह न किया हुआ) प्रार्थना करके बिगाड़ा हुआ, मित्र फिर वश में नहीं आता और कुछ प्रसन्न हो भी जाता है, तो फिर शीघ्र बिगड़ जाता है ॥ २७ ॥

कृतप्रयासं मान्यं वा मोहान्मित्रममानितम् ।

मानितं वा न सदृशं शक्तितो वा निवारितम् ॥ २८ ॥

विजयाभिलाषी राजा के लिए महान उपकार करने वाले मान्य, मोह से मित्र का अपमान कर्ता ठीक २ आदर न पाया हुआ, शत्रु से शक्ति द्वारा निकाला हुआ मित्र फिर मिल जाता है ॥ २८ ॥

मित्रोपघातवस्तं वा शङ्कितं वारिसंहितात् ।

दूष्यैर्वा भेदितं मित्रं साध्यं सिद्धं च तिष्ठति ॥ २९ ॥

विजेता के आघात से भयभीत, शत्रु के साथ सन्धि करने से शङ्कित, दुष्ट पुरुषों से भेदित, मित्र भी फौरन प्रेमी बन जाता है ॥ २९ ॥

तस्मान्नोत्पादयेदेनान्दोषान्मित्रोपघातकान् ।

उत्पन्नान्वा प्रशमयेद्गुणैर्दोषोपघातिभिः ॥ ३० ॥

नीतिमान राजा को चाहिए कि वह मित्रता नाशक इन दोषों को न उत्पन्न होने देवे । यदि ये दोष किसी कारण से उत्पन्न भी हो जावें तो उनको दोषों के नाशक गुणों से नष्ट कर देना चाहिए । ३० ॥

यतोनिमित्तं व्यसनं प्रकृतीनामवाप्नुयात् ।

प्रागेव प्रतिकुर्वीत तन्निमित्तमतन्द्रितः ॥ ३१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे बलव्यसनवर्गः, मित्रव्यसनवर्गः

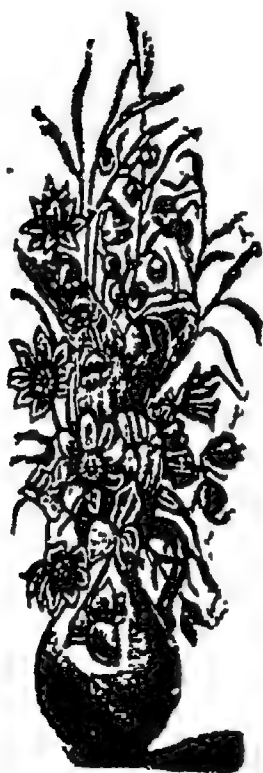
पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदित एकविंशतिशतो ऽध्यायः ॥ १२१ ।

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य व्यसनाधिकारिके

अष्टममधिकरणम् समाप्तम् ॥ ८ ॥

राजा जिन कारणों से अपने अमात्य आदि का व्यसन प्राप्त करे-उन कारणों का बड़ी सावधानी से वह प्रथम ही निराकरण कर देवे ॥ ३१ ॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में बलव्यसन और मित्र व्यसन के वर्णन का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥



अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरण

प्रथम अध्याय

१३५-१३६वां प्रकरण

शक्ति देश-काल बलावल ज्ञानम् यात्रा-कालः ।

उत्साह आदि शक्ति, देशकाल, इनकी अनुकूलता का बल और प्रतिकूलता की निर्वलता का इस प्रकरण में वर्णन किया जावेगा ।

विजिगीपुरात्मनः परस्य च बलावलं शक्तिदेशकालयात्राकालबलसमुत्थानकालपश्चात्कोपक्षयव्ययलाभापदां ज्ञात्वा विशिष्टबलो यायात् ॥ १ ॥ अन्यथासीत् ॥ २ ॥

विजय की इच्छा रखने वाला राजा, अपने और शत्रु के बलावल, शक्ति, देशकाल, यात्राकाल, सेना की उन्नति का समय, पीछे के राजाओं का आक्रमण, जनक्षय, धन व्यय, फल सिद्धि, बाहरी और भीतरी आपत्ति को जानकर अधिक सेना लेकर शत्रु पर चढ़ाई करे । यदि अपना बल अधिक न हो-तो चुपका बैठारहे ॥१-२॥

उत्साहप्रभावयोरुत्साहः श्रेयान् ॥ ३३ ॥ स्वयं हि राजा शूरो बलवानरोगः कृतास्त्रो दण्डद्वितीयोऽपि शक्तः प्रभाववन्तं राजानं जेतुम्, अल्पोऽपि चास्य दण्डस्तेजसा कृत्यकरो भवति ॥ ४ ॥ निरुत्साहस्तु प्रभाववान्राजा विक्रमाभिपन्नो नश्यतीत्याचार्याः ॥ ५ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ प्रभाववानुत्साहवन्तं राजानं प्रभावेनातिसंधत्ते ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टमन्यं राजानमावाह्य हत्वा क्रीत्वा प्रवीरपुरुषान्प्रभूतप्रभावहयहस्तिरथोपकरणसंपन्नश्चास्य दण्डःसर्वत्राप्रतिहतश्चरति ॥ ८ ॥ उत्साहवतश्च प्रभाववन्तो जित्वा क्रीत्वा च स्त्रियो बालाः पद्मनोऽन्धाश्च पृथिवीं जिग्युरिति ॥ ९ ॥

उत्साह शक्ति और प्रभाव शक्ति में उत्साह शक्ति ही अधिक उत्तम है । जब राजा स्वयं शूरवीर, बलवान् रोग रहित, अस्त्र विद्या में कुशल, और अपनी सेना के भरोसे पर रहने वाला- होगा-तो वह प्रभावशाली राजा के जीतने में भी समर्थ हो जावेगा । इसके तेज के कारण थोड़ी सेना भी अपना काम कर जाती है । यदि वीरता आदि गुणों से रहित होकर राजा आक्रमण करता है, तो प्रभावशाली होकर भी पराजित हो जाता है । वीरतादि गुण सम्पन्न होना, उत्साह शक्ति सम्पन्न और ऐश्वर्यशाली होना, प्रभुशक्ति सम्पन्न राजा कहाता है । कौटल्याचार्य इस बात के न मानते हुए कहते हैं, कि जो राजा प्रभावशाली होता है, वह अपने प्रभाव के कारण उत्साही (पराक्रमी) राजा को भी जीत लेता है । वह अपने प्रभाव के कारण वीरता के गुण से युक्त अन्य राजा को अपनी ओर बुला कर तथा वीर पुरुषों से धन धान्य इकट्ठा करके और अपने अधीन बनाकर अपना कार्य सम्पादन कर लेता है । अपने ऐश्वर्य के प्रभाव से बहुत से अश्व, हाथी, रथ आदि युद्ध की सामग्री से सम्पन्न इसकी सेना, वे रोक टोक सब स्थानों में घूम सकती है । प्रभावशाली स्त्री, बालक, लंगड़े लूले और अन्वे राजाओं ने पूर्वकाल में अनेक उत्साही राजाओं को जीतकर अपने वश में कर लिया था, ऐसा सुना है ॥३-६॥

प्रभावमन्त्रयोः प्रभावः श्रेयान् ॥ १० ॥ मन्त्रशक्तिसंपन्नो हि बन्ध्य-
बुद्धिप्रभावो भवति ॥ ११ ॥ मन्त्रकर्म चास्य निश्चितमप्रभावो गर्भधान्यमवृ-
ष्टिरिवोपहन्तीत्याचार्याः ॥ १२ ॥ नेति कौटल्यः ॥ १३ ॥ मन्त्रशक्तिः श्रेयसी
॥ १४ ॥ प्रज्ञाशास्त्रचक्षुर्हि राजाल्पेनापि प्रयत्नेन मन्त्रमाधातुं शक्तः परानु-
त्साहप्रभाववतश्च सामादिभिर्योगोपनिषद्भ्यां चातिसन्धातुम् ॥ १५ ॥ एवमु-
त्साहप्रभावमन्त्रशक्तीनामुत्तरोत्तराधिको ऽतिसंधत्ते ॥ १६ ॥

प्रभावशाली शक्ति और मन्त्र शक्ति में प्रभावशक्ति अधिक उत्तम है । यदि मन्त्र शक्ति से सम्पन्न भी राजा है और उसके पास ऐश्वर्य नहीं है, तो उसकी सारी बुद्धि ज्यों की त्यों कुण्ठित रह जाती है । इसके मन्त्र का बल-बिना प्रभाव के इस प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे, बोया हुआ धान्य बिना वृष्टि नष्ट हो जाता है ऐसा प्राचीन आचार्य मानते आये हैं । कौटल्याचार्य कहते हैं, कि प्रभाव शक्ति की अपेक्षा मन्त्र शक्ति ही अधिक उत्तम है । जिस राजा की बुद्धि और शास्त्र आंखें हैं, वह थोड़े भी प्रयत्न से अपने मन्त्र को सफल बना सकता है तथा उत्साही और प्रभावशाली राजाओं को समादि उपाय या विष आदि प्रयोगों के द्वारा वश में कर सकता है । इस प्रकार उत्साह शक्ति से प्रभाव और प्रभाव शक्ति से मन्त्र शक्ति को बलवान् मानना चाहिए ॥१०-१६॥

देशः पृथिवी ॥ १७ ॥ तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजनसहस्र-
परिमाणं तिर्यक्चक्रवर्तिक्षेत्रम् ॥ १७ ॥ तत्रारण्यो ग्राम्यः पार्वत औदको भौमः
समो विषम इति विशेषाः ॥ १८ ॥ तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुज्जीत
॥ २० ॥ यत्रात्मनः सैन्यव्यायामानां भूमिरभूमिः परस्य स उत्तमो देशः,
विपरीतोऽधमः, साधारणो मध्यमः ॥ २१ ॥

पृथिवी का नाम ही देश है । इस पृथ्वी पर हिमालय से लेकर समुद्र तक उत्तर
दक्षिण तथा एक सहस्र योजन परिमित पूर्व पश्चिम, तिरछा क्षेत्र चक्रवर्ती (भारतवर्ष) क्षेत्र
कहाता है । इसमें वन, गांव, पर्वत, जलप्रदेश, भूमि, सम और विषम प्रदेशों का भेद है ।
इस भूमि पर जिस प्रकार अपनी सेना की वृद्धि हो-उसी प्रकार का कर्म स्वीकार करे ।
जिस प्रदेश में अपनी सेना के व्यायाम (कवायद) की उत्तम भूमि हो और शत्रु का प्रवेश
न होसके-वह उत्तम, इससे विपरीत अधम और साधारण प्रदेश मध्यम होता है ॥१७-२१॥

कालः शीतोष्णवर्षात्मा ॥ २२ ॥ तस्य रात्रिरहः पक्षो मास ऋतुरयनं
संवत्सरो युगमिति विशेषाः ॥ २३ ॥ तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुज्जीत ॥ २४ ॥
यत्रात्मनः सैन्यव्यायामानामृतुरनृतुः परस्य स उत्तमः कालो, विपरीतोऽधमः
साधारणो मध्यमः ॥ २५ ॥

शीत, उष्ण, वर्षा रूपधारी काल होता है । रात, दिन पक्ष, मास, ऋतु, अयन,
संवत्सर इसके विशेष भेद हैं । इनमें राजा अपनी सेना के बल की वृद्धि के करने
वाले कार्यों का आरम्भ करे । जिसमें अपनी सेना के व्यायाम (कवायद) के लिए उत्तम
ऋतु हो और शत्रु को विपरीत पड़ती हो-वह उत्तमकाल माना गया है । जिस में शत्रु को
अनुकूलता-वह अधम और जिसमें दोनों को साधारण ऋतु हो-वह मध्यमकाल
होता है ॥२२-२५॥

शक्तिदेशकालानां तु शक्तिः श्रेयसीत्याचार्याः ॥ २६ ॥ शक्तिमान्नि
निम्नस्थलगतो देशस्य शीतोष्णवर्षवतश्च कालस्य शक्तः प्रतीकारे भवति ॥ २७ ॥
देश श्रेयानित्येके ॥ २८ ॥ स्थलगतो हि श्वा नक्रं विकर्षति निम्नगतो नक्रः
श्वानमिति ॥ २९ ॥ कालः श्रेयानित्येके ॥ ३० ॥ दिवा काकः कौशिकं
हन्ति रात्रौ कौशिकः काकमिति ॥ ३१ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ परस्पर-
साधका हि शक्तिदेशकालाः ॥ ३३ ॥

शक्ति, देश और काल में शक्ति अधिक उत्तम है ऐसा आचार्य मानते आ रहे हैं। जो शक्तिमान् है, वह नीचे ऊँचे प्रदेश और शीत, उष्ण या वर्षा वाले काल को अपने अनुकूल बनाकर उसका प्रतीकार कर लेता है। कोई २ देश को अधिक अच्छा बनाने लगते हैं। पृथ्वी पर कुत्ता भी मकर को खींच लेता है और जल में मकर कुत्ते को खेच ले जाता है—यह देश की ही विशेषता है। किसी ने काल की महिमा गाई है। दिन में कौवे उल्लू को मार लेते हैं और रात में उल्लू कौवों को मार देते हैं। यह काल का भेद है। परन्तु कौटल्याचार्य कहते हैं, कि इनमें किसी एक की विशेषता नहीं है—ये शक्ति, देश और काल तो परस्पर एक दूसरे के पोषक हैं ॥२६-३३॥

तैरभ्युचितस्तृतीयं चतुर्थं वा दण्डस्यांशमूले पाप्मण्यां प्रत्यन्ताट्वाणु च रक्षा विधाय कार्यसाधनसहं कोशदण्डं चादाय क्षीणपूराणभक्तमगृहीतनव-भक्तमसंस्कृतदुर्गममित्रं वार्षिकं चास्य सस्यं, हेमनं च मुष्टिमुपहन्तु मार्गशीर्षी यात्रां यायात् ॥ ३४ ॥

अब युद्ध यात्रा (चढ़ाई) का काल बताते हैं। विजयेच्छुक राजा, शक्ति, देश और काल से समन्वित होकर सेना के तिहाई या चौथाई भाग को राजधानी, पृष्ठ भाग और सरहदों पर नियुक्त करके, अपने विजय के कार्य को सिद्ध करने योग्य कोश और सेना लेकर मंगशिर महीने में चढ़ाई करे। इस समय शत्रु की पुरानी छाव सामग्री व्यतीत हो जाती है और नवीन संगृहीत नहीं हो पाती है अभी तक दुर्गों की मरम्मत भी नहीं हो पाती है। न कोई नया मित्र बन पाता है। इसका हरा भरा अन्न अभी तक ज्यों का त्यों खड़ा होता है। हेमन्त की अन्नोत्पत्ति के नाश के लिए भी यह चढ़ाई उत्तम है ॥३४॥

हेमनं चास्य सस्यं वासन्तिकं च मुष्टिमुपहन्तु चैत्री यात्रां यायात् ॥ ३५ ॥ क्षीणतृणकाष्ठोदक्रमसंस्कृतदुर्गममित्रं वासन्तिकं चास्य सस्यं वार्षिकीं वा मुष्टिमुपहन्तु ज्येष्ठामूलीयां यात्रां यायात् ॥ ३६ ॥

हेमन्त में हरे भरे अन्न और वसन्त में उत्पन्न होने वाले अन्न के नष्ट करने को चैत्र की चढ़ाई उत्तम है। इस समय शत्रु, तृण, काष्ठ जल से हीन, दुर्गों की मरम्मत से रहित होता है। इससे वसन्त में खड़े हुए हरे अन्न और वर्षा में उत्पन्न होने वाले अन्न के नाश को ज्येष्ठ काल की चढ़ाई बड़ी ठीक है ॥३५-३६॥

अत्युष्णमल्पयवसेन्धनोदकं वा देशं हेमन्ते यायात् ॥ ३७ ॥ तुषारदु-र्दिनमगाधनिम्नप्रायं गहनतृणवृक्षं वा देशं ग्रीष्मे यायात् ॥ ३८ ॥ स्वसैन्य-

व्यायामयोग्यं परस्या योग्यं वर्षति यायात् ॥ ३९ ॥ मार्गशीर्षीं तैषीं
चान्तरेण दीर्घकालां यात्रां यायात् ॥ ४० ॥ चैत्रीं वैशाखीं चान्तरेण मध्यम-
कालां, ज्येष्ठामूलीयामाषाढीं चान्तरेण ह्रस्वकालामुपोषिष्यन् ॥ ४१ ॥

अत्यन्त गमने और थोड़े घास, इन्धन और जल वाले प्रदेश पर हेमन्त ऋतु में चढ़ाई करे। वर्षीले और नित्य वर्षा वाले, अगाध जल से भरे रहने वाले, घास और वृक्ष के वन से गहन, देश में ग्रीष्म ऋतु में चढ़ाई करे। अपनी सेना के पराक्रम दिखाने के योग्य और शत्रु सेना के अनुपयोगी काल हो-तो वर्षा काल में भी चढ़ाई कर लेनी चाहिए यदि चढ़ाई दीर्घकाल में पूरी होने वाली हो-तो उसका मगशिर और पौष के बीच में आरम्भ करना चाहिए। मध्यम काल में पूरी होने वाली चढ़ाई को चैत्र वैशाख के मध्य में तथा जिसके थोड़े काल में ही पूरी हो जाने की सम्भावना है, उसको ज्येष्ठ और आषाढ़ के बीच में भी कर देवे ॥३७-४१॥

व्यसने चतुर्थीम् ॥ ४२ ॥ व्यसनाभियानं विगृह्ययाने व्याख्यातम्
॥ ४३ ॥ प्रायशश्चाचार्याः परव्यसने यातव्यमित्युपदिशन्ति ॥ ४४ ॥
शक्त्युदये यातव्यमनैकान्तिकत्वाद् व्यसनानामिति कौटल्यः ॥ ४५ ॥ यदा
वा प्रयातः कर्षयितुमुच्छेत्तुं वा शक्नुयादमित्रं तदा यायात् ॥ ४६ ॥

जब कभी भी शत्रु पर विपत्ति हो-तभी चढ़ाई कर देवे-यह चतुर्थ यात्रा काल होता है। शत्रु पर व्यसन आने पर किस प्रकार चढ़ाई करे-इसका निरूपण विगृह्ययान प्रकरण किया जा चुका। प्राचीन आचार्य, इस यात को एक मत से कह रहे हैं, कि जब शत्रु पर संकट हो-तब चढ़ दौड़ना चाहिए, परन्तु कौटल्याचार्य कहते हैं, कि जब विजेता में शक्ति बढ़ी चढ़ी होवे-तब ही शत्रु पर आक्रमण कर देना चाहिए। विपत्ति तो कभी रहती है और कभी फौरन ही हट जाती है। जब शक्तिशाली राजा यह देखे, कि मैं चढ़ाई करके शत्रु की शक्ति को घटा दूंगा-या उसका उच्छेद कर डालूंगा-तभी उसपर चढ़ाई कर देवे ॥४२-४६॥

अत्युष्णोपक्षीणे काले ऽहस्तिबलप्रायो यायात् ॥ ४७ ॥ हस्तिनो ह्यन्तः
स्वेदाः कुष्ठिनो भवन्ति ॥ ४८ ॥ अनवगाहमानास्तोयमपिबन्तश्चान्तरवक्षारा-
च्चान्धीभवन्ति ॥ ४९ ॥ तस्मात्प्रभूतोदके देशे वर्षति च हस्तिबलप्रायो यायात्
॥ ५० ॥ विपर्यये खरोष्ठाश्च बलप्रायः ॥ ५१ ॥ देशमल्पवर्षपङ्कं वर्षति

मरुप्रायं चतुरङ्गवलो यायात् ॥ ५२ ॥ समविपमनिम्न स्थलह्रस्वदीर्घवर्षेण
वाध्वनो यात्रां विभजेत् ॥ ५३ ॥

(अत्यन्त उष्णता से युक्त काल में हाथियों की सेना को छोड़कर ऊंट आदि वाहनों की सेना लेकर चढ़ाई करे। जब हाथी के पसीने भीतर ही मर जाते हैं, तब वे कुण्ठी हो जाते हैं। पानी में स्नान न होने और जल पीने को न मिलने पर भीतर खार बढ़कर हाथी अन्धे भी हो जाते हैं, इसलिए जहां जल बहुत हो, और वर्षा हो रही हो-तब हाथी की अधिक सेना लेकर चढ़ाई करनी चाहिए।) जब ऐसा समय न हो तो ग्वर (गुजराती अश्व) ऊंट, घोड़ों की सेना लेकर चढ़ाई करे। जिस देश में थोड़ी वर्षा होने से कीच गारा थोड़ा होता हो, अथवा वर्षा होने पर भी जो देश सूखा का सूखा मरुस्थल सा ही रहे, उसमें हाथी, अश्व, रथ और पैदल, चारों प्रकार की चतुरङ्गिणी सेना लेकर चढ़ाई करनी उचित है। देश के ऊंचे-नीचे समतल, जलप्राय, स्थलप्राय, ह्रस्वकाल, दीर्घकाल में पूरे होने वाले मार्ग आदि के कारण भा. मात्रा में भेद किया जा सकता है। अर्थात् अश्व आदि वाहन, समय का ढेर फेर कर लिया जा सकता है ॥ ४७-५३॥

सर्वा वा ह्रस्वकालाः स्युर्यातव्याः कार्यलाघवात् ।

दीर्घाः कार्यगुरुत्वाद्वा वर्षावासः परत्र च ॥ ५४ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे शक्तिदेशकालवलावलज्ञानं यात्राकालाः

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितो द्वाविंशशतोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

जिन यात्राओं में काम थोड़ा करना है, वे सारी थोड़े काल में पूरी कर देनी चाहिए और जब कार्य की अधिकता हो-तो उसमें दीर्घकाल भी व्यतीत किया जा सकता है। कार्य गौरव से कभी २ तो वर्षा ऋतु में भी परदेश में ही वास करना पड़ जाता है ॥ ५४॥

इति श्रीकौटल्याय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण में शक्ति

देशकाल आदि के वर्णन का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।



दूसरा अध्याय

१३७-१३६वां प्रकरण

वलोपादन कालाः संनाद गुणाः प्रतिबलकर्म ।

इस प्रकरण में सेना की तय्यारी, सेना के उद्योग, और शत्रु सेना के योग्य सेना बनाने का वर्णन किया जावेगा ।

मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीवलानां समुद्धानकालाः ॥ १ ॥ मूलरक्षणा-
दतिरिक्तं मौलवलम् ॥ २२ ॥ अत्यावापयुक्ता वा मौला मूले विकुर्वीरन्निति
बहुलानुरक्तमौलवलः सारवलो वा प्रतियोद्धा व्यायामेन योद्धाव्यमिति ॥ ४ ॥
प्रकृष्टे ऽध्वनि काले वा क्षयव्ययसहत्वान्मोलानामिति ॥ ५ ॥ बहुलानुरक्त-
संपाते च यातव्यस्योपजापभयादन्यसैन्यानां भृतानामविश्वासे ॥ ६ ॥ बलक्षये
वा सर्वसैन्यानामिति मौलवलकालः ॥ ७ ॥

राजधानी की रक्षा करने वाली मौल सेना, वेतन भोगी भृतक सेना, अपना गिरोह बनाकर कार्य करने वाली श्रेणी सेना, मित्र सेना शत्रुसेना, और वनचरवासी वीरों की सेना के युद्ध के लिए तय्यार करने के कालों का वर्णन करना है । जितनी सेना राजधानी की रक्षा से अधिक हो-उसे मौलवल के युद्ध के लिए भेजा जा सकता है । अत्यन्त द्रोहयुक्त हुए मूलसेना के वीर, राजधानी में उपद्रव खड़ा कर देंगे यह दशा हो-तो उस सारी सेना को ही युद्ध में साथ ले जानी चाहिए । जब मौल सेना के वीर अत्यन्त अनुरक्त हो, और दृढ़वीर हों-तथा शत्रु का बड़ी वीरता के साथ मुकाबिला करना है, ऐसी परिस्थिति में भी मौलवल को साथ ही ले जाना चाहिए । जब युद्ध यात्रा का बहुत लम्बा काल दिखाई देवे और जन नाश तथा धन व्यय को मौल सेना ही सह सकती हो जब शत्रु के अनुरक्त बहुत से दूतों द्वारा सेना में फूट डलवा देने की आशङ्का हो, या अन्य भृतक बल आदि पर विश्वास न हो, तथा अन्य सारी सेना नष्ट प्राय हो चुकी हो-तो ऐसी परिस्थिति में मौल सेना को भी युद्ध क्षेत्र (लाम) में भेज देना चाहिए ॥१-७॥

प्रभूतं मे भृतवलमल्पं च मौलवलमिति ॥ ८ ॥ परस्याल्पं विरक्तं वा मौलवलं फल्गुप्रायमसारं वा भृतसैन्यमिति ॥ ९ ॥ मन्त्रेण योद्धव्यमल्पव्या-
यामेनेति ॥ १० ॥ ह्रस्वो देशः कालो वा तनुक्षयव्यय इति ॥ ११ ॥ अल्प-
सम्पातं शान्तोपजापं विश्वस्तं वा मे सैन्यमिति ॥ १२ ॥ परस्याल्पः प्रसारो
हन्तव्य इति भृतवलकालः ॥ १३ ॥

मेरी वेतन भोगी सेना बहुत अधिक हैं और राजधानी की रक्षा करने वाली मौल थोड़ी है। शत्रु की बहुत थोड़ी और उस से विरक्त मौल सेना है तथा शत्रु की भृत सेना शक्तिहीन, बेकार और निर्वल हैं। थोड़े से परिश्रम से ही मन्त्रणा के बल पर ही युद्ध जीत लिया जावेगा। वहां जाने में थोड़ी दूर सफर करना है और उसमें थोड़ा ही समय लगेगा एवं बहुत थोड़ा जन-धन-क्षय है। शत्रु के अनुरक्त पुरुष बहुत कम आ सकते हैं, और वे मेरी सेना को तोड़ फोड़ नहीं सकते हैं, मेरी सेना बड़ी विश्वास योग्य है। शत्रु के थोड़े से विस्तार को रोकना है-अधिक बल की क्या आवश्यकता है-ऐसी परिस्थिति में राजा अपनी भृतक सेना को युद्धक्षेत्र में लेजावे ॥ ८-१० ॥

प्रभूतं मे श्रेणीवलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमिति ॥ १४ ॥ ह्रस्वः प्रवासः
श्रेणीवलप्रायः प्रतियोद्धा मन्त्रव्यायामाभ्यां प्रतियोद्धकामो दण्डवलव्यवहार
इति श्रेणीवलकालः ॥ १५ ॥

जब राजा यह समझे कि मेरे पास श्रेणी बल बहुत अधिक है, उसे राजधानी की रक्षा में भी रखा जा सकता है और साथ ही चढ़ाई पर भी ले जाया सकता है, जब प्रवास काल थोड़ा दिखाई देवे अपने पास श्रेणी बल की अधिकता हो, शत्रु भी मन्त्र और पराक्रम से युद्ध में संलग्न हो अथवा अपनी सेना अन्य राजा की कमान सौंपकर शत्रु लड़ने की चेष्टा कर रह हो-ऐसी परिस्थिति में विजयाभिलाषी राजा अपने श्रेणी बलका ही प्रयोग करे ॥ १४-१५ ॥

प्रभूतं मे मित्रवलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमल्पः प्रवासो मन्त्रयु-
द्धाच्च भूयो व्यायामयुद्धमिति ॥ १६ ॥ मित्रवलेन वा पूर्वमट्वोनगरस्थान-
मासारं वा योधयित्वा पश्चात्स्ववलेन योधयिष्यामि ॥ १७ ॥ मित्रसाधारणं वा
मे कार्यम्, मित्रायत्ता वा मे कार्यसिद्धिः ॥ १८ ॥ आसन्नमनुग्राहं वा मे
मित्रमत्याचार्यं वास्य साधयिष्यामीति मित्रवलकालः ॥ १९ ॥

जब राजा को प्रतीत हो, कि मेरा मित्र बल बहुत अधिक है, उसे राजधानी की रक्षा और चढ़ाई दोनों में नियुक्त किया जा सकता है। थोड़े दिन विदेश में रहना है। राजनैतिक कांट छांट की अपेक्षा शत्रु युद्ध अधिक होगा। अपने मित्र बल के साथ प्रथम आंतविक [वनचर] लोगों की सेना या नगर की सेना तथा आसार [पाणिग्राह या आक्रन्द] से लड़ाकर फिर अपनी सेना से लड़ाऊंगा। इस युद्ध में जितना मित्र का स्वार्थ सिद्ध होगा, उतना ही मेरा भी होता दिखाई दे रहा है अथवा मेरे कार्य की सिद्धि ही मित्र के

अधीन है। मुझे समीप काल में ही मित्र का उपकार करना है। अपने मित्र के दूष्य बल को शत्रु से भिड़ा कर मरवा डालूंगा-ऐसी परिस्थिति में राजा मित्र बल का उपयोग करे ॥ १६-१६ ॥

प्रभूतं मे शत्रुबलं शत्रुबलेन योधयिष्यामि नगरस्थानमटवीं वा ॥ २० ॥
तत्र मे श्ववराहयोः कलहे चण्डालस्येवान्यतरसिद्धिर्भविष्यति ॥ २१ ॥ आसा-
राणामटवीनां वा कण्टकमर्दनमेतत्करिष्यामि ॥ २२ ॥ अत्युपचितं वा कोप-
भयान्नित्यमासन्नमरिबलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरकोपशङ्कायाः शत्रुयुद्धावरयुद्धका-
लश्चेत्यमित्रबलकालः ॥ २३ ॥

मेरे वश में बहुत सी शत्रुओं की सेना है। मैं दूसरे शत्रु की नगर सेना या आटविक सेना से उसे लड़ा दूंगा। उस समय कुत्ते सूअर की लड़ाई में चण्डाल की दोनों तरह सिद्धि है इसी तरह दो शत्रुओं के कलह में मेरी सिद्धि होगी। अपने आसार [पार्ष्णि ग्राह] आदि या वनचरों के मध्य में जो कण्टक है, उनका भी इस समय इस तरह शोधन (सफाया) करादूंगा। अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त शत्रु सेना कभी कुपित न हो जावे, इस लिए सदा अपनी देख-रेख में उसे रखे। यदि शत्रु सेना के रखने से अपनी सेना में फूट पड़े तो उसे न बसावे। यदि शत्रु से युद्ध करने पर फिर युद्ध का समय आवे, तो अपने शत्रु को सेना को ही रण में भेजे। यह सारी परिस्थिति शत्रु सेना के युद्ध में प्रयोग करने के काल की सूचक है ॥ २०-२३ ॥

तेनाटवीबलकालो व्याख्यातः ॥ २४ ॥ मार्गदेशिकं परभूमियोग्यमरि-
युद्धप्रतिलोममटवीबलप्रायः शत्रुर्वा विल्वं विल्वेन हन्यतामल्पः प्रसारो हन्तव्य
इत्यटवीबलकालः ॥ २५ ॥

इसी तरह आटविक [जङ्गली] सेना के युद्ध में भेजने का समय समझना चाहिए। आटविक सेना शत्रु देश पर जाने के समय माग वताने में बड़ी काम आती है। यह शत्रु से युद्ध करने योग्य शस्त्रों का अच्छा प्रयोग जानती है। शत्रु भी वनचर भीलों की ही सना अधिक लाया है। इस समय एक विल्व को दूसरे विल्व से फोड़ देने के तुल्य दोनों आटविक सेनाओं को भिड़ा देना चाहिए। शत्रु के वृण, घास आदि वस्तुओं को यदि नष्ट भ्रष्ट कर देना है, तो इस दशा में राजा आटविक सेना का प्रयोग करे-यही समय इस सेना के प्रयोग का है ॥ २४-२५ ॥

सैन्यमनेकमनेकजातीयस्थमुक्तमनुक्तं वा विलोपार्थं यदुत्तिष्ठति तदौत्साहि-
कम् ॥ २६ ॥ भक्तवेतनविलोपविष्टिप्रतापकरं भेद्यं परेषामभेद्यं तुल्यदेशजाति-

शिल्पप्रायं संहतं महदिति वलोपादानकालाः ॥ २७ ॥ तेषां कुप्यभृतममित्राट-
वीवलं विलोपभृतं वा कुर्यात् ॥ २८ ॥

जो सेना एक नेता से रहित, अनेक जाति के वीर पुरुषों से युक्त, राजा की इजाजत से बनी या स्वतन्त्र बनी हुई, लूट पाटने का काम करने वाली सेना औत्साहिक सेना होती है। भत्ता, वेतन, लूट, बेगार करके अपना प्रताप दिखाने वाली औत्साहिक सेना को भेद्य और एक देश की एक जाति की एक सा व्यवसाय करने वाली सेना अभेद्य होती है अर्थात् भिन्न जाति ही तोड़ी जा सकती है और अभिन्न जाति की अपनी और नहीं मिलायी जा सकती है। यह औत्साहिक सेना बहुत बड़े आकार में संगठित होती है। यहां तक सेनाओं के आक्रमण के काल का निरूपण किया गया है। इन सेनाओं में शत्रु सेना और आटविक सेना को वस्त्र आभरण आदि के रूप में वेतन देने या लूट का माल ही इतना वेतन समझा जावे ॥२६-२८॥

अमित्रस्य वा बलकाले प्रत्युत्पन्ने शत्रुमवगृह्णीयात् ॥ २९ ॥ अन्यत्र वा प्रेषयेत् ॥ ३० ॥ अफलं वा कुर्यात् ॥ ३१ ॥ विक्षिप्तं वा वासयेत् ॥ ३२ ॥ काले वातिक्रान्ते विसृजेत् ॥ ३३ ॥ परस्य चैतद्वलसमुद्धानं विधातयेत्, आत्मनः संपादयेत् ॥ ३४ ॥

जब शत्रु से मुकाबिला करने का समय आ पड़े-तो प्रथम शत्रु की सेना को घेरे रहे या दूर देश में कहीं अन्यत्र भेज देवे। अथवा उसे शस्त्र आदि से हीन करके असफल बना देवे। या उसके खण्ड २ करके इधर उधर रख देवे। जब संकट काल व्यतीत हो जावे-तब उसे जाने की आज्ञा देवे। यह जो सेना की तय्यारी बताई गई, राजा शत्रु की सेना की तय्यारी न होने देवे और उसमें किसी न किसी तरह विघ्न कर देवे और शत्रु को चकमा देकर अपनी सेना तय्यार करले ॥२९-३४॥

पूर्वं पूर्वं चैषां श्रेयः संनाहयितुम् ॥ ३५ ॥ तद्भावभावित्वान्नित्यसत्कारा-
नुगमाच्च मौलवलं भृतवलाच्छ्रेयः ॥ ३६ ॥ नित्यानन्तरं क्षिप्रोत्थायि वश्यं च
भृतवलं श्रेणीवलाच्छ्रेयः ॥ ३७ ॥ जानपदमेकार्थोपगतं तुल्यसङ्घर्षार्थसिद्धि-
लाभं च श्रेणीवलं मित्रवलाच्छ्रेयः ॥ ३८ ॥ अपरिमितदेशकालमेकार्थोपग-
माच्च मित्रवलममित्रवलाच्छ्रेयः ॥ ३९ ॥ आर्याधिष्ठितममित्रवलमटवीवलाच्छ्रेयः
॥ ४० ॥ तदुभयं विलोपार्थम् ॥ ४१ ॥ अविलोपे व्यसने च ताभ्यामहिभयं
स्यात् ॥ ४२ ॥

इन सात प्रकार की सेनाओं में उत्तर की अपेक्षा पूर्व सेना का संग्रह अधिक श्रेयस्कर है। अपने स्वामी के भाव में भाव मिलाने और नित्य सत्कार करने से भृत बल से मौलबल श्रेष्ठ है। नित्य समीप रहने और शीघ्र युद्ध के लिए तय्यार कर देने के कारण श्रेणी बल की अपेक्षा भृतबल श्रेष्ठ है। अपने देश का होने तथा एक स्वार्थ होने के कारण मित्रबल की अपेक्षा श्रेणीबल उत्तम है। अपने राजा को जिससे संघर्ष और अमर्ष हो उसी से देश का होनेसे श्रेणीबल को भी संघर्ष, और अमर्ष होता है। दोनों को एक से सुख की सिद्धि होती है। प्रत्येक समय में मित्रबल सहायता प्राप्त करने और दोनों का एकसा स्वार्थ होने से शत्रुबल की अपेक्षा मित्रबल सहायता करने में उत्तम माना गया है। आर्यपुरुषों से युक्त शत्रुबल भी अटवीबल से श्रेष्ठ है। ये दोनों सेना तो लूट मार करने के काम आती हैं। यदि लूट का माल उन्हें न मिले और कभी कोई राजा पर संकट आ जाय-तो ये दोनों सेना सर्प का सा भय खड़ा कर देती है ॥३५-४२॥

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रसैन्यानां तेजःप्राधान्यात्पूर्वं पूर्वं श्रेयः। संनाहयितुमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ४४ ॥ प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं परोऽभिहारयेत् ॥ ४५ ॥ प्रहरणविद्याविनीतं तु क्षत्रियबलं श्रेयः ॥ ४६ ॥ बहुलसारं वा वैश्यशूद्रबलमिति ॥ ४७ ॥ तस्मादेवंबलः परस्तस्यैतत्प्रतिबलमिति बलसमुद्धानं कुर्यात् ॥ ४८ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सेनाओं में तेज की प्रधानता के कारण पूर्व की सेना संग्रह करने को उत्तम मानी जानी चाहिए-ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि ऐसा नहीं है। ब्राह्मणबल, नमस्कार आदि से शत्रु को क्षमा कर देता है। शस्त्र चलाने में कुशल क्षत्रिय सेना ही सर्वश्रेष्ठ मानी जानी चाहिए। बहुत से वीर पुरुषों से युक्त वैश्य या शूद्रों की सेना हो-तो उसे भी उत्तम ही समझना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक सेना के तत्व को जानकर शत्रु किस प्रकार की सेना के बल से सम्पन्न हैं। ऐसा ज्ञान प्राप्त करे और फिर उसके योग्य ही सेना संग्रह करे ॥४३-४८॥

हस्तियन्त्रशकटगर्भकुन्तप्रासहाटकवेणुशल्यवद्वास्तिबलस्य प्रतिबलम् ॥ ४९ ॥ तदेव पाषाणलगुडावरणाङ्गुशकचग्रहणाप्रायं रथबलस्य प्रतिबलम् ॥ ५० ॥ तदेवाश्वानां प्रतिबलम् ॥ ५१ ॥ वर्मिणो वा हस्तिनो ऽश्वा वा वर्मिणः कवचिनो रथा आवरणिनः पत्तयश्चतुरङ्गबलस्य प्रतिबलम् ॥ ५२ ॥

हाथी सेना के मुक्ताविले में हाथी, यन्त्र, शकटगर्भ, कुन्त, प्रास, हाटक, वेणु, और शल्यधारी सेना ही समुचित पड़ेगी। यदि यही सेना, पत्थर, लट्ठ, कवच, अंकुश, कच

ग्रहणी (कौचा) आदि शस्त्रों से युक्त सेना, रथ बल के प्रतिबल (मुक्काविले) में उचित है । यदि सेना अश्व सेना से लड़ने में काम आ सकती है । कवच धारी हाथी घोड़े, रथ, पैदल, सामुख्य में इसी तरह की चतुरङ्गिणी सेना चाहिए ॥४६-४७॥

एवं बलसमुद्धानं परसैन्यनिवारणम् ।

विभवेन स्वसैन्यानां कुर्यादङ्गविकल्पशः ॥ ५३ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे बलोपादानकालाः संनाहगुणाः प्रतिबलकर्म

द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितत्त्वयोर्विंशशतो ऽध्यायः ॥ १२३ ॥

इस प्रकार सेना की तय्यारी शत्रु सेना के रोकने में समर्थ होती है । राजा अपनी सेना के प्रत्येक अङ्ग को पुष्ट करे और शत्रु की पुष्टि में विघ्न करता रहे ॥५३॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण में सेना संग्रह के काल के वर्णन का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



तीसरा अध्याय

१४०-१४९वां प्रकरण

पश्चात्क्रोपचिन्ता, बाह्याभ्यन्तर प्रकृति क्रोप प्रतीकारः ।

इस प्रकरण में विजय यात्रा के निमित्त चढ़ाई कर देने, दुष्ट अन्य राजाओं द्वारा पीछे से राजधानी पर आक्रमण और बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रकृतियों के क्रोप के प्रतीकार का वर्णन होगा ।

अल्पः पश्चात्क्रोपो महान्पुरस्ताल्लाभ इति ॥ १ ॥ अल्पः पश्चात्क्रोपो गरीयान् ॥ २ ॥ अल्पं पश्चात्क्रोपं प्रयातस्य दूष्यामित्रादविका हि सर्वतः समेधयन्ति प्रकृतिक्रोपो वा ॥ ३ ॥ लब्धमपि च महान्तं पुरस्ताल्लाभम् एवंभूते भूते भृत्यमित्रक्षय व्यया ग्रसन्ते ॥ ४ ॥ तस्मात्सहस्रैकीयः पुरस्ताल्लाभस्यायोगः शतैकीयो वा पश्चात्क्रोप इति न यायात् ॥ ५ ॥ सूचीमुखाह्वनर्था इति लोकप्रवादः ॥ ६ ॥

यदि पीछे के राजाओं के राजधानी पर आक्रमण करने से यदि थोड़ी हानि हो और चढ़ाई से अधिक लाभ हो-तो थोड़ा सा पीछे से हो जाने वाली हानि, अधिक लाभ की अपेक्षा भारी मानी गई है अर्थात् विजय लाभ के अधिक होने की सम्भावना होने पर भी पीछे से हो जाने वाले थोड़े नुकसान की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । पार्ष्णिप्राहादि के

कोप से उत्पन्न पीछे से होने वाले छोटे से आक्रमण को राजा के न होने पर राजा से द्वेष करने वाले व्यक्ति, शत्रु या वनचर भील आदि बहुत बढ़ा देते हैं। कभी तो अपने अमात्य आदि ही चिगड़ कर उसमें सम्मिलित देखे गए हैं। यदि शत्रु पर किये गये आक्रमण से अधिक भी लाभ हो गया हो-तो भी जब पश्चात्कोप का शमन करना होगा, तब फिर बहुत से वीर, मित्र, सेना का नाश और धन का व्यय हो जावेगा। इन सब कारणों से आगे होने वाला लाभ सहस्रांश और पीछे के राजाओं का किया हुआ नुकसान शतांश समझना चाहिए, अतएव इस दशा में कभी चढ़ाई न करे। लोक में कहावत है, कि उपद्रव सूई की नोक की बराबर मार्ग बनाकर आते हैं, और फिर उसमें मुसल प्रवेश तर्क का मार्ग हो जाता है अर्थात् थोड़े २ उपद्रव पीछे बहुत बढ़ जाते हैं ॥ १-६॥

पश्चात्कोपे सामदानभेददण्डान्प्रयुञ्जीत् ॥ ७ ॥ पुरस्ताल्लाभे सेनापतिं कुमारं वा दण्डचारिणं कुर्वीत ॥ ८ ॥ बलवान्वा राजा पश्चात्कोपावग्रहसमर्थः पुरस्ताल्लाभमादातुं यायात् ॥ ९ ॥ अभ्यन्तरकोपशङ्कायां शङ्कितानादाय यायात् ॥ १० ॥ बाह्यकोपशङ्कायां वा पुत्रदारमेषामभ्यन्तरावग्रहं कृत्वा शून्यपालमनेकबलवर्गमनेकमुख्यं च स्थापयित्वा यायान्न यायाद्वा ॥ ११ ॥ अभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयानित्युक्तं पुरस्तात् ॥ १२ ॥

यदि पीछे से उपद्रव खड़ा हो गया हो, तो राजा स्वयं उसके प्रतीकार के लिए पहुंचकर साम, दान, भेद और दण्ड का यथा योग्य प्रयोग कर तथा आक्रमण में अधिक लाभ दृष्टिगोचर हो-तो वहां सेनापति, या राजकुमार कोई उनका शासक बनाकर भेज देवे। यदि आक्रमण करने वाला राजा अपने को बहुत बलवान् समझे और पीछे से होने वाले उपद्रव को शान्त करने की शक्ति रखता हो-तो आक्रमण के लाभ को ध्यान में रख कर चढ़ाई करदे। यदि अपने ही अमात्य आदि के उपद्रव करने की आशङ्का हो-तो उनको साथ लेकर चढ़ाई करे। यदि बाहरी आटविक आदि के आक्रमण की शङ्का हो-तो इन आटविक अन्तपाल आदि बाहरी शक्तियों के बाल बच्चों को अपने अमात्यों के अधीन करके तथा अनेक प्रकार की सेना से युक्त शून्यपाल को करके या अनेक मुख्य वीरों को राजधानी पर नियुक्त करके आप चढ़ाई में जाना चाहे तो चला जावे और अधिक आशङ्का हो-तो आप बिल्कुल साथ न जावे। अपने अमात्य आदि द्वारा उत्पन्न किया हुआ अभ्यन्तर कोप बाह्य आक्रमण की अपेक्षा अधिक चिन्ता जनक है ॥७-१२॥

मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतरकोपोऽभ्यन्तरकोपः ॥ १३ ॥
तमात्मदोषत्यागेन परशक्त्यपराधवशेन वा साधयेत् ॥ १४ ॥ महापराधेऽपि

पुरोहिते संरोधनमपस्रावणं वा सिद्धिः ॥ १५ ॥ युवराजे संरोधनं निग्रहो वा गुणवत्यन्यस्मिन्सति पुत्रे ॥ १६ ॥ ताभ्यां मन्त्रिसेनापतौ व्याख्यातौ ॥ १७ ॥

मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज का खड़ा किया हुआ कोप (उपद्रव) आभ्यन्तर कोप कहा जाता है। यदि यह आभ्यन्तर कोप राजा के किसी दोष से उत्पन्न हुआ हो-तो राजा उस दोष का परित्याग करे और यदि उनका अपराध हो तो उन्हें दण्ड द्वारा वश में लावे। यदि पुरोहित ने बहुत भी बड़ा अपराध किया है, तो भी उसे वध दण्ड न देकर कैद करले या देश से बाहर निकाल देवे। युवराज ने यदि बहुत बड़ा अपराध किया हो-तो उसे बन्धन में डाल दिया जावे या दूसरा गुणवान पुत्र हो तो उसका वध करवा दिया जावे इसी तरह मन्त्री और सेनापति को भी दण्ड देवे ॥१३-१७॥

पुत्रं भ्रातरमन्यं वा कुल्यं राज्यग्राहिणमुत्साहेन साधयेत् ॥ १८ ॥ उत्साहाभावे गृहीतानुवर्तनसंधिकर्मभ्यामरिसंधानभयात् ॥ १९ ॥ अन्येभ्यस्तद्विधेभ्यो वा भूमिदानैर्विश्वासयेदेनम् ॥ २० ॥ तद्विशिष्टं स्वयंग्राहं दण्डं वा प्रेषयेत् ॥ २१ ॥ सामन्तादविकान्त्रा तैर्विगृहीतमतिसंदध्यात् ॥ २१ ॥ अवरुद्धादानं पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ॥ २३ ॥ एतेन मन्त्रिसेनापतौ व्याख्यातौ ॥ २४ ॥ मन्त्रयादिवर्जानामन्तरमात्यानामन्यतमकोपोऽन्तरमात्यकोपः ॥ २५ ॥ तत्रापि यथार्हमुपायान्प्रयुजीत ॥ २६ ॥

अपना कोई दूसरा पुत्र, भाई या अन्य बन्धु बान्धव राज्य का लोलुप होवे-तो उस को किसी पद पर नियुक्त करके शान्त कर देवे। यदि किसी पद के देने में संकट दिखाई देवे-तो उनकी जागीर को जारी रखकर तथा अन्य किसी प्रकार से सन्धि करके उनको वश में कर लेवे। यदि उनकी उपेक्षा की जावेगी-तो उनके शत्रु से मिल जाने का भय लगा रहेगा। जो इसी तरह के अन्य कुटुम्बी हों-उनको भी कुछ भूमि दान में देकर उनमें विश्वास उत्पन्न करदे। यदि फिर भी उनकी आशङ्का हो-तो उनको साथ करके स्वयंग्राह (लूट का माल ही वेतन लेने वाली) सेना के साथ कहीं भेज दे। या अपने पड़ोसी सामन्त और आटविक लोगों से उनको लड़ाकर अपना कार्य सिद्ध करे। जब उपद्रव कर्ता मुख्य वीर, बन्धन में कर लिया जावे-तो उसे अपने बन्धन में लेलेवे या पारग्रामिक प्रकरण में कहे हुए उपायों द्वारा उसको वश में करे। यही उपाय मन्त्री और सेनापति के वश में करने के लिए पर्याप्त समझना चाहिए। मन्त्री पुरोहित युवराज और सेनापति के अतिरिक्त किसी अपने अमात्य द्वारा उपद्रव खड़ा कर देना-अन्तरमात्य कोप

कहाता है। उसके दवाने के लिए भी पूर्वोक्त उपायों में से यथा योग्य उपायों का अवलम्बन करे ॥ १८-२६ ॥

राष्ट्रमुख्यान्तपालाटविकदण्डोपनतानामन्यतमकोपो बाह्यकोपः ॥ २७ ॥
तमन्योन्येनावग्राहयेत् ॥ २८ ॥ अतिदुर्गप्रतिस्तब्धं वा सामन्ताटविकतत्कुली-
नावरुद्धानामन्यतमेनावग्राहयेत् ॥ २९ ॥ मित्रेणोपग्राहयेद्वा, यथा नामित्रं
गच्छेत् ॥ ३० ॥ अमित्रात्सत्ती भेदयेदेनम् ॥ ३१ ॥ अयं त्वां योगपुरुषं
मन्यमानो भर्तार्येव विक्रमयिष्यति ॥ ३२ ॥ अवाप्तार्थो दण्डचारिणममित्राट-
विकेषु कृच्छ्रे वा प्रवासे योच्यति ॥ ३३ ॥ विपुत्रदारमन्ते वा वास-
यिष्यति ॥ ३४ ॥

राष्ट्र के प्रधान व्यक्ति अन्तपाल, आटविक (जंगली) दण्डद्वारा मे वश में किया हुआ राजा-इन के द्वारा खड़ा किया हुआ उपद्रव बाह्य कोप कहाता है। इनके उपद्रव के शान्त करने का यह बड़ा सरल उपाय है, कि उनको परस्पर लड़ा देवे। अपने किसी दृढ़ दुर्ग के अभिमान से अकड़े हुए अन्तपाल आदि को किसी सामन्त आटविक या उसके वंशज या अपने बन्धन में लिए हुए उनके किसी प्रेमी के द्वारा उसे पकड़वा लेवे। यदि इस तरह वश में न आ सका हो-तो उसको अपने किसी मित्र से मिला देवे-जिस से वह अपने शत्रु से न मिल सके। सत्री नामक गुप्तचर अपनी कांट छांट द्वारा इस उद्धत अधिकारी को शत्रु से न मिलने देवे। सत्री गुप्तचर इस तरह के चक्कर डाले, कि यदि तुम अमुक शत्रु से मिले-तो वह तुम को अपने राजा का योग पुरुष (गुप्तचर) समझेगा-तो फिर इसी अपने स्वामी पर चढ़ाई करने को तुम्हें भेज कर तुम्हारी परोक्षा करना चाहेगा। जब तुम्हारे विजयी होने पर उसका काम बन जावेगा, तो शासक बने हुए तुम्हें शत्रु या आटविकों से घिरे हुए किसी दुर्गम दूर देश में भेज देगा। यदि इतना करने में संकोच भी किया-तो तुम्हें पुत्र स्त्रियों से वियुक्त करके अपने पास रखेगा ॥ २७-३४ ॥

प्रतिहतविक्रमं त्वां भर्तारि परायं करिष्यति ॥ ३५ ॥ त्वया वा संधिं
कृत्वा भर्तारिमेव प्रसादयिष्यति ॥ ३६ ॥ मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेदिति ॥ ३७ ॥
प्रतिपन्नमिष्टामिप्रायैः पूजयेत् ॥ ३८ ॥ अप्रतिपन्नस्य संश्रयं भेदयेदसौ ते योग-
पुरुषः प्रणिहित इति ॥ ३९ ॥

यदि तुम अपने स्वामी से हार गए-तो तुम्हें इसी स्वामी के हाथ बेच देगा
अथवा तुम्हें सौंप कर सन्धि द्वारा तुम्हारे स्वामी को प्रसन्न करने की चेष्टा करेगा।
क्या आश्चर्य है, कि उसका कोई मित्र ही तुम्हारे भर्ता से मिल जावे। यदि इस उत्तार
चढ़ाव से वह चक्कर में फंस जावे-तो उसके अभीष्ट को पूरा करके उसे सन्तुष्ट कर
लेवे। यदि इतना चक्कर देने पर भी वह न चमके-तो वह जिस से मिलने चला है, उस के
पास पहुंचकर उसे यह जतलाने की चेष्टा करे, कि यह जो पुरुष आया है, यह उस राजा
का योग पुरुष (गुप्तचर) है। ॥ ३५-३६ ॥

सत्ती चैनमभित्यक्तशासनैर्घातयेत् गूढपुरुषैर्वा ॥ ४० ॥ सहप्रस्थायिनो
वास्य प्रवीरपुरुषान्यथाभिप्रायकरणेनावहयेत् ॥ ४१ ॥ तेन प्रणिहितान्सत्ती
ब्रूयादिति सिद्धिः ॥ ४२ ॥ परस्य चैनान्कोपानुत्थापयेत् ॥ ४३ ॥ आत्मनश्च
शमयेत् ॥ ४४ ॥ यः क्रोधं कर्तुं शमयितुं वा शक्तस्तत्रोपजापः कार्यः ॥ ४५ ॥
यः सत्यसंधः शक्तः कर्मणि फलावाप्तौ चानुग्रहीतुं विनिपाते च त्रातुं तत्र
प्रतिजापः कार्यः ॥ ४६ ॥ तर्कयितव्यश्च कल्याणबुद्धिरुताहो शठ इति ॥ ४७ ॥

यदि इन उपायों से वश में न आवे, तो सत्री गुप्तचर कोई वनावटी चिट्ठी
बनवाकर उसी राजा से इस उपद्रवी शासकको मरवा देवे या अपने गूढ़ पुरुषों द्वारा
विष आदि से मरवावे। जो उत्तम २ वीर उसके साथ जाने को तय्यार हुए हों-उन
की अभिलाषा पूरी करके उनको ही बहकाकर अपनी ही ओर मिला लेवे। यदि वे न
माने-तो जिस राजा के पास ये जा रहे हैं, उसे सत्री सुझा देवे-कि ये पुरुष ही तेरे
वध के निमित्त आ रहे हैं। इतना कहते ही सिद्धि होने की सम्भावना है। जहां तक हो
सके राजा, शत्रु के देश में आभ्यन्तर वाह्य व्यक्तियों द्वारा उपद्रव करावे और अपने देश
में होने वाले उपद्रवों को उठाने न देवे। जो उपद्रव उठानें या उपद्रव के शांत करने में
समर्थ है, वहां अपनी तोड़ फोड़ लगानी उचित है। जो सच्ची प्रतिज्ञा वाला हो, जो
काम करने की शक्ति रखता हो। फल की प्राप्ति कराने में अनुग्रह कर सकता हो, विपत्ति
के समय रक्षा करने में समर्थ हो, उसी व्यक्ति से मेल जोल बढ़ाना चाहिए। मेल जोल
या तोड़ फोड़ लगाने से पूर्व उस व्यक्ति के सज्जन या दुर्जन होने पर विचार कर
लेना चाहिए ॥ ४०-४७ ॥

शठो हि बाह्योऽभ्यन्तरमेवमुपजपति—॥ ४८ ॥ भर्तारं चेद्धत्वा मां
प्रतिपादयिष्यति शत्रुवधो भूमिलाभश्च मे द्विविधो लाभो भविष्यति ॥ ४९ ॥

अथ वा शत्रुरेनमाहनिष्यतीति हतवन्धुपक्षस्तुल्यदोषदण्डेन बोद्धिग्रश्च ॥ ५० ॥
मे भूयान् कृत्यपक्षो भविष्यति ॥ ५१ ॥ तद्विधे वान्यस्मिन्नपि शङ्कितो भवि-
ष्यति ॥ ५२ ॥ अन्यमन्यं चास्य मुख्यमभिव्यक्तशासनेन घातयिष्या-
मीति ॥ ५३ ॥

जो दुष्ट बुद्धि बाह्य प्रकृति (बाहरा अधिकारी) है, वह भीतरो अमात्य आदि को इसलिए तोड़ता फोड़ता है। यदि यह अपने स्वामी का मार कर मुझे राजा बना देंगे, तो शत्रु वध और भूमि का लाभ-ये दो लाभ मुझे हो जावेंगे। यदि शत्रु ने मन्त्री को मार लिया-तो इस मृतक के वन्धु-बान्धव, तथा राजा से बिगड़े हुए अन्य पुरुष, उद्विग्न हो उठेंगे। इस तरह मेरा बहुत सा पक्ष तय्यार हो जावेगा। जब यह दशा हो जावेगी तो वह राजा अन्य कर्मचारियों पर भी विश्वास नहीं करेगा। इस प्रकार पृथक् २ इसके मुख्य व्यक्तियों को झूठें लेखों द्वारा मैं मरवा डालूंगा ॥४८-५३॥

अभ्यन्तरो वा शठो बाह्यमेवमुपजपति—॥ ५४ ॥ कोशमस्य हरि-
ष्यामि ॥ ५५ ॥ दण्डं वास्य हनिष्यामि ॥ ५६ ॥ दुष्टं वा भर्तारमनेन घात-
यिष्यामि ॥ ५७ ॥ प्रतिपन्नं बाह्यममित्राटविकेषु विक्रमयिष्यामि ॥ ५८ ॥
चक्रमस्य सज्यताम् ॥ ५९ ॥ वैरमस्य प्रसज्यताम् ॥ ६० ॥ ततः स्वाधीनो
मे भविष्यति ॥ ६१ ॥ ततो भर्तारमेव प्रसादयिष्यामि ॥ ६२ ॥ स्वयं वा
राज्यं ग्रहीष्यामि ॥ ६३ ॥ बद्ध्वा वा बाह्यभूमिं भर्तृभूमिं चोभयमवाप्स्यामि
॥ ६४ ॥ विरुद्धं वावाहयित्वा बाह्यं विश्वस्तं घातयिष्यामि ॥ ६५ ॥ शून्यं
वास्य मूलं हरिष्यामीति ॥ ६६ ॥

मन्त्री आदि भीतरी अधिकारी, यदि दुष्ट होंगे-तो वे बाहरी अन्तपाल आदि को यह सोचकर विरुद्ध करेंगे। कि यदि मौका लगा-तो मैं इसका खजाना छीनकर इसकी सेना को मार डालूंगा। अपना दुष्ट राजा भी इसके द्वारा मारा जा सकेगा। यदि इस अन्तपाल ने मेरी बात मानली तो मैं अपने शत्रु और वनचरों से इसका युद्ध करवा दूंगा। जब इसकी सेना शत्रु के साथ युद्ध में फंस जावेगी और इसका वैर बढ़ जावेगा तब यह मेरे अधीन हो जावेगा। इस तरह मैं अपने असन्तुष्ट राजा को प्रसन्न करलूंगा। मेरा चक्कर बैठ गया-तो स्वयं राज्य पर अधिकार करलूंगा। इनको वचन में डालकर बाह्य अधिकारी अन्तपाल या आटविक तथा अपने स्वामी इन दोनों की भूमि का मैं ही अधिकारी बन जाऊंगा। यदि समय आया तो किसी इसके विरोधी को बुलाकर इस

विश्वासी बाह्य अधिकारी को ही मरवा डालूंगा । जब कोई नहीं रहेगा-तो इस की राजधानी पर अधिकार करलूंगा ॥५५-६६॥

कल्याणबुद्धिस्तु सहजीव्यर्थमुपजपति ॥ ६७ ॥ कल्याणबुद्धिना संदधीत ॥ ६८ ॥ शठं तथेति प्रतिगृह्यातिसंदध्यात् इति ॥ ६९ ॥

उत्तम बुद्धि पुरुष तो साथ २ उन्नति की इच्छा करके जोड़ तोड़ लगाता है । वह अपने स्वामी या उपकारी का बध-बन्धन नहीं करता । ऐसे उत्तम पुरुष के साथ सन्धि कर लेनी उचित है । और जो शठ होवे-उसके साथ प्रतिज्ञा करके भी उसे धोखा देवे ॥६७-६९॥

एवमुपलभ्यः— ॥ ७० ॥

परे परेभ्यः स्वे स्वेभ्यः स्वे परेभ्यः स्वतः परे ।

रक्ष्याः स्वेभ्यः परेभ्यश्च नित्यमात्मा विपश्चिता ॥ ७१ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्याभ्यन्तरप्रकृति-
कोपप्रतीकारश्च तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितश्चतुर्विंशतो ऽध्यायः ॥१२४॥

इस प्रकार शास्त्र व्यवस्था को समझकर विद्वान् राजा, बाह्यों को शत्रु से अपनों को अपनों से, अपनों को शत्रु से, अपने से परायों को बचाता रहे । इसी तरह अपने आपको भी अपने और परायों से नीतिमान् राजा सदा सुरक्षित रखे ॥७०-७१॥

इति श्री कौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण
में पीछे से उपद्रव या बाहरी भीतरी लोगों के उपद्रव के शान्त करने
के उपाय वर्णन का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



चौथा अध्याय

१४२वां प्रकरण

क्षय व्यय तथा लाभका विचार ।

इस प्रकरण में बाहन सेना का नाश, धन धान्य की हानि, और भूमि की प्राप्ति का वर्णन किया जावेगा ।

युग्यपुरुषापचयः क्षयः ॥ १ ॥ हिरण्यधान्यापचयो व्ययः ॥ २ ॥
ताभ्यां बहुगुणविशिष्टे लाभे यायात् ॥ ३ ॥ आदेयः प्रत्यादेयः प्रसादकः
प्रकोपको ह्रस्वकालस्तनुक्षयो ऽल्पव्ययो महान्वृद्धयदयः कल्प्यो धर्म्यः पुरोगश्चेति
लाभसंप्रत् ॥ ४ ॥

ब्राह्मण और वीर पुरुषों के विनाश को क्षय और हिरण्य तथा धान्य की हानि को व्यय कहते हैं। यदि जनक्षय और धन, व्यय होने पर भी बहुत अधिक लाभ की आशा हो-तो चढ़ाई कर दे। आदेय, प्रत्यादेय, प्रसादक, प्रकोपद, ह्रस्वकाल, तनुक्षय, अल्पव्यय, महान्, वृद्धयुदय, कल्प, धर्म्य पुरोग-ये वारह लाभ के भेद माने गए हैं ॥१-४॥

सुप्राप्यानुपाल्यः परेषामप्रत्यादेय इत्यादेयः ॥ ५ ॥ विपर्ययेः प्रत्यादेयः ॥ ६ ॥ तमाददानस्तत्रस्यो वा विनाशं प्राप्नोति ॥ ७ ॥ यदि वा पश्येत्— ॥ ८ ॥ प्रत्यादेयमादाय कोशदण्डनिचयरक्षानिधानान्यवस्रावयिष्यामि ॥ ९ ॥ खनिद्रव्यहस्तिवनसेतुबन्धवणिकपथानुद्धतसारान्करिष्यामि ॥ १० ॥ प्रकृतीरस्य कर्शयिष्यामि ॥ ११ ॥ आत्राहयिष्याम्यायोगेनोराधयिष्यामि वा ॥ १२ ॥ ताः परः प्रयोगेण कोपयिष्यति ॥ १३ ॥ प्रतिपक्षे वास्य पण्यमेनं करिष्यामि ॥ १४ ॥ मित्रमवरुद्धं वास्य प्रतिपादयिष्यामि ॥ १५ ॥ मित्रस्य स्वस्य वा देशस्य पीडा-मत्रस्थस्तस्करेभ्यः परेभ्यश्च प्रतिकरिष्यामि ॥ १६ ॥ मित्रमाश्रयं वास्य वैगुण्यं ग्राहयिष्यामि ॥ १७ ॥ तदस्यमित्रं विरक्तं तत्कुलीनं प्रतिपत्स्यपे, सत्कृत्य वास्मै भूमिं दास्यामीति संहितसमुत्थितं मित्रं मे चिराय भविष्यतीति प्रत्यादेयमपि लाभमाददीत ॥ १८ ॥ इत्यादेयप्रत्यादेयौ व्याख्यातौ ॥ १९ ॥

जो सरलता से प्राप्त हो जावे, और सरलता से ही जिसकी रक्षा की जा सके एवं शत्रु जिसे लौटा कर ले सके, उसे आदेय लाभ कहते हैं। जिसकी प्राप्ति और रक्षा में अत्यन्त कठिनाई आ जावे और शत्रु, जिसे लौटा कर ले जा सके-उसे प्रत्यादेय लाभ कहते हैं। इस प्रकार के लाभ को प्राप्त करके लौट आने वाला या वहीं रहकर प्रबन्ध में लग जाने वाला राजा कभी २ विनाश को भी प्राप्त हो जाता है। यदि विजयाभिलाषी राजा यह देखे, कि मैं प्रत्यादेय लाभ प्राप्त करके भी शत्रु के कोश, सेना, धान्य आदि के सञ्चय, रक्षा के स्थान दुर्ग आदि को नष्ट कर दूंगा तथा खान, द्रव्यवन, हस्तिवन, सेतुबन्ध, वणिकपथों को छिन्न भिन्न कर दूंगा, एवं शत्रुओं के अमात्य आदि प्रकृतियों को दुर्बल कर दूंगा। अपनी प्रक्रिया से उन सारे अमात्य आदि को वहीं बुला लूंगा या उस भूमि के द्वारा प्रसन्न कर लूंगा। उन अपनी प्रकृति अमात्य आदि को शत्रु इस कारण से कुपित कर देगा। इस भूमि के लाभ को मैं उसके शत्रु के हाथ बेच डालूंगा। यदि मेरा दाव लगा-तो शत्रु के मित्र को अवरुद्ध (बन्धन में) कर लूंगा वहां स्थित होकर मैं अपने या अपने मित्र के देश में उपद्रव करने वाले चोर-या शत्रु

के मनुष्यों से अपने देश की पीड़ा का प्रतिविधान करदूंगा। इस के मित्र या आश्रय में रहने वाले राजाओं को इस से विरुद्ध कर दूंगा। इन सब बातों से विरक्त हुआ शत्रु का मित्र, शत्रु के किसी कुलीन को राज्य पर बैठाने को प्रसन्न हो जावेगा। मैं इस छीनी हुई भूमि को सत्कार पूर्वक शत्रु को ही सौंप दूंगा, इस से सन्धि के नियमों में बंध कर वह मेरा सदा के लिए मित्र बन जावेगा-इस प्रकार के लाभ देख कर राजा, प्रत्यादेय भूमि लाभ को भी ग्रहण करले। यहांतक आदेय प्रत्यादेय की व्यक्ति व्याख्या हुई ॥५-१६॥

अधार्मिकाद्धार्मिकस्य लाभो लभ्यमानः स्वेषां परेषां च प्रसादको भवति ॥ २० ॥ विपरीतः प्रकोपक इति ॥ २१ ॥ मन्त्रिणामुपदेशाल्लभो ऽलभ्यमानः कोपको भवति ॥ २२ ॥ अयमस्माभिः क्षयव्ययौ ग्राहित इति ॥ २३ ॥ दूष्यमन्त्रिणामनादराल्लभो लभ्यमानः कोपको भवति, सिद्धार्थो ऽयमस्मान्विनाशयिष्यतीति ॥ २४ ॥ विपरीतः प्रसादकः ॥ २५ ॥ इति प्रसादकोपकौ व्याख्यातौ ॥ २६ ॥

अधार्मिक राजा से धार्मिक राजा के पास भूमि आदि के आजाने को प्रसादक लाभ कहते हैं, क्योंकि इससे अपने और पराए सब को प्रसन्नता होती है। यदि धार्मिक को लाभ हो-तो इस से अपने पराये सब अप्रसन्न हो जाते हैं, इस लिए इसे प्रकोपक कहते हैं। मन्त्रियों की बतायी रीति के अनुसार भी जब लाभ न हो-तो यह भी राजा के कोप का कारण होता है, राजा समझता है-कि मन्त्री की मूर्खता से ही हमारे द्वारा इस व्यक्ति का यह जन-धन का नाश हुआ है। इसी तरह अन्तरात्मा से विगड़े हुए मन्त्रियों द्वारा अनादर के साथ कोई लाभ हो जावे-तो वह भी कोप का कारण बन जाता है। यदि मन्त्री की इसी तरह सिद्धि होती चली गई-तो वह हमारा नाश करदेगा, इसके विपरीत प्रसादक होता है अर्थात् प्रिय मन्त्रियों के द्वारा हुआ लाभ प्रति जनक होता है। यहां तक प्रसादक और प्रकोपक दोनों लाभों का वर्णन हुआ ॥ २०-२६ ॥

गमनमात्रसाध्यत्वाद्भ्रूस्वकालः ॥ २७ ॥ मन्त्रसाध्यत्वात्तनुक्षयः ॥ २८ ॥ भक्तमात्रव्ययत्वादल्पव्ययः ॥ २९ ॥ तदात्ववैपुल्यान्महान् ॥ ३० ॥ अर्थानुबन्धकत्वादृद्ध्युदयः ॥ ३१ ॥ निराबाधकत्वात्कल्यः ॥ ३२ ॥ प्रशस्तोपादानाद्धर्म्यः ॥ ३३ ॥ सामवायिकानामनिर्वन्धगामित्वात्पुरोग इति ॥ ३४ ॥

चढ़ाई करते ही जो लाभ हो जावे, उसे ह्रस्व काल मन्त्रणा के द्वारा तोड़ फोड़ करने से ही जो लाभ हो-उसे तनुक्षय, भक्ते (भोजन) आदि थोड़े से व्यय से ही जो

अधिक लाभ हो जावे-उसे महान्, आगे भी लाभ का अनुबन्ध जिसमें हो-उसे वृद्धमुदय, जिस में किसी तरह की बाधा न हो, उसे कल्य, जो प्रकाश युद्धादि धर्मानुसार प्राप्त किया जावे, उसे धर्म्य और मिलकर आक्रमण करने पर अपने २ लाभ को पुरोग लाभ कहते हैं ॥ २७-३४ ॥

तुल्ये लाभे देशकालौ शक्त्युपायौ प्रियाप्रियौ जवाजवौ सामीप्यविप्रकर्षौ
तदात्वानुबन्धौ सारत्वसातत्ये बाहुल्यबाहुगुण्ये च विमृश्य बहुगुणयुक्तं लाभमा-
ददीत ॥ ३५ ॥

जब कोई लाभ समान रीति से प्राप्त हो रहे हों-तो देशकाल, मन्त्र आदि शक्ति, समादि उपायों, का विचार करना चाहिए । किस देश और काल में कौनसा लाभ हितकर है । किस शक्ति से लाभ उठाना चाहिए । इस समय किस उपाय के प्रयोग की आवश्यकता है । सुवर्ण आदि प्रिय लाभ तथा अन्य लकड़ी आदि का अप्रिय लाभ भी सोचना है, कि कौनसा लाभ करना चाहिए कोई लाभ शीघ्र हो जाता है और किसी में देर लगती है । कोई अपने देश के समीप होता है और कोई बहुत दूरी पर मिलता है । कोई तत्काल फलदायी है और कोई भविष्य में फल देगा । कोई ठोस और कोई थोथा होता है । कोई लाभ अधिक और थोड़े होने पर भी अधिक महत्व रखता है । इस प्रकार लाभों पर दृष्टि डालकर जो अनेक गुणों से युक्त लाभ हो-उसे ही स्वीकार करे ॥३५॥

लाभविघ्नाः-कामः क्रोधः साध्वसं कारुण्यं हीरनार्यभावो मानः सानुक्रो-
शता परलोकापेक्षा दाम्भिकत्वमत्याशित्वं दैन्यमसूया हस्तगतावमानो दौरात्मि-
कमविश्वासो भयमनिकारः शीतोष्णवर्षाणामाक्षम्यं मङ्गलतिथिनक्षत्रेष्टित्व-
मिति ॥ ३६ ॥

स्त्री सहवास, क्रोध, धवराहट, दया, लज्जा, अनार्यभाव (विश्वास घात आदि) अहंकार, ढीलापन, परलोक का ध्यान, अपने पर विश्वास करने वालों को ठगना, अन्याय से अधिक निगल जाना, दीनता, अमात्य आदि में वृथा दोषारोपण, प्राप्त हुए पुरुषों का अपमान, दुरात्मापन (सबको पीड़ा पहुंचाने का भाव) किसी का विश्वास न करना भय, अपमान के योग्य पुरुष का भी अपमान न करना, शीत, ग्रीष्म और वर्षा के सहन की शक्ति न होना, कार्यों के आरम्भ में माङ्गलिक तिथि नक्षत्रों की चर्चा करना-ये सब बातें लाभ में विघ्न उत्पन्न करने वाली समझनी चाहिए ॥३६॥

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते ।

अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥ ३७ ॥

नाधनाः प्राप्तुवन्त्यर्थान्नरा यत्नशतैरपि ।

अर्थैरर्थाः प्रवध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥ ३८ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः चतुर्थो

ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितः पञ्चविंशशतः ॥ १२५ ॥

जो मूर्ख राजा कार्य साधन के समय नक्षत्रों के शुभाशुभ का विचार करता है, उसके स्वार्थ नष्ट हो जाते हैं। धन के कमाने का नक्षत्र (साधन तो धन ही है-ये विचारे नक्षत्र क्या कर सकते हैं। निर्धन लोग धन नहीं प्राप्त कर सकते हैं, चाहे वे सैकड़ों प्रयत्न क्यों न करें। धन तो हाथी से हाथी की भांति धन से ही बंधे हुए हैं अर्थात् हाथी निकालने में जैसे हाथी साधन है, वैसे धन की प्राप्ति में तो धन ही साधन है ॥३७-३८॥

इति श्रीकौटिल्य अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण में क्षय व्यय और लाभ के विचार का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

१४३वां प्रकरण

बाह्य तथा अभ्यन्तर आपत्तियां ।

इस प्रकरण में बाहरी और भीतरी आपत्तियों के विषय में विचार होगा ।

संध्यादीनामयथोद्देशावस्थापनमपनयः ॥ १ ॥ तस्मादापदः संभवन्ति ॥ २ ॥ बाह्योत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा, बाह्योत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतीजापा, इत्यापदः ॥ ३ ॥

सन्धि आदि छःओं गुणों का ठीक २ प्रयोग नहीं करने को अपनय कहते हैं। इसी कारण से तो आपत्तियां खड़ी होती हैं। जिस आपत्ति में बाहर के अन्पाल, राष्ट्र मुख्य आदि व्यक्ति, भेद डालते हैं, और अभ्यन्तर मन्त्री पुरोहित आदि उनसे मिल जाते हैं, इस आपत्ति को बाह्योत्पत्ति रभ्यन्तर प्रतिजाय कहते हैं। जिसमें अभ्यन्तर मन्त्री आदि तोड़ फोड़ लगाते हैं और बाहर के अन्तपाल आदि भड़क उठते हैं, इसे अभ्यन्तरोत्पत्ति-र्बाह्य प्रतिजाय आपत्ति कहते हैं। जिसमें बाहर के ही अन्तपाल आदि भड़काने वाले और बाहर के ही राष्ट्र मुख्य आदि भड़काने वाले हो-उसे बाह्योत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजाय आपत्ति कहते हैं तथा भीतरी मन्त्री आदि भड़काने वाले और पुरोहित आदि भड़काने वालेहों-उसे

अभ्यन्तरोत्पत्ति रम्यन्तर प्रतिजाय आपत्ति कहते हैं-इस प्रकार चार तरह की बाह्य और अभ्यन्तर आपत्तियां होती हैं ॥१-३॥

यत्र बाह्या अभ्यन्तरानुपजपन्त्यभ्यन्तरा वा बाह्यास्तत्रोभययोगे प्रतिजपतः सिद्धिर्विशेषवती ॥ ४ ॥ सुव्याजा हि प्रतिजपितारो भवन्ति नोपजपितारः ॥५॥ तेषु प्रशान्तेषु नान्यं रक्षन्नुपजपितुमुपजपितारः ॥ ६ ॥ कृच्छ्रोपजापा हि बाह्यानामभ्यन्तरास्तेषामितरे वा, महत्प्रयत्नस्य वधः परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनोऽन्य इति ॥ ७ ॥

जब बाहर के लोग फूट डाल रहे हों और भीतर के भड़कते हो-तथा भीतर के भड़का रहे हों और बाहर के अन्तपाल आदि उपद्रव करने पर उतारू होंतो इस दशा में भड़काने वाले बाहरी भीतरी व्यक्तियों को छोड़कर भड़काने वाले व्यक्तियों की शान्ति की जावे-तो शीघ्र सिद्धि हो सकेगी, क्योंकि तोड़े-फोड़े जाने वाले व्यक्तियों का स्वार्थ ऊपरी होता है, इससे वे शान्त हो जाते हैं परन्तु फूट का मूल कारण उपजायक शान्त नहीं हो सकते हैं। यदि ये लोग शान्त हो गए-तो फिर दूसरे लोगों के भड़काने की भड़काने वाले चेष्टा ही नहीं करेंगे बाह्य अन्तपाल आदि से मन्त्री आदि भीतरी पुरुषों को बहका देना कठिन है और इसी तरह मन्त्री आदि का बाहरी अन्तपाल आदि का भड़काना कठिन है। यदि उन्होंने प्रयत्न भी किया-तो महान् प्रयत्न करना पड़ेगा और वह थोड़े ही प्रयत्न करना पड़ेगा और वह थोड़े ही प्रयत्न से नष्ट किया जा सकेगा। इस तरह तो अपने विरोधी की ही मनोरथ सिद्धि होगी और अपनी तो हानि ही होना सम्भव है ॥४-७॥

अभ्यन्तरेषु प्रतिजपत्सु सामदाने प्रयुज्जीत ॥ ८ ॥ स्थानमानकर्म सान्त्वम् ॥ ९ ॥ अनुग्रहपरिहारौ कर्मस्वायोगो वा दानम् ॥ १० ॥ बाह्येषु प्रतिजपत्सु भेददण्डौ प्रयुज्जीत ॥ ११ ॥ सत्तिणो मित्रव्यञ्जना वा बाह्यानां चारमेपां त्रयुः ॥ १२ ॥ अयं वो राजा दूष्यव्यञ्जनैरतिसंधातुकामो बुध्यध्वमिति ॥ १३ ॥ दूष्येषु दूष्यव्यञ्जनाः प्रणिहिता दूष्यान्वाह्यैर्मदयेयुर्बाह्यान्वा दूष्यैः ॥ १४ ॥ दूष्याननुप्रविष्टा वा तीक्ष्णाः शस्त्रसाभ्यां हन्युः ॥ १५ ॥ आहूय वा बाह्यान्वातयेयुरिति ॥ १६ ॥

यदि अभ्यन्तर मन्त्री पुरोहित, राजकुमार या सेनापति-को कोई बाहरी व्यक्ति तोड़ फोड़ कर भड़काना चाहता है, तो राजा अपने अभ्यन्तर व्यक्ति को सामदान से (समझाकर या कुछ देकर) वश में कर लेवे। किसी प्रतिष्ठित स्थान पर नियुक्त करना और छत्र

चामरादि से आदर करना साम उपाय समझना चाहिए। धन का दान या लेने योग्य धन का अप्रहण एवं उत्तम कामों पर लगाकर प्राप्ति कराना, दान उपाय माना जाता है। यदि अभ्यन्तर लोग बाहरी अन्तपाल आदि को उपद्रव के लिए उकसा रहे हों-तो बाहरी लोगों को भेद या दण्ड का प्रयोग करके शान्त करे अथवा सन्त्री आदि गुप्तचर, मित्र बने हुए उन अन्तपाल आदि पर राजा के अभिप्राय को इस प्रकार प्रकट करें-कि यह तुम्हारा राजा, अपने मन्त्री आदि को मिथ्या दुष्ट भाव वाला बनाकर तुम्हारी परीक्षा करना चाहता है या तुम लोगों के अपराध से तुमको हटाकर अपना स्वार्थ घना चाहता है-तुम इन मन्त्री आदि के फेर में न पड़ो। राजा से विगड़े हुए अभ्यन्तर लोगों के पास में राजा से विगड़े बने हुए गुप्तचर दुष्ट अभ्यन्तरों को बाहर के अन्तपाल आदि से और अन्तपाल आदि को अभ्यन्तर मन्त्री आदि से तोड़-फोड़ दें। इस तरह काम न बने तो विप आदि के प्रयोग से मार देने वाले तीक्ष्ण पुरुष, दुष्ट अभ्यन्तर पुरुषों के पास पहुंच का उनको शस्त्र या विप से मार देवे तथा बाहर के लोगों को चुलाकर मरवा देवे ॥ ८-१६॥

यत्र बाह्या बाह्यानुपजपन्त्यभ्यन्तरानभ्यन्तरा वा, तत्रैकान्तयोगमुप-
जपितुः सिद्धिर्विशेषवती ॥ १७ ॥ दोषशुद्धौ हि दूष्या न विद्यन्ते ॥ १८ ॥
दूष्यशुद्धौ हि दोषः पुनरन्यान्दूषयति ॥ १९ ॥ तस्माद्बाह्येपूजपत्सु भेददण्डौ
प्रयुज्जीत ॥ २० ॥ सत्तिष्ठो मित्रव्यञ्जना वा ब्रूयुः ॥ २१ ॥ अयं वो राजा
स्वयमादातुकामो विगृहीताः स्थानेन राज्ञा बुध्यध्वमिति ॥ २२ ॥ प्रतिजपितुर्वा
ततो दूतदण्डाननुप्रविष्टास्तीक्ष्णाः शस्त्ररसादिभिरेपां छिद्रेषु प्रहरेयुः ॥ २३ ॥
ततः सत्रिणः प्रतिजपितारममिशंसेयुः ॥ २४ ॥

यदि बाहर के लोग बाहरकों को तोड़-फोड़ कर राजा के विरुद्ध भड़का रहे हों और भीतरी मन्त्री आदि भीतरी लोगों को भड़काते हों-तो उनमें भड़काने वाले को बरा में करने से शीघ्र सिद्धि मिल सकती है। यदि भड़काने वाले ही न होंगे-तो भड़काने वाले कहां से आवेंगे। यदि भड़काने वाले दुष्ट व्यक्तियों का प्रतीकार किया-तो भड़काने वालों के रहने से दोष ज्यों का त्यों बना रहेगा और वह फिर अनेक दूषित पुरुषों को बनादेगा। इन सब बातों पर विचार करके बाहर के लोगों पर तो भेद (फूट) और दण्ड (वध या बन्धन) का ही प्रयोग करे। सन्त्री नामक गुप्तचर मित्र बने हुए उनसे कहें, कि यह तुम्हारा राजा अब तुम्हारे अधिकार को छीनना चाहता है। इस से तुमने युद्ध किया कि इसने तुम्हारा राज्य छीना बस यही समझलो। इस प्रकार से सिद्धि न हो-तो जब ये

बाहर के उपजायक भड़काने के लिए बाहरी किसी व्यक्ति के पास जा रहे हों-तो दूत का रूप बनाकर उनके समूह में मिलकर तोड़ण पुरुष, शस्त्र या विष आदि के प्रयोग से समय पर इन पर प्रहार कर दें। फिर सत्री लोग, इस हत्या को प्रति जपिता के ऊपर डालने का प्रयत्न करें ॥ १८-२४ ॥

अभ्यन्तरानभ्यरेपूजपत्सु यथार्हमुपायं प्रयुञ्जीत ॥ २५ ॥ तुष्टलिङ्गम-
तुष्टं विपरीतं वा साम प्रयुञ्जीत ॥ २६ ॥ शौचसामर्थ्यापदेशेन व्यसनाभ्युदया-
वेक्षण्येन वा प्रतिपूजनमिति दानम् ॥ २७ ॥ मित्रव्यञ्जनो वा ब्रूयादेतान् ॥ २८ ॥
चित्तज्ञानार्थमुपधास्यति वो राजा ॥ २९ ॥ तदस्याख्यातव्यमिति ॥ ३० ॥
परस्पराद्वा भेदयेदेनान् ॥ ३१ ॥ असौ च वो राजन्येवमुपजपतीति भेदः
॥ ३२ ॥ दाण्डकर्मिकवच्च दण्डः ॥ ३३ ॥ एतासां चतसृणामापदामभ्यन्त-
रामव पूर्वं साधयेत् ॥ ३४ ॥ अहिभयादभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयानि-
त्युक्त पुरस्तात् ॥ ३५ ॥

यदि भीतर के मन्त्री पुरोहित आदि भीतर के इन्हीं लोगों को भड़कावे तो समयानुकूल इनपर सामादि उपायों का प्रयोग करें। ऊपर से प्रसन्नता भीतर से अप्रसन्नता या सचाई के साथ साम उपाय का प्रयोग करना ही श्रेयस्कर है। पवित्रता या सामर्थ्य के बढ़ाने बन्धु वियोग जैसे व्यसन और पुत्रोत्सव जैसे अभ्युदय की अपेक्षा से जो बल आभूषण आदि का प्रदान किया जाता है, इसे दान कहते हैं। इसका प्रयोग भी उत्तम ही है। इसके अतिरिक्त सत्री गुप्तचर मित्र बनकर इन से कहे, कि राजा तुम्हारे अभिप्राय जानने को यह सारे षड्यन्त्र कर रहा है। तुमको इस समय अपने हृदय की परीक्षा देनी है। इसके सिवा गुप्तचर इन अभ्यन्तर पुरुषों में परस्पर फूट भी डलवा देवे। यह अमुक व्यक्ति राजा के समीप तुम्हारे बड़े दोष कहा करता है। इत्यादि ढंग करने को भेद उपाय कहते हैं। दाण्डकर्मिक प्रकरण में कहे हुए उपायों को दण्ड कहा जाता है। इन चारों आपत्तियों में प्रथम भीतरी आपत्ति का प्रतीकार करे। बाह्य कोप की अपेक्षा अभ्यन्तर कोप सर्प के भीतर घुसे हुए कोप के समान भयंकर होता है यह बात पहले ही समझा दी गई है ॥ २५-३५ ॥

पूर्वं पूर्वं विजानीयाल्लघ्वीमापदमापदाम् ।

उत्थितां बलवद्भयो वा गुर्वीं लघ्वीं त्रिष्यञ्जि ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे बाह्य भ्यन्तराश्चापदः पञ्चमोऽध्यायः

॥ ५ ॥ आदितः षड्विंशशतः ॥ १२६ ॥

इन चारों आपत्तियों में पूर्व की आपत्ति को उत्तर आपत्ति की अपेक्षा हलकी समझनी चाहिए अथवा जो किसी बलवान् से उठाई गई हो वह हलकी होने पर भी भारी है और जो निर्बल व्यक्ति द्वारा उठाई गई है वह भारी होने पर हलकी ही समझना चाहिए ॥३६॥

इति श्रीकौटलीय 'अर्थशास्त्रान्तर्गत' अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण में बाहरी भीतरी आपत्तियों के वर्णन का पाचवां अध्याय समाप्त हुआ ।



छठा अध्याय

१४४वां प्रकरण

दूष्य शत्रु संयुक्ताश्चापदः

इस प्रकरण में दुष्ट प्रजाजन आदि और शत्रु से उत्पन्न होने वाली आपत्ति और उनके प्रतीकार का वर्णन किया जावेगा ।

दूष्येभ्यः शत्रुभ्यश्च द्विविधाः शुद्धाः ॥ १ ॥ दूष्यशुद्धायां पौरेषु जानप-
देषु वा दण्डवर्जानुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २ ॥ दण्डो हि महाजने चेत्तुमशक्यः
॥ ३ ॥ क्षिप्तो वा तं चार्थं न कुर्यात् ॥ ४ ॥ अन्यं चानर्यमुत्पादयेत् ॥ ५ ॥
मुख्येषु त्वेषां दण्डकर्मिकवच्चेष्टेतेति ॥ ६ ॥

आपत्ति दुष्ट [विगड़े हुए] पुरुष और शत्रु से उत्पन्न होती हैं । जो दूष्य पुरुषों से उठे उन्हें दूष्य शुद्ध और जो शत्रु द्वारा उठे उसे शत्रु शुद्ध आपत्ति कहा जाता है । इस तरह आपत्ति दो प्रकार की हुई । जब अपने ही प्रजाजन द्वारा आपत्ति उठाई गई हो-तो उसमें नगर निवासी या जनपद [देश] निवासी पुरुषों पर दंड का प्रयोग न करे-तो उन्हें सामदान भेद आदि किसी एक उपाय से वश में करलेना चाहिये, क्योंकि बड़े आदमी या जन समूह पर दण्ड का प्रयोग करना बहुत ही कठिन है । यदि इनपर दण्ड का प्रयोग कर भी दिया-तो स्वार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती है, किन्तु अन्य अनर्थ [बुराइयों] के उठने की सम्भावना है । यदि किसी प्रकार भी शान्ति स्थापना न हो सके-तो इन में जो मुख्य हों-उन में दण्ड कर्मिक प्रकरण में कहे हुए गुपचुप वध आदि दण्ड का प्रयोग किया जाता है ॥ १-६ ॥

शत्रुशुद्धायां यतः शत्रुः प्रधानः कार्यो वा, ततः सामादिभिः सिद्धिं लिप्सेत ॥७॥ स्वामिः यायत्ता प्रधानसिद्धिः ॥८॥ मन्त्रिष्वायत्तमयत्तसिद्धिः ॥९॥ उभयायत्ता प्रधानायत्तसिद्धिः ॥१०॥ दूष्यादूष्याणामामिश्रितत्वादामिश्रा ॥११॥ आमिश्रायामदूष्यतः सिद्धिः ॥१२॥ आलम्बनाभावे ह्यालम्बिता न विद्यते ॥१३॥

यदि शत्रु द्वारा आपत्ति खड़ी की गई हो तो उसमें शत्रु प्रधान मन्त्री या अमात्य आदि कोई एक प्रधान होगा। जिसे प्रधान देखे-उसे ही सामादि उपायों से वश में करे। प्रधान मन्त्री को वश में करना हो तो उसके स्वामी राजा को समझावे और अमात्यका रोकना हो-तो मन्त्री को शान्त करे-इनके अधीन ही इनका उपाय है। यदि मन्त्री और अमात्य दोनों भागड़ा खड़ा कर रहे हों-तो समझाने पर स्वामी और मन्त्री इस भागड़े को शान्त कर सकते हैं। दूष्य मन्त्री आदि और अदूष्य राजा (शत्रु) इन दोनों ने यदि मिल कर आपत्ति खड़ी की है, तो वह आमिश्रा आपत्ति कहाती है। आमिश्रा आपत्ति में अदूष्य अर्थात् राजा के समझाने पर सिद्धि होगी। जब मन्त्रा आदि का आश्रय राजा ही शांत हो जावेगा तो मन्त्री आदि तो स्वयं शान्त हो जायेगा क्योंकि आधार के बिना आघेय नहीं रहा करता ॥ ७-१३ ॥

मित्रमित्राणामेकीभावात्परमिश्रा, परमिश्रायां मित्रतः सिद्धिः ॥१४॥ सुकरो हि मित्रेण सन्धिर्नामित्रेणेति ॥१५॥ मित्रं चेन्न संधिमिच्छेदभीक्ष्णशु जपेत् ॥१६॥ ततः सत्तिभिरमित्राङ्गदेयित्वा मित्रं लभेत् ॥१७॥ मित्रा मित्रसंघस्य वा योऽन्तःस्थायी तं लभेत् ॥१८॥ अन्तःस्थायिनि लब्धे मध्यस्थायिनो मिद्यन्ते ॥१९॥ मध्यस्थायिनं वा लभेत् ॥२०॥ मध्यस्थायिनि लब्धे बालब्धे नान्तःस्थायिनः संहन्यन्ते ॥२१॥ यथा चैषामाश्रयभेदस्तानुपायान्प्रयुञ्जीत ॥२२॥

मित्र और शत्रु दोनों ने मिलकर यदि कोई आपत्ति खड़ी की हो-तो वह पर मिश्रा आपत्ति में मित्र के शान्त करने पर आपत्ति शान्त होती है। मित्र के साथ सन्धि सीधी तरह हो जाती है, शत्रु से सन्धि होना कठिन होता है। यदि मित्र भी संधि के लिए तैयार न हो रहा हो-तो उसे द्वार २ शत्रु से तोड़ने का चेष्टा की चेष्टा करे अर्थात् उनमें फूट डलवावे। इस तरह सत्री आदि गुप्तचरों द्वारा मित्र का शत्रु से भेद करवा अपने अनुकूल बनावे। जो मित्र और शत्रु के समीप वर्ती सामन्त (राजा)

हो उसे अपने वश में करे। जब अन्तःस्वामी वश में हो जावेगा-तो मध्य स्वामी तो आप ही फूट निकलेंगे। अन्तःस्थायी वश में न आवे, तो मध्य स्थायी को ही वश में करे। यदि मध्य स्थायी अपने से मिल गया हो अन्तःस्थायी राजा भी परस्पर नहीं संगठित हो सकते हैं। जिस प्रकार इन सब के आश्रयभूत राजा का इन से भेद हो जावे-उन ही उपायों का बड़ी योग्यता से प्रयोग करना चाहिए ॥ १४-२२ ॥

धार्मिकं जातिकुलश्रुतवृत्तस्तवेन संबन्धेन पूर्वेषां त्रैकाल्योपकारानपकारा-
भ्यां वा सान्त्वयेत् ॥ २३ ॥ निवृत्तोत्साहं विग्रहश्रान्तं प्रतिहतोपायं क्षयव्यया-
भ्यां प्रवासनेनचोपतप्तं शौचेनान्यं लिप्समानमन्यस्माद्वा शङ्कमानं मैत्री प्रधानं
वा कल्याणबुद्धिं साम्ना साधयेत् ॥ २४ ॥ लुब्धं क्षीणं वा तपस्विमुख्यावस्था-
पनापूर्वं दानेन साधयेत् ॥ २५ ॥ तत्पञ्चविधम्— ॥ २६ ॥ देयविसर्गो गृही-
तानुवर्तनमात्तप्रतिदानं स्वद्रव्यदानमपूर्वं परस्वेषु स्वयंग्राहदानं चेति दान-
कर्म ॥ २७ ॥

जो राजा धार्मिक हो-उसकी जाति, कुल, विद्या की स्तुति करके उसे वश में करे। तथा अपने और उनके पूर्वजों के सम्बन्ध उपकार तथा शत्रु द्वारा किये हुए अपकारों का भी वरण करके उसे समझावे। उत्साहहीन, लड़ाई से थके हुए, सामादि उपायों में असफल, जनक्षय, धन व्यय और लम्बे प्रवास से तंग हुए, पवित्रता के साथ किसी अन्य से मित्रता करने के अभिलाषी, किसी अपने शत्रु से भयभीत, मित्रता में आनन्द मानने वाले उत्तम बुद्धि राजा के साथ साम उपाय का प्रयोग करे। लोभी लालची, निर्बल, विरोधी राजा को तपस्वी और मुख्य पुरुषों के सन्मुख दान देकर अपनी और मिला लेवे। यह दान पांच प्रकार का होता है। देयविसर्ग दान उसे कहते हैं, जिसमें देने योग्य भूमि को वापिस दे दिया जावे। गृहीतानुवर्तन वह दान है, कि जो भूमि प्रथम लेली हो, परन्तु अब उनको उसके भोग की फिर अनुमति दी जा रही हो। ली हुई भूमि का फिर विलकुल प्रदान कर देना-आन्त प्रदान कहते हैं। पूर्व में नहीं दिए हुए अपने द्रव्य का प्रदान-स्वद्रव्यदान कहाता है, शत्रु के लूट में मिला हुआ धन उसको दे देना-स्वयंग्राहदान कहाता है ॥ २३-२७ ॥

परस्परद्वेषवैरभूमिहरणशङ्कितमतोऽन्यतमेन भेदयेत् ॥ २८ ॥ भीरुं वा प्रतिघातेन ॥ २९ ॥ कृतसंधिरेष त्वयि कर्म करिष्यति मित्रमस्य निसृष्टम् ॥ ३० ॥ संधौ वा नाभ्यन्तर इति ॥ ३१ ॥

परस्पर के द्वेष, वैर, भूमि हरण की शङ्का उत्पन्न कराके एक दूसरा को विरोधी बना देवे-यही भेद है। जो डरपोर हो-उसे कुछ मारने पीटने का भय दिखाकर तोड़ लेवे। किसीसे यों कहे कि यह यद्यपि तुमसे सन्धि कर चुका-परन्तु तुम पर चढ़ाई करेगा-क्योंकि तुम्हारे शत्रु ने इसके पास अपना मित्र सन्धि के लिए भेजा दिया है। अपने परस्पर के सन्धि करने में तुम्हें पूछा तक नहीं हूँ। ये सब बातें भेद डालने की मानी जाती हैं ॥२८-३१॥

यस्य वा स्वदेशादन्यदेशाद्वा पण्यानि पण्यागारतया गच्छेयुस्तान्यस्य यातव्याल्लब्धानीति सत्तिणश्चारयेयुः ॥ ३२ ॥ बहुलीभूते शासनमभिव्यक्तेन प्रेषयेत् ॥ ३३ ॥ एतत्तं पण्यं पण्यागारं वा मया ते प्रेषितम् ॥ ३४ ॥ सामवायिकेषु विक्रमस्वापगच्छ वा ॥ ३५ ॥ ततः पण्यशेषमवाप्स्यसीति ॥ ३६ ॥ ततः सत्तिणः परेषु ग्राहयेयुः ॥ ३७ ॥ एतदरिप्रदत्तमिति ॥ ३८ ॥

जिस राजा के स्वदेश या अन्य देश से विकने की वस्तुएँ पण्यागार (बाजार) में रखने को आवें, उन्हें, गुप्तचर यह प्रसिद्ध कर दें, कि यह उसी राजा ने भेजी हैं, जिस पर हमारा राजा चढ़ाई करना चाहता था। जब यह प्रवाह बहुत फैल जावे, तो किसी प्रकट पुरुष के द्वारा यह एक लेख भी गुप्तचर भिजवावें कि हे महाभाग ! यह बहुत सी बेचने योग्य वस्तुएँ मैंने आपके पास भेजी हैं। अब तुम इन गिरोह बनाने वाले राजाओं पर आक्रमण करो या तुम उन्हें छँड़कर अलग हो जावो। इतना होने पर तुम्हारी बाकी शत का धन भेज दिया जावेगा। इस पत्र को बीच में किसी प्रकार पकड़वाकर सत्री गुप्तचर शत्रु राजाओं को उस होने वाले मित्र के इस दुर्व्यवहार का निश्चय करा देवे कि यह तुम्हारे शत्रु का दिया हुआ पत्र है ॥३२-३८॥

शत्रुमुख्यातं वा पण्यमविज्ञातं विजिगीषुं गच्छेत् ॥ ३९ ॥ तदस्य वैदेहकव्यञ्जनाः शत्रुमुख्येषु विक्रीणीरन् ॥ ४० ॥ ततः सत्तिणः परेषु ग्राहयेयुः एतत्पण्यमरिप्रदत्तमिति ॥ ४१ ॥

जिन वस्तुओं को शत्रु को यह जानता हो उनको गुप्तचर, छुपे २ विजयाभिलाषी राजा के पास भिजवा देवे। फिर इस राजा के व्यापारी बने हुए गुप्तचर उस सामान को मुख्य शत्रुओं के बाजारों में विकने को भेजे और गुप्तचर, उन सामवायिक राजाओं से मुख्य राजा को निश्चय करादे, कि यह सामान तुम्हारे मित्र बनने वाले शत्रु राजा ने तुम्हारे समुद्रविरोधी राजा के पास भेजा है ॥३९-४१॥

महापराधानर्थमोनाभ्यामुपगृह्य वा शस्त्ररसाग्निभिर्मित्रे प्रणिदध्यात्
॥ ४२ ॥ अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ ४३ ॥ तस्य पुत्रदारमुपगृह्य रात्रौ
हतमिति ख्यापयेत् ॥ ४४ ॥ अथामात्यः शत्रोस्तानेकैकशः प्ररूपयेत् ॥ ४५ ॥
ते चेद्यथोक्तं कुर्युर्न चैनान्ग्राहयेत् ॥ ४६ ॥ अशक्तिमतो वा ग्राहयेत् ॥ ४७ ॥

बड़े अपराध करने वाले किसी व्यक्ति को धन और मान से सन्तुष्ट करके उसे
शस्त्र या विष प्रयोग के लिए शत्रु के पीछे लगावे अथवा किसी एक अमात्य को प्रथम
भेजे। उसके पुत्र भार्या आदि को कहीं सुरक्षित स्थान पर भेजकर रात में मरवा डाले
ऐसा प्रसिद्ध करे। जब उस अमात्य में शत्रु राजा का विश्वास हो जावे, तो अमात्यों को
भी उस राजा के द्वेषी बताकर मिला देवे। यदि वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उस राजा
को मरवा डालें-तो इन्हें कुछ न कहें, और जो उसके मरवाने की अशक्ति प्रकट करें-तो
राजा उन्हें पकड़वा देवे ॥४२-४७॥

आप्तभावोपगतो मुख्यादस्यात्मानं रक्षणोयं कथयेत् ॥ ४८ ॥ अथा-
मित्रशासनंमुख्यायोपघाताय प्रेषितमुभयवेतनो ग्राहयेत् ॥ ४९ ॥

जब राजा को इन गुप्तचरों पर विश्वास हो जावे, तो वह इन संगठित राजाओं में
जो मुख्य हो, उससे अपने आपको सुरक्षित रखने का शत्रु राजा को उपदेश करें। इसके
अनन्तर शत्रु राजा के शत्रु झूठा पत्र बनवाकर उस मुख्य राजा के पास गुप्तचरों द्वारा
भिजवावे और उस राजा को पकड़वा देवे ॥४८-४९॥

उत्साहशक्तिमतो वा प्रेषयेत् ॥ ५० ॥ अमुष्य राज्यं गृहाण यथास्थितो
न संधिरिति ॥ ५१ ॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः ॥ ५२ ॥ एकस्य स्कन्धा-
वारं विवधमासारं वा घातयेयुः ॥ ५३ ॥ इतरेषु मैत्रीं ब्रुवाणाः ॥ ५४ ॥
तं सत्त्रिणः—त्वमेतेषां घातयितव्य इत्युपजपेयुः ॥ ५५ ॥

किसी वीरता और शक्ति सम्पन्न इन संगठित राजाओं में कोई कूटपत्र भिजवाया
जावे, कि तुम अमुक राजा (जिसको फोड़ना है) उस राजा के राज्य पर कब्जा करलो-अब वह
पुरानी सन्धि नहीं रखनी चाहिए। इस पत्र को भी राजा उसी राजा को पकड़वा देवे,
जिसको शङ्कित बनाना है। किसी एक संगठित राजा के सेना निवेश, धान्य के प्रवन्ध या
उसके पीछे के मित्र बल को गुप्तचर नष्ट करदें। अन्य राजाओं से अपनी मित्रता गांठे
रहे। फिर सत्री गुप्तचर उसे ये सुझा दे, कि इन्होंने ही तुम्हारे इस सेना निवेश आदि को

नष्ट किया और अब ये तुम्हें भी मारना चाहते हैं इस तरह कहकर उनमें फूट डलवावे ॥५०-५५॥

यस्य वा प्रवीरपुरुषो हस्ती हयो वा म्रियेत गूढपुरुषैर्हन्येत ह्रियेत वा तं सत्तिष्ठः परस्परोपहतं ब्रूयुः ॥ ५६ ॥ ततः शासनमभिशस्तस्य प्रेषयेत् ॥ ५७ ॥ भूयः कुरु ततः पणशेषमवाप्स्यसीति ॥ ५८ ॥ तदुभयवेतना ग्राहयेयुः ॥ ५९ ॥ भिन्नेष्वन्यतमं लभेत ॥ ६० ॥ तेन सेनापतिकुमारदण्डचारिणो व्याख्याताः ॥ ६१ ॥ साङ्घिकं च भेदं प्रयुञ्जीतेति भेदकर्म ॥ ६२ ॥

जिस संगठित राजा का कोई वीर पुरुष, हाथी या घोड़ा मारा जावे, या गुप्त पुरुषों द्वारा मरवा दिया जावे या अपहृत करवा लिया जावे-तो भी सत्री गुप्तचर उसे एक दूसरे के द्वारा मारा जाना प्रसिद्ध करे। फिर एक पत्र उस राजा के नाम बनवटी बनवाकर भिजवावे, जिसका नाम मारने मरवाने में प्रसिद्ध किया है, कि तुमने बड़ा अच्छा किया। अब शेष कार्य और पूरा करो जो तुम्हारा निश्चित धन है वह भिजवा दिया जावेगा। इस पत्र को भी गुप्तचर उस राजा को पकड़वा देवे। इस प्रकार जब एक दूसरे में फूट पड़ जावे-तो एक से विजयेच्छुक राजा मिल जावे। भेद डालने के जो उपाय राजाओं के विषय में बताये गए, वे ही सेनापति कुमार और दण्डचारी (शासकों) जनों के विषय में समझ लेने चाहिए। सङ्घवृत्त अधिकरण में जो भेद (फूट) डालने के उपाय बताए गए हैं—उनका प्रयोग करना भेद कर्म कहाता है। ॥५६-६२॥

तीक्ष्णमुत्साहिनं व्यसनिनं स्थितशत्रुं वा गूढपुरुषाः शस्त्राग्निरसादिभिः साधयेयुः ॥ ६३ ॥ सौकर्यतो वा तेषामन्यतमः ॥ ६४ ॥ तीक्ष्णो ह्येकः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेत् ॥ ६५ ॥ अयं सर्वसंदोहकर्म विशिष्टं वा करोतीत्युपायचतुर्वर्गः ॥ ६६ ॥

तीक्ष्ण प्रकृति, वीरतादि गुणों से युक्त व्यसन में फंसे हुए शक्तिशाली शत्रु को गुप्तचर शस्त्र अग्नि और विष आदि के प्रयोग से मरवा डाले। इन उपायों में जिस किसी विष आदि के देने में सुभीता हो सके-उसी का प्रयोग करे। एक ही तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्र, विष और अग्नि का प्रयोग कर सकता है। अकेला ही कोई गूढ़ पुरुष सारे इकट्ठे कर्म ता उन से अन्य कोई खास मारने के उपाय कर सकता है, यहां तक सामादि चारों उपायों का वर्णन किया गया ॥ ६३-६६ ॥

पूर्वः पूर्वश्चास्य लघिष्ठः ॥ ६७ ॥ सान्त्वमेकगुणम् ॥ ६८ ॥ दानं
द्विगुणं सान्त्वपूर्वम् ॥ ६९ ॥ भेदस्त्रिगुणः सान्त्वदानपूर्वः ॥ ७० ॥ दण्डश्च-
तुर्गुणः सान्त्वदानभेदपूर्वः ॥ ७१ ॥ इत्यभियुञ्जानेपूक्तम् ॥ ७२ ॥ स्वभूमिष्ठेषु
तु त एवोपायाः ॥ ७३ ॥ विशेषस्तु—॥ ७४ ॥ स्वभूमिष्ठानामन्यतमस्य
परयागारैरभिज्ञातान्द्रुतमुख्यानभीक्षणं प्रेषयेत् ॥ ७५ ॥

इन सामादि उपायों में उत्तर की अपेक्षा पूर्व का हलका होता है। साम उपाय में एक ही गुण माना गया है। दान दो गुण वाला है, क्योंकि उस में साम भी सम्मिलित है। भेद में तीन गुण हैं, साम दान भी इस में होते हैं। दण्ड में चार गुण होते हैं। इसमें साम, दान और भेद भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार इन उपायों का प्रयोग उनही राजाओं पर किया जा सकता है, जो चढ़ाई करने योग्य राजा से मिल कर उसके पास पड़े हों जब ये अपनी भूमि में स्थित हों तभी उन उपायों के प्रयोगों का समय होता है। जब ये अपनी २ भूमि में पड़े हों तो इनसे किसी एक के पास उत्तम २ वस्तु परिचित दूतों के द्वारा लगातार भेजता रहे ॥ ६७-७५ ॥

त एनं संधौ परहिंसायां वा योजयेयुः ॥ ७६ ॥ अप्रतिपद्यमानं कृतो नः
संधिरित्यावेदयेयुः ॥ ७७ ॥ तमितरेषामुभयवेतनाः संक्रामयेयुः ॥ ७८ ॥
अयं वो राजा दुष्ट इति ॥ ७९ ॥ यस्य वा यस्माद्भयं वैरं द्वेषो वा तं तस्माद्भे-
दयेयुः ॥ ८० ॥ अयं ते शत्रुणा संघत्ते ॥ ८१ ॥ पुरा त्वामतिसंघत्ते क्षिप्रतरं
संधीयस्व ॥ ८२ ॥ निग्रहे चास्य प्रयतस्वेति ॥ ८३ ॥

ये इस राजा को सन्धि करने या अन्य विरोधी राजा के वध के लिए उत्तेजित करें। यदि इसने सन्धि करना स्वीकार न भी किया हो-तो भी ये दूत सन्धि हो जाना प्रसिद्ध कर दें। अन्य गुप्तचर इस समाचार को अन्य राजाओं के पास ले जावें और उन्हें जतावे, कि यह राजा तो तुम से विरुद्ध हो गया है। जिस राजा का जिस राजा को भय, द्वेष और वैर हो, उनका परस्पर भेद कराया जावे, कि यह तुम्हारे शत्रु सन्धि कर रहा है। यदि इनकी सन्धि हो गई-तो यह तुमको दवा देगा, इस से तुम शीघ्र उससे [विजेता] से सन्धि करो और इस दुष्ट राजा के निग्रह में सावधान हो जाओ ॥ ७६-८२ ॥

आवाहविवाहाभ्यां वा कृष्वा संयोगमसंयुक्तान्भेदयेत् ॥ ८४ ॥ सामन्ता-
दधिकतत्कुलीनावरुद्धैश्चैषां राज्यान्निर्घातयेत् ॥ ८५ ॥ सार्धत्रजाटवीर्वा, दण्डं

वाभिसृतं, परस्परापाश्रयाश्रयां जातिसङ्घाशिष्ठद्रेषु प्रहरेयुः ॥ ८६ ॥ गूढाश्चाग्निरस-
शस्त्रेण ॥ ८७ ॥

इसी तरह उसकी कन्या लेकर या अपनी कन्या देकर उससे सम्बन्ध गांठ लेवे और जिनका सम्बन्ध नहीं हुआ है, उनमें फूट डलवा देवे। इसी तरह पड़ोसी सामन्त, वनचर भील राजाओं के कुल में उत्पन्न और अपने पास रोके हुए वंश घरों से इनके राज्यों को हानि पहुंचावे। व्यापार के बोझे ढोहने वाले पशु, अन्य गाय भैंस, द्रव्यवन हस्तीवन और रक्तक सेना को भी नष्ट कराके। इन लोगों के जाति वंशज, एक दूसरे के शत्रु होकर परस्पर प्रहार करते रहे, यह ढंग स्वीकार करे। गुप्तचर, अग्नि विष और शस्त्र से मारने के दाव में लगे रहें ॥ ८४-८७ ॥

वित्तंसगिलवचारीन्योगैराचरितैः शठः ।

घातयेत्परमिश्रायां विश्वासेनामिषेण च ॥ ८८ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे दूष्यशत्रुसंयुक्ताः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

आदितः सप्तविंशशतः ॥ १२७ ॥

परमिश्र अर्थात् मित्र और शत्रु द्वारा मिल कर खड़ी की हुई आपत्ति में गुप्त प्रयोग करने वाला विजेता, पक्षियों के विश्वास के जाल या मांस के खण्ड के समान प्रयोग किये हुए प्रच्छन्न उपायों द्वारा इन विरोधी राजाओं को भी विश्वास देकर या मांस की तरह कुछ भेंट देकर वश में करे। (शिकारी पक्षी को पकड़ने को मांस के टुकड़े रखे होते हैं।) ॥ ८८ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म आधिकरण में दुष्ट शत्रु और दुष्ट प्रजाजन के प्रतीकार के उपायों के वर्णन का छठा अध्याय समाप्त हुआ ।



सातवां अध्याय

१४५-१४६वां प्रकरण

अर्थानर्थ संशययुक्ताः तासामुपाय विकल्पजाः सिद्धयः

हिरण्य (सुवर्ण के सिक्के) भूमि आदि अर्थ, शरीर आदि का नाश अनर्थ, इन दोनों के विषय में संदेह को संशय कहते हैं। इनसे युक्त आपत्तियों तथा उनके प्रतीकार का इस प्रकरण में वर्णन किया जावेगा।

कामादिरुत्सेकः स्वाः प्रकृतीः कोपयति ॥ १ ॥ अपनयो वाह्याः ॥ २ ॥
तदुभयमासुरी वृत्तिः ॥ ३ ॥ स्वजनविकारः कोपः परवृद्धिहेतुष्यापदर्थोऽनर्थः
संशय इति ॥ ४ ॥ योऽर्थः शत्रुवृद्धिमप्राप्तः करोति, प्राप्तः प्रत्यादेयः परेषां
भवति, प्राप्यमाणो वा क्षयव्ययोदयो भवति, भवत्यापदर्थः ॥ ५ ॥

राजा में जब काम क्रोध का अधिक आविर्भाव हो जाता है, तब अपने अमात्य
आदि अभ्यन्तर प्रकृतिजन कुपित हो उठते हैं। नीति विरुद्ध चलने से बाह्य प्रकृति अन्त-
पाल आदि कुपित हो जाते हैं, इसलिए, काम आदि दोष और अपनय इन दोनों को
आसुरी वृत्ति कहते हैं। अपने स्वजनों के भाव बदलने को कोप कहते हैं, जिससे शत्रु की
वृद्धि होने से अपने लिए आपत्ति खड़ी हो जाती है। यह आपत्ति अर्थ, अनर्थ और संशय
रूप से तीन प्रकार की होती है। जो स्वार्थ, प्राप्त न होने पर शत्रु की वृद्धि करता है या
प्राप्त होने पर शत्रु द्वारा लौटा लिया जाता है। तथा जो प्राप्त होकर भी जन क्षय और
धन व्यय का कारण बन जाता है, वह आपत्ति का कारण होता है ॥१-५॥

यथा—सामन्तानामामिषभूतः, सामन्तव्यसनजो लाभः, शत्रुप्रार्थितो
वा स्वभावाधिगम्यो लाभः, पश्चात्कोपेन पार्ष्णिग्राहेण विगृहीतः पुरस्ताद्भ्रातो,
मित्रोच्छेदेन संधिव्यतिक्रमेण वा मण्डलविरुद्धो लाभ इत्यापदर्थः ॥ ६ ॥
स्वतः पुरतो वा भयोत्पत्तिरित्यनर्थः ॥ ७ ॥ तयोरर्थो न वेति, अनर्थो न वेति,
अर्थोऽनर्थ इति, अनर्थोऽर्थ इति संशयः ॥ ८ ॥

अनेक सामन्तों के प्राप्त करने योग्य, लाभ तथा सामन्तों के व्यसन से प्राप्त किया
हुआ लाभ, अपने अधिकारानुसार प्राप्त हुआ परन्तु शत्रु द्वारा चाहा हुआ लाभ, पीछे
पार्ष्णि ग्राह के उपद्रव करने पर भी चढ़ाई किए हुए राजा से प्राप्त लाभ, मित्र को
उखाड़ कर या सन्धि तोड़कर राज मंडल के विरुद्ध प्राप्त किया हुआ लाभ विपत्ति
का कारण बन जाता है। इसी लाभ को अर्थशास्त्र में अर्थ कहते हैं। अपने या परायों
से जो विपत्ति की आशङ्का खड़ी हो जावे, इसे अनर्थ कहते हैं। इन अर्थ और अनर्थ
में कोई लाभ होगा या नहीं। कोई अनर्थ [बुराई] होगा या नहीं। यह अर्थ है या अनर्थ
है या अनर्थ है या अर्थ है—इस प्रकार के संदेह को संशय कहते हैं ॥ ६-८ ॥

शत्रुमित्रमुत्साहयितुमर्थो न वेति संशयः ॥ ९ ॥ शत्रुवलमर्थमानाभ्या-
मावाहयितुमनर्थो न वेति संशयः ॥ १० ॥ वलवत्सामन्तां भूमिमादातुमर्थो-

ऽनर्थ इति संशयः ॥ ११ ॥ ज्यायसा सम्भूययानमनर्थोऽर्थ इति संशयः
॥ १२ ॥ तेषामर्थसंशयमुपगच्छेत् ॥ १३ ॥

शत्रु के मित्र के उत्तेजित करने में हमको लाभ होगा या नहीं यह एक संशय है। शत्रु की सेना को धन और मान से अपनी ओर मिलाने में अनर्थ होगा या नहीं यह दूसरा संशय है। बलवान् सामन्त की भूमि लेने में स्वार्थ सिद्धि होगी या अनर्थ होगा-यह तीसरा संशय है-बलवान् राजा के साथ मिल अमुक राजा पर चढ़ाई करने से अनर्थ होगा या लाभ-इस प्रकार चौथा संशय होता है। इन में जो स्वार्थ सिद्धि का संशय हो और अनर्थ की जिसमें सम्भावना भी न हो-उस संशय को स्वीकार करना चाहिए ॥ ६-१३ ॥

अर्थोऽर्थानुबन्धः ॥ १४ ॥ अर्थो निरनुबन्धः ॥ १५ ॥ अर्थोऽनर्थानुबन्धः ॥ १६ ॥ अनर्थोऽर्थानुबन्धः ॥ १७ ॥ अनर्थो निरनुबन्धः ॥ १८ ॥
अनर्थोऽनर्थानुबन्ध इत्यनुबन्धपङ्क्तिः ॥ १९ ॥

अर्थ का अर्थ के साथ अनुबन्ध होना अर्थात् एक स्वार्थ का दूसरे स्वार्थ से गुथ जाना अर्थ का अर्थानुबन्ध होता है। अर्थ का किसी भी अन्य स्वार्थ के साथ सम्पर्क न होना दूसरा निरनुबन्ध अर्थ होता है। अर्थ का अनर्थ (बुराई) से भी संयोग होता है-इसे अनर्थानुबन्ध कहते हैं, कोई २ अनर्थ भी अर्थ के साथ बंधा होता है-इसे अर्थानुबन्ध अनर्थ कहते हैं। कोई अनर्थ, अर्थ से बिल्कुल रहित होता है, इसे निरनुबन्ध अनर्थ माना है। कोई अनर्थ अन्य अनर्थ से जुड़ा होता है-यह अनर्थानुबन्धी अनर्थ कहाता है। इस प्रकार अर्थ अनर्थ के छः वर्ग होते हैं ॥ १४-१९ ॥

शत्रुमुत्पाठ्य पार्ष्णिग्राहादानमर्थोऽर्थानुबन्धः ॥ २० ॥ उदासीनस्य दण्डानुग्रहः फलेन अर्थो निरनुबन्धः ॥ २१ ॥ परस्यान्तरुच्छेदनर्थोऽनर्थानुबन्धः ॥ २२ ॥ शत्रुप्रतिवेशस्यानुग्रहः कोशदण्डाभ्यामनर्थो निरनुबन्धः ॥ २३ ॥ हीनशक्तिमुत्साह्य निवृत्तिरनर्थो निरनुबन्धः ॥ २४ ॥ ज्यायांसमुत्थाप्य निवृत्तिरनर्थोऽनर्थानुबन्धः ॥ २५ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ २६ ॥ इति कार्याविस्थापनम् ॥ २७ ॥

शत्रु को उखाड़ कर पीछे उपद्रव करने वाले पार्ष्णि ग्राह को भी जा दबोचना अर्थानुबन्धी अर्थ होता है। उदासीन राजा से धन लेकर उसकी सहायता करना निरनु

बन्ध अर्थ है-इसमें प्रथम धन का लाभ हो गया-पीछे कोई फल या अनर्थ नहीं होता । शत्रु के अन्तर्धि (बीच के राज) का उच्छेद कर देना अनर्थानुबन्धी अर्थ है-क्योंकि इस में मूल शत्रु के अधिक भड़क जाने रूप अनर्थ की सम्भावना है । शत्रु के पड़ोसी राजा की सेना और कोश से सहायता करना अर्थानुबन्धी अनर्थ है, क्योंकि पीछे कार्य सिद्ध होता है, प्रथम कोश सेना का व्यय अनर्थ है । हीन शक्ति राजा को शत्रु से भिड़ाकर आप का अलग हो जाना-केवल अनर्थ का उत्पादक है इस में कोई फल नहीं है । इसे निरनुबन्ध अनर्थ माना है । बलवान् राजा को शत्रु से लड़ने को भड़का कर अपने आप का अलग हो जाना-अनर्थानुबन्धी अनर्थ का उदाहरण है । इस अनुबन्ध पदवर्ग में स्वीकार करने के लिए उत्तर की अपेक्षा पूर्व का श्रेष्ठ है । यहां तक अर्थ अनर्थ रूप कामों के स्वरूप का वर्णन किया गया ॥ २०-२७ ॥

समन्ततो युगपदर्थोत्पत्तिः समन्ततोऽर्थापद्भवति ॥ २८ ॥ सैव पार्ष्णि-
ग्राहविगृहीता समन्ततोऽर्थसंशयापद्भवति ॥ २९ ॥ तयोर्मित्राक्रन्दोपग्रहा-
त्सिद्धिः ॥ ३० ॥ समन्ततः शत्रुभ्यो भयोत्पत्तिः समन्ततोऽनर्थापद्भवति
॥ ३१ ॥ सैव मित्रविगृहीता समन्ततोऽनर्थसंशयापद्भवति ॥ ३२ ॥ तयोश्चला-
मित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः ॥ ३३ ॥ परमिश्राप्रतीकारो वा ॥ ३४ ॥

सब ओर से एक दम कार्य सिद्धि होने लगे तो उसे समन्ततोऽर्थापत् कहते हैं । यदि इसी समन्ततोऽर्थापत् में पार्ष्णिग्राह उपद्रव खड़ा करदे-तो समन्ततोऽर्थ संशयापत् कहते हैं । इन दोनों अर्थापत् में आगे के मित्र और पीछे के मित्र आक्रन्द की सहायता से सिद्धि होती है । सब ओर से शत्रु से भय की उत्पत्ति होना-समन्ततोऽनर्थापत् होती है । यदि इसी में मित्र भगड़ बैठे-तो समन्ततोऽनर्थ संशयापत् हो जाता है । पूर्व में अनर्थ का निश्चय और इसमें अनर्थ का संशय होता है, इस में चल शत्रु और आक्रन्द की सहायता से सिद्धि होती है तथा परमिश्राप्रापत्ति का जो प्रतीकार है, वह यहां भी समझ लेना चाहिए ॥ २८-३४ ॥

इतो लाभ इतरतो लाभ इत्युभयतोऽर्थापद्भवति ॥ ३५ ॥ तस्यां समन्ततो
ऽर्थायां च लाभगुणयुक्तमर्थमादातुं यायात् ॥ ३६ ॥ तुल्ये लाभगुणे प्रधान-
मासन्नमनतिपातिनमूनो वा येन भवेत्तमादातुं यायात् ॥ ३७ ॥ इतोऽनर्थ
इतरतोऽनर्थ इत्युभयतोऽनर्थापत् ॥ ३८ ॥ तस्यां समन्ततोऽनर्थायां च
मित्रेभ्यः सिद्धिं लिप्सेत् ॥ ३९ ॥ मित्राभावे प्रकृतीनां लघीयस्यकतोऽनर्था

साधयेत् ॥ ४० ॥ उभयतोऽनर्थान्ज्यायस्या, समन्ततोऽनर्था मूलेन प्रतिकुर्यात्
॥ ४१ ॥ अशक्ये समुत्सृज्यापगच्छेत् ॥ ४२ ॥ दृष्टा हि जीवतः पुनरावृत्ति
र्यथा सुपात्रोदयनाभ्याम् ॥ ४३ ॥

इधर से भी लाभ और उधर से भी लाभ-इसे उभयतोऽर्थापत् कहते हैं। इस प्रकार जब चारों ओर से लाभ ही लाभ दिखाई दे, तो लाभ से युक्त अपने स्वार्थ की सिद्धि के निमित्त विजेता चढ़ाई करदे। यदि दो और समान लाभ की सम्भावना हो-तो प्रधान, समीपवर्ती, नहीं नष्ट होने वाला और अपनी न्यूनता को पूर्ण करने वाला हो-उसे ग्रहण करने को विजयेच्छुक राजा आक्रमण करदे। इधर भी अनर्थ उधर भी अनर्थ इस प्रकार सब ओर से अनर्थ की सम्भावना होने पर अनर्थापत् कहाती है। जब सब ओर से अनर्थ की सम्भावना हो-तो अपने मित्रों की सहायता से इन आपत्तियों का प्रतीकार करे। यदि मित्र सहायता न दे सके-तो अपने छोटे २ मोटे अमात्य आदि प्रकृति को सौंपकर एक अनर्थ की निवृत्ति करे। यदि दो और अनर्थ उठ रहे हों-तो मन्त्री आदि ज्येष्ठ प्रकृति को उनकी धरोहर में रख देवे। यदि सब ओर से अनर्थ गिर रहे हों-तो अपनी राजधानी का सब कुछ सौंप देवे। इतने पर भी यदि आपत्ति न टले तो राजधानी छोड़कर चल देवे। यदि जीवन रहेगा-तो फिर भी सुपात्रा (नल) और उदयन की भांति भी राज्य की प्राप्ति हो सकेगी ॥३५-४३॥

इतो लाभ इतरतो राज्याभिमर्श इत्युभयतोऽर्थानर्थापद्भवति ॥ ४४ ॥
तस्यामनर्थसाधको योऽर्थस्तमादातुं यायात् ॥ ४५ ॥ अन्यथा हि राज्यभिमर्शं
वारयेत् ॥ ४६ ॥ एतया समन्ततोऽर्थानर्थापद्व्याख्याता ॥ ४७ ॥ इतोऽनर्थ
इतरतोऽर्थसंशय इत्युभयतोऽनर्थार्थसंशया ॥ ४८ ॥ तस्यां पूर्वमनर्थं साधयेत्
तत्सिद्धावर्थसंशयम् ॥ ४९ ॥ एतया समन्ततोऽनर्थार्थसंशया व्याख्याता ॥ ५० ॥
इतोऽर्थ इतरतोऽनर्थसंशय इत्युभयतोऽनर्थार्थसंशयापत् ॥ ५१ ॥ एतया सम-
न्ततोऽर्थानर्थसंशया व्याख्याता ॥ ५२ ॥ तस्यां पूर्वा पूर्वा प्रकृतीनामनर्थ-
संशयान्मोक्षयितुं यतेत ॥ ५३ ॥

एक ओर से भूमि लाभ और दूसरी ओर से राज्य पर आक्रमण होना, अर्थान-
र्थात् होती है। इसमें अनर्थ को हटाने वाला जो अर्थ हो उसका ग्रहण करे। यदि ऐसा
अर्थ न होवे-तो राज्य पर होने वाले आक्रमण का प्रतीकार करे। इसी प्रकार सब ओर
होने वाली समन्तोऽर्थानर्थापत् का स्वरूप भी समझ लेना चाहिए। एक ओर से अनर्थ

और दूसरी ओर से अर्थ (मतलब) सिद्धि का संक्षेप होना दो ओर से अनर्थार्थसंशयापत् कहाता है। इसमें प्रथम अनर्थ का प्रतीकार करे-इस प्रतीकार होने पर अर्थ संशय की ओर चले। इसी प्रकार समन्तोऽनर्थार्थसंशयापत् की व्याख्या जान लेनी उचित है। इधर से अर्थ की सिद्धि और दूसरी ओर से अनर्थ का संशय यह दो ओर से अनर्थार्थसंशयापत् कहाता है-इसी तरह सब ओर से अर्थ और दूसरी ओर से अनर्थ की आंशङ्का समन्तोऽनर्थार्थसंशयापत् होती है। इनमें पूर्व पूर्व की प्रकृति, के अनर्थ से छुटकारा पाने का प्रयत्न करे। (स्वामी, मन्त्री, जनपद आदि प्रकृति होती हैं) ॥४४-५३॥

श्रेयो हि मित्रमनर्थसंशये तिष्ठन्न दण्डः ॥ ५४ ॥ दण्डो वा न कोश इति ॥ ५५ ॥ समग्रमोक्षणाभावे प्रकृतोनामवयवान्मोक्षयितुं यतेत ॥ ५६ ॥ तत्र पुरुषप्रकृतीनां च बहुलमनुरक्तं वा तीक्ष्णलुब्धवर्जम् ॥ ५७ ॥ द्रव्यप्रकृतीनां सारं महोपकारं वा ॥ ५८ ॥ संधिनासनेन द्वैधीभावेन वा लघूनि विपर्ययैः गुरुणि ॥ ५९ ॥

यदि मित्र की ओर से अनर्थ संशय हो तो प्रतीक्षा की जा सकती है, परन्तु सेना का अनर्थ संशय ठीक नहीं है। दण्ड की ही तरह कोश का अनर्थ भी उपेक्षा के योग्य नहीं है। यदि समस्त प्रकृतियों के अनर्थों के एकदम हटाना अशक्य हो तो उनको क्रम से दूर करे। इनमें जो पुरुष प्रकृति से अनर्थ हो रहा हो उसमें तीक्ष्ण और लालची पुरुषों को छोड़कर अपने बहुत से अनुरक्त पुरुषों द्वारा अनर्थ के नाश का उपाय करे। द्रव्य प्रकृतियों में जो अधिक मूल्यवान् और आवश्यक हों-उनको नष्ट होने से बचावे। सन्धि, आसन और द्वैधी भाव द्वारा छोटे २ मोटे पदार्थों की रक्षा करे और महत्वशाली पदार्थों की विग्रह यान द्वारा रक्षा करे ॥५४-५९॥

क्षयस्थानवृद्धीनां चोत्तरोत्तरं लिप्सेत ॥ ६० ॥ प्रातिलोभ्येन वा क्षयादीनामायत्यां विशेषं पश्येत् ॥ ६१ ॥ इति देशवस्थापनम् ॥ ६२ ॥ एतेन यात्रादिमध्यान्ते-ष्वर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता ॥ ६३ ॥ निरन्तरयोगित्वाच्चार्यानर्थसंशयानां यात्रादावर्थः श्रेयानुपसंप्राप्तुं पाष्णिग्राहासारप्रतिघातक्षयज्यप्रशास-प्रत्यादेयमूलरक्षणेषु च भवति ॥ ६४ ॥

शक्ति और सिद्धि का अपचय रूप क्षय, उनका उसी रूप में ठहरना स्थान, और उनके उपचय को वृद्धि कहते हैं। क्षय से स्थिति और स्थिति से वृद्धि श्रेष्ठ मानी गई है। यदि भविष्य में कोई विशेष आशा हो-तो वृद्धि की अपेक्षा क्षय भी स्वीकार

किया जा सकता है । यहां तक देशा निमित्तक आपत्तियों का विवेचन दिया गया । इसी तरह यात्रा (चढ़ाई) के आदि मध्य अन्त में होने वाली अर्थ, अनर्थ और संशय की प्राप्ति की व्याख्या समझ लेनी चाहिए । यदि यात्रा के आदि अर्थ, अनर्थ और इनके संशय की एक साथ सम्भावना हो तो इनमें अर्थ का प्रथम प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है । पृष्ठस्थित शत्रु और चढ़ाई करने योग्य राजा की मित्र सेना का नाशक होने से अर्थ की प्राप्ति उत्तम है । इसमें शत्रु के जन क्षय, धन व्यय अपने प्रवास से वचना, प्रत्यादेय लाभ और राजधानी की रक्षा का प्राधान्य होता है । अर्थात् अर्थ में सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ६०-६४ ॥

तथानर्थः संशयो वा स्वभूमिष्ठस्य विषहो भवति ॥ ६५ ॥ एतेन यात्रामध्येऽर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता ॥ ६६ ॥ यात्रान्ते तु कर्शनीयमुच्छेदनीयं वा कर्शयित्वोच्छिद्य वार्यः श्रेयानुपसंप्राप्तुं नानर्थः संशयो वा परावाधभयात् ॥ ६७ ॥ सामवायिकानामपुरोगस्य तु यात्रामध्यान्तगोऽनर्थः संशयो वा श्रेयानुपसंप्राप्तुमनुबन्धगामित्वात् ॥ ६८ ॥

यदि यात्रा के आदि में अनर्थ या इसका संशय खड़ा हो जावे-तो अपनी भूमि में स्थित राजा इनका सहन कर सकता है । इसी तरह यात्रा (चढ़ाई) के मध्य और अन्त में होने वाले अर्थ अनर्थ और संशयों के प्राप्ति और प्रतीकार की चेष्टा करनी चाहिए । यात्रादि अन्त में दुर्बल बनाने योग्य या उच्छेद करने योग्य शत्रु को दुर्बल बनाकर या उसका उच्छेद करके अर्थ प्राप्ति कर लेना श्रेयस्कर है, शत्रु की वाधा के भय से अनर्थ या संशय में कभी न पड़े । यहां तक इकट्ठे हुए राजाओं के ध्यान से विवेचन किया गया है, परन्तु यदि इन में अप्रधान राजा पर आक्रमण किया गया हो-तो यात्रा (चढ़ाई) के मध्य और अन्त में होने वाले अनर्थ और संशय की प्राप्ति भी की जा सकती है, क्योंकि उसमें अर्थ का अनुबन्ध रहता है ॥ ६५-६८ ॥

अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः ॥ ६९ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ ७० ॥ अनर्थोऽधर्मः शोक इत्यनर्थत्रिवर्गः ॥ ७१ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयान्प्रतिकर्तुम् ॥ ७२ ॥ अर्थोऽनर्थ इति धर्मोऽधर्म इति कामः शोक इति संशयत्रिवर्गः ॥ ७३ ॥ तस्योत्तरपक्षसिद्धौ पूर्वपक्षः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ ७४ ॥ इति कालावस्थापनम् ॥ ७५ ॥ इत्यापदः ॥ ७६ ॥

अर्थ, धर्म और काम-ये तीन त्रिवर्ग कहाते हैं। इसमें कान से धर्म और अर्थ की प्राप्ति करना उत्तम है। अनर्थ-अधर्म और शोक-ये तीन अनर्थ त्रिवर्ग कहाता है। इनमें पूर्व २ का प्रतीकार श्रेयस्कर है। यह अर्थ है या अनर्थ, यह धर्म है या अधर्म या यह काम है या शोक-इस प्रकार के त्रिवर्ग को संशय त्रिवर्ग कहते हैं। इसमें अनर्थ, अधर्म और शोक की अपेक्षा अर्थ, धर्म और काम का प्राप्त करना उत्तम है। यात्रा के आदि मध्य और मना में होने से ये आपत्तियों का कालावस्थापन कहाता है। यहां तक सारी आपत्तियों का वर्णन हो चुका ॥ ६६-७६ ॥

तासां सिद्धिः—पुत्रभ्रातृबन्धुषु सामदानाभ्यां सिद्धिरनुरूपा, पौरजानपद-दण्डमुख्येषु दानभेदाभ्यां सामन्ताटविकेषु भेददण्डाभ्याम् ॥७७॥ एषानुलोमा विपर्यये प्रतिलोमा ॥ ७८ ॥ मित्रामित्रेषु व्यामिश्रा सिद्धिः ॥ ७९ ॥ परस्पर-साधका ह्युपायाः ॥ ८० ॥ शत्रोः शङ्कितामात्येषु सान्त्वं प्रयुक्तं शेषप्रयोगं निवर्तयति ॥ ८१ ॥ दूष्यामात्येषु दानं, सङ्घातेषु भेदः, शक्तिमत्सु दण्ड इति ॥ ८२ ॥

अब आपत्तियों के प्रतीकार के उपायों का निरूपण किया जाता है। पुत्र भाई और बन्धुओं में सामदान के प्रयोग से अनुकूल सिद्धि होती है। पुरवासी, जनपद पाती, और सेना के मुख्य पुरुषों में दान और भेद से सिद्धि होती है। सामन्त और आटविक [शत्रु और वन के राजा] के विषय में वेद और दंड का प्रयोग करना उचित है। नियमानुसार होने वाला इनका प्रयोग अनुलोभ और विपरीत प्रतिलोभ कहाता है। मित्र और शत्रु के विषय में मिले हुए उपायों का प्रयोग करना उचित है। उपाय तो एक दूसरे के साधक है, इससे इनका मिला हुआ ही प्रयोग होना चाहिए। शत्रु के शङ्कित अमात्यों में साम का प्रयोग अन्य उपायों के प्रयोग की अपेक्षा नहीं रखता है अर्थात् इस समय साम से ही सिद्धि हो जाती है। जो अमात्य शत्रु राजा पर विगड़ रहे हों-उन या दान, संगठित विरोधी राजाओं में भेद और शक्ति शाली राजाओं में [युद्ध] दंड का प्रयोग करे ॥ ७५-८२ ॥

गुरुलाघवयोगाच्चापदां नियोगविकल्पसमुच्चया भवन्ति ॥ ८३ ॥ अनेनैवोपायेन नान्येनेति नियोगः ॥ ८४ ॥ अनेन वान्येन चेति विकल्पः ॥ ८५ ॥ अनेनान्येन चेति समुच्चयः ॥ ८६ ॥ तेषामेकयोगाश्चत्वारस्त्रियोगाश्च ॥ ८७ ॥ द्वियोगाः षट् ॥ ८८ ॥ एकश्चतुर्योग इति पञ्चदशोपायाः ॥ ८९ ॥

तावन्तः प्रतिलोमाः ॥ ६० ॥ तेषामेकेनोपायेन सिद्धिरेकसिद्धिः ॥ ६१ ॥
 द्वाभ्यां द्विसिद्धिः ॥ ६२ ॥ त्रिभिस्त्रिसिद्धिः ॥ ६३ ॥ चतुर्भिश्चतुःसिद्धिरिति ॥ ६४ ॥
 धर्ममूलत्वात्कामफलत्वाच्चार्थस्य धर्मार्थकामानुबन्धा यार्थस्य सिद्धिः सा सर्वार्थ-
 सिद्धिः ॥ ६५ ॥ इति सिद्धिः ॥ ६६ ॥

आपत्ति के गुरु (भारी) लघु (हलकी) योग से आपत्तियों के भी नियोग, विकल्प और समुच्चय भेद हो जाते हैं । इसी उपाय से सिद्धि होगी अन्य से नहीं इस निश्चय को नियोग कहते हैं । इससे होगी या अन्य से हो सकेगी इस विमर्श को विकल्प और इस उपाय और इसके साथ दूसरे उपाय के प्रयोग से सिद्धि होगी इसको समुच्चय कहते हैं । इन साम आदि उपायों को अकेले, दो मिलाकर तीन मिलाकर या चारों का इकट्ठा ही प्रयोग किया जा सकता है । साम, दान भेद और दण्ड का पृथक् २ प्रयोग करना, और तीनों का मिलाकर प्रयोग करना चार तरह का होता है । इस तरह इनका प्रयोग आठ तरह का हुआ । दो २ को मिलाकर छः प्रकार से प्रयोग हो जाता है-इस तरह चौदह हुए और चारों का एक दम प्रयोग एक होता है-इस तरह सब मिलाकर पन्द्रह तरह से इन का प्रयोग होता है । उतने अनुलोम हुए और इतने ही, अर्थात् पन्द्रह प्रतिलोम प्रयोग होंगे । इनमें एक के प्रयोग से जो सिद्धि हो-वह एक सिद्ध दो के प्रयोग से द्विसिद्धि, तीन के प्रयोग से त्रिसिद्धि और चारों के प्रयोग से चतुःसिद्धि कहाती है । धर्म और काम की साधक होने से अर्थ सिद्धि तथा अर्थ में धर्म और काम के अनुबन्धित होने से अर्थ सिद्धि ही सर्वार्थ सिद्धि कहाती है । यहां तक सारे उपायों की सिद्धि का वर्णन किया गया है ॥ ८३-६६ ॥

दैवादग्निरुदकं व्याधिः प्रमारो विद्रवो दुर्भिक्षमासुरी सृष्टिरित्यापदः
 ॥ ६७ ॥ तासां दैवतब्राह्मणप्रणिपाततः सिद्धिः ॥ ६८ ॥

पूर्व कर्मानुसार होने वाली आपत्तियां भी अनेक हैं । अग्नि, जल, व्याधि, महामारी, राष्ट्रविसत्र, दुर्भिक्ष और आसुरी वृष्टि-ये दैवी आपत्तियां होती हैं । इनमें देवता और ब्राह्मण आदि की पूजा से शान्ति होती है ॥ ६७-६८ ॥

अवृष्टिरतिवृष्टिर्वा सृष्टिर्वा यासुरी भवेत् ।

तस्यामार्थवर्णं कर्म सिद्धारम्भाश्च सिद्धयः ॥ ६९ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे अर्थानर्थसंशययुक्तास्तासामुपायविकल्पजाः

सिद्धयश्च सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितो ऽष्टाविंशशतः ॥ १२८ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य अभियास्यत्कर्म

नवममधिकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

अवृष्टि, अतिवृष्टि और आसुरीसृष्टि (चूहे आदि) की उत्पत्ति की शान्ति के लिए अथर्व वेद में कही हुई विधि का प्रयोग करना चाहिए तथा सिद्धि पुरुषों के द्वारा अन्य तन्त्रक्रिया भी इसकी शान्ति कर सकती हैं ॥६६॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत अभियास्यत्कर्म अधिकरण में अर्थ अनर्थ और संशय और उनके प्रतीकार के उपायों के वर्णन का सातवां अध्याय समाप्त हुआ ।



सांग्रामिकं दशमधिकरणम्



प्रथम अध्याय

१४७वां प्रकरण

स्कन्धावारनिवेशः

इस प्रकरण में स्कन्धावार (सेना के पड़ाव या छावनी) को किस तरह डालना चाहिए-इस विषय का वर्णन किया जावेगा ।

वास्तुकप्रशस्ते वास्तुनि नायकवर्धकिमौहूर्तिकाः स्कन्धावारं वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा भूमिवशेन वा चतुर्द्वारं षट्पथं नवसंस्थानं मापयेयुः ॥ १ ॥ खातवप्रसालद्वाराट्टालकसंपन्नं भये स्थाने च ॥ २ ॥ मध्यमस्योत्तरे नवभागे राजवास्तुकं धनुःशतायाममर्धविस्तारं, पश्चिमार्धे तस्यान्तःपुरमन्तर्वशिकसैन्यं चान्ते निविशेत् ॥ ३ ॥

गृह निर्माण की विद्या में कुशल पुरुषों द्वारा प्रशसित प्रदेश में सेनापति, कारीगर और मुहूर्त देखने वाला ज्योतिषी मिलकर गोल, लम्बा या चोकोर जैसा जिस भूमि में बन सके चार द्वार वाला, छः मार्गों से युक्त, नौ सुन्दर स्थानों से सुशोभित, स्कन्धावार (सेना निवास) के स्थान को नापे । खाई, परकोटा, शाला विशालद्वार, अट्टालिका से युक्त, स्कन्धावार जब बनाया जावे, जब शत्रु का भय खड़ा हो गया हो स्कन्धावार के मध्य के उत्तर में राजमहल सौधनुष लम्बा और पचास धनुष चौड़ा बनाया जावे, जिसके पश्चिम की ओर निवास की रचना करावे, इसके अन्त में सेना के पड़े रहने का सुन्दर स्थान होवे ॥१-३॥

पुरस्तादुपस्थानं दक्षिणतः कोशशासनकार्यकरणानि वामतो राजोपवाहानां हस्त्यश्वरथानां स्थानम् ॥ ४ ॥ अतो धनुःशतान्तराश्वत्वारः शक्रटमेथीप्रततिस्तम्भसालपरिक्षेपाः ॥ ५ ॥ प्रथमे पुरस्तान्मन्त्रिपुरोहितौ, दक्षिणतः कोष्ठागारं महानसं च, वामतः कुप्यायुधागारम् ॥ ६ ॥ द्वितीये मौलभृतानां स्थानमश्वरथानां

सेनापतेश्च ॥ ७ ॥ तृतीये हस्तिनः श्रेण्यः प्रशास्ता च ॥ ८ ॥ चतुर्थे विष्टि-
नार्यको मित्रामित्राटवीवलं स्वपुरुषाधिष्ठितम् ॥ ९ ॥ वणिजो रूपाजीवाश्चानु-
महापथम् ॥ १० ॥ बाह्यतो लुब्धकश्चगणितः सतूर्याग्रयः गूढाश्चारक्षाः ॥ ११ ॥

राजगृह के सन्मुख ही राजा के मिलने का सभा भवन हो और दक्षिण की ओर कोश, शासन करण (दरवार) और कार्यकरण (कचहरी) बनानी चाहिए। बांयी ओर राज की सवारी के हाथी अश्व और रथों की शालाएं बनवायी जावें इससे सौ २ धनुष की दूरी पर चार बाढ़ें सी बनवाना उचित हैं, जिसमें पहली बाढ़ गाड़ियों के अनुकूल होने से शकट, दूसरी बड़ी २ गांठेदार टहनियों की मेथी प्रतति, तीसरी लकड़ी के साम्य और चौथी दृढ़ परकोटे के दृढ़ की होनी चाहिए। ये सौ २ धनुष के फासलेपर बनी हुई चहार दीवार राजमहल की रक्षा के निमित्त मानी गई हैं। प्रथम बाढ़ में सामने की ओर मन्त्री और पुरोहित का स्थान होना चाहिए। दक्षिण की ओर भण्डार और रसोई तथा बांयी ओर तांबा लकड़ी आदि का सामान और शस्त्रागार होना चाहिए। दूसरी परिधि में मौल भूत आदि सेना का स्थान तथा अश्व, रथ और सेनापति का भवन होना चाहिए। तीसरी परिधि में हाथी, श्रेणीवल और प्रशास्ता [कण्टक शोधनाध्यक्ष] का भवन होना उचित है तथा चौथी पंक्ति में ठेकेपर काम करने वाले कारीगर, सेनापति, तथा अपने ही किसी वीर पुरुष के नेतृत्व में चलने वाली शत्रु या मित्र की सेना का निवास होना चाहिए। व्यापारी और वेश्याओं के बड़ी सड़क के साथ ही निवासगृह होने चाहिए। शिकारी कुत्तों के रखने वाले तथा अग्नि और तुरी बाजे के संकेत से शत्रु के आने की सूचना के देने वाले गूढ़ रक्षक पुरुषों को बाहर की परिधि में बसाना चाहिए ॥ ४-११ ॥

शत्रूणामापाते कूपकूटावपातकण्टकिनीश्च स्थापयेत् ॥ १२ ॥ अष्टादश-
वर्गाणामारक्षत्रिपर्यासं कारयेत् ॥ १३ ॥ दिवायामं च कारयेदपसर्पज्ञानार्थम्
॥ १४ ॥ विवादसौरिकसमाजघ्न तवारणं च कारयेत् ॥ १५ ॥ मुद्रारक्षणं च
॥ १६ ॥ सेनानिवृत्तमायुधीयमशासनं शून्यपालोऽनुवर्जनीयात् ॥ १७ ॥

जिस मार्ग से शत्रु के आने की सम्भावना हो, उधर बनावटी कुवे खुदवाकर उन में कांटे लगे तख्ते डलवा देवे। वहां मौल भूत आदि छः प्रकार की सेना और तीन २ अधिकारी त्वदिक, नायक और सेनापति इस प्रकार अष्टारह वर्ग के पुरुषों के पहरे बदलते रहने चाहिए। इससे शत्रु का भय नहीं रहता। यह पहरा रात दिन होना चाहिए,

जिससे शत्रु के गुप्तचरों का भी ज्ञान होता रहे। इन पहरे देने वालों को परस्पर लड़ने, मुरापीने, गोष्ठी करने और जुआ खेलने की विल्कुल मनाही करदी जावे। भीतर आने और बाहर जाने को राजकीय मुहर लगाने की बड़ी पाबन्दी होवे। जो सैनिक अपनी सेना को छोड़कर इधर उधर व्यर्थ घूम रहा हो और उसके पास कोई राजशासन न हो-तो उसे शून्यपाल सूती राजधानी का अर्घ्य वन्धन में डाल देवे ॥१२-१७॥

पुरस्तादध्वनः सम्यक्प्रशास्ता रक्षणानि च ।

यायाद्वर्धकिविष्टिभ्यामुदकानि च कारयेत् ॥ १८ ॥

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे स्कन्धावारनिवेशः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आदित एकोनत्रिंशच्छतः ॥ १२६ ॥

कण्टक शोधनाध्यक्ष (प्रशास्ता) अपनी सेना लेकर राजा के गमन से पूर्व ही कारीगर और मजदूरों को लेकर चला जावे और मार्ग साफ करके उसमें जल का छिड़काव करवा दिया करे ॥१८॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत सांग्रामिक अधिकरण में स्कन्धावार के बसाने की विधि के वर्णन का पहला अध्याय समाप्त हुआ ।



दूसरा अध्याय

१४८-१४९वां प्रकरण

स्कन्धावारप्रमाणं तथा बलव्यसनावस्कन्दकाल रक्षणम् ।

इस प्रकरण में समस्त सेना के सहित राजा का प्रयाण और अमान, अपमान तथा मार्ग के कष्टों से सेना के बचाने के उपायों का वर्णन किया जावेगा ।

ग्रामारण्यानामध्वनि निवेशान् यवसेन्धनोदकवशेन परिसंख्याय स्थाना-
सनगमनकालं च यात्रां यायात् ॥ १ ॥ तत्प्रतीकारद्विगुणं भक्तोपकरणं वाहयेत्
॥२॥ अशक्तो वा सैन्येष्वेव प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ अन्तरेषु वा निचिनुयात् ॥ ४ ॥

गांव और वन के मार्गों में ठहरने के स्थानों पर घास इन्धन और जल के प्रबन्ध को विचारकर अधिक थोड़े दिन ठहरने या चले जाने का काल निश्चित करके यात्रा करे। उस यात्रा (चढ़ाई) में जितना खाने पीने और वस्त्र आदि की आवश्यकता हो, उससे दुगुनी खाने की सामग्री लेकर चले। यदि अधिक सामान ले जानेको गाड़ी न हों-तो थोड़ा २ सामान सैनिकों को ही सौंप देवे या बीच में ठहरने के स्थानों पर संग्रह करा देवे ॥१-४॥

पुरस्तान्नायकः ॥ ५ ॥ मध्ये कलत्रं स्वामी च ॥ ६ ॥ पार्श्वयोरथा
वाहूत्सारः ॥ ७ ॥ चक्रान्तेषु हस्तिनः ॥ ८ ॥ प्रसारवृद्धिर्वा सर्वतः ॥ ९ ॥
वनाजीवः प्रसारः ॥ १० ॥ स्वदेशादन्वायतिर्वीवधः ॥ ११ ॥ मित्रवलमासारः
॥ १२ ॥ कलत्रस्थानमपसारः ॥ १३ ॥ पश्चात् सेनापतिः पर्यायान्निविशेत् ॥ १४ ॥

जब राजा यात्रा करे-उसमें सबसे आगे दश सेनापतियों का अधिकारी
नायक चले, उस सेना के मध्य में रनिवास और राजा को रहना चाहिए। इधर
उधर राजा के पार्श्व में घुड़सवार सेना चले, जो अपनी भुजा के बल से शत्रु के छक्के
छुड़ा देने वाली हो। सेना के पीछे के भाग में हाथियों की सेना होनी चाहिए। सब ओर
से सेना का सामान घास भूसा आदि लेजाया जावे। वन में उत्पन्न होने वाली वस्तु,
प्रसार कहाती हैं। अपने ही देश से लगातार अन्नादि वस्तुओं के आगमन को वीवध कहते
हैं। मित्र बल आसार कहाता है। अन्तपुर (रनिवास) के ठहरने के स्थान को अपसार हैं।
कहते हैं। सबसे पीछे अपनी २ सेना के साथ अपना २ सेनापति चले ॥५-१४॥

पुरस्तात् अभ्याघाते मकरेण यायात्पश्चाच्छकटेन पार्श्वयोर्वज्रेण समन्ततः
सर्वतोभद्रेणैकायने सूच्या ॥ १५ ॥ पथि द्वैधीभावे स्वभूमितो यायात् ॥ १६ ॥
अभूमिष्ठानां हि स्वभूमिष्ठा युद्धे प्रतिलोमा भवन्ति ॥ १७ ॥ योजनमधमा
अध्यर्धं मध्यमा द्वियोजनमुत्तमा संभाव्या वा गतिः ॥ १८ ॥

यदि शत्रु के सामने से आने की सम्भावना हो तो अपनी सेना का मकरव्यूह,
यदि शत्रु पीछे से आवे-तो शकटव्यूह, इधर उधर पार्श्व से आवे, तो वज्रव्यूह जो चारों
ओर से आक्रमण करे-तो सर्वतोभद्र और किसी एक ओर या संकुचित मार्ग से आवे,
तो सूचिव्यूह की रचना करनी चाहिए। यदि सेना के ले जाने के दोनों मार्ग हों, अर्थात्
अपनी भूमि और शत्रुकी भूमि हो तो सेना को अपनी भूमि से ही आगे बढ़ावे। जो अपनी
भूमि में नहीं है, उनको अपनी भूमि में स्थित होने से राजा को बड़ा विपरीत
पड़ता है। सेना का एक योजन चलना अधम, डेढ़ योजन चलना मध्यम और दो योजन
चलना उत्तम कहाता है ॥१५-१८॥

आश्रयकारी संपन्नघाती पार्ष्णिनासारो मध्यम उदासीनो वा प्रतिकर्तव्यः
॥ १९ ॥ सङ्कटो मार्गः शोधयितव्यः ॥ २० ॥ कोशो दण्डो मित्रामित्राट-
वीचलं विष्टिर्ऋतुर्वा प्रतीच्याः ॥ २१ ॥ कृतदुर्गकर्मनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबल-

निर्वेदो मित्रवलनिर्वेदश्चागमिष्यति, उपजापितारो वा नातित्वरयन्ति, शत्रु-
भिप्रायं वा पूरयिष्यतीति शनैर्यायात् ॥ २२ ॥ विपर्यये शीघ्रम् ॥ २३ ॥

यदि विजेता, अपनी विजय के लिए किसी का आश्रय लेना चाहे, ऐश्वर्यशाली शत्रु को नष्ट करने की इच्छा करे. अथवा पार्ष्णिग्राह, आसार (मित्र वल) मध्यम और उदासीन को दण्ड देना चाहे-तो सिकुड़े हुए मार्ग से गुपचुप यात्रा करनी चाहिए। इस समय कोश, सेना, मित्र, शत्रु और आटविक सेना, सेना में काम करने वाले तथा चढ़ाई के योग्य ऋतु का अच्छी तरह निरीक्षण करे। जो शत्रु के बनाये हुए दुर्ग, धान्य घास आदि का संग्रह, और रक्षक के नाश की सम्भावना हो, धन के द्वारा अधीन की दुर्ग सेना के विरुद्ध हो जाने का निश्चय हो, मित्र की सेना के विरक्त हो जाने की पूर्ण आशङ्का हो, शत्रु के तोड़ने फोड़ने वाले पुरुष कोई शीघ्रता से कार्य न कर रहे हों, अथवा शत्रु के द्वारा ही शीघ्र अभिप्राय सिद्ध होने वाला हो-तो राजा धीरे २ यात्रा करे। यदि शत्रु सावधानी से चल रहा हो, और इनमें से कोई बात न हो-तो शीघ्रता से गमन कर देवे ॥१६-२३॥

हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुवन्धनौकाष्ठवेणुसङ्घातैरलावुचर्मकरण्डदृतिप्लवगणि -
डकावेणिकाभिश्चोदकानि तारयेत् ॥ २४ ॥ तीर्थाभिग्रहे हस्त्यश्वैरन्यतो
रात्रावुत्तार्य सत्तुं गृह्णीयात् ॥ २५ ॥ अनुदके चक्रिचतुष्पदं चाध्वप्रमाणेन
शक्त्योदकं वाहयेत् ॥ २६ ॥

हाथी, खम्भे, सेतुवन्ध (पुल) नौका, बांस और काष्ठ के वेड़े, तून्वे, चमड़े से मँढी हुई पिटारी, दृति (मशक) मोमजामे का बना हुआ नौका समान साधन, काग की लकड़ी के तैरने के साधन, तथा मजबूत रस्सियों से सेना-नदियों को पार करके शत्रु के देश में प्रवेश करे। यदि पार उतरने के धाटों को शत्रु ने रोक दिया हो-तो हाथी और अश्वों से अन्य मार्ग से रात में सेना को पार उतारकर सत्र स्थानों में कूट युद्ध को करे। जल रहित प्रदेश में यात्रा के समय गाड़ी या चौपायों पर मार्ग की आवश्यकता के अनुसार जल को भी साथ ले जावे ॥ २४-२६॥

दीर्घकान्तारमनुदकं यवसेन्धनोदकहीनं वा कृच्छ्राध्वानमभियोगप्रस्कन्नं
क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तं पङ्क्तोयगम्भीराणां वा नदीदरीशैलानामुद्यानापयाने
व्यासक्तमेकायनमार्गे शैलविषमे सङ्कटे वा बहुलीभूतं निवेशे प्रस्थिते विसंनहं
भोजनव्यासक्तमायतगतपरिश्रान्तमवसुप्तं व्याधिमरकदुर्भिक्षपीडितं व्याधित-

पत्यश्चद्विपमभूमिष्ठं वा वलव्यसनेषु वा स्वसैन्यं रक्षेत् ॥ २७ ॥ परसैन्यं चाभिहन्यात् ॥ २८ ॥

जब सेना चल रही हो और मार्ग में लम्बे २ वन आ रहे हों जल न मिलता हो, घास इन्धन और जल से रहित मार्ग हों, मार्ग बड़ी कठिनाई से काटना पड़ रहा हो, बार २ की चढ़ाई से थकी हुई, भूख, प्यास और मार्ग की थकान से युक्त, भारी कीचड़, गहरे जल, नहरे, गुफा पर्वत और वन के वृक्षों को पार करना पड़ रहा हो, सिकुड़े मार्ग से चलना हो, ऊँचे नीचे पर्वत या सकड़े स्थान पर इकट्ठी हुई हो, ठहरने या यात्रा के समय कवच हीन रहना पड़ रहा हो, भोजन में सेना लगी हो, लम्बी चली आने से थकान में भरी हो, सोती हो, रोग महामारी, दुर्भिक्ष से सेना पीड़ित हो, पैदल अश्व, और हाथी जिसके बीमार हो रहे हों, जो अयोग्य भूमि में स्थित हों,—इन सेना के कष्टों के समय में राजा अपनी सेना की ध्यान से रक्षा करे। जब शत्रु सेना इस भ्रंश में पड़ी हो, तब उसपर आघात करे ॥ २७-२८ ॥

एकायनमार्गप्रयातस्य सेनानिश्चारग्रासाहारशय्याप्रस्ताराग्निनिधानध्वजा-युधसंख्यानेन परवलज्ञानं, तदात्मनो गूहयेत् ॥ २९ ॥

जब शत्रु, तंग मार्ग से गमन कर रहा हो, उस समय सेना के पुरुष, वाहन, भोजन सामग्री शय्या, चूल्हे, ध्वजा और शस्त्रों की गणना से शत्रु की सेना के बल का पता लगावें और अपनी सेना की गणना कराने वाले इन्हीं साधनों को यथा शक्ति छुपाता रहे ॥ २९ ॥

पार्वतं वा नदीदुर्गं सापसारप्रतिग्रहम् ।

स्वभूमौ पृष्ठतः कृत्वा युष्येत् निविशेत् च ॥ ३० ॥

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे स्कन्धावारप्रयाणं, वलव्यसनावस्कन्दकाल-

रक्षणं च द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितस्त्रिंशच्छतः ॥ १३० ॥

शत्रु के आक्रमण से निकल जाने या शत्रु को पकड़ लेने के स्थानों से युक्त पर्वत या नदी दुर्ग को अच्छी तरह अपनी भूमि में तय्यार करके विजेता राजा युद्ध करे और उसमें निवास करता रहे ॥ ३० ॥

इति श्री कौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत व्यसनाधिकारिक अधिकरण में स्कन्धावार प्रयाण और सेना की विपत्तियों से रक्षा करने करने का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



तीसरा अध्याय

१५०-१५२ वां प्रकरण

कूट युद्ध विकल्पाः

इस प्रकरण में कूट युद्ध के विकल्प और सेना के प्रोत्साहन आदि का वर्णन होगा।

वलविशिष्टः कृतोपजायः प्रतिविहितकर्तुः स्वभूम्यां प्रकाशयुद्धमुपेयात्
॥ १ ॥ विपर्यये कूटयुद्धम् ॥ २ ॥ बलव्यसनावस्कन्दकालेषु परमभिहन्यात्
॥ ३ ॥ अभूमिष्ठं वा स्वभूमिष्ठः ॥ ४ ॥ प्रकृतिप्रग्रहो वा स्वभूमिष्ठं दूष्यामित्रा-
टवीवलैर्वा भङ्गं दत्त्वा विभूमिप्राप्तं हन्यात् ॥ ५ ॥ संहतानीकं हस्तिमि-
भेदयेत् ॥ ६ ॥

विजेता राजा जब उत्तम सेना से युक्त हो, शत्रु पक्ष के अमात्य आदि को अपनी ओर मिला चुका हो, तो सन्मुख युद्ध के उपस्थित शत्रु से अपनी भूमि में प्रकाश युद्ध करे। यदि सेना ठीक न हो या तोड़ फोड़ न की जा सकी हो-तो कूट युद्ध करना चाहिए। जब शत्रु की सेना में कोई व्यसन हो अर्थात् उनके स्वामी द्वारा उनका तिरस्कार आदि कुछ हुआ हो या लम्बी यात्रा से थकी हुई या गीरी हुई हो, तो उस समय विजेता को आक्रमण कर देना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रहे, कि जहां तक हो सके, शत्रु अयोग्य भूमि में आ चुका हो और आप अपनी उचित स्थित में हो-तो आक्रमण कर दे। यदि राज के मन्त्री आदि प्रकृति में से कोई अपनी ओर मिल गया हो-तो अपनी भूमि में स्थित शत्रु पर भी आक्रमण किया जा सकता है। कैसी भी अच्छी या बुरी भूमि में शत्रु स्थित हो अपने से अप्रसन्न दुष्ट सैनिक शत्रु या आटविक पुरुषों की सेना से उसकी टक्कर कराकर राजा उस शत्रु को मार लेवे। यदि उसकी सेना बहुत ही संगठित हो-तो उसके गोल को हाथियों से छिन्न भिन्न कर देवे ॥ १-६ ॥

पूर्वं भङ्गप्रदानेनानुपलीनं भिन्नमभिन्नं प्रतिनिवृत्य हन्यात् ॥ ७ ॥ पुर-
स्तादभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पृष्ठतो हस्त्यश्वेनाभिहन्यात् ॥ ८ ॥ पृष्ठतोऽभि-
हत्य प्रचलं विमुखं वा पुरस्तात्सारवलेनाभिहन्यात् ॥ ९ ॥ ताभ्यां पार्श्वभि-
धातौ व्याख्यातौ ॥ १० ॥ यतो वा दूष्यफल्गुवलं ततोऽभिहन्यात् ॥ ११ ॥

पुरस्ताद्विपमायां पृष्ठतो ऽभिहन्यात् ॥ १२ ॥ पृष्ठतो विपमायां पुरस्तादभिह-
न्यात् ॥ १३ ॥ पार्वतो विपमायामितरतोऽभिहन्यात् ॥ १४ ॥

प्रथम भङ्ग (शिकस्त) देने से भागी हुई, छिन्न-भिन्न सेना पर अपनी संगठित सेना द्वारा आक्रमण किया जावे । जब सामने से आक्रमण हुआ और शत्रु सेना विचलित या भाग निकली-तो उसपर पीछे से आक्रमण करके हाथी और अश्वों से कुचलवा डाले । जब पीछे से भारी आक्रमण कर दिया गया हो और सेना तितर बितर हो गई हो-तो आगे से भी बड़ी वीर सेना के द्वारा उनपर आक्रमण कर देवे । जिस तरह आगे और पीछे से आक्रमण किया गया, इसी तरह अगल बगल से भी आक्रमण कर देने चाहिए । जिस ओर शत्रु के सैनिक अपने स्वामी से अप्रसन्न हो-या जहां निर्बल सेना हो, विजेता प्रथम उसी स्थान पर आक्रमण करे । यदि सामने से आक्रमण करना टेढ़ी खीर हो-तो पीछे से ही प्रहार करे । यदि पीछे से आक्रमण करने में कठिनाई उपस्थित हो-तो आगे जाकर शत्रु सेना पर छापा मारे । जो एक पार्श्व से आक्रमण में सन्देह हो-तो दूसरी ओर से आक्रमण कर देवे ॥७-१४॥

दूष्यामित्राटवीवलैर्वा पूर्वं योधयित्वा श्रान्तमश्रान्तः परमभिहन्यात्
॥१५॥ दूष्यवलेन वा स्वयं भङ्गं दत्त्वा जितमिति विश्वस्तमविश्वस्तः सत्रापाश्रयो
ऽभिहन्यात् ॥ १६ ॥ सार्थव्रजस्कन्धावारसंवाहविलोपप्रमत्तमप्रमत्तो ऽभिहन्यात्
॥ १७ ॥ फल्गुवलावच्छन्नः सारवलो वा परवीराननुग्रविश्य हन्यात् ॥ १८ ॥
गोग्रहणेन श्वापदवधेन वा परवीरानाकृष्य सत्रच्छन्नो ऽभिहन्यात् ॥ १९ ॥

अपने से छुपे २ विगड़े हुए राजा, दवे हुए शत्रु और आटविक (भील) लोगों की प्रचलता से प्रथम शत्रु को थकाकर आप अश्रान्त हुआ शत्रु पर आघात करे । अपने दुष्ट राजाओं की सेना को स्वयं किसी प्रकार पराजित करा देवे, जिससे शत्रु अपने विजयी होने से निश्चिन्त हो जावे, फिर आप सावधानी से सत्र स्थान के कूट युद्ध का अवलम्बन करके शत्रु सेना को मार गिरावे । अपने व्याघ्रादि, गो समूह, सेना की छावनी के नाश होने से बचाने की रक्षा में तत्पर शत्रु पर विजेता अप्रमत्त होकर आक्रमण करे । बाहर की ओर कमजोर सी सेना लगाकर उसके मध्य में दृढ़ वीरों को लेकर शत्रु सेना के वीरों में मार काट मचा देवे । शत्रु के गो समूह को छीन कर या जंगली जन्तुओं के शिकार का बहाना बना कर शत्रु वीरों को अपनी ओर बहका कर ले आवे और फिर वही सत्र स्थान युद्ध से उनको मार गिरावे ॥ १५-१९ ॥

रात्राववस्कन्देन जागरयित्वाऽनिद्राक्लान्तानवसुप्तान्वा दिवा हन्यात् ॥ २० ॥ सपादचर्मकोशैर्वा हस्तिभिः सौप्तिकं दद्यात् ॥ २१ ॥ अहःसेनाहपरिश्रान्तानपराहूणे ऽभिह्न्यात् ॥ २२ ॥ शुष्कचर्मवृत्तशर्कराकोशकैर्गोमहिषोष्ट्रयूथैर्वा त्रस्तुभिरकृतहस्त्यश्वं भिन्नमभिन्नः प्रतिनिवृत्तं हन्यात् ॥ २३ ॥ प्रतिसूर्यवातं वा सर्वमभिह्न्यात् ॥ २४ ॥

विजेता राजा रात भर मार काट या लूट मार करता रहे, इस प्रकार शत्रु के सैनिकों को निद्रा से व्याकुल होने या दिन में सोने पर मार देवे। हाथियों के पैरों में चर्म पहनाकर उनसे उन सोते हुए शत्रु सैनिकों को कुचलवा देवे। दिन के पूर्वाद्ध में कवायद आदि से थके हुए शत्रु सैनिकों को दोपहर के बाद के युद्ध में मार लेवे। शुष्क चर्म में लिपटे हुए मिट्टी के गोले, या पत्थर के टुकड़ों तथा ढरे हुए बैल भँसे और उंटों से उस लौटती हुई शत्रु सेना को मरवावे। सेना विल्कुल संगठित रहनी चाहिए। इस आक्रमण हाथी और अश्वों से शत्रु सेना को छिन्न भिन्न नहीं किया जाता। यदि शत्रु सेना सूर्य और वायु के सामने होने से कुछ घबरा रही हो-तो उस समय भी उसपर प्रहार किया जा सकता है ॥२०-२४॥

धान्यवननसङ्कटपङ्कशैलनिम्नविषमनाथो गांवः शकटव्यूहो नीहारो रात्रिरिति सत्राणि ॥ २५ ॥ पूर्वे च प्रहरणकालाः कूटयुद्धहेतवः ॥ २६ ॥ संग्रामस्तु निर्दिष्टदेशकालो धर्मिष्ठः ॥ २७ ॥

मरु स्थल, वन, सिकुड़े स्थान, कीचड़, पर्वत, नीचे ऊंचे स्थान, नावें गौ के झुण्ड शकट व्यूह, हिम (वर्फ) पात और रात ये सत्र कहाते हैं। अब तक जो प्रकरण के काल और स्थान बताए गए वे सब कूट युद्ध के हेतु हैं। देश और काल का प्रथम से ही निश्चित कर लेना धर्म युद्ध कहाता है ॥२५-२७॥

संहृत्य दण्डं ब्रूयात्—॥ २८ ॥ तुल्यवेतनोऽस्मि ॥ २९ ॥ भवद्भिः सह भोग्यमिदं राज्यम् ॥ ३० ॥ मयाभिहितः परो ऽभिहन्तव्य इति ॥ ३१ ॥ वेदेष्वप्यनुश्रुयते समाप्तदक्षिणानां यज्ञानामवभृथेषु —॥ ३२ ॥ “सा ते गतिर्या शूराणाम् इति” ॥ ३३ ॥ अपीह श्लोकौ भवतः—॥ ३४ ॥

राजा अपनी सेना को उत्साहित करने को कहे, कि मैं राजा नहीं हूँ, मैं तो तुम्हारी तरह एक वेतन भोगी व्यक्ति हूँ। मुझे तो आपको साथ लेकर और बांटकर इस राज्य का शासन करना या इसे भोगना है। मैं जिस शत्रु पर आक्रमण करूँगा तुम्हें उसपर फौरन

ग्रहार करना चाहिए। वेदों में भी यज्ञों की दक्षिणा के समय जब यज्ञ समाप्ति का स्थान होता है, तब यजमान को आशीर्वाद देते सुना गया है, कि तुम्हें वही गति प्राप्त हो-जो रण में शूरवीरों को प्राप्त होती है। इस विषय में दो श्लोक भी सुने जाते हैं ॥२८-३४॥

यान्यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैर्पिणः पात्रचयैश्च यान्ति ।

क्षणेन तानप्यतियान्ति शूराः प्राणान्सुयुद्धेषु परित्यजन्तः ॥ ३५ ॥

जिन लोकों को यज्ञ समूह, तप तथा अनेक यक्षियपात्रों का चयन करके स्वर्ग के अभिलाषी ब्राह्मण जाते हैं, उन ही लोकों को युद्ध में प्राण छोड़ने वाले, शूरवीर क्षण भर में प्राप्त कर लेते हैं ॥३५॥

नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।

तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥३६॥

जो पुरुष अपने स्वामी के अन्न के उद्धरण करने के निमित्त युद्ध नहीं करता, उसको यज्ञ में जल से भरे हुए, मन्त्रों से सुसंस्कृत, दर्भ से ढके हुए, नये सकोरे का आचमन प्राप्त नहीं होना चाहिए अर्थात् उसको इस पवित्र कर्म में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। इस पुरुष को मृत्यु के अनन्तर नरक की ही प्राप्ति होती है ॥३६॥

इति मन्त्रिपुरोहिताभ्यामुत्साहयेद्योधान् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार के उत्साहपूर्ण व्याख्यान मन्त्री और पुरोहितों द्वारा योद्धाओं को देने चाहिए ॥३७॥

व्यूहसंपदा कार्तान्तिकादिश्वास्य वर्गः सर्वज्ञदैवसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्ष-
मुद्धर्षयेत् ॥ ३८ ॥ परपक्षं चोद्वेजयेत् ॥ ३९ ॥ ध्वो युद्धमिति कृतोपवासः
शस्त्रवाहनं चाधिशयीत् ॥ ४० ॥ अथर्वभिश्च जुहुयात् ॥ ४१ ॥ विजययुक्ताः
स्वर्गीयाश्चाशिषो वाचयेत् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणेभ्यश्चात्मानमतिसृजेत् ॥ ४३ ॥

विजयाभिलाषी राजा के ज्योतिषी या मुहूर्त देखने वाले पुरुष उत्तम २ दुर्ग वनवावे इन ज्योतिषियों की सर्वज्ञता और भविष्यज्ञान की प्रसिद्धि से राजा अपने पक्ष को उत्साहित करदे अर्थात् इन ज्योतिषियों के बताए समय में दुर्ग रचनाएँ की गई हैं इससे कभी पराजय नहीं होगी-इस तरह प्रसिद्ध करके अपने पक्ष को हर्षित और शत्रु पक्ष को बेचैन करदे। कल युद्ध है इस प्रकार जब राजा को निश्चय हो जावे, तो वह पूर्व दिन उपवास कर शस्त्र और हाथी घोड़े आदि सवारियों के पास ही शयन और अथर्ववेद के

मन्त्रों से हवन करे । विजय कराने वाली और शत्रुओं को स्वर्ग पहुंचाने वाली आशिषों को ब्राह्मणों से बचवावे और अपने आपको ब्राह्मणों की रक्षा में छोड़ दे ॥ ३८-४३ ॥

शौर्यशिल्पाभिजनानुरागयुक्तमर्थमानाम्यामविसंवादितमनीकगर्भं कुर्वीत
॥ ४४ ॥ पितृपुत्रभ्रातृकाणामायुधीयानामध्वजं मुण्डानीकं राजस्थानम् ॥ ४५ ॥
हस्ती रथो वा राजवाहनमश्वानुबन्धे ॥ ४६ ॥ यत्प्रायः सैन्यो यत्र वा विनीतः
स्यात्तदधिरोहयेत् ॥ ४७ ॥ राजव्यञ्जनो व्यूहानुष्ठानमायोज्यः ॥ ४८ ॥

शूरवीरता, कारीगरी, कुलीनता और प्रीति से युक्त तथा धन और मान से अनु-
कूल बनाई हुई सेना को रक्षा के लिए नियुक्त करे । शस्त्रधारी पिता पुत्र और भाइयों
की ध्वजा हीन सेना को राजा के समीप ही रखे । हाथी, रथ, राजा के वाहन होने
चाहिए और राजा के इधर उधर अश्वारोही सेना चले । जिस सवारी पर सेना चत्र
रही हो, उसी के द्वारा राजा भी यात्रा करे अथवा राजा को जिस सवारी का अभ्यास
हो, उसी पर चढ़ कर चले । सेना और दुर्ग के प्रबन्ध में किसी वीर को राजा के
समान वस्त्रभूषण धारण कराकर लगाया जावे, जिससे शत्रु असली राजा पर
आक्रमण करने में सफल न हो सके ॥ ४२-४८ ॥

सूतमागधाः शूराणां स्वर्गमस्वर्गं भौरूणां जातिसंघकुलकर्मवृत्तस्तवं च
योधानां वर्णयेयुः ॥ ४९ ॥ पुरोहितपुरुषाः कृत्याभिचारं ब्रूयुः ॥ ५० ॥ सत्ति-
कवर्धकिमौहूर्तिकाः स्वकर्मसिद्धिमसिद्धिं परेषाम् ॥ ५१ ॥

सूत, मागध, वन्दी जन शूरवीरों को स्वर्ग का लालच और दुखों को नरक का भय
दिखावे, तथा योद्धाओं के जाति समूह कुल और काम आचरण आदि का वर्णन करते
रहें । पुरोहित जन कृत्या नामक देवता द्वारा शत्रु की मारण क्रिया का प्रयोग करे ।
सत्री नामक गुप्तचर कारीगर और मूर्त देखने वाले ज्योतिषी अपने कर्म की सिद्धि
और शत्रु की असिद्धि की प्रसिद्धि करते रहे ॥ ४९-५१ ॥

सेनापतिरर्थमानाम्यामभिसंस्कृतमनीकमाभापेत ॥ ५२ ॥ शतसाहस्रो
राजवधः ॥ ५३ ॥ पञ्चाशत्साहस्रः सेनापतिकुमारवधः ॥ ५४ ॥ दशसाहस्रः
प्रवीरमुख्यवधः ॥ ५५ ॥ पञ्चसाहस्रो हस्तिरथवधः ॥ ५६ ॥ साहस्रो श्ववधः
॥ ५७ ॥ शत्यः पत्तिमुख्यवधः ॥ ५८ ॥ शिरो विंशतिकम् ॥ ५९ ॥ भोगद्वैगु-
ण्यं स्वयंग्राह्येति ॥ ६० ॥ तदेषां दशवर्गाधिपतयो विद्युः ॥ ६१ ॥

राजा का सेनापति धन और मान से संयुक्त अपनी सेना से इस प्रकार कहे, कि जो तुम शत्रु राजा का वध कर लोगे, तो तुम्हें लाखों रुपया इनाम मिलेगा। शत्रु के सेनापति या राजकुमार के मारने पर पचास हजार, अमुक मुख्य वीर के मारने पर दस हजार हाथी और रथ के नष्ट कर देने पर पांच हजार, अश्वों के मारने पर एक हजार किसी मुख्य सैनिक के मारने पर सौ रुपये और साधारण सैनिक के मारने पर बीस रुपये मिलेंगे। तुम लोगों का भक्ता और वेतन दुगुना कर दिया जावेगा और लड़ते में जो माल मिलेगा, वह भी तुम्हारा ही होगा। यह सूचना सेनापति, नायक, पदिक आदि अधिकारियों को दे देनी चाहिए ॥ ५२-६१ ॥

चिकित्सकाः शस्त्रयन्त्रागदस्त्रेहवस्त्रहस्ताः स्त्रियश्चान्नपानरक्षिण्यः पुरुषाणां-
मुद्धर्षणीयाः पृष्ठतस्तिष्ठेयुः ॥ ६२ ॥ अदक्षिणामुखं पृष्ठतः सूर्यमनुलोमवातमनीकं
स्वभूमौ व्यूहेत ॥ ६३ ॥ परभूमिव्यूहे चाश्वाश्चारयेयुः ॥ ६४ ॥ यत्र स्थानं
प्रजवश्चाभूमिव्यूहस्य तत्र स्थितः प्रजघितश्चोभ यथा जीयेत ॥ ६५ ॥ विपर्यये
जयति उभयथा स्थाने प्रजवे च ॥ ६६ ॥

शस्त्र, चिमटी आदि यन्त्र, औषधि, घृत, तेल, वस्त्र, आदि को लिए हुए शिल्प शास्त्र के ज्ञाता वैद्य और अन्न पानी की रक्षा करने वाली तथा हास्य विनोद से वीरों को प्रसन्न रखने वाली स्त्रियों को सेना के पिछले हिस्से में रखें, विजेता राजा अपनी सेना को दक्षिण की ओर मुख करके खड़ा न करे। सूर्य की ओर से पीठ करके वायु के अनुकूल अपनी भूमि में राजा अपनी सेना का व्यूह बनावे। यदि शत्रु की भूमि में व्यूह बनाना पड़े, तो उस स्थान में अश्वों का चक्रदार व्यूह बनाना चाहिए। विजेता राजा जो अयोग्य भूमि में व्यूह बनावे, तो चाहे अधिक दिन ठहर कर युद्ध करना हो या शीघ्र लौटना हो, तो वहां ठहरने और जल्दी ही लौटने में दोनों ही तरह पराजय होता है, यदि सुयोग्य भूमि में व्यूह बनाया गया है, तो अधिक दिन ठहर कर युद्ध करने या जल्दी ही लौटने-दोनों ही तरह विजय हो जाती है ॥ ६२-६६ ॥

समा विपमा व्यामिश्रा वा भूमिरिति पुरस्तात्पार्श्वार्भ्यां पश्चाच्च ज्ञेया
॥ ६७ ॥ समायां दण्डमण्डलव्यूहाः ॥ ६८ ॥ विपमायां भोगसंहतव्यूहाः ॥ ६९ ॥
व्यामिश्रायां विपमव्यूहाः ॥ ७० ॥ विशिष्टवलं भङ्क्त्वा संघि याचेत ॥ ७१ ॥
समचलेन याचितः संदधीत ॥ ७२ ॥ हीनमनुहन्त्यात् ॥ ७३ ॥ न त्वेव स्वभूमि-
प्राप्तं त्यक्तात्मानं वा ॥ ७४ ॥

आगे, व इधर उधर और पीछे की ओर सम, विषम और व्यामिश्र संज्ञक तीन तरह की भूमि होती है। सम भूमि में दण्डाकार और मण्डलाकार व्यूह बनाए जाते हैं। विषम भूमि में भोग व्यूह और संहत व्यूह बनाने चाहिए। व्यामिश्र भूमि में विषम व्यूह की रचना उचित है। विजेता शक्तिशाली सेना से युक्त शत्रु को पराजित करके स्वयं सन्धि की याचना करे और समान बलवाले से सन्धि की याचना करने पर सन्धि करले और जो बलहीन शत्रु होवे-उसे नष्ट कर देवे, परन्तु यदि हीनबल शत्रु ही अपनी भूमि में पहुँच गया या प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध के लिए तय्यार हो गया, तो उससे भी सन्धि ही कर लेनी चाहिए ॥६७-७४॥

पुनरावर्तमानस्य निराशस्य च जीविते ।

अधार्यो जायते वेगस्तस्माद्भ्रंशं न पीडयेत् ॥ ७५ ॥

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे कूटयुद्धविकल्पाः स्वसैन्योत्साहनं स्वबलान्य-
बलव्यायोगश्च तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदित एकत्रिंशच्छतः ॥१३१॥

जब शत्रु जीवन की आशा छोड़कर युद्ध के लिए लौट पड़ता है, तो इसका भी वेग सभाला नहीं जा सकता। इन सब बातों को सोचकर पराजित शत्रु को भी आवश्यकता से अधिक नहीं दवाना चाहिए ॥७५॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत सांग्रामिक अधिकरण में कूटयुद्ध के भेद

आदि के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

चौथा अध्याय

१५३-१५४वां प्रकरण

युद्ध भूमियः पत्त्यश्वरथ हस्तिकर्माणि

इस प्रकरण में युद्ध के योग्य भूमि तथा पदाति अश्व, रथ और हाथियों के कार्यों का वर्णन किया जावेगा ।

स्वभूमिः पत्त्यश्वरथद्विपानामिष्टा युद्धे निवेशे च ॥ १ ॥ धान्नवन-
निम्नस्थलयोधिनां खनकाकाशदिवारात्रियोधिनां च पुरुषाणां नादेयपार्वतानूप-
सारसानां च हस्तिनामश्वानां च यथास्वमिष्टा युद्धभूमयः कालाश्च ॥ २ ॥
समा स्थिराभिकाशा निरुत्खातिन्यचक्रखुरानक्षग्राहियवृक्षगुल्मप्रतिस्तम्भकेदार-
श्वभ्रजल्मीकसिकताभङ्गभङ्गुरा दरुणहीना च रथ भूमिः ॥ ३ ॥

पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथी के सवारों के युद्ध के समय अपने अनुकूल भूमि का होना अत्यन्त आवश्यक है और इसी तरह सेना के पड़ाव के लिए भी अपनी ही भूमि अधिक उपयोगी होती है । मरुस्थल और वन के दुर्ग, तथा नीचे ऊँचे स्थल, खाई, आकाश, दिन रात, नदी, पहाड़ जलमय प्रदेश, हाथी और अश्वों के द्वारा युद्ध करने वाले वीरों को यथायोग्य युद्ध के उपयोगी अपनी भूमि श्रेष्ठ होती है और इसी तरह युद्धोपयोगी काल की भी आवश्यकता है । ऊँचाई निचाई से हीन, मिट्टी धूल से रहित, खाई और खड़े से हीन, रथ के चक्र, घोड़ों के तुर, रथ के धुरों को नहीं पकड़ने वाली, वृक्ष, झाड़ी, लता, ठूठ, क्यारी, खड़े, बमई, मिट्टी, कीचड़ और तिरछेपन से रहित भूमिमें रथ चलने के योग्य होती है । इस भूमि में दरार आदि कुछ नहीं होने चाहिए ॥१-३॥

हस्त्यश्वयोर्मनुष्याणां च समे विषमे हिता युद्धे निवेशे च ॥ ४ ॥
 अण्वश्वमवृक्षा हस्वलङ्घनायश्चभ्रा मन्ददरणदोषा चाश्वभूमिः ॥ ५ ॥ स्थूलस्या-
 ण्वश्वमवृक्षप्रततिवल्मीकगुल्मा पदातिभूमिः ॥ ६ ॥ गम्बुशैलनिम्नविषमा
 मर्दनीयवृक्षा छेदनीयप्रततिः पङ्कभंगुरदरणहीना च हस्तिभूमिः ॥ ७ ॥ अकण्ट-
 किन्यबहुविषमा प्रत्यासारवर्तीति पदातीनामतिशयः ॥ ८ ॥ द्विगुणप्रत्यासारा
 कर्दमोदकखञ्जनहीना निःशर्करेति वाजिनामतिशयः ॥ ९ ॥

हाथी, घोड़े और मनुष्यों के युद्ध और पड़ाव समयानुसार सम या विषम भूमि उपयोगी हो जाती है । कङ्कर, पत्थर और वृक्षों से युक्त, छोटे मोटे उलंघन करने युक्त खड्डों से समन्वित, थोड़ी बहुत दूसरों से ही सहित भूमि भी अश्वों के लिए उपयोगी हो सकती है । मोटे २ ठूट पत्थर कङ्कर वृक्ष लता बमई झाड़ी आदि से व्याप्त भूमि पैदल सेना के व्यवहार में आ सकती है । चढ़ने योग्य पहाड़, ऊँचे नीचे स्थल, हाथियों के खुजाने योग्य वृक्षों से समन्वित, तोड़ने मरोड़ने योग्य लताओं से भरी हुई कीचड़ या टेढ़ी मेढ़ी दरारों से रहित भूमि में हाथियों की सेना लेजाई जा सकती है । जिसमें काँटे न हों, जो बहुत ऊँची नीची न हो, जिसमें आने जाने के सुभीते हों, वह भूमि पैदल सेना के लिए अधिक उत्तम मानी गई है । जिस भूमि में पूर्वोक्त भूमि की अपेक्षा अधिक आने जाने का सुभीता हो, कीचड़ जल, दलदल और कट्कड़ीली मिट्टी से रहित हो, वह भूमि अश्वों की सेना के लिए अधिक उपयोगी मानी गई है ॥४-९॥

पांसुकर्दमोदकनलशराधान्नवती श्वदंष्ट्राहीना महावृक्षशाखाघातवियुक्तेति
 हस्तिनामतिशयः ॥ १० ॥ तोयाशयाश्रयवती निरुत्खातिनी केदारहीना व्याव-

र्तनसमर्थेति स्थानामतिशयः ॥ ११ ॥ उक्ता सर्वेषां भूमिः ॥ १२ ॥ एतया सर्ववलनिवेशा युद्धानि च व्याख्यातानि भवन्ति ॥ १३ ॥

धूल, कीचड़, नरसल, आदि से युक्त गोखरुओं से रहित, बड़े २ वृक्षों की शाखा के आघातों के अभावों वाली भूमि हाथियों की सेना के लिए उत्तम मानी गई है। जलाशय और धर्मशाला आदि स्थानों से युक्त ऊँचे नीचे स्थानों से रहित, खेत क्यार से हीन समय पर रथों के मोड़ लेने योग्य भूमि रथ सेना के उपयोगी होती है। इस प्रकार यहां तक सब तरह की सेनाओं की भूमि का निरूपण कर दिया गया। इसी कथन से सारी सेनाओं का पड़ाव और युद्धस्थलों की व्याख्या समझ लेनी चाहिए ॥ १०-१३ ॥

भूमिवासवननिचयो विपमतोयतीर्थयातरश्मिग्रहणं वीवधासारयोर्घातो रक्षा वा विशुद्धिस्थापना च जलस्य प्रसारवृद्धिर्वाहूत्सारः पूर्वप्रहारो व्यावेशनं व्यावेधनमाश्वसो ग्रहणं मोक्षणं मार्गानुसारविनिमयः कोशकुमाराभिहरणं जघनकोट्यभिघातो हीनानुसारणमनुयानं समाजकर्मैत्यश्वकर्माणि ॥ १४ ॥

भूमि निवास स्थान और वन का संशोधन विषयस्थान, जल का पार करना, वायु सूर्य की किरणों का ज्ञान, शत्रु के देश से आने वाले द्रव्य और शत्रु के मित्र की सेना का नाश अपनी बाहर जाने वाली व्यापार की वस्तु, अपने सेना की रक्षा, शत्रु सेना का नाश, अपनी सेना की स्थापना, धान्य और घास का संग्रह एक दम शत्रु का पीछे हटाना, शत्रु की सेना पर एक दम प्रहार करना और उसे विचलित कर देना। शत्रु सेना को पीड़ा और अपनी को तसल्ली देना, शत्रु सेना को पकड़ना, और अपनी को छुड़ाना, शत्रु सेना का पीछा करना, शत्रु के कोष और राजकुमार का छीन लाना पीछे और आगे से आक्रमण कर देना। अश्वों से हीन और भागी हुई सेना का पीछा करना और अपनी सेना का इकट्ठा करना। यह सारे कार्य अश्वों के होते हैं ॥ १४ ॥

पुरोयानमकृतमार्गवासतीर्थकर्म वाहूत्सारस्तोयतरणावतरणे स्थानगमनावतरणं विपमसंवाधः प्रवेशोऽग्निदानशमनमेकाङ्गविजयः भिन्नसंधानमभिन्नभेदनं व्यसने त्राणमभिघातो विभीषिका त्रासनमौदार्यं ग्रहणं मोक्षणं सालद्वाराद्वालकमञ्जनं कोशवाहनमिति हस्तिकर्माणि ॥ १५ ॥

अपनी सेना के आगे चलना, नये मार्ग, निवास स्थान और जल से तैरने का मार्ग बनाना शत्रुओं को पीछे हटाना, जल को पार करना या इसमें प्रवेश करना, शत्रु

सेना के आक्रमण करने पर पंक्ति बांध कर खड़े होना मार्ग में चलना या पानी में उतर जाना, घने जङ्गल और शत्रु सेना में घुस जाना, आग बुझाना, शत्रु की सेना के एक भाग को जीतना, अपनी विखरी हुई सेना को इकट्ठी करना, शत्रु की नहीं विखरी हुई सेना को बखेर देना, आपत्ति के समय रक्षा करना, शत्रु सेना का कुचलना, डराना विचलित कर देना, अपनी सेना का महत्व दिखाना, शत्रु की सेना को पकड़ना, अपनी अपनी छुड़ाना, शत्रु के ऊंचे २ द्वार, अंतरिक्षों को तोड़ना, शत्रु के कोप को लाद ले जाना हाथियों के करने योग्य काम माना गया है ॥ १५ ॥

स्ववलरक्षा चतुरङ्गचलप्रतिषेधः संग्रामे ग्रहणं मोक्षणं भिन्नसंधानमभि-
न्नमेदनं त्रासनमौदार्यं भीमवोपश्चेति रथकर्माणि ॥ १६ ॥ सर्वदेशकालशस्त्र-
वहनं व्यायामश्चेति पदातिकर्माणि ॥ १७ ॥ शिविरमार्गसेतुकूपतीर्थशोधनकर्म
यन्त्रायुधावरणोपकरणग्रासवहनमायोधनाच्च ग्रहरणावरणप्रतिविद्रापनयनमिति
विष्टिकर्माणि ॥ १८ ॥

अपनी सेना की रक्षा, शत्रु की चतुराङ्गिणी सेना का रोकना, संग्राम में शत्रु के वीरों को पकड़ना, अपने वीरों को छुड़ाना अपनी विखरी हुई सेना को इकट्ठी करना, शत्रु की नहीं विखरी हुई सेना को बखेरना और डराना, अपना महत्व दिखाना और भयङ्कर घोष करना-रथों के काम माने गए हैं। सारे देश और काल में शस्त्र चलाना, रथ युद्ध में भीषण कर्म कर दिखाना, पैदलों का कर्म है। खेमे, तन्त्र, मार्ग पुल, कुवे, घाट आदि का काम करना, घास आदि उखाड़ कर साफ करना, यन्त्र हथियार कवच तथा अन्य प्रकार का युद्धोपयोगी सामान अन्न घास का ले जाना, युद्ध भूमि से हथियार कवच इकट्ठे करके लाना-ये सेना के मजदूर कर्मचारियों के काम हैं ॥ १६-१८ ॥

कुर्याद्भुजवाश्वन्यायोगं रथेष्वल्पहयो नृपः ।

खरोष्ट्रशकटानां वा गर्भमल्पगजस्तथा ॥ १९ ॥

इति सांग्रामिके दशमेऽधिकरणे युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि चतुर्थो-
ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो द्वात्रिंशशतः ॥ १३२ ॥

जिस राजा के पास थोड़े थोड़े हो, वह कुछ रथों में जोड़े और कुछ में अश्वों को जोड़े तथा जिस राजा के पास हाथी थोड़े हो, वह गधे, ऊँट और गाड़ियों से सेना के बीच के भाग की रक्षा करे ॥ १९ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत साम्रामिक अधिकरण में युद्ध के योग्य भूमि तथा पैदल, अश्व आदि के कामों के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।

१५५-१५७वां प्रकरण

पांचवां अध्याय

१५५-१५७वां प्रकरण

पक्ष कक्षो रस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः सार फल्गुविभागः पत्यश्वरथ हस्ति युद्धानि

इस प्रकरण में पक्ष कक्ष आदि व्यूह तथा सार और असार सेना का विभाग एवं अश्व रथ और हाथियों के युद्ध का वर्णन किया जावेगा ।

पञ्चधनुःशतावकृष्टदुर्गमवस्थाप्य युद्धमुपेयात्, भूमिवशेन वा ॥ १ ॥
विभक्तमुख्यामवज्जुर्विषये मोक्षयित्वा सेनां सेनापतिनायकौ व्यूहेयाताम् ॥ २ ॥
शमान्तरं पत्तिं स्थापयेत् ॥ ३ ॥ त्रिशमान्तरमश्वं, पञ्चशमान्तरं रथं हस्तिनं
वा, द्विगुणान्तरं त्रिगुणान्तरं वा व्यूहेत ॥ ४ ॥ एवं यथासुखम संबाधं
युध्येत् ॥ ५ ॥

सेना के पड़ाव (छावनी) से पांच सौ धनुष की दूरी पर सेना का दुर्ग बनाकर युद्ध करे या जैसा भूमि का सुभीता हो-उतनी दूरी पर युद्ध के लिए सेना का व्यूह बनावे । मुख्य सेना का विभाग करके शत्रु की आंखों से सेना को बचाकर सेनापति और नायक सेना का व्यूह रचना करे । प्रत्येक पैदल सैनिक को चौदह चौदह अङ्गुल, घुड़सवार को बयालीस अङ्गुल, रथ और हाथियों को सत्तर २ अङ्गुल की दूरी पर खड़ा करे अथवा जैसा भूमि का सुभीता हो, उसी के अनुसार दुगुना त्रिगुना फासला रख कर भी व्यूह रचना की जा सकती है । जब सुख-पूर्वक सेना खड़ी कर दी जाय, तो बाधा रहित होकर वीरता के साथ युद्ध करे ॥१-५॥

पञ्चारत्नि धनुः ॥ ६ ॥ तस्मिन्धन्विनं स्थापयेत् ॥ ७ ॥ त्रिधनुष्यश्वं,
पञ्चधनुषि रथं हस्तिनं वा ॥ ८ ॥ पञ्चधनुरनीकसंधिः पक्षकक्षोरस्यानाम् । ९ ॥
अश्वस्य त्रयः पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १० ॥ पञ्चदश रथस्य हस्तिनो वा पञ्च
चाश्वाः ॥ ११ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानां विधेयाः ॥ १२ ॥

पाँच हाथ का एक धनुष होता है, धनुषधारियों को पांच २ हाथ के फासले पर खड़ा करना चाहिए, तीन धनुष की दूरी पर अश्व और पाँच धनुष की दूरी पर रथ और हाथी

होवें। पक्ष, कक्ष और उरस्थ संज्ञक सेनाओं का फासला भी पचीस २ हाथ का होना चाहिए। एक घुड़सवार के साथ तीन पैदल सैनिक, रथ और हाथी के साथ पन्द्रह पैदल सैनिक या पांच घुड़सवार होने चाहिए। घोड़े, रथ और हाथियों के पांच २ मनुष्य सेवा में नियुक्त किए जावें ॥६-१२॥

त्रीणि त्रिकाण्यनीकं स्थानामुरस्यं स्थापयेत् ॥ १३ ॥ तावत्कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ १४ ॥ पञ्चचत्वारिंशत् एवं रथा रथव्यूहे भवन्ति ॥ १५ ॥ द्वे शते पञ्चविंशतिश्चाश्वाः ॥ १६ ॥ षट्शतानि पञ्चमप्ततिश्च पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १७ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानाम् ॥ १८ ॥ एष समव्यूहः ॥ १९ ॥ तस्य द्विरथो वृद्धिरा एकविंशतिरथात् ॥ २० ॥ इत्येवमोजा दश समव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २१ ॥

व्यूह रचना के मध्य भाग में नौ २ रथ होवें, इसी तरह कक्ष और पक्ष में नौ २ रथ होने चाहिए। इस प्रकार रथ व्यूह में पैंतालीस रथ होते हैं। प्रत्येक रथ के आगे पांच घुड़सवार बताए गये हैं। इसी हिसाब से पचीस घोड़े और छः सौ पिचहत्तर सैनिक वीर रक्खे जाने चाहिए। इसी हिसाब से अश्व, रथ और हाथियों के सेवक होते हैं, यह समव्यूह की गणना है। इस व्यूह में दो २ रथ बढ़ाने से इक्कीस रथ तक बढ़ाए जा सकते हैं अर्थात् पांच, सात, नौ आदि रथों से व्यूह बनाया जा सकता है और उसी हिसाब से रक्षक वीर सेवक रक्खे जा सकते हैं। इस प्रकार अयुग्म संख्या से इस तरह के समव्यूह बनाए जा सकते हैं ॥१३-२१॥

पक्षकक्षोरस्यानामतो विषमसंख्याने विषमव्यूहः ॥ २२ ॥ तस्यापि द्विरथोत्तरा वृद्धिरा एकविंशतिरथात् ॥ २३ ॥ इत्येवमोजा दश विषमव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २४ ॥ अतः सैन्यानां व्यूहशेषमावापः कार्यः ॥ २५ ॥ स्थानां द्वौ त्रिभागावङ्गेष्ववापयेत् ॥ २६ ॥ शेषमुरस्यं स्थापयेत् ॥ २७ ॥ एवं त्रिभागोनो स्थानामावापः कार्यः ॥ २८ ॥ तेन हस्तिनामश्वानामावापो व्याख्यातः ॥ २९ ॥ यावदश्वरथद्विपानां युद्धसंवाधनं न कुर्यात्तावदावापः कार्यः ॥ ३० ॥

जब पक्ष, [अगल] कक्ष [वगल] और उरस्थ [बीच] में रथों की न्यूनाधिक संख्या हो, तो वह विषम व्यूह होते हैं। इसमें भी इक्कीस तक दो २ रथ बढ़ाए जा सकते हैं। इस प्रकार अयुग्म संख्या द्वारा विषम व्यूह भी उस तरह के होते हैं। व्यूह बनाने के अनन्तर जो सेना बचे, उसे इधर उधर लगा दे। रथों के दो भाग तो पक्ष और कक्ष में

रक्खे, शेष सेना के मध्य में डाले । ऊपर से डाली हुई यह सेना प्रधान सेना से तिहाई से भी कम होनी चाहिए । इसी तरह हाथी और घोड़ों को भी इधर उधर डाला जाता है । इनको इस तरह डालना चाहिए, कि जिससे अश्व, रथ और हाथियों को युद्ध में रुकावट न पड़े ॥२२-३०॥ •

दण्डवाहुल्यमावापः ॥ ३१ ॥ पत्तिवाहुल्यं प्रत्यावापः ॥ ३२ ॥ एकाङ्ग-
वाहुल्यमन्वावापः ॥ ३३ ॥ दूष्यवाहुल्यमत्यावापः ॥ ३४ ॥ परावापात्प्रत्यावा-
पादाचतुर्गुणादाष्टगुणादिति वा विभवतः सैन्यानामावापः कार्यः ॥ ३५ ॥
रथव्यूहेन हस्तिव्यूहो व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

व्यूह रचना में बची हुई सेना का डालना आवाप कहलाता है बचे हुए पैदल सैनिक का अधिक संख्या में डालना प्रत्यावाप होता है । घोड़े हाथी में से किसी एक का अधिक रखना अन्वावाप है अपनी सेना से बिगड़े हुए सैनिकों के डालने को अत्यावाप कहते हैं । शत्रु जितने पैदल सैनिक या अतिरिक्त अश्वधारियों को अपनी सेना में डाले विजेता राजा उससे चौगुने या अठगुने अपनी शक्ति के अनुसार अपनी सेना में सैनिक बढ़ावे । रथ व्यूह के दृष्ट पर ही हाथियों के व्यूह की व्यवस्था है ॥ ३१-३६ ॥

व्यामिश्रो वा हस्तिरथाश्वानाम् ॥ ३७ ॥ चक्रान्तयोर्हस्तिनः पार्श्वयोरश्व-
मुख्या रथा उरस्ये ॥ ३८ ॥ हस्तिनामुरस्यं रथानां कक्षावधानां पक्षाविति मध्य-
भेदी ॥ ३९ ॥ विपरीतोऽन्तर्भेदी ॥ ४० ॥ हस्तिनामेव तु शुद्धः ॥ ४१ ॥
सांन्यानामुरस्यमौपवाहानां जघनं व्यालानां कोट्याविति ॥ ४२ ॥

हाथी, रथ और अश्वों को मिलाकर भी व्यूह बनाया जा सकता है । इसमें सेना के सामने दोनों ओर हाथी इधर उधर घोड़े और मध्य में रथ खड़े करने चाहिए । इस व्यूह के मध्य में हाथी, कक्ष में रथ और पक्ष में अश्व होते हैं । इस लिये इसे मध्य भेदी व्यूह कहते हैं । और जब हाथियों को पीछे और घोड़ों को बीच में ले लेते हैं तो वह अन्तर्भेदी व्यूह हो जाता है । केवल हाथियों के व्यूह को शुद्ध व्यूह कहते हैं । शुद्ध के उपयोगी हाथियों को बीच में सवारी के योग्य हाथियों को पीछे और मदोन्मत्त हाथियों को अगले हिस्से में रक्खा जावे ॥ ३७-४२ ॥

अश्वव्यूहो वर्मिणामुरस्यं शुद्धानां कक्षपक्षाविति ॥ ४३ ॥ पत्तिव्यूहः
पुरस्तादावरणिनः पृष्ठतो धन्विन इति शुद्धाः ॥ ४४ ॥ पक्षयः पक्षयोरश्वाः

पार्श्वयोहस्तिनः पृष्ठतो रथाः पुरस्तात्परव्यूहवशेन वा विपर्यास इति व्यङ्ग्यल-
विभागः ॥ ४५ ॥ तेन त्रयङ्ग्यलविभागो व्याख्यातः ॥ ४६ ॥

अश्वों के व्यूह में कवचधारी अश्व बीच में और कवच हीन कत्त, पत्त,
(इधर उधर) में लगाने चाहिए। सैनिकों के शुद्ध व्यूह में आगे कवचधारी सैनिक और
पीछे धनुष धारी सैनिक होने चाहिए। यहां तक शुद्ध व्यूहों का वर्णन किया गया है।
जब शत्रु की सेना के कारण से पैदलों को पत्त में, अश्वों को या पार्श्व में हाथियों को पीछे
और रथों को आगे कर लिया जाता है, तो यह सेना के दो अङ्गों का व्यूह होता है इसी
तरह सेना के तीनों अङ्गों को लेकर भी व्यूह बनाया जा सकता है ॥ ४३-४६ ॥

दण्डसंपत्सारवलं पुंसाम् ॥ ४७ ॥ हस्त्यश्वयोर्विशेषः—कुलं जातिः सत्त्वं
वयःस्थिता प्राणो वर्ष्म जवस्तेजः शिल्पं स्थैर्यमुदग्रता विधेयत्वं सुव्यञ्जनाचार-
तेति ॥ ४८ ॥ पत्त्यश्वरथद्विपानाम् सारत्रिभागमुरस्यं स्थापयेत् ॥ ४९ ॥ द्वौ
त्रिभागौ कत्तं पत्तं चोभयतः ॥ ५० ॥ अनुलोममनुसारम् ॥ ५१ ॥ प्रतिलोमं
तृतीयसारम् ॥ ५२ ॥ फल्गु प्रतिलोमम् ॥ ५३ ॥ एवं सर्वमुपयागं गमयेत् ॥ ५४ ॥

राजाओं की शक्तिशाली सेना ही सम्पत्ति मानी गई है। कुल क्रमागत सैनिक
सारभूत होते हैं। हाथी और घोड़ों में कुल जातिवल, आयु प्राण ऊँचाई चौड़ाई वेग
पराक्रम, युद्ध शिक्षा, वीरता, मुँह को ऊँचे उठाये रहना और सवार के इशारे पर चलना
अच्छे लक्षण और शुभ चेष्टाओं से युक्त होना सारता मानी गई है। पैदल, घोड़े, रथ,
हाथियों के शक्तिशाली तीन भागों को बीच में ढाले और दो तिहाई सारभाग को कत्त
और पत्त में दोनों ओर लगावे। इससे कुछ कम शक्तिशाली सेना अनुसार और इससे
उलटी तृतीय सार कहलाती है। इसी को फल्गु (निर्वल) कहते हैं। इन सेनाओं को
यथा क्रम से खड़ी करे ॥ ४७-५४ ॥

फल्गुवलमन्तेष्ववधाय वेगोभिहुतो भवति ॥ ५५ ॥ सारवलमग्रतः कृत्वा
कोटीष्वनुसारं कुर्यात् ॥ ५६ ॥ जघने तृतीयसारं, मध्ये फल्गुवलमेतत्सहिष्णुं
भवति ॥ ५७ ॥ व्यूहं तु स्थापयित्वा पक्षद्वयोरस्यानामेकेन द्वाभ्यां वा प्रहेरत्
॥ ५८ ॥ शेषैः प्रतिगृह्णीयात् ॥ ५९ ॥

फल्गु सेना को अन्त में रखने से शत्रु का वेग वहीं शान्त हो लेता है - सार सेना
को आगे करके अनुसार सेना को किनारे पर खड़ी करे। तृतीय सार सेना को पीछे हिस्से
में और बीच में निर्वल सेना भी खड़ी की जा सकती है। यह व्यूह रचना शत्रु सेना के

आक्रमण को सह जाती है। पक्ष, कक्ष और मध्य में व्यूह रचना करके पैदल या अश्व या दोनों से ही शत्रु पर आक्रमण करदे और शेष सेना से शत्रु के आक्रमण को रोके रहे ॥५५-५६॥

यत्परस्य दुर्बलं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यकं कृतोपजापं वा तत्प्रभृतसारेणा-
भिहन्यात् ॥ ६० ॥ यद्वा परस्य सारिष्ठं तद्द्विगुणसारेणाभिहन्यात् ॥ ६१ ॥
यदङ्गमल्पसारमात्मनस्तद्वहुनोपचिनुयात् ॥ ६२ ॥ यतः परस्यापचयस्ततोऽ-
भ्याशे व्यूहेत यतो वा भयं स्यात् ॥ ६३ ॥

शत्रु की जो सेना हाथी घोड़ों से रहित दुर्बल हो और तोड़े फोड़े हुए या भीतर से विगड़े हुए अमात्यों से युक्त हो उसको अपनी शक्तिशाली सेना से नष्ट करदे अथवा शत्रु की बहावान सेना को अपनी दुगनी बलवती सेना के द्वारा छिन्न भिन्न करे। जो पुरानी निर्बल सेना हो उसकी सहायता में अपनी बहुत सी सेना को लगा दे। जिस ओर शत्रु की सेना क्षीण हो रही हो, उसके पास या जिधर से भय हो उधर ही अपनी सेना का व्यूह बनावे ॥६०-६३॥

अभिसृतं परिसृतमतिसृतमपसृतमुन्मथ्यावधानं वलयो गोमूत्रिका मण्डलं
प्रकीर्णिका व्यावृत्तपृष्ठमनुवंशमग्रतः पार्श्वार्भ्या पृष्ठतो भग्नरक्षा भग्नानुपात
इत्यश्वयुद्धानि ॥ ६४ ॥ प्रकीर्णिकावर्जान्येतान्येव चतुर्णामङ्गानां व्यस्तसमस्तानां
वा यातः ॥ ६५ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां च प्रभञ्जनमवस्कन्दः सौप्तिकं चेति
हस्तियुद्धानि ॥ ६६ ॥ उन्मथ्यावधानवर्जान्येतान्येव स्वभूमावभियानापयानस्थि-
तयुद्धानीति रथयुद्धानि ॥ ६७ ॥ सर्वदेशकालप्रहरणमुपांशुदण्डश्चेति घत्ति-
युद्धानि ॥ ६८ ॥

अपनी सेना से शत्रु की सेना पर झपटना शत्रु की सेना के चारों ओर चोट पहुंचाना, उसके बीच में घुस जाना, सेना को मथ डालना, गोल चक्र बनाकर या टेडी गति से जाना, शत्रु सेना को घेरना, युद्ध की चाल से चलना, वेग से लौटाना या आगे बढ़ जाना, भागती हुई सेना की आगे पीछे, इधर, उधर, से रक्षा करना और भागती हुई शत्रु सेना का पीछा करना अश्वों का कार्य है अर्थात् यह अश्व युद्ध कहाते हैं। सारी चालों को मिलाकर जो चलना है उसे छोड़कर घोड़ों के शेष युद्ध, बिखरी हुई या इकट्ठी हुई सेना के प्रहार करने के लिए हैं। पक्ष, कक्ष और उरस्थ में खड़ी हुई शत्रु सेना का मर्दन और निर्बल शत्रु सेना पर प्रहार करना तथा सोते हुए शत्रु को मार डालना हस्ति युद्ध कहाते हैं। इकट्ठे हो जाने को छोड़कर शेष सब हाथियों के युद्ध है। अपना

भूमि में शत्रु पर आक्रमण करना या पीछे हटना अथवा ठहर कर युद्ध करते रहना—रथ युद्ध है। सारे देश और कालों में हथियारों का धारण करना और चुपचाप शत्रु को मारना—गति युद्ध कहाता है ॥६४-६८॥

एतेन विधिना व्यूहानोजान्युगमांश्च कारयेत् ।

विभवो यावदङ्गानां चतुर्णां सदृशो भवेत् ॥ ६९ ॥

द्वे शते धनुषां गत्वा राजा तिष्ठेत्प्रतिग्रहे ।

भिन्नसंघातनार्थं तु न युध्येताप्रतिग्रहः ॥ ७० ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः,
सारफल्गुवलविभागः, पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि च पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥

आदितस्त्रयस्त्रिंशच्छतः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार विजयाभिलाषी राजा सम और विपम व्यूहों को अपनी चतुरङ्गिणी सेना की शक्ति के अनुसार बनावे। जब युद्ध होने लगे, तो राजा सेना से दो सौ धनुष पीछे खड़ा रहे। राजा के पीछे खड़े रहने से अपनी भागती हुई सेना खड़ी रह जाती है। राजा को चाहिए कि सेना का सहारा लिए बिना कभी युद्ध न करे ॥६९-७०॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत सांग्रामिक अधिकरण में सेना के व्यूह रचना के वर्णन का पाँचवा अध्याय समाप्त हुआ ।



छठा अध्याय

१५८-१५९वां प्रकरण

दण्डभोग मण्डला संहत व्यूह व्यूहनं तस्यप्रति व्यूह स्थानम् ।

इस प्रकरण में दण्ड व्यूह आदि व्यूहों तथा प्रतिव्यूहों की रचना का वर्णन होगा ।

पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभागः ॥ १ ॥ पक्षौ कक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इति बार्हस्पत्यः ॥ २ ॥ प्रपक्षकक्षोरस्या उभयोः दण्डभोगमण्डलासंहताः प्रकृतिव्यूहाः ॥ ३ ॥ तत्र तिर्यग्वृत्तिर्दण्डः ॥ ४ ॥ समस्तानामन्त्रावृत्तिर्भोगः ॥ ५ ॥ सरतां सर्वतोवृत्तिः मण्डलः ॥ ६ ॥ स्थितानां पृथगनीकवृत्तिसंहतः ॥ ७ ॥

सेना के दोनों अगले पक्ष, मध्य भाग और पीछे की ओर व्यूह बनाये जाते हैं, यह व्यूह विभाग शुक्राचार्य का माना हुआ है। अगले दोनों भाग, पिछले दोनों भाग, मध्य भाग और पीछे के भाग में सेना के व्यूह बनते हैं, यह बृहस्पति का मत है। इन दोनों

आचार्यों के मत में पक्ष, कक्ष और उरस्य में सेना के दण्ड, भोग, मण्डल और असंहत नामक चार प्रकृति व्यूह बनते हैं। सेना को तिरछी खड़ी करके जो व्यूह बनाया जाता है-वह दण्ड, सेना का सब ओर से चार २ घुमाव डालकर जो व्यूह बने-वह भोग, शत्रु पर आक्रमण करते हुए सब ओर से घूमते हुए व्यूह की जो रचना की जावे-वह मण्डल तथा पृथक् २ खड़ी हुई सेनाओं का पृथक् २ आक्रमण करते हुए जो व्यूह बनता है, वह असंहत व्यूह कहाता है ॥१-७॥

पक्षकक्षोरस्यैः समं वर्तमानो दण्डः ॥ ८ ॥ स कक्षाभिक्रान्तः प्रदरः ॥ ९ ॥ स एव पक्षाभ्यां प्रतिक्रान्तो दृढकः ॥ १० ॥ स एवातिक्रान्तः पक्षाभ्यामसह्यः ॥ ११ ॥ पक्षाववस्याप्योरस्याभिक्रान्तः श्येनः ॥ १२ ॥ विपर्यये चापं चापकुक्षिः प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च ॥ १३ ॥ चापपक्षः सञ्जयः ॥ १४ ॥ स एवोरस्यातिक्रान्तो विजयः ॥ १५ ॥ स्थूलकर्णं पक्षः स्थूलकर्णः ॥ १६ ॥ द्विगुणपक्षस्थूलो विशालविजयः ॥ १७ ॥ त्र्यभिक्रान्तपक्षश्चमूमुखः ॥ १८ ॥ विपर्यये भपास्यः ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वराजिर्दण्डः सूची ॥ २० ॥ द्वौ दण्डौ वलयः ॥ २१ ॥ चत्वारो दुर्जय इति दण्डव्यूहाः ॥ २२ ॥

पक्ष, कक्ष, और उरस्य भागों में सीधी तरह वर्तमान व्यूह-दण्ड व्यूह होता है। इस प्रकृति व्यूह के प्रदर आदि विक्रांत व्यूह माने जाते हैं। जब पीछे के भागों का व्यूह बना कर शत्रु पर आक्रमण किया जावे, तो यही प्रदर, जब दोनों पक्ष से पराक्रम करती हुई सेना आक्रमण करे-तो वह दृढक, जब दोनों ओर से व्यूह बनाकर तीव्र आक्रमण किया जावे, तो असह्य तथा दोनों पक्षों को व्यूह में स्थापित करके, मध्य भाग द्वारा आक्रमण करना श्येन व्यूह होता है। इनको जब अदल बदल कर बनाया जावे, अर्थात् पक्ष में व्यूह बनाकर आक्रमण और कक्ष में व्यूह बनाकर तीव्र आक्रमण कर दिया जावे तो वे चाप, चाप कुक्षि, प्रतिष्ठ और सुप्रतिष्ठ नाम के चार व्यूह बन जाते हैं। चाप के अनुसार जिस व्यूह में पक्ष रखे गए हों वह सञ्जय व्यूह होता है। इसी सञ्जय व्यूह में जब मध्य भाग द्वारा आक्रमण किया जावे-तो वही विजय व्यूह हो जाता है। जिस के पक्ष में कर्ण स्थानों को स्थूल बना दिया हो, उसे स्थूल कर्ण कहते हैं। जिस स्थूल कर्ण से भी दुगुना कर्ण स्थान स्थूल रखा गया हो, वह विशाल विजय होता है। दोनों कक्ष और एक उरस्य-इन तीनों की बराबर जिस के पक्ष हों, वह चमू मुख व्यूह होता है। जिस व्यूह के कक्ष, पक्ष और उरस्य (मध्य भाग) के बराबर वह भपास्य होता है। दंड व्यूह में जब ऊपर की ओर पंक्ति बनाकर आक्रमण किया जाता है-तो वह सूची मुख व्यूह होता है। दो दंड

व्यूहों का जब एक ही व्यूह बना दिया जावे, तो वह वलय व्यूह हो जाता है, और चार दंड व्यूहों का एक दुर्जय व्यूह बनता है-ये दंड व्यूह के अवान्तर प्रकार हैं ॥ २२ ॥

पक्षकक्षोरस्यैर्विषमं वर्तमानो भोगः, स सर्पसारी गोमूत्रिका वा ॥ २३ ॥
स युगमोरस्यो दण्डपक्षः शकटः ॥ २४ ॥ विपर्यये मकरः ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वरयै-
र्व्यतिकीर्णः शकटः परिपतन्तक इति भोगव्यूहाः ॥ २६ ॥

पक्ष, कक्ष और उरस्य स्थानों में जब सेना की संख्या विषम होती है, तो वह भोग व्यूह होता है वह सर्प या गो मूत्र के आकार में लम्बा चलता है। जिस भोग व्यूह का मध्य भाग दो भागों में बट रहा हो और उसके पक्ष दंड के समान हों-तो वह शकट हो जाता है। जब पक्ष दो भागों में बटा हो और दंड के समान उरस्य (मध्य भाग) हो तो वही मकर व्यूह कहाता है। जिस शकट व्यूह में हाथी, अश्व और रथों की संख्या अधिक हो-उसे परिपतन्तक व्यूह कहते हैं-यहां भोग व्यूह के अवान्तर भेदों का वर्णन हुआ ॥ २३-२६ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामेकीभावे मण्डलः ॥ २७ ॥ स सर्वतोमुखः सर्वतोमद्रो
ऽष्टानीको दुर्जय इति मण्डलव्यूहाः ॥ २८ ॥

जिसमें पक्ष, कक्ष और उरस्य भागों को मिलाकर एक कर दिया जावे, उसे मण्डल (चक्र) व्यूह कहते हैं। जब वह सब ओर से आक्रमण करें-तां उसे सर्वतोमद्र कहते हैं। इस मण्डल व्यूह में जब आठ सेना लगादी जावे, तो वह दुर्जय नामक मण्डल व्यूह होता है। यहां तक मण्डल व्यूहों के अवान्तर भेदों का विचार हुआ ॥ २७-२८ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामसंहतादसंहतः ॥ २९ ॥ स पञ्चानीकानामाकृतिस्थाप-
नाद्वज्रो गोधा वा ॥ ३० ॥ चतुर्णामुद्यानकः काकपदी वा ॥ ३१ ॥ त्रयाणाम-
र्धचन्द्रिकः कर्कटकशृङ्गी वैल्पसंहतव्यूहाः ॥ ३२ ॥

पक्ष, कक्ष और उरस्यभागों में जब सेना भिन्न २ रूप में स्थित होती है तो यह असंहत व्यूह होता है। उसीमें जब पांच सेनाओं को वज्र की आकृति में खड़ा किया जावे-तो वज्र व्यूह और गोधा जन्तु के आकार में खड़ा किया जावे-तो गोधा व्यूह होता है। जब इस व्यूह में चार सेना लगाई जाती है, तो यह उद्यानक या काकपदी व्यूह कहाता है। इसी तरह तीन सेनाओं द्वारा जब उसके दोनों पक्ष और उरस्य भाग बनाया जावे-तो उसे अर्ध, शृङ्गी या कर्कटक शृङ्गी असंहत व्यूह कहते हैं। यहां तक असंहत व्यूहों के भेदों का वर्णन हुआ ॥ २९-३२ ॥

रथोरस्यो हस्तिकक्षोऽश्वपृष्ठोऽरिष्टः ॥ ३३ ॥ पत्तयो ऽश्वा रथा हस्तिन-
थानुपृष्ठमचलः ॥ ३४ ॥ हस्तिनो ऽश्वा रथः पत्तयश्चानुपृष्ठमप्रतिहतः ॥ ३५ ॥

जिस व्यूह के मध्य स्थान में रथ, कक्ष स्थान में हाथी, पीछे के स्थान में अश्व और कक्ष भाग में पैदल हों उसे अरिष्ट व्यूह कहते हैं । जिस व्यूह में पैदल, अश्व, रथ और हाथी क्रम से एक २ के पीछे खड़े किये जाते हैं, उसे अचल व्यूह कहते हैं । हाथी, अश्व, रथ और पैदल, जिसमें क्रम से रखे गए हों-उसे अप्रतिहत व्यूह कहते हैं ॥ ३३-३५ ॥

तेषां प्रदरं दृढकेन घातयेत् ॥ ३६ ॥ दृढकमसंख्येन ॥ ३७ ॥ श्येनं चापेन ॥ ३८ ॥ प्रतिष्ठं सुप्रतिष्ठेन ॥ ३९ ॥ संजयं विजयेन ॥ ४० ॥ स्थूलकर्णं विशालविजयेन ॥ ४१ ॥ पारिपतन्तकं सर्वतोभद्रेण ॥ ४२ ॥ दुर्जयेन सर्वान्प्रति-
व्यूहेत ॥ ४३ ॥ पत्त्यश्वरथद्विपानां पूर्वं पूर्वमुत्तरेण घातयेत् ॥ ४४ ॥ हीनाङ्गम-
धिकाङ्गेन चेति ॥ ४५ ॥

जब शत्रु प्रदर नामक व्यूह बनावे, तो उसको दृढक व्यूह बनाकर नष्ट करे । दृढक को असह्य, श्येन को चाप प्रतिष्ठ को सुप्रतिक, सञ्जय को विजय, स्थूल कर्ण को विशाल विजय और पारिपतन्तक को सर्वतोभद्र और सारे व्यूहों को दुर्जय व्यूह द्वारा नष्ट कर देवे । इसी तरह पैदलों को अश्व, अश्वों को रथ, रथों को हाथी द्वारा नाश करने का प्रयत्न करे तथा जिस जगह सेना का हीन अङ्ग हों-उसको अधिक अङ्ग द्वारा छिन्न-भिन्न कर देवे ॥ ३६-४५ ॥

अङ्गदशकस्यैकः पतिः पदिकः ॥ ४६ ॥ पदिकदशकस्यैकः सेनापतिः ॥ ४७ ॥ तदशकस्यैको नायक इति ॥ ४८ ॥ स तूर्ध्वोपध्वजपताकाभिर्व्यूहा-
ङ्गानां संज्ञाः स्थापयेत् ॥ ४९ ॥ अङ्गविभागे संघाते स्थाने गमने व्यावर्तने
प्रहरणे च ॥ ५० ॥ समे व्यूहे देशकालयोगात्सिद्धिः ॥ ५१ ॥

सेना के दश अङ्गों [दुकड़ियों] के अधिपति को पदिक अधिकारी कहते हैं । दश पदिकों के ऊपर के अधिकारी को सेनापति, और दश सेनापतियों के अफसर को नायक कहते हैं । तुरीयोप, ध्वजा, पताका आदि से एक सेना का दूसरी सेना तक पहुंचने के संकेतों की कल्पना करे । ये संकेत, सेना के अङ्गों के विभक्त करने, मिलाने, सेना के रोकने, चलाने, लौटाने और प्रहार करने के लिए बड़े उपयोगी हैं । जब दोनों ओर समान व्यूह रचना होवे-तो देश, काल और पराक्रम की अनुकूलता से विजय प्राप्त होती है ॥ ४६-५१ ॥

दण्डैरुपनिषद्योगैस्तीक्ष्णैर्व्यासक्तघातिभिः ।

मायाभिदैवसंयोगैः शकटैर्हस्तिभूषणैः ॥ ५२ ॥

दूष्यप्रकोपैर्गोयूथैः स्कन्धावारप्रदीपनैः ।

कोटीजघनघातैर्वा दूतव्यञ्जनभेदनैः ॥ ५३ ॥

दुर्गं दग्धं हतं वा ते कोपः कुल्यः समुत्थितः ।

शत्रुराटविको वेति परस्योद्वेगमाचरेत् ॥ ५४ ॥

सेना, यन्त्र, औपनिषदक प्रकरण के उपाय, विष देने वाले, कपट से मारने वाले, दैव के संयोग से उत्पन्न (विजली आदि) पदार्थ छल कपट, हाथियों से युक्त रथ, भीतर से बिगड़े हुए पुरुषों के प्रकोप, गोयूथ, सेना के पडाव में आग सेना के अगले पिछले भाग में आघात, दूतों के वेष में गुप्तचर प्रवेश द्वारा, तथा तेरा दुर्ग जला दिया, छीन लिया, तेरा कुल का अमुक पुरुष हमसे मिल गया तथा कोई सामन्त शत्रु या आटविक शत्रु तुम से लड़ने को खड़ा हो गया-इस प्रकार की बात बनावकर शत्रु को व्याकुल बना देवे ॥५२-५४॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिपुः क्षिप्तो धनुष्मता ।

प्राज्ञेन तु मति क्षिप्ता हन्याद्गर्भगतानपि ॥ ५५ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनं, तस्य प्रतिव्यूह-
स्थापनं च षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितश्चतुस्त्रिंशच्छतः ॥ १३४ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य सांग्रामिकं दशममधिकरणं समाप्तम् ॥१०॥

धनुषधारी द्वारा फेंका हुआ बाण, किसी एक को मारे या न भी मारे, परन्तु बुद्धिमान् की चलाई हुई बुद्धि गर्भगत बालकों को भी जा मारती है ॥५५॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत सांग्रामिक अधिकरण में दण्ड आदि व्यूह प्रतिव्यूहों के वर्णन का छठा अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर सांग्रामिक अधिकरण भी पूरा हो गया ।



संघवृत्त मेकादशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१६०-१६१वां प्रकरण

भेदोपादा नान्युपांशुदण्डः

इस प्रकरण में भेद के प्रयोग और गुपचुप मारण के उपायों का वर्णन किया जावेगा।

संघलाभो दण्डमित्रलाभानामुत्तमः ॥ १ ॥ संघा हि संहतत्वादधृष्याः
परेषाम् ॥ २ ॥ ताननुगुणान्भुञ्जीत सामदानाभ्याम् ॥ ३ ॥ विगुणान्भेददण्डा-
भ्याम् ॥ ४ ॥ काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः ॥ ५ ॥
लिच्छिविक्रजिकमल्लकमद्रककुक्कुरकुरुपाञ्चालादयो राजशब्दोपजीविनः ॥ ६ ॥

सेना और मित्र लाभ की अपेक्षा संघ का लाभ सर्व श्रेष्ठ है। जो संघ (पार्टी) होते हैं, वे संगठित रहते हैं और शत्रु से नहीं दबाये जा सकते हैं। यदि संघ का लाभ हो जावे, तो उसको साम दान द्वारा अपने लाभ के लिए प्रयुक्त करे-यदि कोई संघ विगड़ जावे, तो उसे भेद और दण्ड द्वारा वश में करे। काम्बोज (काबुल) सुराष्ट्र (सूरत) देश में बहुत से क्षत्रियों के इस तरह के संघ होते हैं, जो व्यापार और शस्त्र आदि से जीविका चलाते हैं। लिच्छविक, घजिक, मल्लक, मद्रक, कुक्कुर, कुरु, पाञ्चाल क्षत्रिय भी संघ बनाकर रहते हैं, जिनको नाम मात्र राजा की उपाधि मिली हुई है ॥१-६॥

सर्वेषामासन्नाः सत्त्रिणः संघानां परस्परन्यङ्गद्वेषवैरकलहस्थानान्युपलभ्य
क्रमाभिनीतं भेदमुपचारयेयुः ॥ ७ ॥ असौ त्वा विजल्पतीति ॥ ८ ॥ एवमुभयतः
॥ ९ ॥ बद्धरोषाणां विद्याशिल्पद्युतवैहारिकेष्वाचार्यव्यञ्जना बालकलहानुत्पाद-
येयुः ॥ १० ॥ वेशशौण्डिकेषु वा प्रतिलोमप्रशंसाभिः संघमुख्यमनुष्याणां तीक्ष्णाः
कलहानुत्पादयेयुः ॥ ११ ॥ कृत्यपक्षोपग्रहेण वा ॥ १२ ॥ कुमारकान्निशिष्ट-
च्छन्दिकया हीनच्छन्दिकानुत्साहयेयुः ॥ १३ ॥

इन सारे संघों के पास सत्री संज्ञक गुप्तचर रहे, जो इनके दोष, द्वेष, वैर और कलह का पता लगाकर समयानुसार उनमें भेद डलवा देवे। यह संघ तुम्हारी इस तरह

निन्दा करता था इत्यादि भड़काने वाली बातें करके दोनों ओर भेद की आग भड़का देवे। जब इनका परस्पर वैर हो जावे-तो विद्या, शिल्प, द्यूत और प्रश्नोत्तर के ढंग में आचार्य रूपधारी गुप्तचर उनके बालकों में भी परस्पर कलह करवा देवे, वेश्या और मुरापान करने वाले संघों के मुख्य मनुष्यों में उनसे विरुद्ध पुरुषों की प्रशंसा करके तीक्ष्ण पुरुष उनमें कलह करवावे अथवा उनके कृत्य (भेद को प्राप्त हुए अमात्य आदि) पक्ष को अपनी ओर मिलाकर उनमें फूट डाले। इनके कुमारों में अधिक वस्तुओं के द्वारा आनन्द उड़ाने वालों का थोड़ी वस्तु द्वारा निर्वाह करने वाले कुमारों से भेद करवावे ॥७-१३॥

विशिष्टानां चैकपात्रं विवाहं हीनेभ्यो वारयेयुः ॥१४॥ हीनान्वा विशिष्टैरेकपात्रे-विवाहे वा योजयेयुः ॥१५॥ अवहीनान्वा तुल्यभावोपगमने कुलतः पौरुषतः स्थानविपर्यासतो वा ॥ १६ ॥ व्यवहारमवस्थितं वा प्रतिलोमस्थापनेन निशामयेयुः ॥ १७ ॥ विवादपदेषु वा द्रव्यपशुमनुष्याभिधातेन रात्रौ तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ १८ ॥

जिन राजकुमारों की बड़ी प्रतिष्ठा है, उनका छोटी प्रतिष्ठा वालों के साथ एक पात्र भोजन तथा विवाह सम्बन्ध रक्कवा कर उनमें परस्पर वैर का बीज बोवे। जहाँ पर छोटे कुमारों को बड़ी प्रतिष्ठा के कुमारों के साथ एक पात्र में भोजन वा विवाह सम्बन्ध कराकर बड़ों को उनकी ओर से बिगाड़ देवे। इसी तरह छोटी स्थिति के लोगों को भी कुल और पुरुषार्थ के वहाने पर भड़काने और एक दूसरे के स्थान पर नियुक्त करके भी उनमें द्वेष उत्पन्न करदे। जिस मुकदमे का फैसला हो गया या जिस की तहकीकात हो रही हो-उस हाकिम के विरुद्ध पुरुष के पास उसका उल्टापन सिद्ध करे तीक्ष्ण पुरुष, भागड़े के स्थान द्रव्य, पशु और मनुष्यों को रात में मार दें और दूसरे संघ पर उनका दोष लगाकर कलह उत्पन्न करावे ॥१४-१८॥

सर्वेषु च कलहस्थानेषु हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य प्रतिपक्षवधे योजयेत् ॥ १९ ॥ भिन्नानपवाहयेद्वा ॥ २० ॥ एकदेशे संमस्तान्वा निवेश्य भूमौ चैषां पञ्चकुलीं दशकुलीं वा कृष्यां निवेशयेत् ॥ २१ ॥ एकस्था हि शस्त्रग्रहण-समर्थाः स्युः ॥ २२ ॥ समवाये चैषामत्ययं स्थापयेत् ॥ २३ ॥ राजशब्दिभिरवरुद्धमवक्षिप्तं वा कुल्यमभिजातं राजपुत्रत्वे स्थापयेत् ॥ २४ ॥ कार्तान्तिकादि-आस्य वर्गो राजलक्ष्णयतां संघेषु प्रकाशयेत् ॥ २५ ॥

इस तरह के सारे कलहों में राजा, दुर्बल पक्ष को कोश या सेना के द्वारा अपने पक्ष में मिलाकर प्रतिपक्ष के वध में नियुक्त करे। अथवा जो स्वयं भेद को प्राप्त हो

रहे हैं, उन्हें वहका लेवे। किसी एक देश में उन सब को बसाकर किसी प्रथक् २ भूप्रदेश पर उनके पांच घर या दश घर खेती करने को बसा देवे। यदि ये सारे एक जगह बसा दिए जावेंगे-तो फिर कभी शस्त्र ग्रहण करने को तय्यार हो जावेंगे। इन के संघों से कुछ कर भी लिया जाना चाहिए। नाम मात्र राजपद को धारण करने वाले लिच्छवि आदि क्षत्रियों द्वारा रोके हुए या अपमानित किसी कुलीन राजकुमार को राजपुत्र बनाकर घोषित करदे और गुप्तचर ज्योतिषी उसके राजा होने के चिन्हों को सब को घोषित करते रहें ॥ १६-२५ ॥

संघमुख्यांश्च धर्मिष्ठानुपजपेत् ॥ २६ ॥ स्वधर्मममुष्य राज्ञः पुत्रे आतरि वा प्रतिपद्यध्वमिति ॥ २७ ॥ प्रतिपन्नेषु कृत्यपक्षोपग्रहार्थमर्थं दण्डं च प्रेषयेत् ॥ २८ ॥ विक्रमकाले शौण्डिकव्यञ्जनाः पुत्रदारप्रेतापदेशेन नैपेचनिकमिति मदनरसयुक्तान्मद्यकुम्भाञ्शतशः प्रयच्छेयुः ॥ २९ ॥ चैत्यदैवतद्वाररक्षास्थानेषु च सन्निष्ठाः समयकर्मनिक्षेपं सहिरण्याभिज्ञानमुद्राणि हिरण्यभाजनानि च प्ररूपयेयुः ॥ ३० ॥ दृश्यमानेषु च संघेषु राजकीया इत्यावेदयेयुः ॥ ३१ ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ३२ ॥

संघ में जो धर्म प्रचारक पुरुष हों-उनको इस प्रकार अपनी ओर मिलावे कि तुम अपने धर्म को इस राजा के पुत्र या भाई की सिखाओ। वह मान ले-तो राजा से भीतर से बिगड़े हुए पुरुषोंको धन या सेना द्वारा अपने वश में लावे। जब युद्ध का प्रारम्भ हो जावे-तो सुरा (शराब) बेचने वालों के रूप में गुप्तचर, अपने पुत्र, भार्या के मर जाने के बहाने प्रेत निमित्त दान किए हुए सैकड़ों मद्यों के घट वहां लाकर उन सब को पिला देवे। उनमें धतूरे का रस या विपरस मिला होना चाहिए। सत्री गुप्तचर, धर्मस्थान, देवालय, तथा रक्षा स्थानों पर प्रतिज्ञा के निश्चय कराने को सुवर्ण की मुद्रा के चिन्ह से युक्त सुवर्ण के पात्र देवे। जब सारे संघ के लोग देख लें- वे पात्र राजा की ओर से आये हैं, ऐसा सूचित कर दिया जावे। जब सब लोग अपनी इच्छानुसार फंस जावें-तो विजेता शत्रु पर चढ़ाई कर देवे ॥ २६-३२ ॥

संघानां वा वाहनहिरण्ये कालिके गृहीत्वा संघमुख्याय प्रख्यातं द्रव्यं प्रयच्छेत् ॥ ३३ ॥ तदेपां याचिते दत्तममुष्मै मुख्यायेति ब्रूयात् ॥ ३४ ॥ एतेनस्कन्धावाराट्टयीभेदो न्याख्यातः ॥ ३५ ॥ संघमुख्यपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्री ग्राहयेत् ॥ ३६ ॥ अमुष्य राज्ञः पुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह

न्यस्तो ऽसीति ॥ ३७ ॥ प्रतिपन्नं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य संघेषु विक्रमयेत्
॥ ३८ ॥ अवाप्तार्थस्तमपि प्रवासयेत् ॥ ३९ ॥

संघ को देने के निमित्त वाहन या हिरण्य का कुछ समय के लिए बायदा करके सत्री गुप्तचर उसे संघ के मुख्य पुरुष को सबकी जानकारी में दे देवे । जब वे लोग मांगे तो कह दें-कि तुम्हारे मुख्य पुरुष को दे दिया है-लेलो । मुख्य पुरुष क्यों देने लगा है, इस प्रकार इनमें फूट पड़ जावेगी । इसी तरह छावनी में रहने वाले आटविक पुरुषों में छलवाई जावे । सत्री नामक गुप्तचर, संघ के मुख्य अभिमानी पुत्र को इस प्रकार समझावे, कि तू तो अमुक राजा का पुत्र है, शत्रु के भय से यहां रख छोड़ा है । यदि उसको विश्वास हो जावे-तो उसे धन और सेना की सहायता देकर उस संघ से ही लड़ा देवे । जब अपना काम सिद्ध हो जावे-तो उसे भी निकाल देवे ॥३३-३९॥

वन्धकीपोपकाः प्लवकनटनर्तकसौभिका वा प्रणिहिताः स्त्रीभिः परमरूप-
यौवनाभिः संघमुख्यानुन्मादयेयुः ॥ ४० ॥ जातकामानामन्यतमस्य प्रत्ययं
कृत्वान्यत्र गमनेन प्रसमहरणेन वा कलहानुत्पादयेयुः ॥ ४१ ॥ कलहे तीक्ष्णः कर्म
कुर्युः ॥ ४२ ॥ हतो ऽयमित्यं कामुक इति ॥ ४३ ॥

वेश्याओं के पोपक अथवा नट, नर्तक, प्लवक (कूदने वाले) या भांड के रूप में रहने वाले राजपुरुष, संघ के मुख्य पुरुषों को सुन्दर २ स्त्रियों के द्वारा मोहित करवावे । जब किसी एक कामिनी पर कइयों का मन चला जावे-तो एक को उसका विश्वास कराके किसी दूसरे के पास भिजवा देवे या बल पूर्वक हरण करा देवे-इस प्रकार उनमें कलह की उत्पत्ति हो जावेगी । जब कलह हो जावे-तो तीक्ष्ण पुरुष शस्त्र आदि के द्वारा अपना काम करवाले और प्रसिद्ध कर देवें कि ये कामी जन परस्पर के कलह में इस प्रकार मारे गए ॥४०-४३॥

विसंवादितं वा मर्षयमाणमभिसृत्य स्त्री ब्रूयात् ॥ ४४ ॥ असौ मां मुख्यस्त्वयि
जातकामां वाधते ॥ ४५ ॥ तस्मिंजीवति नेह स्थास्यामीति घातमस्य प्रयोजयेत्
॥ ४६ ॥ प्रसह्यापहृता वोपवनान्ते क्रीडागृहे वापहर्तारं रात्रौ तीक्ष्णेन वातयेत्
॥ ४७ ॥ स्वयं वा रसेन ॥ ४८ ॥ ततः प्रकाशयेत् ॥ ४९ ॥ अमुना मे प्रियो
हत इति ॥ ५० ॥

यदि भगड़े की बात खड़ी हो जाने पर भी एक मुख्य पुरुष भगड़े की ओर न चले तो उसके पास जाकर स्त्री कहें, कि यह अधिकारी मुझे आपके पास आने से रोकता है क्या

करूं-मैं तो आप को हृदय से चाहती हूं । जब तक यह जीवेगा मैं आपके पास नहीं ठहर सकती हूं । इस प्रकार एक के विनाश के लिए दूसरे को प्रयुक्त करे । जो मुख्य पुरुष जिस स्त्री को बल पूर्वक छीन ले गया-वह बगीचे में या क्रीड़ागृह में अपने को ले जाने वाले मुख्य पुरुष को रात में तीक्ष्ण पुरुष द्वारा मरवा डाले अथवा स्वयं ही विष दे देवे और यह प्रसिद्ध कर देवे, कि अमुक पुरुष ने मेरे प्रेमी को मरवा डाला ॥४४-५०॥

जातकामं वा सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीभिरोपधीभिः संवास्य रसेनातिसं-
धायापगच्छेत् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्नपक्रान्ते सन्निगः परप्रयोगमभिर्शंसेयुः ॥५२॥
आढयंविधवा गूढाजीवा योगस्त्रियो वा दायनिक्षेपार्थं विवदमानाः संघमुख्यानु-
न्मादयेयुरिति ॥ ५३ ॥ अदितिकौशिकस्त्रियो नर्तकी गायनावा ॥ ५४ ॥
प्रतिपन्नान्गूढवेशमसु रात्रिसमागमप्रविष्टांस्तीक्ष्णा हन्युर्वध्वा हरेयुर्वा ॥ ५५ ॥

जब किसी संघ के मुख्य पुरुष की किसी स्त्री में कामना उत्पन्न हो जावे, तो सिद्ध तपस्वी का वेप बनाकर गुप्तचर, वशीकारक ओपधियों के बहाने से उसे विष देकर चलता बने, जब वह चला जावे, तो पूर्व स्थित सत्री गुप्तचर किसी दूसरे शत्रु द्वारा उसका मारा जाना प्रसिद्ध कर देवे । मालदार विधवा, गुप्तचर वृत्ति से जीविका करने वाली या स्त्री का वेपधारी पुरुष ही दायभाग या धरोहर का झगड़ा लेकर संघ के मुख्य पुरुषों को झंझट में डाल देवे । देवताओं के चित्र दिखाकर जीविका करने वाली, सपेरन, नटनी या वेश्या भी इन कामों को कर सकती है । जब ये इन स्त्रियों के विश्वास में फंस जावें-तो गुप्त घरों में रात के समय समागम के ध्यान से प्रविष्ट मुख्य पुरुषों को तीक्ष्ण पुरुष मार डाले या बांध लेवे ॥५१-५५॥

सत्त्री वा स्त्रीलोलुपं संघमुख्यं प्ररूपयेत् ॥ ५६ ॥ अमुष्मिन्ग्रामे दरिद्र-
कुलमपसृतम्, तस्य स्त्री राजार्हा, गृहाणैनामिति ॥ ५७ ॥ गृहीतायामर्धमासा-
नन्तरं सिद्धव्यञ्जनो दूष्यसंघमुख्यं मध्ये प्रकोशेत् ॥ ५८ ॥ असौ मे मुख्यां
भार्यां स्नुषां भगिनीं दुहितरं वाधिचरतोति ॥ ५९ ॥ तं चेत्संघो निगृहणीया-
द्राजैनमुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेत् ॥६०॥ अनिगृहीते सिद्धव्यञ्जनं रात्रौ तीक्ष्णाः
प्रवासयेयुः ॥ ६१ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रकोशेयुः ॥ ६२ ॥ असौ ब्रह्महा ब्राह्म-
णीजारश्चेति ॥ ६३ ॥

सत्री गुप्तचर किसी स्त्री के लालची कामी संघ के मुख्य पुरुष को कहे, कि अमुक ग्राम में एक दरिद्र कुल है, उसके पुरुष विदेश चले गए हैं, उसकी स्त्री राजा के योग्य

है-आप उसे ग्रहण कर लें ! जब वह उसको रख लेवे-तो अर्धमास के अनन्तर बिगड़े हुए उस संघ के अधिकारी के विषय में सब लोगों से तपस्वी का वेशधारी कोई पुरुष कहे कि मेरी सुन्दर भार्या, पुत्र-वधू भामिनी या वेटी को छीन लाया है । यदि संघ के लोग उसके इस काम से असन्तुष्ट होकर उसे पकड़े लें-तो राजा उसको छुड़ाकर उन संघ के बिगड़े लोगों से भिड़ा देवे । यदि उसे वे लोग न पकड़े-तो उस पुकारने वाले तपस्वी को रात में तीक्ष्ण पुरुष मार डाले और उसी रूप के अन्य पुरुष पुकारें, कि यह संघ का मुखिया ब्रह्महत्यारा और ब्राह्मणी का भोगने वाला है ॥५६-६३॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा कन्यामन्येन वृतामन्यस्य प्ररूपयेत् ॥ ६४ ॥
 अमृष्य कन्या राजपत्नी राजप्रसविनी च भविष्यति ॥ ६५ ॥ सर्वस्वेन प्रसह्य
 वैनां लभस्वेति ॥ ६६ ॥ अलभ्यमानायां परपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ ६७ ॥ लब्धायां
 सिद्धः कलहः ॥ ६८ ॥ भिक्षुकी वा प्रियभार्यं मुख्यं ब्रूयात् ॥ ६९ ॥ असौ ते
 मख्यो यौवनोत्सिक्तो भार्यायां मां प्राहिणोत् ॥ ७० ॥ तस्याहं भयाल्लेख्यमा-
 भरणं गृहीत्वाऽऽगतास्मि ॥ ७१ ॥ निर्दोषा ते भार्या ॥ ७२ ॥ गूढमस्मिन्प्रति-
 कर्तव्यम् ॥ ७३ ॥ अहमपि तावत्प्रतिपत्स्यामीति ॥ ७४ ॥

ज्योतिषी के वेश में घूमने वाला गुप्तचर किसी अन्य से वरण की हुई कन्या को अन्य द्वारा ग्रहण कराने की चेष्टा करे । वह कहे, कि इस व्यक्ति की कन्या राजपत्नी और राजमाता होगी, क्योंकि इसके लक्षण या ग्रह ऐसे ही पड़े हैं । अब तुम सर्वस्व देकर या बल-पूर्वक इसे छीन लाओ । यदि वह प्राप्त न कर सके-तो दूसरे पक्ष को भड़का देवे, कि यह प्राप्त करना चाहता था, परन्तु बलात् लेजा नहीं सका और यदि ले गया-तो कलह अवश्यम्भावी है । कोई भिक्षुकी किसी संघ के मुख्य पुरुष से “जो अपनी ही भार्या से बड़ा प्रेम करता है” कहे, कि अमुक संघ का अधिकारी अपनी जवानी के मद में भरकर तुम्हारी भार्या के पास दूती बनाकर भेजना चाहता था । उसके भय से मैं उसका पत्र और अभूषण लेकर आ भी गई हूँ । तुम्हारी स्त्री निर्दोष है और उसे अभी तक कुछ पता नहीं है । तुम चुपचाप इस दुष्ट को मरवा डालो । मैं भी तब तक तुम्हारे ही पास रहूंगी ॥६४-७४॥

एवमादिषु कलहस्थानेषु स्वयमत्पन्ने वा कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा हीन-
 पक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा ॥ ७५ ॥
 संघेष्वेवमेकराजो वर्तेत ॥ ७६ ॥ संघाश्चाप्येवमेकराजादेतेभ्यो ऽतिसंधानेभ्यो
 हृत्तयेयुः ॥ ७७ ॥

जब इस प्रकार कलह के ढंग स्वयं बन जावें या तीक्ष्ण पुरुषों द्वारा कलह चल पड़े-तो दुर्बल पक्ष को सहायता देकर विगड़े हुए लोगों से लड़ा देवे और यदि वह न लड़े तो अपने यहां से भी निकाल देवे । विजेता राजा इस ढंग से संघों के मध्य में पूर्ण अधिकार से रहे । संघ के लोग भी, इस प्रकार के व्यवहार करने वाले राजाओं के इन जालों से अपनी भलाई के निमित्त रक्षा करते रहें ॥७५-७७॥

संघमुख्यश्च संघेषु न्यायवृत्तिहितः प्रियः ।

दान्तो युक्तजनस्तिष्ठेत्सर्वचित्तानुवर्तकः ॥ ७८ ॥

इति संघवृत्ते एकादशे ऽधिकरणे भेदोपादानानि, उपांशुदण्डश्च प्रथमो ऽध्यायः ।

आदितः पञ्चविंशच्छतः ॥ १३५ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य

संघवृत्तमेकादशमधिकरणं समाप्तम् ॥ ११ ॥

संघ का मुख्य पुरुष, अपने संघ में न्यायानुसार प्रिय वृत्ति धारण करे । वह उदार रह कर योग्य पुरुषों के साथ अपना सहयोग रखे और सब साधियों के चित्त को अनुकूल बनाये रहे ॥७८॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत संघवृत्त नामक अधिकरण में भेद के ढंग और

गुपचुप मारण के प्रयोगों के वर्णन का पहला अध्याय समाप्त हुआ ।



आवलीयसं द्वादशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१६२ वां प्रकरण

दूतकर्म

इस प्रकरण में दूत के कर्मों का निरूपण किया जावेगा।

वलीयसाभियुक्तो दुर्वलः सर्वत्रानुप्रणतो वेतसधर्मा तिष्ठेत् ॥१॥ इन्द्रस्य
हि स प्रणमति यो वलीयसो नमतीति भारद्वाजः ॥ २ ॥ सर्वसंदोहेन बलानां
युध्येत ॥ ३ ॥ पराक्रमो हि व्यसनमपहन्ति ॥ ४ ॥ स्वधमैश्वर्य क्षत्रियस्य ॥५॥
युद्धे जयः पराजयो वेति विशालाक्षः ॥ ६ ॥ नेति कौटल्यः ॥७॥ सर्वत्रानुप्रणतः
कुलैडक इव निराशो जीविते वसति ॥८॥ युध्यमानश्चाल्पसैन्यः समुद्रमिवाप्लवो-
ज्वगाहमानः सीदति ॥ ९ ॥ तद्विशिष्टं तु राजानमाश्रितो दुर्गमविषहं वा
चेष्टेत् ॥ १० ॥

जब बलवान् राजा, निर्बल पर आक्रमण करे-तो निर्बल राजा, सर्वदा नमस्कार करता हुआ बलवान् के सम्मुख वेंत की तरह झुक जावे। भारद्वाज मुनि कहते हैं, कि जो बलवान् को झुकता है, वह तो इन्द्र को झुक रहा है, बलवान् तो एक प्रकार का इन्द्र है। विशालाक्ष आचार्य कहते हैं, कि सारी सेनाओं का बल लगाकर निर्बल भी लड़जावे। पराक्रम ही विपत्ति को नाश कर देता है। क्षत्रिय का युद्ध करना ही धर्म है। युद्ध में तो जय या पराजय एक बात होती ही है। कौटल्याचार्य, इन दोनों मतों को नहीं मानते। वे कहते हैं, कि जब सब कामों में ही निर्बल को झुकना पड़ा-तो वह तो कुर्बानी के भेंडे के समान अपने जीवन में भी निराशा हो जावेगा। यदि थोड़ी सेना लेकर युद्ध में कूद पड़ेगा-तो बिना नौका के समुद्र में कूदने के तुल्य झूब-जावेगा, इससे किसी शक्तिशाली राजा का आश्रय लेवे या अविषह-दुर्ग में बैठ कर अपने विजयी होने की बुद्धिमत्ता से चेष्टा करता रहे ॥१-१०॥

त्रयोऽभियोक्तारो धर्मलोभासुरविजयिन इति ॥११॥ तेषामभ्यवपत्त्या धर्म-
विजयी तुप्यति ॥ १२ ॥ तमभ्यवपद्येत् परेषामपि भयात् ॥ १३ ॥ भूमिद्रव्य-
हरणेन लोभविजयी तुप्यति ॥१४॥ तमर्थेनाभ्यवपद्येत् ॥१५॥ भूमिद्रव्यपुत्रदार-
प्राणहरणेनासुरविजयी ॥१६॥ तं भूमिद्रव्याभ्यामुपगृह्याग्राह्यः प्रतिकुर्वीत ॥१७॥

आक्रमण करने वाले धर्म विजयी, लोभ विजयी और असुर-विजयी-इस प्रकार
तीन तरह के होते हैं। मैं तेरे अधीन हूँ, इतना कहते ही धर्म विजयी सन्तुष्ट हो जाता है।
ऐसे धर्मात्मा राजा का आश्रय लिए रहे, क्योंकि इसके आश्रय के कारण अन्य शत्रुओं को
भी भय बना रहेगा। भूमि द्रव्य के अपहरण से लोभी विजेता सन्तुष्ट हो जाता है,
इसलिए उसको धन देकर सन्तुष्ट कर लेवे। जो असुर भाव के साथ विजय करता है,
वह तो भूमि, द्रव्य, पुत्र, स्त्री और प्राणों के अपहरण से ही निवृत्त होता है। उसको भी
भूमि और द्रव्य देकर शान्त करे और उसका विश्वास न करके उसके प्रतीकार की
चेष्टा करते रहे ॥११-१७॥

तेषामुत्तिष्ठमानं संधिना मन्त्रयुद्धेन कूटयुद्धेन वा प्रतिव्यूहेत् ॥१८॥ शत्रुपक्ष-
मस्य सामदानाभ्याम् ॥ १९॥ स्वपक्षं भेददण्डाभ्याम् ॥ २० ॥ दुर्गं राष्ट्रं
स्कन्धावारं वास्य गूढाः शस्त्रसाग्निभिः साधयेयुः ॥ २१ ॥ सर्वतः पार्श्विमस्य
ग्राहयेत् ॥ २२ ॥ अट्वीभिर्वा राज्यं घातयेत् ॥ २३ ॥ तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां
वा हारयेत् ॥ २४ ॥

जब ये आक्रान्ता चढ़ाई करें-तो कूट मन्त्र या कूट युद्ध द्वारा उनका मुकाबिला
किया जावे। इसके शत्रु पक्ष को भी साम और दान से सन्तुष्ट करे। अपने विगड़े हुए
अमात्य आदि को भेद या दण्ड से वश में करे तथा शत्रु के दुर्गपाल राष्ट्र और छावनी
को गुप्तचर शस्त्र, विष और अग्नि से नष्ट कर देवे तथा जब २ समय मिले इसकी
राजधानी पर पीछे से आक्रमण करावे। वनचर भीलों से इसके राज्य में मार काट
मचवा देवे या उसके कुल के लोग और किसी बन्धन में लिए हुए पुरुष से उसका
पीछा करवावे ॥१८-२४॥

अपकारान्तेषु चास्य दूतं प्रेषयेत् ॥ २५ ॥ अनपकृत्य वा संधानम् ॥२६॥
तथाप्यभिप्रयान्तं कोशदण्डयोः पादोत्तरमहोरात्रोत्तरं वा संधिं याचेत् ॥ २७ ॥

जब इस प्रकार इसको हानि पहुंचा देवे तो फिर सन्धि के निमित्त दूत भेजे।
यदि किसी भी प्रकार 'अपकार न' कर सके-तो भी उससे सन्धि की याचना करे। इतने
पर भी वह चढ़ाई करना चाहे, तो कोश और सेना में एक पाद और वृद्धि करके सन्धि

कर लेवे अर्थात् कुछ द्रव्य और सेना अधिक सुपुर्द कर देवे और सन्धि के लिए प्रयत्न करे ॥२५-२७॥

स चेदण्डसंधिं याचेत कुण्ठमस्मै हस्त्यश्वं दद्यादुत्साहितं वा गरयुक्तम् ॥२८॥ पुरुषसंधिं याचेत दूष्यामित्राटवीवलमस्मै दद्याद्योगपुरुषाधिष्ठितम् ॥२९॥ तथा कुर्याद्यथोभयविनाशः स्यात् ॥ ३०॥ तीक्ष्णबलं वास्मै दद्यात् यदवमानितं विकुर्वीत ॥ ३१ ॥ मौलमनुरक्तं वा, यदस्य व्यसने ऽपकुर्यात् ॥ ३२ ॥

यदि आक्रमणकारी राजा, सेना की शर्त से ही सन्धि करे-तो उसको रही हाथी, अश्व, देवे या उन्हें ऐसा विष खिला देवे, कि वह थोड़े दिन में वहां जाकर मर जावे । यदि विजेता, पुरुष सन्धि करना चाहें, तो भीतर से विगड़े हुए पुरुष, शत्रु या जङ्गली सेना को इसके सुपुर्द कर देवे जिसमें धोखे से अपने पुरुष घुसे हुए हों । वे वहां ऐसा उपाय करें-कि जिससे दोनों का नाश हो जावे, अथवा उसको तीक्ष्ण सेना दे देवे, जिससे कभी उसका अपमान करते ही वह विगड़ उठे अथवा अपनी प्रधान सेना या अनुरक्त सेना को शत्रु को दे देवे, जिससे कभी विपत्ति पड़े-तो वह अपना साथ देवे ॥२७-३२॥

कोशसंधिं याचेत सारमस्मै दद्याद्यस्य क्रेतारं नाधिगच्छेत् ॥ ३३ ॥ कुप्यमयुद्धयोग्यं वा ॥ ३४ ॥ भूमिसंधिं याचेत प्रत्यादेयां नित्यामित्रामनपाश्रयां महाक्षयव्ययनिवेशां वास्मै भूमिं दद्यात् ॥ ३५ ॥ सर्वस्वेन वा राजधानीवर्जेन संधिं याचेत बलीयसः ॥ ३६ ॥

यदि विजेता कोश (धन) लेकर ही सन्धि चाहे, तो उसे इतनी कीमती सार वस्तु देवे, कि जिससे उसे खरीदने वाला न मिले अथवा ऐसी धातु की चीजे देवे-जो युद्ध में काम न आ सके । यदि विजेता, भूमि द्वारा सन्धि का अभिलाषी हो-तो उसको ऐसी भूमि देवे-जो फिर आसानी से लौटाई जा सके । जिसमें सदा शत्रु का भय हो तथा जहां कोई दुर्ग भी न बन रहा हो । यदि उसको बसाया जावे-तो बड़ा जनक्षय और धन का व्यय होवे । यदि बलवान् शत्रु किसी तरह भी न माने तो अपनी केवल राजधानी बचाकर उसे सब कुछ भी दे डाले और सन्धि करलेवे ॥३३-३६॥

यत्प्रसह्य हरेदन्यः तत्प्रयच्छेदुपायतः ।

रक्षेत्स्वदेहं न धनं का ह्यनित्ये धने दया ॥ ३७ ॥

इत्यावलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे दूतकर्माणि संधियाचन प्रथमो ऽध्यायः ॥१॥

आदितः षट्त्रिंशच्छतः ॥ १३६ ॥

राजा, जिस धन को बल-पूर्वक छीनता है, उसे वंसी राजा को किसी उपाय से लौटा देवे। धन से असन्तुष्ट हुआ राजा कहीं धोखे से प्राण न ले लेवे। अतएव अपनी देह की रक्षा करे, अनित्य धन की लालसा ठीक नहीं है ॥३७॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आवलीयस अधिकरण में दूत कर्म द्वारा सन्धि करने का पहला अध्याय समाप्त हुआ।



दूसरा अध्याय

१६३ वां प्रकरण

मन्त्रयुद्ध

इस प्रकरण में बुद्धिमत्ता से युद्ध करने के उपायों का वर्णन किया जावेगा।

स चेत्संधौ नावतिष्ठेत त्रयादेनमः—॥ १ ॥ इमे षड्वर्गवशगा राजानो विनष्टाः तेषामनात्मवतां नार्हसि मार्गमनुगन्तुम् ॥२॥ धर्ममर्थं चावेक्षस्व ॥३॥ मित्रमुखा ह्यमित्रास्ते ये त्वां साहसमधर्ममर्थातिक्रमं च ग्राहयन्ति ॥ ४ ॥ शूरैस्त्यक्तात्मभिः सह योद्धुं साहसम् ॥ ५ ॥ जनक्षयमुभयतः कर्तुम धर्मः ॥६॥ दृष्टमर्थं मित्रमदुष्टं च त्यक्तुमर्थातिक्रमः ॥ ७ ॥

यदि शत्रु, सन्धि न करे या सन्धि पर कायम न रहे-तो उसको इस प्रकार समझावे, कि जो राजा, काम, क्रोध लोभ, मान, मद और हर्ष के वश में हो गये वह नष्ट हो गए हैं, अतएव तुम्हें ही धर्म राजाओं का सा आचरण नहीं करना चाहिए। तुम ही धर्म और राजनीति की ओर नहीं देखोगे-तो कौन देखेगा। तुम धर्म और नीति को देखो। जो तुम्हें युद्ध नीति और धर्म का अति क्रमण करने को उत्तेजित कर रहे हैं, वे तुम्हारे शत्रु हैं, उनको तुम ऊपर के मित्र समझो अपने जीवन की परवाह न करके शूरवीर लोग जिसमें लड़ने को उत्तर पड़ते हैं, उसे साहस युद्ध कहते हैं। दोनों ओर के जनों का विश्वास कर लेना ही अधर्म है। अपना दृढ़ स्वार्थ और उत्तम प्रेमी मित्र का त्याग नीति का अतिक्रमण समझो ॥१-७॥

मित्रवांश्च स राजा भूयश्चैतेनार्थेन मित्राण्युद्योजयिष्यति यानि त्वा सर्वतोऽभियास्यन्ति ॥ ८ ॥ न च मध्यमोदासीनयोर्मण्डलस्य वा परित्यक्तः ॥ ९ ॥ भवांस्तु परित्यक्तो ये त्वां समुद्युक्तमुपप्रेक्षन्ते ॥ १० ॥ भूयः क्षयव्ययाभ्यां युज्यताम् ॥ ११ ॥ मित्राच्च मिथ्यताम् ॥ १२ ॥ अर्थेन परित्यक्तमूलं सुखेनो-

च्छेत्स्याम इति ॥ १३ ॥ स भवान्नार्हति मित्रमुखानाममित्राणां श्रोतुं मित्राण्यु-
द्वेजयितुममित्रांश्च श्रेयसा योक्तुं प्राणसंशयमनर्थं चोपगन्तुमिति यच्छेत् ॥ १४ ॥

जिस राजा से तुम लड़ने चले हो उसके बहुत से मित्र हैं, फिर जो तुम्हें धन देना है वह उसी से अपने मित्रों को जुटा लेगा, जो तुझे सब ओर से घेर लेंगे । मध्यम उदासीन तथा राज मण्डल किसी ने भी उसका परित्याग नहीं कर रखा है । तुमको तो इन मध्यम उदासीन आदि राजाओं ने छोड़ सा दिया है, जो तुमको युद्ध के लिए सन्नद्ध देखकर भी चुपचाप तमाशा देख रहे हैं । इनकी तो यही इच्छा दिखाई देती है, कि तुम्हारा जन और धन का फिर विनाश हो जावे । तुम अपने मित्रों से अलग हो जाओ और फिर जड़ कट जाने पर हम लोग इसे सुख से जीत लेवें, इस लिए तुम मित्र रूपधारी शत्रुओं की बात मत सुनो और न अपने मित्रों को शत्रु बनाओ । इससे तो तुम्हारे शत्रुओं का ही भला होगा और तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जावेंगे ॥ ८-१४ ॥

तथापि प्रतिष्ठमानस्य प्रकृतिकोपमस्य कारयेद्यथासंघवृत्ते व्याख्यातं योगवामने च ॥ १५ ॥ तीक्ष्णरभदप्रयोगं च ॥ १६ ॥ यदुक्तमात्मरक्षितके रक्ष्यं तत्र तीक्ष्णान्सदांश्च प्रयुञ्जीत ॥ १७ ॥ बन्धकीपोपकाः परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिः सेनामुख्यानुन्मादयेयुः ॥ १८ ॥ बहूनामेकस्यां द्वयोर्वा मुख्ययोः कामे जाते तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ १९ ॥ कलहे पराजितपक्षं परत्रात्रापगमने यात्रासाहाय्यदाने वा भर्तुर्योजयेयुः ॥ २० ॥

इतना समझाने पर भी वह युद्ध के लिए तैयार ही रहे-तो इसकी अमात्य आदि प्रकृति को संघवृत्त तथा योगवामन प्रकरण में बताये हुए उपायों द्वारा इसके विरुद्ध कर देवे तथा छुपकर शस्त्र से मारने वाले तीक्ष्ण पुरुषों या त्रिष देने वाले पुरुषों से मरवा देवे । इसी तरह वेश्या वृत्ति के लोग, सुन्दर स्त्रियों के द्वारा इसके मुख्य २ सेना के पुरुषों को वश में कर लेवे । जब बहुत से सेनापति या दो ही एक स्त्री पर लट्टू हो जावे-तो तीक्ष्ण पुरुष अपने उपायों द्वारा उन पुरुषों में कलह उत्पन्न करा देवे । कलह में जो पक्ष पराजित हुआ, उसको दूसरे स्थान या विजेता की ओर ले जावे और विजेता की चढ़ाई की सहायता में उसे लगावे ॥ १५-२० ॥

कामवशान् वा सिद्धव्यञ्जनाः सांवननिकीभिरोषधीभिरिति संधानाय मुख्येषु रसं दापयेयुः ॥ २१ ॥ वैदेहकव्यञ्जनो वा राजमहिष्याः सुमगायाः प्रेष्यामासन्नां कामनिमित्तमर्थेनाभिवृष्य परित्यजेत् ॥ २२ ॥ तस्यैव परिचारकव्यञ्जनोपदिष्टः सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीमोषधीं दद्याद्-वैदेहकशरीरेऽवधातव्येति ॥ २३ ॥

सिद्धे सुभगाया अप्येनं योगपुपदिशेद्-राजशरीरेऽवधातव्येति ॥ २४ ॥ ततो
रसेनातिसंदध्यात् ॥ २५ ॥

यदि इस तरह न हो सके-तो काम के वशीभूत सेनापतियों को तपस्वी रूप में फिरने
वाले गुप्तचर, वशीकरण-ओपधियों के बहाने, उन्हें मार देने के लिए विष का प्रयोग
करें अथवा कोई व्यापारी के रूप में रहने वाला राजपुरुष, सुन्दर राजमहिषी की किसी
सुन्दर परिचारिका को बहुत सा धन देकर अपने पास मैथुन को बुलावे और उससे मैथुन
करके उसे बहुत सा धन देवे और उसे ही शत्रु राजा के मारने में प्रयुक्त करे। उसी व्या-
पारी के बने हुए नौकर, सिद्ध तपस्वी का वेश बनाकर उस दासी को वशीकरण की ओपधि
देवे, कि तुम इसे व्यापारी के शरीर में लंगा देना-वह वश में हो जावेगा। जब व्यापारी
वश में बन जावे, और रानी को विश्वास होगा तो रानी को भी अपने राजा के वशमें
करने का उपाय बताया जावे, कि तुम भी इस ओपधि को राजा पर छिड़को जब
वह तथ्यार हो जावे-तो उसको विष ओपधि देवे और उसके द्वारा राजा को मरवा
देवे ॥ २१-२५ ॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा महामात्रं राजलक्षणसंपन्नं क्रमाभिनीतं ब्रूयात्
॥ २६ ॥ भार्यामस्य भिक्षुकी-राजपत्नी राजप्रसविनी वा भविष्यसीति ॥ २७ ॥
भार्याव्यञ्जना वा महामात्रं ब्रूयात्—॥ २८ ॥ राजा क्लिप्तमामवरोधयिष्यति
॥ २९ ॥ ममान्तिकाय पञ्चलेख्यमाभरणं चेदं परिव्राजिकया हृतमिति ॥ ३० ॥
सूदारालिकव्यञ्जनो वा रसप्रयोगार्थं राजवचनमर्थं चास्य लोभनीयमभिनयेत्
॥ ३१ ॥ तदस्य वैदेहकव्यञ्जनः प्रतिसंदध्यात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिं च ब्रूयात्
॥ ३३ ॥ एवमेकेन द्वाभ्यां त्रिभिस्त्रिपुपायैरेकैकमस्य महामात्रं विक्रमायापगमनाय
वा योजयेदिति ॥ ३४ ॥

इसी तरह कोई ज्योतिषी, किसी प्रधान अधिकारी को कहे, कि तुम्हारे तो राजा
होने के लक्षण हैं और कोई तपस्वी उसकी स्त्री को कहे, कि तुम तो राजरानी और राज-
माता के लक्षणों से युक्त हो-इस तरह ये अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर देंगे। शत्रु
राजा के अफसर के साथ अपनी किसी गुप्तचर कन्या का विवाह करवादे। थोड़े दिन में
वह अपने पति से कहे, कि राजा अवश्य मुझे अपने निवास में डालेगा, देखो उसने यह
लेख और आभूषण किसी भिक्षुणी दूती के हाथ मेरे पास भेजे हैं। इस तरह भी उनमें
झगड़ा हो जावेगा। इसी तरह इस बड़े अधिकारिणी के तोड़ने के लिए कोई रसोइया या

मांसपाचक उस अधिकारी से कहे, कि राजा तुम्हें विप दिलाने को कह रहा है और धन देने को उद्यत है। उसी समय कोई व्यापारी रूप में रहने वाला गुप्तचर भी इस बात का अनुमोदन करे, कि हां राजा ऐसा चाहता है, उसने इस रसोइये पर मेरे हाथ विप विक-वाया है। इस तरह एक, दो या तीनों उपायों से पृथक् २ महामात्यों (बड़े अफसरों) को अपने अनकूल बनाकर उन्हें राजा से लड़ने या वहां से खसक जाने को तय्यार कर देवे ॥ २६-३४ ॥

दुर्गेषु चास्य शून्यपालासन्नाः सन्निभः पौरजानपदेषु मैत्रीनिमित्तमावे-
दयेयुः ॥ ३५ ॥ शून्यपालेनोक्ता योधाश्चाधिकरणस्थाश्च ॥ ३६ ॥ कृच्छ्रगतो
राजा जीवन्नागमिष्यति न चा ॥ ३७ ॥ प्रसह्य वित्तमार्जयध्वममित्रांश्च हत इति
॥ ३८ ॥ बहुलीभूते तीक्ष्णाः पौरान्निशास्त्राहारयेयुर्मुख्यांश्चाभिहन्युः ॥ ३९ ॥
एवं क्रियन्ते ये शून्यपालस्य न शुश्रूषन्ते इति ॥ ४० ॥ शून्यपालस्थानेषु च
सशोणितानि शस्त्रवित्तबन्धनान्युत्सृजेयुः ॥ ४१ ॥ ततः सन्निभः शून्यपालो
यांतयति विलोपयति चेत्यावेदयेयुः ॥ ४२ ॥ एवं जानपदान्समाहर्तुर्भेदयेयुः ॥ ४३ ॥

शत्रु राजा के दुर्ग में रहने वाले, उसके पीछे से राजधानी के रक्षक अधिकारियों के समीप रहने वाले विजेता के गुप्तचर, अपनी मित्रता दिखाने को पुर मनुष्यों में यह बात फैलादे, कि शून्य-पाल (राजधानी-रक्षक-अफसर) ने सारे सेनापति और न्यायाधीशों को यह जता दी है कि राजा बड़े, संकट में उलझ गया है, न मालूम जीता भी आवेगा या नहीं। अब तुम इसको सहायता के लिए प्रजा से बल-पूर्वक धन छीनो और जो विरोध करे-उसे मरवां डालो। जब यह प्रवाह बहुत फैल जावे, तो पुरवासियों को विजेता के छुपे पुरुष लूट लेवे और मुख्य २ पुरुषों को मार भी देंगे। तथा सब जगह यह घोषणा सी कर दें, कि जो शून्यपाल की न मानेगा-उसकी यही दशा होगी। इसको सिद्ध करने को शून्यपाल के स्थानों में रक्त से भीगी हुई रस्सी और शस्त्र तथा धन बांधने के साधन डाल देवे। सत्री (राजा के गुप्तचर) लोग तो यही प्रसिद्ध करें, कि शून्यपाल ही सबको लुटवाता और मरवाता है। इस तरह शून्यपाल और प्रजा में भेद पड़ जावेगा। समाहर्ता (कलक्टर) से भी इसी तरह प्रजा के साथ भिड़ाने की चेष्टा की जावे ॥ ३५-४३ ॥

समाहर्तृपुरुषास्तु ग्राममध्येषु रात्रौ तीक्ष्णा हत्वा ब्रूयुः ॥ ४४ ॥ एवं
क्रियन्ते ये जनपदमधर्मेण बाधन्त इति ॥ ४५ ॥ समुत्पन्ने दोषे शून्यपालं
समाहर्तारं वा प्रकृतिकोपेन धातयेयुः ॥ ४६ ॥ तत्कुलीनमवरुद्धं वा प्रतिपा-
दयेयुः ॥ ४७ ॥

समाहर्ता के पुरुषों को रात में मारकर, वे ही घातक पुरुष, गांवों के बीच में यह बात उड़ावें, जो प्रजा को दुखी करता है, उसका यह हाल हो जाता है जब प्रजा को शून्यपाल और समाहर्ता के इस प्रकार के अन्याय जंच जावें, तो वे फिर उनके साथी लोगों को भड़का कर उन्हें मरवा डाले। और राजा के किसी बान्धव या अपने पास कैद में डाले हुए राजकुमार को राजधानी का अधिकारी बनादे ॥४४-४७॥

अन्तःपुरपुरद्वारद्रव्यधान्यपरिग्रहान् ।

दहेयुस्तांश्च हन्युर्वा ब्रूयुरस्यार्तवादिनः ॥ ४८ ॥

इत्यावलीयसे द्वादशे अधिकरणे दूतकर्मणि वाक्ययुद्धं मन्त्रयुद्धं द्वितीयो

अध्यायः ॥ २ ॥ आदितः सप्तत्रिंशच्छतः ॥ १३७ ॥

इस तरह विजेता, शत्रु राजा के अन्तःपुर (निवास) राजधानी द्वार, द्रव्य, और अनाज के भण्डारों को जला डाले, उन अधिकारियों या रक्षकों को मार डाले। फिर बड़े रोते चिल्लाते लोग, उस शत्रु राजा को यह समाचार सुनाकर घबड़ा दें ॥४८॥

इति श्रीकौटिलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आवलीयस अधिकरण में मन्त्रयुद्ध के वर्णन का

दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



तीसरा अध्याय

१६४-१६४वां प्रकरण

सेनामुख्यवधे मण्डल प्रोत्साहनम्

इस प्रकरण में शत्रु के सेनापतियों के वध के ढंग और उसके राज-मण्डल के उत्तेजित करने के उपायों का वर्णन किया जावेगा ।

राज्ञो राजवल्लभानां चासन्नाः सन्निष्ठाः पत्यध्वरथद्विपमुख्यानां राजा क्रुद्ध इति सुहृद्विश्वासेन मित्रस्थानीयेषु कथयेयुः ॥ १ ॥ बहुलीभूते तीक्ष्णाः कृतरात्रिचारप्रतीकारा गृहेषु स्वामिवचनेनागम्यतामिति ब्रूयुः ॥४॥ तान्निर्गच्छत एवाभिहन्युः ॥५॥ स्वामिसंदेश इति चासन्नान् ब्रूयुः ॥२॥ ये च प्रवासितास्तान्सन्निष्ठा ब्रूयुः ॥५॥ एतत्तद्यदस्माभिः कथितं जीवितुकामेनापक्रान्तव्यमिति ॥६॥

राजा या राजा के प्रियपात्रों के समीप रहने वाले सत्री लोग (गुप्तचरों) अपने मित्र बने हुए, पैदल, अश्व, रथ और हाथियों के अधिकारियों को मित्रता का विश्वास

दिलाते हुए यह बात सुनावें, कि राजा तुम पर कुपित हो गया है । जब इस प्रकार की चर्चा सब जगह फैल जावे, तो विजेता के तीक्ष्ण पुरुष, उन अधिकारियों के पास घरों पर रात में भी पहुंच जावें और कहें-कि तुमको राजा ने बुलाया है । जब वे चल पड़े-तो उनको गांव से बाहर ही मार डालें और उनके नौकरों से कह दें, कि यह स्वामी की आज्ञा थी । इस प्रकार शत्रु राजा और मण्डल में खूब तन जावेगी । जा संनापति, बाहर चले गए-उनसे वे गुप्तचर कहें, कि देखो, वही बात हुई जो हम कह रहे थे कि जो जीना चाहे-वह भाग जावे । तुम बचे रह गए हो और अन्य मारे गए-इससे बचे सेनापति भी राजा के पास न आवेंगे ॥१-६॥

येभ्यश्च राजा याचितो न ददाति तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ ७ ॥ उक्तः
शून्यपालो राजा ॥ ८ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ च मा याचते ॥ ९ ॥
मया प्रत्याख्याताः शत्रुसंहिताः ॥ १० ॥ तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ ११ ॥
॥ ११ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ १२ ॥

जिन पुरुषों ने राजा से जो याचना की और राजा ने किसी कारण से उसे न दिया-तो उन पुरुषों से गुप्तचर जाकर कहें, कि राजा ने अपनी राजधानी के रक्षक से कहा है, कि इन २ लोगों ने मुझ से अनुचित वस्तु की मांग की और मैंने इन्हें न दी, इससे ये लोग शत्रु से मिल गए हैं-अब तुम इनको मार डालो-जब यह बात फैल जावे, तब उनको मरवा डाले ॥७-१२॥

येभ्यश्च राजा याचितो ददानि तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ १३ ॥ उक्तः
शून्यपालो राजा ॥ १४ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ च मा याचते ॥ १५ ॥
तेभ्यो मया सो ऽर्थो विश्वासर्थं दत्तः, शत्रुसंहिताः ॥ १६ ॥ तेषामुद्धरणे
प्रयतस्वेति ॥ १७ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ १८ ॥

जिनको राजा ने मांगी हुई वस्तु देने का वायदा कर दिया, उनसे गुप्तचर कहें, कि राजा ने अपने शून्यपाल से कहा था, कि ये लोग मुझ से नहीं मांगने योग्य वस्तु मांगते हैं । मैंने भी उनको विश्वास के लिए वह वस्तु दे दी या दे देने का बहाना किया है । वे मेरे इस भाव को पहचानकर शत्रु से जा मिले हैं । तुम उनको उखाड़ डालो । इस तरह बात फैलने पर उनको मरवा डाले १३-१८॥

ये चैनं याच्यमर्थं न याचन्ते तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ १९ ॥ उक्तः शून्य-
पालो राजा ॥ २० ॥ याच्यमर्थमसौ चासौ च मा न याचते ॥ २१ ॥ किमन्यत्

स्वदोषशङ्कितत्वात् ॥ २२ ॥ तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ २३ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ २४ ॥ एतेन सर्वः कृत्यपक्षो व्याख्यातः ॥ २५ ॥

जो लोग मांगने योग्य वस्तु को भी राजा से न मांग रहें, हो उनसे विजेता के गुप्तचर इस प्रकार कहें कि राजा ने अपने शून्यपाल से कहा है, कि ये लोग, मांगने योग्य वस्तु भी मुझ से नहीं मांग रहे हैं। इसका अन्य कारण क्या हो सकता है। ये तो शत्रु से मिल जाने के अपराध से मेरे पास आने में भी डरते हैं। अब तुम इनका नाश करो और फिर बात के फैल जाने पर इन्हें मरवा डालो। इस तरह शत्रु का सारा मगड़ल तोड़ा फोड़ा जा सकता है ॥१६-२५॥

प्रत्यासन्नो वा राजानं सत्त्री ग्राहयेत् ॥ २६ ॥ असौ चासौ च ते महामात्रः शत्रुपुरुषैः संभाषत इति ॥ २७ ॥ प्रतिपन्ने दूष्यान्स्य शासनहरान्दर्शयेत् ॥ २८ ॥ एतत्तदिति ॥ २९ ॥ सेनामुख्यप्रकृतिपुरुषान्वा भूम्या हिरण्येन वा लोभयित्वा स्वेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा ॥ ३० ॥ यो ऽस्य पुत्रः समीपे दुर्गे वा प्रतिवसति तं सत्त्रिणोपजापयेत् ॥ ३१ ॥ आत्मसंपन्नतरस्त्वं पुत्रः तथाप्यन्तर्हितः ॥ ३२ ॥ तत्किमुपेक्षसे ॥ ३३ ॥ विक्रम्य गृहाण ॥ ३४ ॥ पुरा त्वा युवराजो विनाशयतीति ॥ ३५ ॥

राजा के समीपवर्ती सेवकों में पहुंचा हुआ विजेता का गुप्तचर, राजा को सुभावे, कि अमुक २ महामात्र (बड़े अफसर) तुम्हारे शत्रु पुरुषों से बातें करते हैं। इस के अनन्तर राजा से भीतरी असन्न पुरुषों को शत्रु के पास ले जाते हुए बनावटी पत्र को पकड़ा देवे कि देखो-यह सारा भगड़ा इस प्रकार है। इसी तरह सेना के अन्य मुख्य पुरुषों या अमात्य आदि को विजेता के गुप्तचर, भूमि, सुवर्ण आदि का लोभ देकर शत्रु राजा से लड़ा दें या वहां से उन्हें दूर भगा दें। जो शत्रु राजकुमार, किसी समीपवर्ती दुर्ग में रहता हो, उसको भी शत्रु राजा के विरुद्ध भड़का कर राज्य पर कब्जा करने को चढ़ा लावे। उससे कहें, कि तुम तो बड़े गुणों से सम्पन्न हो और सबसे समीपवर्ती हो। तुम क्यों प्रतीक्षा कर रहे हो। युद्ध छेड़ दो नहीं तो यह जो युवराज बना हुआ है, यह तुमको मरवा डालेगा ॥२६-३५॥

तत्कुलीनमवरुद्धं वा हिरण्येन प्रतिलोभ्य ब्रूयात् ॥ ३६ ॥ अन्तर्धूलं प्रत्यन्तस्कन्धमन्यं वास्य प्रमृद्नीहीति ॥ ३७ ॥ आटविकानर्थमानाभ्यामुपेगृह्य राज्यमस्य घातयेत् ॥ ३८ ॥ पर्णिग्राहं वास्य ब्रूयात् ॥ ३९ ॥ एष खलु

राजा मामुच्छिद्य त्वामुच्छेत्स्यति ॥ ४० ॥ पार्ष्णिमस्य गृहाण ॥ ४१ ॥ त्वयि-
निवृत्तस्याहं पार्ष्णिं ग्रहीष्यामीति ॥ ४२ ॥

यदि राजकुल का कोई वीर या राजकुमार कैद में डाला हुआ हो, तो उसे सुवर्ण के लोभ से दूषित करके कहें, कि तुम राजा के मूलजल या देश की सीमा पर स्थित सेना तथा अन्य किसी सेना पर आक्रमण करदो तथा जंगली भीलों को धन और मान से अपनी ओर मिलाकर इस राजा का राज्य नष्ट करदो और स्वयं राजा धन जाओ। इसी तरह शत्रु के पार्ष्णिग्राह (पीछे से आक्रमण करने वाला) राजा से कहे, कि यह राजा मुझे नष्ट करके तुम्हें भी नष्ट कर देगा, इसलिए तुम इसकी राजधानी पर इसके पीछे से आक्रमण करो-जब यह लौट पड़ेगा तो मैं इसपर पीछे से आक्रमण कर दूंगा ॥ ४०-४२ ॥

मित्राणि वास्य ब्रूयात् ॥ ४३ ॥ अहं वः सेतुः ॥ ४४ ॥ मयि विभिन्ने
सर्वनिष वो राजाहावयिष्यतीति ॥ ४५ ॥ संभूय वास्य यात्रां विहनाम इति
॥ ४६ ॥ तत्संहतानामसंहतानां च प्रेषयेत् ॥ ४७ ॥ एष खलु राजा मामुत्पात्य
भवंत्सु कर्म करिष्यति ॥ ४८ ॥ बुध्यध्वम्, अहं वः श्रेयानभ्यवपत्तुमिति ॥ ४९ ॥

इस शत्रु राजा के जो मित्र हों-उनसे कहे, कि केवल तुम्हारा सेतु (रक्षक) मैं ही हूँ। यदि मैं नष्ट भ्रष्ट हो गया-तो यह राजा सब पर जल प्रवाह की भांति छा जावेगा। अब हम सब लोग मिलकर इस पर चढ़ाई करें। इस तरह शत्रु राजा से मिले हुए या नहीं मिले हुए सभी राजाओं पर पत्र भेजे कि यह राजा मुझे उखाड़कर आपको भी उखाड़ेगा। मैं तुमको तुम्हारे कल्याण की बात बता रहा हूँ-तुम चेत जाओ ॥ ४३-४९ ॥

मध्यमस्य ग्रहिण्युदासीनस्य वा पुनः ।

यथासंनस्य मोक्षार्थं सर्वस्वेन तदर्पणम् ॥ ५० ॥

इत्यावलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे सेनामुख्यबंधः मण्डलप्रोत्साहनं च तृतीयो

ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितो ऽष्टत्रिंशच्छतः ॥ १३८ ॥

निर्वल राजा, मध्यम, उदासीन तथा अपने समीप के सारे राजाओं के पास अपने बचाव के निमित्त इस तरह का पत्र भेजदे और उनको अपने सर्वस्व अर्पण करके भी दास रहने का विश्वास दिलावे ॥ ५० ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आवलीयस अधिकरण में सेनापतियों के

मरवाने और राज मण्डल के विरुद्ध कराने का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

चौथा अध्याय

१६६-१६७वां प्रकरण

शस्त्राग्नि रस प्रणिधयो वीवधासारप्रसार वधः ।

इस प्रकरण में शस्त्र, अग्नि और विष के गुप्त प्रयोग तथा धान्य की प्राप्ति मित्र सेना का आगमन और लकड़ी घास आदि के शत्रु द्वारा इकट्ठे करने के उपायों के रोकने का वर्णन होगा ।

ये चास्य दुर्गेषु वैदेहकव्यञ्जनाः, ग्रामेषु गृहपतिकव्यञ्जनाः, जनपदसंधिषु गौरक्षकतापसव्यञ्जनास्ते सामन्तादधिकतत्कुलीनावरुद्धानां परयागारपूर्वं प्रेषयेयुः ॥ १ ॥ १ ॥ अयं देशो हार्य इति ॥ २ ॥ आगतांश्चैषां दुर्गं गूढपुरुषानर्थमानाभ्यामभिसंत्कृत्य प्रकृतिच्छिद्राणि प्रदर्शयेयुः ॥ ३ ॥ तेषु तैः सह ग्रहरेयुः ॥ ४ ॥

जो विजेता राजा के गुप्तचर, दुर्गों में व्यापारी, गांवों में गृहस्थी, देशों की सन्धियों (सरहदों) पर ग्वाले या तपस्वी के वेप में हों-वे शत्रु के सामन्त, जंगली भील और उसके किसी वंशज या रोके हुए राजकुमारों के पास में टिके द्रव्य के साथ दूत भेजें कि तुम लोग, राजा के इस प्रदेश पर अधिकार करलो । जब ये लोग गुप्तचर, दुर्ग में आ जावें-तो इनका धन और मान से सत्कार करके उनको शत्रु के अमात्य आदि के दोष अच्छी तरह दिखा देवे, जब वे समझ लें-तो उनको साथ लेकर शत्रु पर आक्रमण कर देवे ॥१-४॥

स्कन्धावारे वास्य शौण्डिकव्यञ्जनः पुत्रमभियुक्तं स्वापयित्वावस्कन्दकाले रसेन प्रवासयित्वा नैपेचनिकमिति मदनरसयुक्तान्मद्यकुम्भाच्छतशः प्रयच्छेत् ॥ ५ ॥ शुद्धं वा मद्यं माद्यं वा मद्यं दद्यादेकमहः ॥६॥ उत्तरं रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ७ ॥ शुद्धं वा मद्यं दण्डमुख्येभ्यः प्रदाय मदकाले रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ८ ॥

शत्रु की छावनी में कोई, सुरा विक्रेता का रूपधारी गुप्तचर, किसी अपराधी को अपना पुत्र बताकर चढ़ाई के समय उसे विष देकर मार डाले और उसके निमित्त यह सुरापान कराता हूँ-धतूरे आदि के विष के सहित सैंकड़ों घड़े उन सैनिकों को सुरा पिला देवे, जिससे वे मर जावे । किसी दिन सुरा विक्रेता के रूप में रहने वाला गुप्तचर, उन शत्रु सैनिकों को शुद्ध और नशीली मद्य देवे-इसके बाद विष मिली हुई शराब पिलावे ।

जो सेना के मुख्य पुरुष हैं, उनको प्रथम शुद्ध शराव पिलावे और जब वे नशे में चूर हो जावे-तब उन्हें जहरीली शराव पिला देवे ॥१५॥

दण्डमुख्यव्यञ्जनो वा पुत्रमभित्यक्तमिति समानम् ॥ ९ ॥ पक्वमांसि-
कौदनिकशौण्डिकापूपिकव्यञ्जना वा पण्यविशेषमवधोपयित्वा परस्परसंघर्षेण
कालिकं समर्घतरमिति वा परानाहूय रसेन स्वपण्यान्यपचारयेयुः ॥ १० ॥
सुराक्षीरदधिसर्पिस्तैलानि वा तद्वयवहर्तृहस्तेषु गृहीत्वा स्त्रियो बालाश्च रसयु-
क्तेषु स्वभाजनेषु परिकिरेयुः ॥ ११ ॥ अनेनार्घेण विशिष्टं वा भूयो दीयता-
मिति तत्रैवावकिरेयुः ॥ १२ ॥

इसी तरह विजेता का कोई गुप्तचर, शत्रु की सेना में मुख्य पुरुष बनकर किसी अपराधी को मरवा कर अपना पुत्र बतावे और उसी तरह विष युक्त मद्य-पिलाकर सबको मरवादे । पक्का मांस अन्न, सुरा और मालपूवे बड़े पकोड़ी बनाने वाले, गुप्तचर, अपने २ माल की प्रशंसा करके आपस में भागड़ कर उधार ही अपना सौदा शत्रु सैनिकों को बुलाकर विष के साथ खिला देवें । इस तरह सबका नाश हो जावेगा । सुरा, दूध, दही, घृत और तेल को उनके बेचने वालों से लेकर स्त्री और बालक अपन विपैले वर्तनों में भर लेवें । इसी मूल्य में वह घृत आदि भी दो-बे व्यापारी जब उस भाव में अच्छी चीज़ न देवें तो उन की ये सब चीज़े लौटा दे, जिस से वे विषयुक्त हो जावेंगी-उनको शत्रु के सैनिक जब मोल लेंगे-तो उनका नाश होगा ॥९-१२॥

एतान्येव वैदेहकव्यञ्जनाः पण्यविक्रयेणाहर्तारो वा हस्त्यश्वानां विधाय-
वसेषु रसमासन्ना दद्युः ॥ १३ ॥ कर्मकरव्यञ्जना वा रसाक्तं यवसमुदकं वा
विक्रीणीरन् ॥ १४ ॥ चिरसंसृष्टां वा गोवाणिजका गवामंजावीनां वा यूथान्यव-
स्कन्दकालेषु परेषां मोहस्थानेषु प्रमुञ्चयेयुः ॥ १५ ॥

इसी तरह अन्य व्यापारी बने हुए गुप्तचर, बेचने की चीज़ें लाकर हाथी और अश्वों के खाने के घास आदि में विष मिला देवें । सेना में घास जल लाने वाले सेवक, विष मिश्रित घास या जल ले जावें । बहुत दिन के मित्र बने हुए गायों के व्यापारी बने हुए गुप्तचर, अपनी गाय और भेड़ बकरियों को चढ़ाई के समय शत्रु के मोह करने को छोड़ देवे-जिससे विजेता आक्रमण करके उन्हें मार लेवे ॥१३-१५॥

अश्वखरोष्ट्रमहिषादीनां दुष्टांश्च तव्यञ्जना वा चुचुन्दरीशोणिताक्ताक्षान्
॥ १६ ॥ लुब्धकव्यञ्जना वा व्यालमृगान्पञ्जरेभ्यः प्रमुञ्चयेयुः ॥ १७ ॥ सर्पग्राहा-

वा सर्पानुग्रविषान् ॥ १८ ॥ हस्तिर्जीविनो वा हस्तिनः ॥ १९ ॥ अग्निजीविनां वाग्निमवसृजेयुः ॥ २० ॥

इसी तरह गुप्तचर अश्व, गधे, ऊंट और भैंसे आदि दुष्ट जीवों को छछूंदर का खून उनकी आंखों में आज कर सेना में छोड़ देवे । लुब्धक, गुप्तचर, भेड़िये, और सिंहों को शत्रु सेना में छोड़ देवे । सपेरे उपविषधारी सर्पों को और हाथिवाले गुप्तचर हाथियों को तथा प्रणिम लगाने वाले आग लगाकर शत्रुओं को मार डाले ॥ १६-२० ॥

गूढपुरुषा वा विमुखान्पत्न्यश्चरथद्विपमुख्यानभिहन्त्युः ॥ २१ ॥ आदीपये-
युर्वा मुख्यावासान् ॥ २२ ॥ दूष्यामित्राटविकव्यञ्जनाः पृथिहिताः पृष्ठाभि-
घातमवस्कन्दप्रतिग्रहं वा कुर्युः ॥ २३ ॥ वनगूढा वा प्रत्यन्तस्कन्धमुपनिष्कृष्या-
भिहन्त्युः ॥ २४ ॥

जब इस घमसान में पैदल, अश्व, रथ और हाथियों के मुख्य व्यक्ति, निकलकर जा रहे हों-तो छिपे हुए विजेता के तीक्ष्ण पुरुष उन्हें मार डाले और उनके घरों में आग लगा दे । दूष्य अमात्य, शत्रु, जङ्गली भील के रूप में बने हुए गुप्तचर, शत्रु की सेना को पीछे से या घेर कर मार डाले । इसी तरह वन में छुपे हुए पुरुष, देश सन्धि (सरहद) की सेना को धोखे से बुलाकर मार डाले ॥ २१-२४ ॥

एकायने धीवधासारप्रसारान्वा ॥ २५ ॥ ससङ्केतं वा रात्रियुद्धे भूरितूर्य-
माहत्य त्रूयुः ॥ २६ ॥ अनुप्रविष्टाः स्मो लब्धं राज्यमिति ॥ २७ ॥ राजावा-
समनुप्रविष्टा वा संकुलेषु राजानं हन्त्युः ॥ २८ ॥ सर्वतो वा प्रयातमेनं म्लेच्छा-
टविकट्टण्डवारिणः सन्त्रापाश्रयाः स्तम्भवाटापाश्रया वा हन्त्युः ॥ २९ ॥ लुब्ध-
कव्यञ्जना वावस्कन्दसंकुलेषु गूढयुद्धहेतुभिरभिहन्त्युः ॥ ३० ॥

शत्रु के घान्य, मित्र सेना और लकड़ी आदि को तंग मार्ग में नष्ट भ्रष्ट कर देवे । रात का युद्ध करके संकेत के सहित बहुत से वाजे बजा कर कहे, कि हम लोग शत्रु की सेना में घुस गए हैं, और राज्य दवा लिया है । अब राजमहल में घुसकर इस भीड़-भाड़ में राजा को मारे लेते हैं । सब ओर से जाते हुए इसको म्लेच्छ, जङ्गली भील या सेना के पुरुष मरुस्थल आदि के मार्ग में या आवरण सहित मार्ग में मार लेवे । शिकारी बने हुए गुप्तचर सबके इकट्ठे होने पर, कूट युद्ध द्वारा सबको मार लेवे ॥ २५-३० ॥

एकायने वा शैलस्तम्भवाटखञ्जनान्तरुदके वा स्वभूमिवलेनाभिहन्त्युः
॥ ३१ ॥ नदीसरस्तटाकसेतुवन्धभेदवेगेन वासावयेयुः ॥ ३२ ॥ धान्वनवननि-

मन्दुर्गस्थं वा योगाग्निधूमाभ्यां नाशयेयुः ॥ ३३ ॥ सङ्कटगतमग्निना धान्वनगतं
धमेन निधानगतं रसेन तोयावगाढं दुष्टग्राहैरुदकचरणैर्वा तीक्ष्णाः साध-
येयुः ॥ ३४ ॥

किसी तंग रास्ते पर्वत, ऊंची नीची भूमि, दलदल, या जलमार्ग से जाती हुई शत्रु
सेना को अपनी सेना से मरवा डाले। नदी, तालाब, सरोवरों के पुलों को तोड़कर ऐसे
मौकों पर शत्रु सेना को डुबोया भी जा सकता है। मरुस्थल, वन और नीचे ऊंचे के
दुर्गों में स्थित शत्रुओं योगों द्वारा उत्पन्न की हुई आग से नष्ट करे। घने जङ्गलों में
फँसे हुए को अग्नि से, मरुस्थल के दुर्ग में फँसे हुए को धूम से, नीचे के दुर्गों में फँसे
हुए शत्रु को विष से, जल में घुसे हुए पुरुषों को दुष्ट ग्राह तथा जल में जाने वाले अन्य
साधनों से तीक्ष्ण पुरुष मार लेवे ॥३१-३४॥

आदीप्तावासानिष्पतन्तं वा—॥ ३५ ॥

योगवामनयोगाभ्यां योगेनान्यतमेन वा ।

अभिन्नमतिसंदध्यात्सक्तमुक्तासु भूमिषु ॥ ३६ ॥

इत्यावलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे शस्त्राग्निरसप्रणिधयः वीवधासारप्रसारवधश्च

चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदित एकोनचत्वारिंशच्छतः ॥ १३६ ॥

आग लगने से प्रदीप्त घर से भागते हुए राजा को योग और वामन योग द्वारा
या इनमें से किसी एक योग द्वारा शत्रु के वश में कर लेवे चाहे शत्रु किसी दुर्ग भूमि
में पहुंच गया है या उससे पृथक् ही घूम रहा हो। योग और योग वामन साधन अधि०
१२ और १३ में लिखे हुए हैं ॥३५-३६॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आवलीयस अधिकरण में शस्त्र आदि के द्वारा

मारण और अन्न आदि की आमद की रुकावट के वर्णन का चौथा

अध्याय समाप्त हुआ ।



पांचवां अध्याय

१६८-१७०वां प्रकरण

योगातिसन्धानं, दण्डातिसन्धान मेकविजयः

इस प्रकरण में शत्रु और सेना को उपायों से बश में करने और अकेले राजा के विजयी होने के उपायों को बताया जावेगा।

देवतेज्यायां यात्रायामभिन्नस्य बहूनि पूज्यागमस्थानानि भक्तिः, तत्रास्य योगमुञ्जयेत् ॥ १ ॥ देवतागृहप्रविष्टस्योपरि यन्त्रमोक्षणेन गूढभित्तिं शिलां वा पातयेत् ॥ २ ॥ शिलाशस्त्रवर्षमुत्तमागारात् ॥ ३ ॥ कवाटमवपातितं वा, भित्तिप्रणिहितमेकदेशवन्धं वा परिवं मोक्षयेत् ॥ ४ ॥ देवतादेहस्थप्रहरणानि वास्योपरिष्ठात्पातयेत् ॥ ५ ॥ स्थानासनगमनभूमिषु वास्य गोमयप्रदेहेन गन्धोदकप्रसेकेन वा रसमतिचारयेत् पुष्पचूर्णोपहारेण वा ॥ ६ ॥ गन्धव्रतिच्छिन्नं वास्य तीक्ष्णं धूममतिनयेत् ॥ ७ ॥

जब कभी शत्रु, अपने देवता की पूजा या उसके उत्सव में सम्मिलित होने आ रहा हो, उस समय इन उपायों का प्रयोग सुलभता से किया जा सकता है। ऐसे पूजा के बहुत से समय आते हैं क्योंकि राजा अपनी भक्ति के अनुसार उनमें सम्मिलित होता ही रहता है। जब शत्रु राजा, के मन्दिर में प्रविष्ट हो जावे, तो उसके ऊपर यन्त्र द्वारा गुप्त भीत या शिला गिरा देने चाहिए या ऊपर के मकान से शिला और शस्त्रों की वर्षा करें अथवा किवाड़ों को उसपर गिरा दिया जावे तथा भीत में लगे हुए एक ओर से बंधे हुए अर्गल को ही शत्रु राजा पर गिरा दिया जावे। यदि मौका लग जावे-तो देवता की सजी हुई देह पर लगे हुए शस्त्र ही शत्रु राजा पर गिरवा देने चाहिए। जिधर २ शत्रु राजा जावे, उधर २ बैठने ठहरने, आने जाने की भूमि को गोबर और सुगन्धित जल के छिड़काव के बहाने विष छिड़कवा देवे या फूलों में विष मिलाकर राजा को सुंघवावे। इसी तरह सुगन्धि से व्याप्त विपैली धुआ को राजा के समीप पहुंचावे ॥१-७॥

शूलकूपमवपातनं वा शयनासनस्याधस्ताद्यन्त्रवद्धतलमेनं कीलमोक्षणेन प्रवेशयेत् ॥ ८ ॥ प्रत्यासन्ने वामित्रे जनपदाच्चानवरोधक्षममतिनयेत् ॥ ९ ॥ ॥ ९ ॥ दुर्गाच्चानवरोधक्षममपनयेत् ॥ १० ॥ प्रत्यादेयमरिबिषयं वा प्रेषयेत्

॥ ११ ॥ जनपदं चैकस्थं शैलवननदोदुर्गेष्वव्यवहितेषु वा पुत्रभ्रातृपरिगृहीतं
स्थापयेत् ॥ १२ ॥ उपरोधहेतवो दण्डोपनतवृत्ते व्याख्याताः ॥ १३ ॥

शत्रु राजा के सोने बैठने के नीचे एक कुआ खोदकर उसके मुख को अच्छी तरह
ढक दिया जावे । उसमें एक यन्त्र लगाया जावे, कि जिसकी कील निकालते ही राजा कुएं
में गिर पड़े । इस कुवे में त्रिशूल भाले डाले रहने चाहिए यदि शत्रु का राज्य अपने राज्य
की सीमा से भिड़ रहा हो-तो उसमें से बन्धन में डालने योग्य व्यक्तियों को पकड़वाकर
मंगवाता रहे और जो शत्रु ने पकड़ रखे हों उन्हें उनके दुर्ग से किसी तरह छुड़ा देवे ।
जो शत्रु को वापिस करता है, उसे शीघ्र वापिस कर देवे । जंगल में बने हुए पर्वत, नदी,
वन के दुर्गों में एक राजा के शासन में स्थित किसी राष्ट्र को उस राजा के पुत्र या भाई
के शासन में करा देवे । शत्रु की सेना के घेरने के प्रकारों का वर्णन, दण्डोपनत वृत्त
नामक प्रकरण में कर दिया गया है ॥८-१३॥

तृणकाष्ठमायोजनादाहयेत् ॥ १४ ॥ उदकानि च दूषयेत् ॥ १५ ॥
अवासावयेच्च ॥ १६ ॥ कूटकूपावपातकण्टकिनीश्वं वहिरुज्जयेत् ॥ १७ ॥
सुरङ्गामभिन्नस्थाने बहुमुखीं कृत्वा विचयमुख्यानभिहारयेत् ॥ १८ ॥ अमित्रं वा
॥ १९ ॥ परप्रयुक्तायां वा सुरङ्गायां परिखामुदकान्तिर्कीं खानयेत् ॥ २० ॥
कूपशालामनुसालं वा ॥ २१ ॥

शत्रु के एक योजन (चार कोश) तक की सीमा में तृण काष्ठ आदि को आग
लगाकर भस्म कर देवे । उसके पीने के पानी को दूषित कर देवे या वहां से बहा देवे ।
शत्रु सेना के आने के मार्ग में शूल डालकर धोखे के कूप बनवा देवे, जिसमें बहुत से
सैनिक गिरकर मर जावें । शत्रु के स्थान में एक बहुत से मुख की गुपचुप सुरङ्ग खुदा
देवे, जिसके खोजने में लगे हुए बहुत से शत्रुओं के मुख्य २ व्यक्तियों को चक्कर में
डालकर अपहरण कर लावे और मौका लगे तो शत्रु को ही उड़ा लावे । यदि शत्रु के
सुरङ्ग खोद लाने का भय हो-तो जल निकलने तक अपने दुर्ग के चारों ओर खाई खुदा
देवे या अपने महल तक चारों ओर गहरे कुवे बनवा देवे ॥१४-२१॥

अतोयकुम्भान्क्रांस्यभाण्डानि वा शङ्कास्थानेषु स्थापयेत्त्वाताभिज्ञानार्थम्
॥ २२ ॥ ज्ञाते सुरङ्गापथे प्रतिसुरङ्गां कारयेत् ॥ २३ ॥ मध्ये भित्त्वा धूममुदकं
वा प्रयच्छेत् ॥ २४ ॥ प्रतिविहितदुर्गो वा मूले दायादं कृत्वा प्रतिलोमामस्य
दिशं गच्छेत् ॥ २५ ॥ यतो या मित्रैर्बन्धुभिराढविकैर्वा संसृज्येत ॥ २६ ॥

परस्वामित्रैर्दूष्यैर्वा महद्भिः ॥ २७ ॥ यतो वा गतो ऽस्य मित्रैर्वियोगं कुर्यात्
॥ २८ ॥ पार्ष्णिं वा गृह्णीयात् ॥ २९ ॥ राज्यं वास्य हारयेत् ॥ ३० ॥
वीवधासारप्रसारान्वा वारयेत् ॥ ३१ ॥

शत्रु द्वारा खोदे हुए गड्ढों का पता लगाने के लिए खाली घड़े या कांसी के वर्तन शङ्का के स्थानों में डलवा देवे। यदि शत्रु की सुरङ्ग का इससे कुछ पता चल जावे, तो उसके मुक्ताविले में दूसरी सुरङ्ग खुदवा देवे। और शत्रु की सुरङ्ग को बीच से खुदवाकर उसमें धुआ या पानी भरवा देवे। यदि शत्रु प्रवृत्त हो और उससे दुर्ग की रक्षा के प्रयत्न किये जा चुके हों-तो अपनी राजधानी में अपने किसी वंशज को रखकर आप ऐसी दिशा में चला जावे, जहां शत्रु का वश न चल सके और जहां पर अपने मित्र बन्धु या वनचर भीलों से सम्बन्ध हो सके। अथवा शत्रु से विगड़े हुए बड़े २ अफसर या शत्रुओं से सहयोग प्राप्त हो जावे। शत्रु राजा के मित्रों से उसका भेद कराने का भी वहां से प्रयत्न करे। विजेता, वहां स्थित होकर शत्रु देश में आने जाने वाले, अन्न, शत्रु के मित्र की सेना या घास लकड़ी आदि की रुकावट कर देवे ॥२२-३१॥

यतो वा शक्नुयादाक्षिकवदपक्षेपेणास्य प्रहर्तुम् ॥ ३२ ॥ यतो वा स्वं
राज्यं त्रायेत् ॥ ३३ ॥ मूलस्योपचयं वा कुर्यात् ॥ ३४ ॥ यतः संधिमभिप्रेतं
लभेत ततो वा गच्छेत् ॥ ३५ ॥ सहप्रस्थायिनो वास्य प्रेपयेयुः ॥ ३६ ॥
अयं ते शत्रुरस्माकं हस्तगतः ॥ ३७ ॥ पण्यं विप्रकारं वापदिश्य हिरण्यमन्तः-
सारवर्लं च प्रेपयस्व एनमर्पयेम वद्धं प्रवासितं वेति ॥ ३८ ॥ प्रतिपन्ने हिरण्यं
सारवर्लं चाददीत ॥ ३९ ॥

विजयी राजा, उसी स्थान पर अपनी स्थिति करे, जहां से वह शत्रु पर कपट से जुआरी की भांति प्रहार कर सके और अपने राज्य की रक्षा एवं अपनी राजधानी की वृद्धि कर लेवे। जिस स्थान में स्थित होने पर शत्रु को भय होजावे, जिससे अपनी इच्छा के अनुकूल सन्धि हो सके-ऐसे ही स्थान पर दुर्बल राजा को जाना चाहिए। विजयेच्छुक निर्बल राजा के साथी, गूढ़ पुरुष, शत्रु राजा पर संदेश भेजे, कि यह तुम्हारा शत्रु हमारे वश में आगया है। किसी बेचने की वस्तु के वहाने सुवर्ण आदि धन, और शक्तिशाली सेना भेज दो—तो हम इसको बांध कर तुम्हारे पास भेज देंगे या यहां से निकाल देंगे। यदि उसकी समझ में आजावे—तो उसका सुवर्ण और सेना अपने अधिकार में करे ॥ ३२-३९ ॥

अन्तपालो वा दुर्गसंप्रदानेन वलैकदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत् ॥४०॥
 जनपदमेकस्थं वा घातयितुमभिघ्राणीकमावाहयेत् ॥ ४१ ॥ तदवरुद्धदेशमतिनीय
 विश्वस्तं घातयेत् ॥ ४२ ॥ मित्रव्यञ्जनो वा ब्राह्मस्य प्रेषयेत् ॥ ४३ ॥ क्षीणम-
 स्मिन्दुर्गे धान्यं स्नेहाः चारो लवणं वा ॥ ४४ ॥ तदमुष्मिन्देशे काले च
 प्रवेक्ष्यति ॥ ४५ ॥ तदुपगृहाणेति ॥ ४६ ॥ ततो रसविद्धं धान्यं स्नेहं चारंलवणं
 वा दूष्यामित्राटविकाः प्रवेशयेयुः ॥ ४७ ॥ अन्ये वाभित्यक्ताः ॥ ४८ ॥
 तेन सर्वभाण्डवीवधग्रहणं व्याख्यातम् ॥ ४९ ॥

अपना अन्तपाल-शत्रु को विश्वास देकर उसको दुर्ग सौंपकर उसकी कुछ सेना का भाग लेकर कहीं चला जावे और विश्वास में आई हुई सेना को मरवा डाले। किसी संगठित राष्ट्र को नष्ट भ्रष्ट करवाने के लिए अन्तपाल शत्रु सेना मंगवा लेवे उस शत्रु द्वारा घिरे हुए देश में लेजाकर उस विश्वस्त सेना को मरवा डाले। शत्रु का मित्र बना हुआ राजा का गुप्तचर, बाहर से संदेश भेजे, कि इस दुर्ग में धान्य, घी, तेल, नमक, गुड़ आदि समाप्त होगया है। उस समय वस्तुएं इधर से आवेगी, तुम उन्हें लूट लेजाना। विजेता के विगड़े हुए अमात्य या सन्धि किये हुए शत्रु तथा जंगली भील इस सामान को लावें, जिसमें विष मिला हुआ धान्य, घृत, तेल, नमक, गुड़ आदि होवे अथवा अन्य देश निकाले हुए पुरुष इस बात को करे। इसी तरह अन्य सारी वस्तु या घास आदि भी विष युक्त शत्रु के पास भेजी जा सकती हैं। जिससे शत्रु का नाश हो जावेगा ॥४०-४९॥

संधिं वा कृत्वा हिरण्यैकदेशमस्मै दद्यात् ॥ ५० ॥ विलम्बमानः शेषम् ॥ ५१ ॥ ततो रक्षाविधानान्यवसावयेत् ॥ ५२ ॥ अग्निरसशस्त्रैर्वा प्रहरेत् ॥ ५३ ॥ हिरण्यप्रतिग्राहिणो वास्य वल्लभाननुगृहणीयात् ॥ ५४ ॥ परिक्षीणो वास्मै दुर्गं दत्त्वा निर्गच्छेत् सुरङ्गया ॥ ५५ ॥ कुक्षिप्रदरेण वा प्राकारभेदेन निर्गच्छेत् ॥ ५६ ॥

निर्वल राजा, शक्तिशाली राजा के साथ सन्धि करके कुछ सुवर्ण उसके लिए देवे और कुछ पीछे देने की कहकर उन्हें समय पर पहुंचा देवे। इस तरह जब शत्रु को विश्वास हो जावे, तो शत्रु की घेरा डालने वाली सेना को अपने यहां से हटा देवे। विश्वासी शत्रु राजा को फिर अग्नि, विष या शस्त्रों से मरवा देवे अथवा धन लेकर मार देने में तत्पर शत्रु राजा के प्रिय पुरुषों को ही इस काम में लगावे। यदि राजा बहुत ही निर्वल होजावे-तो इसको दुर्ग सौंप कर आप सुरङ्ग द्वारा निकल जावे अथवा दुर्ग की छोटी खिड़की या दीवार को तोड़कर चल दे ॥ ५०-५६ ॥

रात्राववस्कन्दं दत्त्वा सिद्धिस्तिष्ठेत् ॥ ५७ ॥ असिद्धः पार्श्वेनापगच्छेत्
पापण्डच्छद्मना मन्दपरिवारो निर्गच्छेत् ॥ ५८ ॥ प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निर्हिंये ।
॥ ६० ॥ स्त्रीवेषधारी वां प्रेतमनुगच्छेत् ॥ ६१ ॥ दैवतोपहारश्राद्धग्रहवर्णेषु
वा रसविद्धमन्नपानमवसृज्य कृतोपजापो दृष्यव्यञ्जनैर्निष्पत्य गूढसैन्योऽभि-
हन्यात् ॥ ६२ ॥

यदि शत्रु पर धोखे से रात में आक्रमण करने से सिद्धि की सम्भावना हो-तो वहीं दुर्ग में राजा ठहरा रहे और और आक्रमण करने पर असफलता हो जावे-तो दुर्ग के किसी पार्श्व भाग से निकल भागे । राजा को धर्म ध्वजी साधु की जमात बनाकर थोड़े से परिवार के साथ निकल जाना चाहिए । राजा को मृतक बनाकर उसके गुप्तचर उसे निकाल कर लेजा सकते हैं । किसी मृतक के पीछे स्त्रियों में मिलकर भी राजा शत्रु के घेरे से निकलने में सफल हो सकता है । देवता की भेंट, श्राद्ध, गोद (पार्टी) आदि के समय विप मिली हुई खाने की वस्तुओं को देकर तोड़ फोड़ करने वाले गुप्तचर राजा या उसके अधिकारियों को मार डाले ॥५७-६२॥

एवं गृहीतदुर्गो वा प्राशयप्राशं चैत्यमुपस्थाप्य दैवतप्रतिमाच्छिद्रं प्रविश्या-
सीत् ॥ ६३ ॥ गूढभित्तिं वा दैवतप्रतिमायुक्तं भूमिगृहम् ॥ ६४ ॥ विस्मृते
सुरुङ्गया रात्रौ राजावासमनुप्रविश्य सुप्तममित्रं हन्यात् ॥ ६५ ॥ यन्त्रविश्लेषणं वा
विश्लेष्याधस्तादवपातयेत् ॥ ६६ ॥ रसाग्नियोगेनावलिप्तं गृहं जतुगृहं वाधिश-
यानममत्रिमादीपयेत् ॥ ६७ ॥

यदि शत्रु ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया-तो राजा खाने पीने की सामग्री से भरे हुए किसी देव-मन्दिर में देवता की प्रतिमा के छिद्र में घुसकर रहे या किसी पोली भीत या मूर्ति के नीचे के तहखाने में अपने को छुपावे । जब शत्रु राजा, अपने शत्रु के आक्रमण से विलकुल निश्चित हो जावे-तो सुरुङ्ग के मार्ग से राजगृह में घुसकर उस सोते हुए शत्रु को मार डाले अथवा किसी यन्त्र से उठाकर उसे दुर्ग से नीचे फेंक देवे । विपरस, अग्नियोग या अन्य किन्हीं जलने वाली वस्तुओं से या लाख का घर बनवा रखे और जब शत्रु उसपर अधिकार करके सो जावे तो उसमें आग लगवाकर उसे जलवा देवे ॥६३-६७॥

प्रमदवनविहाराणामन्यतमे वा विहारस्थाने प्रमत्तं भूमिगृहसुरुङ्गागूढभि-
ज्ञिप्रविष्टास्तीक्ष्णा हन्युः ॥ ६८ ॥ गूढप्रणिहिता वा रसेन ॥ ६९ ॥ स्वपतो

वा निरुद्धे देशे गूढाः स्त्रियः सर्परसायिधूमानुपरि मुञ्चयेयुः ॥ ७० ॥ प्रत्युत्पन्ने
वा कोरणे यद्यदुपपद्येत तत्तदमित्रेऽन्तःपुरगते गूढसंचारः प्रयुज्जीत ॥ ७१ ॥
ततो गूढमेवापगच्छेत् ॥ ७२ ॥ स्वजनसंज्ञां च प्ररूपयेत् ॥ ७३ ॥

प्रमदावन या विहार स्थान में प्रमाद के साथ रहते हुए राजा को भूमिगृह (तहखाने) सुरङ्ग या गुप्त भीतों में रहने वाले तीक्ष्ण पुरुष मौका पाकर मार डाले। या गुप्त रीति से भेजे हुए पुरुष, शत्रु राजा को विष प्रयोग से मार देवे। किसी एकान्त स्थान में सोने वाले राजा को गुप्तचर स्त्री, सर्प, विष, अग्नि या विपैली धुंआ को छोड़कर मार लेवे। इन बताये हुए कारणों में जो बन सके-उससे ही अन्तःपुर में गए हुए शत्रु राजा पर गुप्त प्रयोग में कुशल विजेता राजा, अपना प्रयोग करे। जब राजा को मार लिया जावे-तो आप या अपने पुरुष, गुप्तचर वहां से निकल आवें। अपने मनुष्यों को पहचानने के कुछ संकेत बना लिए जावे ॥६८-७३॥

द्वाःस्थान्वर्षवरांश्चान्यानिगूढोपहितान्परे ।

तूर्यसंज्ञाभिराहूय द्विषच्छेषाणि घातयेत् ॥ ७४ ॥

इत्यावलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे योगातिसंधानं दण्डातिसंधानं एकविजयश्च पञ्चमो-
ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदितश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४० ॥ एतावता कौटलीयस्या-
र्थशास्त्रस्य आवलीयसं द्वादशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

विजयेच्छुक्र राजा के शत्रु के द्वारपाल, नपुंसक तथा अन्य गुप्तचर के रूप में भेजे हुए पुरुष, वाजों के संकेतों से अपने पुरुषों को बुलाकर राजा के शेष मनुष्यों को भी वहीं मरवा डाले ॥७४॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत आवलीयस अधिकरणमें शत्रु और उसकी
सेना के वश में करने या अकेले राजा के विजयी होने के वर्णन का
पांचवां अध्याय समाप्त हो गया और यहीं पर आवलीयस
अधिकरण भी समाप्त हुआ।



दुर्गलम्भोपाय त्रयोदशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१७१वां प्रकरण

उपजाप

इस प्रकरण में शत्रु के दुर्गों के प्राप्त करने के उपायों का वर्णन किया जावेगा ।

विजिगीषुः परग्राममवाप्तुकामः सर्वज्ञदैवतसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्ध-
र्येत् ॥ १ ॥ परपक्षं चोद्धेजयेत् ॥ २ ॥ सर्वज्ञख्यापनं तु—॥ ३ ॥ गृहगुह्य-
प्रवृत्तिज्ञानेन प्रत्यादेशो मुख्यानाम् ॥ ४ ॥ कण्टकशोधनापसर्पागमेन प्रकाशनं
राजद्विष्टकारिणाम् ॥ ५ ॥ विज्ञाप्योपायनख्यापनमदृष्टसंसर्गविद्यासंज्ञादिभिः
॥ ६ ॥ विदेशप्रवृत्तिज्ञानं तदहरेव गृहकपोतेन मुद्रासंयुक्तेन ॥ ७ ॥

विजयाभिलाषी राजा शत्रु के नगर के जीतनेकी इच्छा होने पर अपने आपको सर्वज्ञ और देवता के अभिनिवेश से युक्त प्रसिद्ध करके अपने आप को उत्साहित और शत्रु पक्ष को अनुत्साहित कर देवे । गुप्त पुरुषों द्वारा किसी मुख्य पुरुष के गुप्त वृत्तान्त को जानकर उसे उस वृत्तान्त की सूचना देना कंटक शोधन प्रकरण में बताया हुए दृढ़ से गुप्तचरों के द्वारा राजा के साथ द्वेष करने वाले पुरुषों का पता लगा कर उनका प्रकाशन करना- अन्य पुरुषों द्वारा न जानी हुई संसर्ग विद्या [नृत्यगान आदि] के संकेतों द्वारा राजा को दी जाने वाली अन्य सामन्तों की भेंट को गुप्त रूप से जान कर उस का प्रथम ही प्रकट कर देना, मुद्रा संयुक्त पालतू कवूतरो द्वारा विदेश की किसी घटना का उसी दिन पता लगाकर उसी समय उसको सिद्धि बताकर प्रकट कर देना अपनी सर्वज्ञता प्रकट करने के दृढ़ हैं ॥ १-७ ॥

दैवतसंयोगख्यापनं तु—॥ ८ ॥ सुरुक्षामुखेनाग्निचैत्यदैवतप्रतिमाच्छिद्रा-
नुप्रविष्टैरग्निचैत्यदैवतव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च ॥ ९ ॥ उदकादुत्थितैर्वा नाग-
वरुणव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च ॥ १० ॥ रात्रावन्तरुदके समुद्रवालुकाकोशं

प्रणिधायानिमालादर्शनम् ॥ ११ ॥ शिलाशिक्यावगृहीते लवके स्थानम् ॥ १२ ॥
 उदकवास्तना जरायुणा वा शिरो ऽवगूढनासः पृष्ठतान्त्रकुलीरनक्रशिशुमारोद्रव-
 साभिर्वा शतपाक्यं तैलं नस्तः प्रयोगः ॥ १३ ॥ तेन रात्रिगणशश्वरतीत्युदक-
 चरणानि ॥ १४ ॥ तैर्वरुणनागकन्यावाक्यक्रिया संम्भाषणं च ॥ १५ ॥
 कोपस्थानेषु मुखादिग्निधूमोत्सर्गः ॥ १६ ॥ तदस्य स्वविषये कार्तान्तिकनैमित्ति-
 कमौहूर्तिकपौराणिकेक्षणिकगूढपुरुषाः साचिव्यकरास्तदर्शिनश्च प्रकाशयेयुः
 ॥ १७ ॥ परस्य विषये दैवतदर्शनं दिव्यकोशदण्डोत्पत्तिं चास्य ब्रूयुः ॥ १८ ॥

सुरङ्ग के द्वारा अग्नि देवोद्यान या देवता की प्रतिमा के छिद्र में प्रविष्ट हुए, अपने आपको अग्नि देव, देवोद्यान या मूर्ति का देव बनाने वाले गुप्त पुरुषों के साथ राजा बात करे और उनका पूजन करे। उसी तरह जल से निकलने वाले सूर्य और वरुण देव के रूपधारी गुप्तचरों से बात चीत और उनका पूजन करे। रात में जल के भीतर वाला भारी बन्द पेटियां डालकर उसमें रखी हुई आग निकाल कर दिखावे। पत्थर बांध कर छीकों द्वारा रोकी हुई छोटी २ नौकाओं को बहते हुये पानी में ठहराकर दिखावे। हिरन की आंत तथा कैकड़ा, नाका [मगर] शिशुमार मत्स्य और उद्र नामक मछली की चर्बी में सौ बार पकाया हुआ तेल नाक में डाला जावे और जलके नासिका में घुसने को रोकने वाली वस्ति स्थान या गर्भ की थैली से नाक ढक कर जल में उतारा जावे-तो रात में आदमियों के झुण्ड के झुण्ड जल में घूम सकते हैं। जल में घूमने वाले इन पुरुषों से राजा वरुण देव या सर्प कन्या के तुल्य वाक्य रचना करवावे और आप भी बात चीत करे। जब कोई कोप को बात आवे-तो ऐसे ही प्रयोगों से अपने मुख में रखी हुई आग की लपट या धुआं निकाले, ये सब देवता से संयोग प्रसिद्ध करने के ढङ्ग हैं। राजा की इन बातों को अपने देश में ज्योतिषी शकुन शास्त्री, मुहूर्त देखने वाले, पौराणिक, प्रश्न कर्ता और गुप्तचर सर्वत्र प्रसिद्ध कर दें। बहुत से उनके साथी यह कहें, कि हां ? हमने भी यह देखा है। शत्रु के देश में भी विजेता राजा के देव दर्शन और स्वयं कोश और सेना के उत्पन्न होने की मन्त्र सिद्धि प्रसिद्ध की जावे ॥ ८-१८ ॥

दैवतप्रश्ननिमित्तवायसाङ्गविद्यास्वप्नमृगपक्षिव्याहारेषु चास्य विजयं ब्रूयुः
 ॥ १९ ॥ विपरीतममित्रस्य सद्गुणभिम् ॥ २० ॥ उल्कां च परस्य नक्षत्रे
 दर्शयेयुः ॥ २१ ॥ परस्य मुख्यान्मित्रत्वेनापदिशन्तो दूतव्यञ्जनाः स्वामिसत्कारं
 ब्रूयुः ॥ २२ ॥ स्वपक्षवलाधानं परपक्षप्रतिघातं च तुल्ययोगक्षेमममात्यानामायु-

धीयानां च कथयेयुः ॥ २३ ॥ तेषु व्यसनाभ्युदयावेक्षणमपत्यपूजनं च प्रयु-
ज्जीत ॥ २४ ॥

देवता से श्रद्धा करने, शत्रुन जानने कौवे की चेष्टा, अङ्ग स्फुरण, स्वप्न, वन के जीव और पक्षियों की बोली से यही बतावे, कि विजेता राजा की जीत होगी तथा शत्रु की हार होगी-इस बात को घोषणा के साथ कहे । शत्रु के देश में दुर्ग्रह और उल्कापात बतावे जिसका फल राज्य का भ्रष्ट होना सूचित करे । शत्रु के मुख्य पुरुषों के सन्मुख, मित्र बने हुए राजा के दूत, विजेता राजा के सत्कार की खूब प्रशंसा करें । शत्रु के अमात्य या सैनिक पुरुषों के सन्मुख अपने राजा के पक्ष की जीत और शत्रु राजा के पक्ष की सेना के नाश की प्रसिद्धि गुप्तचर करते और दोनों राजाओं द्वारा समान रूप से जीविका निर्वाह की भी बात बताते रहें । उन लोगों में यह भी प्रसिद्धि करे, कि अमुक विजेता राजा विपत्तियों और उदय में अच्छी देख भाल और आदर करता है तथा मृत्यु के अनन्तर सन्तान के निर्वाह का भी प्रबन्ध कर देता है ॥ १६-२४ ॥

तेन परपक्षमुत्साहयेद्यथोक्तं पुरस्तात् ॥ २५ ॥ भूयश्च वक्ष्यामः—॥२६॥
साधारणगर्दभेन दक्षान् ॥ २७ ॥ लङ्कुटशाखाहननाभ्यां दण्डचारिणः ॥ २८ ॥
कुलैलकेन चोद्विग्रान् ॥ २९ ॥ अशनिवर्षेण विमानितान् ॥ ३० ॥ विदुले-
नाशकेशिना वायसपिण्डेन कैतवजमेघेनेति विहताशान् ॥ ३१ ॥ दुर्भगालं-
कारेण द्वेपिणेतिपूजाफलान् ॥ ३२ ॥ व्याघ्रवर्मणा मृत्युकूटेन चोपहितान्
॥ ३३ ॥ पीलुविखादनेन करकयोष्ट्या गर्दभीक्षोराभिमन्थनेनेति ध्रुवाप-
कारिण इति ॥ ३४ ॥

शत्रु पक्ष के पुरुषों को इस ढंग से अपनी ओर की उत्तेजित करे । अब आगे भी अन्य प्रकार बताये जाते हैं । जो चतुर पुरुष हों-उनको दिन रात गधे की तरह काम करते रहने वाला बतावे । सैनिकों को लट्ट और कुल्हाड़ी की उपमा देवे । गुप्तचर, राजा से उद्विग्न रहने वाले पुरुषों को अपने वंश से फूटकर अलग घूमने वाले कोमैंदे की उपमा देवे तथा शत्रु राजा से अपमानित पुरुषों को वज्रवर्षा जैसे अपमान से अपमानित बताकर उत्तेजित करें । शत्रु राजा ने जिन लोगों की आशाओं को भङ्ग कर दिया है, उनको फलहीन वेंत, लोह पिण्ड, या थोथे मेघ की उपमा से युक्त राजा को बतावें । जिनको कोई उपहार में अलङ्कार मिल गया है, उनको भद्दे अलंकार या राजा को पसन्द नहीं आने वाले अलङ्कार से तुम्हारी पूजा की गई है-ऐसा सुभावे, राजा के द्वारा धमकाये हुए पुरुषों

को राजा को व्याघ्रचर्म या मृत्यु का रूप बतावें। जो राजा के दृढ़ अपकार में लगे हुए हैं, उन्हें राजा को पीलुफल करका, उष्ट्री (शाक) के खाने के तुल्य या गधी के दूध विलौने की उपमा देवें। इनके खाने या विलौने से कोई लाभ नहीं होता ॥२५-२४॥

प्रतिपन्नानर्थमानाभ्यां योजयेत् ॥ ३५ ॥ द्रव्यभक्तच्छिद्रेषु चैनान्द्रव्य-
भक्तदानैरनुगृह्णीयात् ॥ ३६ ॥ अप्रतिगृह्णतां स्त्रीकुमारालंकारानभिद्वरेषुः
॥ ३७ ॥ दुर्भिक्षुस्तेनाटव्युपधातेषु च पौरजानपदानुत्साहयन्तः सत्त्रिणशो ब्रूयुः
॥ ३८ ॥ राजानमनुग्रहं याचामहे ॥ ३९ ॥ निरनुग्रहाः परत्र गच्छाम
इति ॥ ४० ॥

जो अपने कथन में आ जावें उन्हें, धन और मान से युक्त करे। जब २ इनपर धन और अन्न का संकट हो-तभी इनकी द्रव्य और अन्न से रक्षा की जावे। यदि ये न लेवें-तो इनके बच्चे या स्त्रियों को आभूषण बनवाकर दे देवें। जब दुर्भिक्षु, चोर या जंगली जातियों के उपद्रव हो रहे हों, तो गुप्तचर पुरवासी और राष्ट्र के पुरुषों को उत्तेजित करते हुए इस प्रकार कहें, कि हम लोग इस राजा से याचना करें यदि यह न देगा-तो दूसरे राजा के समीप चले चलेंगे ॥३५-४०॥

तथेति प्रतिपन्नेषु द्रव्यधान्यपरिग्रहैः ।

साचिव्यं कार्यमित्येतदुपजापाद्भुतं महत् ॥ ४१ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे उपजापः प्रथमो ऽध्यायः ॥१॥

आदित एकचत्वारिंशच्छतः ॥ १४१ ॥

जब वे लोग अपने राजा से कुछ न पावें और गुप्तचरों के कथनानुसार अपने पास आने को तैयार हो जावें-तो विजेता राजा उनकी द्रव्य, धान्य और वस्त्र आदि से पूरी सहायता करे। यही शत्रु के मुख्य पुरुषों के तोड़ने का अद्भुत ढंग है ॥४१॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में शत्रु के मुख्य पुरुषों

को अपनी ओर मिलाने के वर्णन का पहला अध्याय समाप्त हुआ ।



दूसरा अध्याय

१७२वाँ प्रकरण

योगवामन

इस प्रकरण में शत्रु को कपट द्वारा दुर्ग से बाहर निकालने के उपायों का वर्णन होगा।

मुण्डो जटिलो वा पर्वतगुहावासी चतुर्वर्षशतायुर्बुवाणः प्रभूतजटिलान्तेवासी नगराभ्याशे तिष्ठेत् ॥ १ ॥ शिष्याश्वास्य मूलफलोपगमनैरमात्यान् राजानं च भगवद्दर्शनाययोजयेयुः ॥ २ ॥ समागतश्च राज्ञा पूर्वराजदेशाभिज्ञानानि कथयेत् ॥ ३ ॥ शते शते च वर्षाणां पूर्णे ऽहमग्निं प्रविश्य पुनर्वालो भवामि ॥ ४ ॥ तदिह भवत्समीपे चतुर्थमग्निं प्रवेक्ष्यामि ॥ ५ ॥ अवश्यं मे भवान्मानयितव्यः ॥ ६ ॥ त्रीन्वरान्वृणीष्वेति ॥ ७ ॥ प्रतिपन्नं ब्रूयात् ॥ ८ ॥ सप्तरात्रमिह सपुत्रदारेण प्रेक्षाप्रहवणपूर्वं वस्तव्यमिति ॥ ९ ॥ वसन्तमवस्कन्देत् ॥ १० ॥

कोई गुप्तचर, अपना मूँड मुँडाकर या जटा रखाकर और पर्वत की कन्दरा का निवासी बनकर अपनी चार सौ वर्ष की उमर बतावे। वह बहुत से शिष्यों को साथ लेकर नगर के समीप अपना डेरा डाले। इसके शिष्य, कन्दमूल, फल लाने के बहाने अमात्यों या राजा से मिलें और उनको इन तपस्वी महाराज के दर्शनों को प्रेरित करें। जब राजा मिलने आवे-तो वह तपस्वी, उसे पूर्व के राजाओं के कुछ कल्पित चिन्ह सुनावे। वह वृद्ध संन्यासी कहे, कि मैं सौ २ वर्ष में अग्नि में प्रवेश करके फिर बालक बन जाता हूँ। अब मैं आपके समीप में ही चौथी बार अग्नि में प्रवेश करूँगा। मुझे आप जैसे धार्मिक राजा का सत्कार करना चाहिए। तुम मुझसे तीन वर माँग लो। यदि राजा विश्वास करले-तो उससे कहे कि तुम महोत्सव में नाच गान कराते हुए अपनी स्त्री और पुत्रों के साथ यहां निवास करो। जब निवास कर बैठे तो उसको मार ले या कैद करले ॥१-१०॥

मुण्डो वा जटिलो वा स्थानिकव्यञ्जनः प्रभूतजटिलान्तेवासी वस्त्रशोणितदिग्धां वेणुशलाकां सुवर्णचूर्णेनावलिप्य वल्मीके निदध्यात्, उपजिह्विकानुसरणार्थं, स्वर्णनालिकां वा ॥ ११ ॥ ततः सत्त्री राज्ञः कथयेत् ॥ १२ ॥ असौ सिद्धः पुष्पितं निधिं जानातीति ॥ १३ ॥ स राज्ञा पृष्ठस्तथेति ब्रूयात् ॥ १४ ॥ तच्चाभिज्ञानं दर्शयेत् ॥ १५ ॥ भूयो वा हिरण्यमन्तराधाय ब्रूयाच्चैनम् ॥ १६ ॥

नागरक्षितो ऽयं निधिः प्रणिपातसाध्य इति ॥ १७ ॥ प्रतिपन्नं ब्रूयात् ॥ १८ ॥
सप्तरात्रमिति समानम् ॥ १९ ॥

मुण्डी या जटाधारी महन्त वनकर कोई गुप्तचर, बहुत से शिष्यों को साथ रखे । वह रक्त से भीगे हुए वस्त्र में सुवर्ण की नली या चांस की लकड़ी बांधकर उसमें सुवर्ण का चूर्ण लपेट देवे और उसे सर्पकी बंसी में रख देवे । बंसी की पहचानके लिए वहां कुछ चिन्ह करदे । इसके अनन्तर वह सत्री [गुप्तचर] राजा से कहे, कि यह महात्मा-द्वी हुई निधि (खजाने) को जान लेता है । जब राजा पूछे-तो वह भी इस बात को ढङ्ग से स्वीकार करले और अपने विश्वास के लिये उस सुवर्ण की नली वाली बंसी को बतादे । फिर कहीं सुवर्ण रखवा कर राजा से कहे, कि यहां खजाना बहुत है, परन्तु उसपर सर्प बैठा है उसे भेंट पूजा देने पर वह मिल सकती है । यदि वह मानले-तो राजा से सात रात अपने यहां रहने की कहे और फिर गुप्तचर उसे मरवा डाले ॥ ११-१६ ॥

स्थानिकव्यञ्जनं वा रात्रौ तेजनाग्नियुक्तमेकान्ते तिष्ठन्तं सन्निधः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः ॥ २० ॥ असौ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २१ ॥ तं राजा यमर्थं याचेत तमस्य करिष्यमाणः सप्तरात्रमिति समानम् ॥ २२ ॥

किसी बनावटी महन्त [साधु तपस्वी] को रात में इन्द्र जालकी अग्नि से युक्त करके एकान्त में गुप्तचर राजा को दिखा देवे और कहें, कि यह महात्मा भविष्य की सारी समृद्धि के वताने वाले हैं । राजा, जो २ बात इस से मांगे-उसके पूरी करने को सात रात उसको अपने यहां रहने को कहे-जब वह रह जावे तो गुप्तचर उसको मरवा डाले ॥ २०-२२ ॥

सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं जम्भकविद्याभिः प्रलोभयेत् ॥ २३ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २४ ॥ सिद्धव्यञ्जनो वा देशदेवतामभ्यर्हितामाश्रित्य प्रह्वणैरभीक्षणं प्रकृतिमुख्यानभिसंवास्य क्रमेण राजानमतिसंदध्यात् ॥ २५ ॥ जटिलव्यञ्जनमन्तरुदकवासिनं वा सर्पचैत्यसुरङ्गाभूमिगृहापसरणं वरुणं नागराजं वा सन्निधः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः ॥ २६ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २७ ॥

किसी सिद्ध तपस्वी का वेप बनाकर राजा को कपट विद्याओं से मोहित करे । जब राजा इन विद्याओं में उलझ जावे-तो उसे सात रात अपने निवास में बलाकर मार डाले । सिद्ध तपस्वी देश के प्रधान देवता की पूजा का बहाना लेकर बहुत सा उत्सव करे और उसके द्वारा राजा के मुख्य २ अमात्यों को बश में करके उनके द्वारा राजा को मरवा देवे । किसी ऐन्द्रजालिक प्रक्रिया से जल के भीतर रहने वाले,

जटाधारी साधु को वरुण या नागराज बताकर गुप्तचर क्रम २ से राजा से कथन करें। ये उसको सर्प के बिल, उद्यान, सुरङ्ग या भूमिग्रह में से निकालें। जब वह विश्वास में आ जावे-तो उसको सात दिन अपने यहां सुलावे और धोखे से मार देवे ॥२३-२७॥

जनपदान्तेवासी मिद्व्यञ्जनो वा राजानं शत्रुदर्शनाय योजयेत् ॥ २८ ॥
प्रतिपन्नं विम्बं कृत्वा शत्रुमावाहयित्वा निरुद्धे देशे घाययेत् ॥ २९ ॥ अश्वप-
रयोपयाता वैदेहकव्यञ्जनाः परयोपयाननिमित्तमाहूय राजानं परयोपरीक्षायामास-
क्तमश्वव्यतिक्रीणं वा हन्युरश्वैश्च प्रहरेयुः ॥ ३० ॥

जनपद की सीमा में रहने वाला तपस्वी का रूपधारी गुप्तचर, किसी प्रबल शत्रु से मेल करवा देने के लिए उसको प्रयुक्त करे। जब वह मान ले-तो कल्पित संकेतो द्वारा उसको धोखा देकर मार डाले। अश्व-व्यापारी के वेश में घूमने वाले, गुप्तचर, अश्वों के खरीदने को शत्रु राजा को बुलाकर अश्वों के देखने में लगे हुए या घोड़ों की भारी भीड़ में फंसे हुए राजा को मार डाले और उन घोड़ों से कुचलवा देवे ॥२८-३०॥

नगराभ्याशे वा चैत्यमारुह्य रात्रौ तीक्ष्णाः कुम्भेषु नालीन्वा विदलानि
धमन्तः 'स्वामिनो मुख्यानां वा मांसानि भक्षयिष्यामः पूजा नो वर्तता' मित्य-
व्यक्तं ब्रूयुः ॥ ३१ ॥ तदेषां नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः ख्यापयेयुः ॥ ३२ ॥
मङ्गल्ये वा हृदे तटाकमध्ये वा रात्रौ तेजनतैलाभ्यक्ता नागरूपिणः शक्तिमुसला-
न्ययोमयानि निष्पेपयन्तस्तथैव ब्रूयुः ॥ ३३ ॥ ऋक्षचर्मकञ्चुकिनो वाग्निधूमो-
त्सर्गयुक्ता रक्षोरूपं वहन्तस्त्रिपसव्यं नगरं कुर्वाणाः शिवसृगालवाशितान्तरेषु
तथैव ब्रूयुः ॥ ३४ ॥ चैत्यदैवतप्रतिमां वा तेजनतैलेनाभ्रपटलच्छन्नेनाग्निना
वा रात्रौ प्रज्याल्य तथैव ब्रूयुः ॥ ३५ ॥ तदन्ये ख्यापयेयुः ॥ ३६ ॥

नगर के समीप रात में किसी चैत्यालय (देवो घान) के वृक्ष पर चढ़कर तीक्ष्ण पुरुष, बड़ों के मध्य में तांत आदि को बजाते हुए अस्पष्ट रूप में यह कहे, कि हम, इस राजा या इसके मुख्य अमात्यों का मांस खावेंगे-नहीं तो हमारी पूजा करो। इनकी इस बात को शकुन जानने वाले या ज्योतिषी के वेष में रहने वाले गुप्तचर सब जगह प्रसिद्ध करें। किसी मङ्गलीक स्थान में बने हुए तालाब में रात को ऐन्द्रजालिक तेल की मालिश करके नाग देवता के रूप में लोहे के शक्ति और मुसलों को अपने ऊपर मारते हुए इसी प्रकार कहें, कि हमारी पूजा करो नहीं तो हम तुम्हें खावेंगे। रीछ के चमड़े को ओढ़े हुए, अग्नि और धुआँ को मुख से निकालते हुए, राक्षसरूप धारण करके नगर के

दांयी और से तीन परिक्रमा करके गीदड़. लोमड़ी आदि के शब्दों में इसी प्रकार बोले श्मशान के देवता को तेजनतेल से या अभ्रक के पटलों से ढकी हुई अग्नि के द्वारा रात को प्रज्वलित करके पूर्वोक्त रीति से फिर कहे और उसी तरह ज्योतिषी उस बात को प्रसिद्ध करें ॥३१-३६॥

दैवतप्रतिमानामभ्यर्हितानां वा शोणितेन प्रस्नावमतिमात्रं कुर्युः ॥ ३७ ॥
तदन्ये दैवरुधिरसंस्त्रावे संग्रामे पराजयं व्रूयुः ॥ ३८ ॥ संधिरात्रिषु श्मशानप्रमुखे
वा चैत्यमूर्ध्वभक्षितैर्मनुष्यैः प्ररूपयेयुः ॥ ३९ ॥ ततो रक्षोरूपी मनुष्यकं याचेत
॥ ४० ॥ यश्चात्र शूरवादिकोऽन्यतमो वा द्रष्टुमागच्छेत्तमन्ये लोहमुसलैर्हन्युः
॥ ४१ ॥ यथा रक्षोभिर्हत इति ज्ञायेत ॥ ४२ ॥ तद्भुतं राजस्तदर्शिनः सत्त्रि-
णश्च कथयेयुः ॥ ४३ ॥ ततो नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः शान्तिं प्रायश्चित्तं व्रूयुः
॥ ४४ ॥ अन्यथा महदकुशल राज्ञो देशस्य चेति ॥ ४५ ॥ प्रतिपन्नमेतेषु सप्तरात्र-
मेकैकमन्त्रवलिहोमं स्वयं राज्ञा कर्तव्यमिति व्रूयुः ॥ ४६ ॥ ततः समानम् ॥ ४७ ॥

गुप्तचर प्रसिद्ध देवता की मूर्ति के भीतर से बहुत अधिक रक्तस्राव करावे । इस देवता के रुधिर स्राव को वे लोग, शत्रु राजा की पराजय के लक्षण बताकर उद्घोषित करें । अमावस्या और पूर्णिमा की रात में प्रधान श्मशान की भूमि को इधर उधर से तोड़ ताड़ कर खाये हुए मनुष्यों से युक्त दिखावें । फिर कोई सत्री, राजस वनकर मनुष्य की भेंट मांगे । जो अपने को शूरवीर या बुद्धिमान् मानकर वहां आ जावे, उसे वे लोग लोहे के मुद्गरों से मार लें और इन्हें उन राजसों ने मार दिया यह घोषित करें । इस अद्भुत समाचार को उसके देखने वाले या राजा तक पहुंचावे । अब शकुन शास्त्री और ज्योतिषी बने हुए गुप्तचर इसकी शान्ति और प्रायश्चित्त बतावें यदि शान्ति न की गई-तो देश और राजा की बड़ी हानि होगी । जब राजा की समझ में आ जावे-तो उससे कहे कि इसके निमित्त सात दिन तक मन्त्रों के साथ तुम्हें पृथक् २ स्थानों में वलिदान करना पड़ेगा । जब वह करने को आ जावे-तो उसे धोखे से मारले ॥ ३७-४७ ॥

एतान्वा योगानात्मनि दर्शयित्वा प्रतिकुर्वीत परेषामुपदेशार्थम् ॥ ४८ ॥
ततः प्रयोजयेद्योगान् ॥ ४९ ॥ योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोशाभिसंहरणं
कुर्यात् ॥ ५० ॥ हस्तिकामं वा नागवनपालो हस्तिना लक्षण्येन प्रलोभयेयुः
॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं गहनमेकायनं वातिनीय घातयेयुर्वध्वा वापहरेयुः ॥ ५२ ॥
तेन मृगयाकामो व्याख्यातः ॥ ५३ ॥

जब राजा इन योगों का अपने ऊपर प्रयोग देखे-तो इन का प्रतिकार करे और दूसरे के ऊपर उनको शिक्षा देने के लिए इनका प्रयोग करे। अपने योगों को दिखाकर और शत्रु के किये प्रयोगों का प्रतिकार करके राजा कोश को भी बढ़ावे। हाथियों के अभिलाषी राजा को हाथियों के वन के पालक, शुभ लक्षण युक्त किसी उत्तम हाथी की प्राप्ति का लोभ देवे। जब वह लालच में आजावे-तो उसे धोखा देकर गहन वन में ले जावे और वहां मार डाले या बांधकर कहीं ले जावे। इसी तरह शिकार-के लालची शत्रु को बांधा या मारा जा सकता है ॥ ४८-५३ ॥

द्रव्यस्त्रीलोलुपमाढ्यविधवाभिर्वा परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिर्दायादनिन्दे-
पार्थमुपनीताभिः सच्चिणः प्रलोभयेयुः ॥ ५४ ॥ प्रतिपन्नं रात्रौ सच्चिच्छन्नाः
समागमे शस्त्रसाम्यां घातयेयुः सिद्धप्रव्रजित चैत्यस्तूपदैवतप्रतिमानामभीक्ष्णा-
भिगमनेषु वा भूमिगृहसुरङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णाः परमभिहन्युः ॥ ५६ ॥

जो शत्रु राजा, धन या स्त्रियों का लोलुप हो-उससे दायभाग या अपने धरोहर की प्राप्ति के मुकदमें को लेकर आई हुई किन्हीं मालदार विधवा या सुन्दर स्त्रियों से गुप्तचर मोहित करें। जब वह विश्वास में आ जावे, तो रात में छुपे हुए गुप्तचर, उसके मिलने पर उसे शस्त्र या किसी विष प्रयोग से मार डाले। सिद्ध तपस्वी, देवोद्यान, स्तम्भ, देवता की प्रतिमाओं के दर्शनों के निमित्त वार २ आने जाने वाले, शत्रु राजाओं को भूमिगृह (तहखाने) सुरङ्ग, गुप्त भीतों में छुपे हुए तीक्ष्ण वातक पुरुष, मार डालें ॥ ५४-५६ ॥

येषु देशेषु याः प्रेक्षाः प्रेक्षते पार्थिवः स्वयम् ।

यात्राविहारे रमते यत्र क्रीडति वाम्भसि ॥ ५७ ॥

धिगुक्तयादिषु सर्वेषु यज्ञप्रहवणेषु वा ।

स्रुतिकाप्रेतरोगेषु प्रीतिशोकभयेषु वा ॥ ५८ ॥

प्रमादं याति यस्मिन्वा विश्वासात्स्वजनोत्सवे ।

यत्रास्यारक्षिसंचारो दुर्दिने संकुलेषु वा ॥ ५९ ॥

विप्रस्थाने प्रदीप्ते वा प्रविष्टे निर्जने ऽपि वा ।

वस्त्राभरणमाल्यानां फेलाभिः शयनासनैः ॥ ६० ॥

मद्यभोजनफेलाभिस्तूयैर्वाभिहतैः सह ।

प्रहरेयुरसीस्तीक्ष्णाः पूर्वप्रणिहितैः सह ॥ ६१ ॥

जिन देशों में नाट्यशाला बनी हुई हैं और राजा स्वयं आकर जिन्हें देखना हैं, विशेष उत्सव खेल कूद और जल क्रीड़ा में संलग्न होता है, सारे अश्लील गान, यज्ञ प्रीति भोजन (दावत) जन्म, मृत्यु प्रीति शोक और भय में सम्मिलित होता है, अपने स्वजनों के उत्सवों में जहां निःसंकोच से सम्मिलित होकर बेखबर हो जाता है, वर्षा आंधी आदि से अन्धकार युक्त दिवस या भीड़-भाड़ में बिना किसी रक्षक के साथ आता जाता है, अयोग्य स्थान, आग लगने के अवसर, शत्रु के प्रवेश, तथा निर्जन वन में जत्र प्रवेश करता है, तो उपयुक्त वस्त्र, आभरण माला शयन, आसन के उठाने तथा मद्य और भोजन की उच्छिष्ट के हटाने में पूरे से ही लगे हुए तीक्ष्ण पुरुष, अपने बाजे आदि के संकेतों के साथ ही शत्रुओं को मार लेवे ॥५७-६१॥

यथैव प्रविशेयुश्च द्विपतः सत्त्रहेतुभिः ।

तथैव चापगच्छेयुरित्युक्तं योगवामनम् ॥ ६२ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे योगवामनं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आदितो द्विचत्वारिंशच्छतः ॥ १४२ ॥

जिस तरह शत्रु के बीच में गुप्तचर कपट के साथ घुस जाते हैं, उसी प्रकार धोखा देकर वे वहां से निकल आवें-वस ? यही योग वामन कहाता है ॥६२॥

इति श्रीकौटिलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में योगवामन नामक

उपायों के वर्णन का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



तीसरा अध्याय

१७३वां प्रकरण

अपसर्प प्रणिधिः ।

इस प्रकरण में गुप्तचरों को शत्रु के देश में रखने का विचार किया जावेगा ।

श्रेणीमुख्यमाप्तं निष्पातयेत् ॥ १ ॥ स परमाश्रित्य पक्षापदेशेन स्ववि-
पयात्साचिव्यकरणसहायोपादानं कुर्वीत ॥ २ ॥ कृतापसर्पोपचयो वा परमनुमान्य
स्वामिनो दूष्यग्रामं वीतहस्त्यश्च दूष्यामात्यं दण्डमाक्रन्दं वा हत्वा परस्य
प्रेषयेत् ॥ ३ ॥ जनपदैकदेशं श्रेणीमटवीं वा सहायोपादानार्थं संश्रयेत् ॥ ४ ॥
विश्वासमुपगतः स्वामिनः प्रेषयेत् ॥ ५ ॥ ततः स्वामी हस्तिवन्धनमटवीघातं
वापदिश्य गूढमेव प्रहरेत् ॥ ६ ॥ एतेनामात्याटविका व्याख्याता ॥ ७ ॥

जो राजा अपनी विजय चाहता हो, वह अपने किसी श्रेणी (जमात) के प्रधान पुरुष को अपने नगर से निकाल देवे ! वह शत्रु पक्ष का आश्रय लेकर शत्रु के कार्य के साधन के बहाने अपने देश से उन वस्तुओं का संग्रह करे-जो समय पड़ने पर अपने राजा की सहायता में काम आवें । जब अपने पास बहुत से गुप्तचरों का संग्रह हो जावे-तो (शत्रु) अपने राजा की अनुमति लेकर अपने स्वामी राजा के भीतर से बिगड़े हुए अमात्य, सैनिक तथा अन्य मनुष्य को और पीछे से आक्रमण करने वाले आक्रन्द को मारकर शत्रु राजा के सम्मुख उपस्थित करे ! इसी तरह किसी देश के एक प्रान्त वीर श्रेणी (पाटी) और वनवासी भीलों को अपनी सहायता के लिए जीतकर उनका आश्रय लेवे । जब इनका विश्वास उत्पन्न हो जावे, तो इनको अपने मुख्य स्वामी के पास भेज देवे । इसके अनन्तर स्वामी हाथियों के वन्धन या जंगल के नाश का बहाना करके एक दम गुप्त-चुप आक्रमण कर देवे इसी तरह किसी अमात्य या आदविक लोगों को शत्रु के देश में गुप्तचर के रूप में भेजा जा सकता है ॥१-७॥

शत्रुणा मैत्रीं कृत्वामात्यानवक्षिपेत् ॥ ८ ॥ ते तच्छत्रोः प्रेषयेयुः ॥ ९ ॥ भर्तारं नः प्रसादयेति ॥ १० ॥ स यं दूतं प्रेषयेत् तमुपालमेत ॥ ११ ॥ भर्ता ते माममात्यैर्भेदयति ॥ १२ ॥ न च पुनरिहागन्तव्यमिति ॥ १३ ॥ अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ १४ ॥ स परमाश्रित्य यो गापसर्पापरक्तदूष्यानशक्तिमतः स्तेनादविकानुभयोपघातकान्वा परस्योपहरेत् ॥ १५ ॥ आप्तभावोपगतः प्रवीर-पुरुषोपघातमस्योपहरेत् ॥ १६ ॥

विजेता राजा शत्रु से मित्रता करके अपने अमात्यों का अपमान कर देवे । वे उस शत्रु के पास अपने संदेश भेजे कि आप कृपा कर हमारे स्वामी को हमारे ऊपर प्रसन्न करा दो । जब शत्रु राजा कोई दूत भेजे तो विजेता उसको फटकार दे, कि क्या तेरा स्वामी मेरे अमात्यों से मेरा भेद कराना चाहता है । तुम फिर यहां न आना । इसके अनन्तर विजयाभिलाषी राजा उन अमात्यों में से एक अमात्य को निकाल देवे । जब वह अमात्य शत्रु के यहां चला जावे-तो कपटी, गुप्तचर, विरक्त, भीतर से दुष्ट, शक्तिहीन चोर या वन वासी भील, शत्रु और स्वामी दोनों के घातक चोर या भीलों को शत्रु राजा के सहायक बनाकर प्रस्तुत करे । जब शत्रु उस पर विश्वास करले-तब वह इन लोगों की सहायता से शत्रु के वीरों का गुप्तचुप अपहरण करवा देवे या उन्हें मरवा डाले ॥८-१६॥

अन्तपालमादविकं दण्डचारिणं वा ॥ १७ ॥ दृढमसौ चासौ च ते शत्रुणा संधत्त इति ॥ १८ ॥ अथ पश्चाद्विजितशोसनैरेनान्घातयेत् ॥ १९ ॥ दण्डव-

लव्यवहारेण वा शत्रुमुद्योज्य घातयेत् ॥ २० ॥ कृत्यपक्षोपग्रहेण वा परस्या-
मित्रं राजानमात्मन्यपकरयित्वाभियुञ्जीत ॥ २१ ॥ ततः परस्य प्रेषयेत् ॥ २२ ॥
असौ ते वैरी ममापकरोति ॥ २३ ॥ तमेहि संभूय हनिष्यावः ॥ २४ ॥ भूमौ
हिरण्ये वा ते परिग्रह इति ॥ २५ ॥ प्रतिपन्नमभिसत्कृत्यागतमवस्कन्देन
प्रकाशयुद्धेन वा शत्रुणा घातयेत् ॥ २६ ॥ अभिविश्वासनार्थं भूमिदानपूर्वाभिपे-
करक्षापदेशेन वा ग्राहयेत् ॥ २७ ॥ अविपक्षमुपांशुदण्डेन वा घातयेत् ॥ २८ ॥

यह अमात्य, शत्रु राजा से कहे, कि तुम्हारे अमुक २ अन्तपाल, आटविक या सेनापति, निश्चय शत्रु से मिल गया है। फिर कुछ ऐसे वनावटी पत्र पकड़वाकर इनको शत्रु राजा द्वारा मरवा डाले अथवा शत्रु के साथ युद्ध छेड़कर सेना की ठीक २ सहायता न भेजकर उन्हें मरवा देवे। शत्रु राजा के क्रुद्ध, लालची और भयभीत अमात्य आदि को अपनी ओर करके शत्रु राजा के शत्रु को अपने ऊपर अपकार कराके उससे युद्ध छेड़ देवे। यह तुम्हारा शत्रु हमारा भी अपकार कर रहा है तुम आवो और मेरे साथ इससे लड़ो। हम दोनों मिलकर इसे मार देंगे। पृथ्वी या सुवर्ण जो कुछ मिलेगा-वह तुम्हारा होगा। जब शत्रु स्वीकार करले-तो उसका बहुत अधिक सत्कार करे और फिर उसको शत्रु द्वारा घिरवाकर या प्रकाश युद्ध द्वारा मरवा डाले इससे विश्वास बना रहेगा अथवा शत्रु के शत्रु को जीतकर भूमिदान या अपने पुत्र के युवराजाभिषेक के उत्सव के बहाने अपने यहां बुलाकर धोखे से पकड़वा देवे। यदि इस तरह भी वश में न आवे-तो उसे चुपचाप विप आदि दिलाकर मरवा डाले ॥१७-२८॥

स चेदण्डं दद्यान्न स्वयमागच्छेत्तमस्य वैरिणा घातयेत् ॥ २९ ॥ दण्डेन वा प्रयातुमिच्छेन्न विजिगीषुणा, तथाप्येन मुभयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ३० ॥ अविश्वस्तो वा प्रत्येकशो यातुमिच्छेत्तद्राज्यैकदेशं वा यातव्यस्यादातुकामस्तथाप्येन वैरिणा सर्वसन्दोहेन वा घातयेत् ॥ ३१ ॥ वैरिणा वा सक्तस्य दण्डोपनयेन मूलमन्यतो हारयेत् ॥ ३२ ॥

यदि शत्रु सहायता के लिए स्वयं न आवे और अपनी सेना मात्र भेजे-तो उस सेना को शत्रु से मरवा देवे। यदि शत्रु राजा, अपनी सेना के घेरे में चले और विजेता के विश्वास में न आकर अपने शत्रु से लड़ना चाहे-तो भी इसकी सेना को दोनों ओर से इसके साथ घिरवाकर मरवा देवे। जब शत्रु अविश्वास करके पृथक् २ अपनी सेना ले जाकर शत्रु पर चढ़ाई करना चाहता है और विजेता के साथ नहीं मिलता और शत्रु के किसी भाग पर अधिकार कर लेना चाहता है, तो इसको उस वैरी द्वारा सारे उपाय करके मरवा डाले अथवा जब शत्रु, अपने शत्रु पर चढ़ गया-तो कुछ सेना लेकर दूसरी ओर से शत्रु की राजधानी पर ही अधिकार कर लेना चाहिए ॥२९-३२॥

शत्रुभूम्या वा मित्रं पणेत ॥ ३३ ॥ मित्रभूम्या वा शत्रुम् ॥ ३४ ॥
 ततः शत्रुभूमिलिप्सायां मित्रेणात्मन्यपकारयित्वाभियुज्जीत ॥ ३५ ॥ इति समानाः
 पूर्वोक्तं सर्व एव योगाः ॥ ३६ ॥ शत्रुं वा मित्रभूमिलिप्सायां प्रतिपन्नं दण्डेनो-
 नुगृह्णीयात् ॥ ३७ ॥ ततो मित्रगतमतिसंदध्यात् ॥ ३८ ॥ कृतप्रतिविधानो वा
 व्यसनमात्मनो दर्शयित्वा मित्रेणामित्रमुत्साहयित्वात्मानमभियोजयेत् ॥ ३९ ॥
 ततः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥ जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत् ॥ ४१ ॥

शत्रु की भूमि का आधा २ भाग करने की प्रतिज्ञा करके मित्र से सन्धि करे और
 मित्र भूमि के आधा २ बांटने की शर्त करके शत्रु से सन्धि करे। जब शत्रु की भूमि के
 लेने की इच्छा हो-तब मित्र द्वारा कुछ अपकार कराके उस पर चढ़ाई करा लेवे। इस
 समय जब शत्रु सहायता को आवे-तो उसे घिरवाकर मरवा देवे। यदि शत्रु, विजेता के
 मित्र की भूमि लेना चाहता है और दोनों ने पूर्वोक्त प्रकार से सन्धि करली है, तो शत्रु के
 विश्वासी हो जाने पर विजेता अपनी सेना भेज देवे। जब शत्रु मित्र के देश में पहुंच
 जावे-तो वहां मित्र से मिलकर उसे नष्ट करा देवे। अपना प्रबन्ध करके विजयाभिलाषी
 राजा, अपने ऊपर कुछ संकट दिखावे और अपने मित्र द्वारा शत्रु को उभारकर अपने
 ऊपर चढ़ाई करवावे इसके अनन्तर दोनों ओर से घेरकर उसे मार डालें या उसे बन्धन
 में डालकर उसके राज्य पर किसी दूसरे को बैठा देवे ॥३३-४१॥

मित्रेणाहूतश्चेच्छत्रुरग्राह्ये स्थातुमिच्छेत्सामन्तादिभिर्मूलमस्य हारयेत्
 ॥ ४२ ॥ दण्डेन वा त्रातुमिच्छेत्तमस्य घातयेत् ॥ ४३ ॥ तौ चेन्न भिद्येयातां
 प्रकाशमेवान्योन्यस्य भूम्या पणेत ॥ ४४ ॥ ततः परस्परं मित्रव्यञ्जनोभयवेतना
 वा दूतान्प्रेषयेयुः ॥ ४५ ॥ अयं ते राजा भूमिं लिप्सते शत्रुसंहित इति ॥ ४६ ॥
 तयोरन्यतरो जाताशङ्कारोपः पूर्ववच्चेष्टेत ॥ ४७ ॥

यदि मित्र के बुलाने पर शत्रु, नहीं पकड़ में आने वाले स्थान पर स्थित होना
 चाहे-तो अपने सामन्तों द्वारा इसकी राजधानी को छिनवा देवे। यदि यह केवल सेना
 मात्र भेजे-तो इसकी सेना का नाश करावे। यदि गुप्तपण (शर्त) द्वारा मित्र और शत्रु में
 फूट न पड़ सके-तो प्रकाश में ही सन्धि करके पराजित की भूमि बांट लेने की शर्त कर
 लें। इसके अनन्तर शत्रु के विश्वासी विजेता के गुप्तचर, इधर उधर दूत भेजे, कि
 यह राजा तुम्हारी भूमि लेना चाहता है और तुम्हारे शत्रु से मिल गया है। जब इनमें
 एक को शङ्का हो जावेगी-तो क्रोध में भरकर चढ़ाई करेगा। फिर उसी तरह विजेता और
 उसका मित्र मिलकर उस शत्रु को नष्ट कर लें ॥४२-४७॥

दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यान्वा कृत्यपक्षहेतुभिरभिविख्याप्य प्रव्राजयेत् ॥ ४८ ॥
ते युद्धावस्कन्दावरोधव्यसनेषु शत्रुमतिसंदध्युः ॥ ४९ ॥ भेदं वास्य स्ववर्गेभ्यः
कुर्युः ॥ ५० ॥ आभित्यक्तशासनैः प्रतिसमानयेयुः ॥ ५१ ॥

दुर्ग पालक, राष्ट्र पालक, या सेनापति को अपने दूषित अमात्य आदि की सहायता देने का बहाना बनाकर राजा निकाल देवे। वे शत्रु राजा के पास जाकर विश्वास उत्पन्न कर लेवे और युद्ध तथा रनिवास में वे खबर शत्रु राजा को मरवा डाले। यदि इतना न हो सके-तो इसके मण्डल से ही इसकी फूट डलवावे, और उसके प्रमाण में वनावटी लेख पकड़वाकर शत्रु राजा को विश्वास दिलावे ॥४८-५१॥

लुब्धकव्यञ्जना वा मांसविक्रयेण द्वाःस्था दौवारिकापाश्रयाश्चोराभ्यागमं
परस्य द्वित्रिरिति निवेद्य लब्धप्रत्यया भर्तुरनीकं द्विधा निवेश्य ग्रामवधे स्व-
स्कन्दे च द्विषतो ब्रूयुः ॥ ५२ ॥ आसन्नश्चोरगणो महान्श्चाक्रन्दः प्रभूतं सैन्य-
मागच्छन्निति ॥ ५३ ॥ तदर्पयित्वा ग्रामघातदण्डस्य सैन्यमितरदादाय रात्रौ
दुर्गद्वारेषु ब्रूयुः ॥ ५४ ॥ हतश्चोरगणः । ५५ ॥ सिद्धयान्नमिदं सैन्यमागतम्
॥ ५६ ॥ द्वारमपात्रियतामिति ॥५७॥ पूर्वप्रणिहिता वा द्वाराणि दद्युः ॥५८॥
तैः सह प्रहरेयुः ॥ ५९ ॥

लुब्धक (शिकारी) के वेश में रहने वाले, गुप्तचर, मांस बेचने के बहाने शत्रु के द्वार पर आकर द्वार पालों के पास बैठकर दो तीन बार निश्चय के साथ यह कहें, कि शत्रु के चोर इधर उधर राज्य में आते हैं। जब शत्रु राजा को विश्वास हो जावे-तो अपने स्वामी की सेना को दो भागों में बांटकर गांव के वध और छूट मार के लिए तय्यार कर देवे। फिर शत्रु से कहे, कि चोरों का समूह पास में ही आया हुआ है। बड़ा कोलाहल हो रहा है। अब बहुत सी सेना भेजो। गांव के घात करने को उद्यत अपने राजा की सेना के घेरे में इस सेना को डाल कर इसकी टुकड़ी लेकर रात में दुर्ग के द्वार पर जाकर यों कहें, कि चोरों को मारा जा चुका। यह विजय प्राप्त करके सेना आ गई है। द्वार खोलो। अच्छा तो यह है कि द्वारपाल ही पहिले से मिला लिये जावें और वे आते ही द्वार खोल दें। फिर उस सेना के द्वारा मार काट मचाकर शत्रु दुर्ग पर कब्जा कर लेना चाहिए ॥ ५२-५९ ॥

कारुशिल्पिपाषण्डकुशीलववैदेहकव्यञ्जनानायुधीयान्वा परदुर्गे प्रणिदध्यात्
॥ ६० ॥ तेषां गृहपतिकव्यञ्जनाः काष्ठतृणधान्यपण्यशकटैः प्रहरणावरणान्य-

मिहरेयुः ॥ ६१ ॥ देवध्वजप्रतिमाभिर्वा ॥ ६२ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रमत्तवध-
मवस्कन्दप्रतिग्रहमभिप्रहरणं पृष्टतः शङ्खदुन्दुभिशब्देन वा प्रविष्टमित्यावेदयेयुः
॥ ६३ ॥ प्राकारद्वाराद्वालकदानमनीकभेदं धातं वा कुर्युः ॥ ६४ ॥ सार्थगण-
वासिभिरातिवाहिकैः कन्यावाहिकैश्चपण्यव्यवहारिभिरुपकरणहारकैर्धान्यक्रेतृवि-
क्रेतृभिर्वा प्रव्रजितलिङ्गिभिर्धूतैश्च दण्डातिनयनं संधिकर्म विश्वासनार्थमिति
राजापसर्पाः ॥ ६५ ॥

कारीगर, शिल्पी, पाखंडी साधु, नट, व्यापारी और शस्त्रधारी के वेश में रहने
वाले गुप्तचरों को शत्रु के दुर्ग में किसी प्रकार भेजा जावे। दूसरी ओर गृहस्थी के वेष
में रहने वाले गुप्तचर- काष्ठ, वृण, धान्य आदि व्यवहार की वस्तु, गाड़ी, आदि के द्वारा
शस्त्र और कवच, वहां पहुंचा देवें। देवों की ध्वजा या प्रतिमाओं के साथ भी शस्त्र आदि
पहुंचाये जा सकते हैं। इसके अनन्तर कारीगर आदि के वेष में रहने वाले गुप्तचर, राजा
को सूचना देवे, कि शत्रु के सैनिक वे खबर पड़े लोगों को मार गए। इन्होंने उधर से
घेरा डाल रखा है। पीछे की ओर शंख या नगाड़ा बजाते हुए घुस रहे हैं। जब राजा
अपनी सेना उधर भेजे तो आप इधर दुर्ग की दीवार, द्वार, अटारी, के मार्ग से रास्ता
दे देवे। शत्रु की सेना मृथक् २ करदे या मरवा डाले। बड़े २ गिरोहों के साथ घूमने
वाले व्यापारी, कन्या विक्रेता, [बुर्दा फरोश] अश्व आदि अनेक वस्तु बेचने वाले, धान्य
के बेचने खरीदने के व्यापारी, साधु संन्यासी, जुआरी का वेष रखने वाले गुप्तचर
शत्रु सेना को दुर्ग मार्गों में लेजाकर फंसा देवे। इससे शत्रु के साथ की गई सन्धि का
भी निर्वाह दिखाई देगा ॥ ६०-६५ ॥

एत एवाटवीनामपसर्पाः कण्टकशोधनोक्ताश्च ॥ ६६ ॥ ब्रजमटव्यासन्नम-
पसर्पाः सार्थं वा चोरैर्धातयेयुः ॥ ६७ ॥ कृतसंकेतमन्नपानं चात्र मदनरसविद्धं
वा कृत्वापगच्छेयुः ॥ ६८ ॥ गोपालकवैदेहकाश्च ततश्चोरान् गृहीतलोप्ताभाराः
मदनरसविकारकाले ऽवस्कन्दयेयुः ॥ ६९ ॥

इसी तरह कंटक शोधन प्रकरण में तथा यहां कहे हुए गुप्तचर ही जंगली
जातियों के साथ व्यवहार करने के उपयोगी हो सकते हैं। वन के समीप किसी गोशाला
में राजा के गुप्तचर पहुंचे और वहां वे चोरों से किसी व्यापारी के झुण्ड को लुटवा
देवे। जब आटविकों को इनपर विश्वास हो जावे-तब संकेत के अनुसार अन्नपान में
चिप मिलाकर वहां से चम्पत हो जावें। ग्वाले और व्यापारी के वेश में रहने वाले सैनिक

गुप्तचर उस व्यापारी की लूट का माल लाद कर धतूरे के विष में वेहोश हुए उन आट-
विक चोरों को गिरफ्तार कर लेवे ॥ ६६-६६ ॥

संकर्षणदेवतीयो वा मुण्डजटिलव्यञ्जनः प्रहवणकर्मणा मदनरसयोगाभ्या-
मतिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ७१ ॥ शौण्डिकव्यञ्जनो
वा दैवतप्रेतकार्योत्सवसमाजेष्वाटविकान्सुराविक्रयोपायननिमित्तं मदनरसयोगा-
भ्यामतिसंदध्यात् ॥ ७२ ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ७३ ॥

संकर्षक देवता का मानने वाला कोई मुण्डी या जटाधारी कोई उत्सव करे तो
उस समय शराब में धतूरे के रस मिला देवे। जब वे अचेत हो जावें-तब उनको घेरकर
पकड़ लेवे। शराब बेचने वाले के रूप में फिरने वाले गुप्तचर, देवता प्रेतकार्य, उत्सव,
समाज के बहाने, वनवासी लुटेरों को शराब अधिक विकने के उपहार में धतूरे के विष
में मिली हुई शराब पिला देवे और उनको इसी तरह पकड़ले ॥७०-७३॥

ग्रामघातप्रविष्टां वा विक्षिप्य बहुधाटवीम् ।

घातयेदिति चोराणामपसर्पाः प्रकर्तिताः ॥ ७४ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे अपसर्पप्रणिधिस्तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितस्त्रिचत्वारिंशच्छतः ॥ १४३ ॥

जब जङ्गली लुटेरे गांव के घात के लिए आक्रमण करें तो गुप्तचर उनको अनेक
उपायों से धोखे में डालकर मरवा दें। इस प्रकार जङ्गली लुटेरों में भी गुप्तचर छोड़े
जा सकते हैं ॥७४॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में गुप्तचरों के वर्णन

का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



चौथा अध्याय

१७४-१७५वां प्रकरण

पर्युपासन कर्मावि मर्दः ।

इस प्रकरण में शत्रु के दुर्ग का घेरना, और उसको अपने अधिकार में करने का
वर्णन किया जावेगा ।

कर्शनपूर्वं पर्युपासनकर्म ॥ १ ॥ जनपदं यथानिविष्टमभये स्थापयेत्
॥ २ ॥ उत्थितमनुग्रहपरिहाराभ्यां निवेशयेदन्यत्रापसरतः ॥ ३ ॥ समग्रमन्यस्यां

भूमौ निवेशयेदेकस्यां वा वासयेत् ॥ ४ ॥ न ह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवतीति कौटल्यः ॥५॥ विषमस्थस्य मुष्टिं सस्यं वा हन्याद्वीवधप्रसारौ च ॥६॥

शत्रु की सेना और कोश का क्षय करते हुए ही विजेता, शत्रु के दुर्ग पर घेरा डाले। शत्रु के देश को यथा पूर्व अभय स्थान में सुरक्षित रहने देवे। विजेता के विरुद्ध आन्दोलन करने पर जनता को टैक्स आदि मुआफ करके या कुछ धन आदि दान में देकर शान्त करदे और यदि वह भाग कर जा रही है तो उसे कुछ न दे। इस शत्रु की जनता को कहीं ले जाकर पृथक् २ भूमि में बसावे या एक स्थान पर भी निवास करवा देवे। कौटल्याचार्य कहते हैं, कि विना मनुष्यों के जनपद नहीं हो सकता और विना जनपद के राज्य नहीं कहला सकेगा। शत्रु किसी संकट में उलझ जावे-तो उसकी फसल और उत्पन्न अन्न को नष्ट कर देवे तथा बाहर से अन्न और घी तेल या लकड़ी घास आदि का आना रोक देना चाहिए ॥१-६॥

प्रसारवीवधच्छेदान्मुष्टिसस्यवधादपि ।

वमनाद्गूढघाताच्च जायते प्रकृतिक्षयः ॥ ७ ॥

लकड़ी घास आदि और अन्न, घी तेल आदि के रोक देने तथा हरे भरे खेत और उत्पन्न अन्न के नष्ट कर देने पर एवं अमात्य आदि प्रकृतियों के कहीं ले जाने या उसके गुप्त-चुप बध कर देने पर प्रकृति क्षय होता है ॥७॥

प्रभूतगुणवद्धान्यकुप्ययन्त्रशस्त्रावरणविष्टिरश्मिसमग्रं मे सैन्यमृतुश्च पुरस्तात् ॥ ८ ॥ अपर्तुः परस्य व्याधिदुर्भिक्षनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्चेति पर्युपासीत ॥ ९ ॥

जब विजेता राजा यह समझे कि मेरी सेना अत्यन्त गुणों से युक्त है, धान्य, ताँवा लोहा वस्त्र, यन्त्र, शस्त्र, आवरण (कवच) सेना के कर्मचारी रस्सी आदि वस्तुओं से सुसम्पन्न है, आक्रमण के योग्य ऋतुकाल है, तो राजा चढ़ाई कर देवे। इसी तरह शत्रु को वह ऋतु विपरीत होनी चाहिए, उसके यहां व्याधि, दुर्भिक्ष और धान्य संग्रह का क्षय हो, वेतन मात्र से इकट्ठी की हुई सेना राजा से उदासीन हो रही हो, मित्र सेना को भी उपराम हो, ऐसी दशा में विजेता को चढ़ाई करनी चाहिए ॥८-९॥

कृत्वा स्कन्धावारस्य रक्षां वीवधासारयोः पथश्च परिक्षिप्य दुर्गं खातसालाभ्यां दूषयित्वादकमवस्राव्य परिखाः संपूरयित्वा वा सुरङ्गावलकुटिकाभ्यां वप्रप्राकारौ हारयेत् ॥१०॥ दारं च गुलेन निम्नं वा पांसुमालयाच्छादयेत् ॥११॥ बहुलारक्षं यन्त्रैर्घातयेत् ॥१२॥ निष्करादुपनिष्कृष्याथैश्च प्रहरेयुः ॥१३॥ विक्रमान्तेषु च नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपायानां सिद्धिं लिप्सेत दुर्गवासिनः ॥१४॥

विजेता, प्रथम अपनी छावनी, अन्न, जल, घृत और तेल आदि तथा घास लकड़ी आदि की आमद और मित्र सेना के मार्ग की रक्षा करके शत्रु के दुर्ग को घेर लेवे। गद्दे खोदकर और उसकी शालाओं को तोड़कर दुर्ग को दूषित कर देवे। दुर्ग के चारों ओर भरे हुए जल को बहा देवे और खाई को भर देवे तथा सुरङ्ग और टेढ़ी खुनी हुई खाई के द्वारा दुर्ग के बड़े परकोटे और छोटी २ दीवारों पर आक्रमण कर देवे। मार्ग में आने वाली भूमि की दरारों, ढेलों और गड्ढों को रेती से अच्छी तरह भर देवे। जहाँ पर दुर्ग की अधिक सेना रक्षा कर रही है, उस भाग को यन्त्र (तोप) से उड़ा देवे। दुर्ग के स्थान विशेष से सेना को हाथियों द्वारा खँचकर अश्वों के द्वारा आक्रमण करे। जब शत्रु सेना पराक्रम दिखाने लगे तो सामादि में से किसी उपाय का प्रयोग, विकल्प, एक साथ सबका प्रयोग करके दुर्ग वासियों के जीत लेने की चेष्टा करे ॥१०-१४॥

श्येनकाकनप्लुभासशुकशारिकोलूकपोतान्ग्राहयित्वा पुच्छेष्वग्नियोगयुक्ता-
न्परदुर्गे विसृजेयुः ॥ १५ ॥ अपकृष्टस्कन्धावारादुच्छ्रितध्वजधन्वारक्षा वा
मानुषेणाग्निना परदुर्गमादीपयेयुः ॥ १६ ॥ गूढपुरुषाश्चान्तदुर्गपालका नकुलवा-
नरविडालशुनां पुच्छेष्वग्नियोगमाधाय काण्डनिचयरक्षाविधानवेश्मसु विसृजेयुः
॥ १७ ॥ शुष्कमत्स्यानामुदरेष्वग्निमाधाय वल्लूरे वा वायसोपहारेण वयोभिर्हार-
येयुः ॥ १८ ॥ सरलदेवदारुपूतितृणगुग्गुलुश्रीवेष्टकसर्जरसलाक्षागुलिकाः खरोष्ट्रा-
जावीनां लण्डं चाग्निधारणम् ॥ १९ ॥ त्रियालचूर्णमवलगुजमपीमधूच्छिष्टमश्व-
खरोष्ट्रगोलण्डमित्येष क्षेप्यो ऽग्नियोगः ॥ २० ॥ सर्वलोहचूर्णमश्विचूर्णं वा कुम्भी-
सीसत्रपुचूर्णं वा पारिमद्रकपलाशपुष्पकेशमपीतैलमधूच्छिष्टकश्रीवेष्टकयुक्तो ऽग्नि-
योगो विश्वासघाती वा ॥ २१ ॥ तेनावलिप्तः शणत्रपुसवल्कवेष्टितो वाणइत्य-
ग्नियोगः ॥ २२ ॥

श्येन, कौआ, नत्ता (पक्षिविशेष) भास (गीघ) शुक, मैना, उल्लू, और कवतूरों को पकड़वाकर उनकी पूंछ में आग लगाने वाली औषधि लगा देवे और उनको शत्रु के दुर्ग में भेजे जिससे वहाँ आग लग जावे अथवा दुर्ग से बाहर पड़ी हुई सेना से ध्वजा और धनुष के रक्षक, मानुष अग्नि से शत्रु के दुर्ग में आग लगावे। अन्तपाल और दुर्गपाल बने हुए अपने गुप्तचर, नेवले, विलाव, वानर और कुत्तों की पूंछ में अग्नि लगाने वाली औषध लगाकर वस्तुओं के रखने के भण्डार या रक्षा के स्थानों में भेज देवे। सूखी मछलियों के उदर या मांस में आग भरकर कोओं को बलि देने के बहाने

पक्षियों के द्वारा शत्रु के दुर्ग में पहुंचा देवे, जिससे वहां आग लग जावे। सरल, देवदारु पूतिवृण (गन्धवाली घास) गूगल, सरु का गोंद, राल, और लाख, की गोली तथा गधा, ऊंट, बकरा और मेंढे की पुरीष (मल) भी अग्नि के लगाने में काम आती है। चिरोंजी और काली बावची का चूरा, मोम, घोड़े, गधे, ऊंट और गौ की सूखी पुरीष (मल) भी अग्नि लगाने के योग में काम आते हैं। इनसे योग बनाकर शत्रु के दुर्ग में आग लगाने को फेंक देना चाहिए। अग्नि वर्ण के तुल्य लाल सब प्रकार के लोहे का चूर्ण, कायफल, सीसा, रांग का चूरा, नीम, ढाक, के फूल, नेत्र वाला, तेल, मोम, सरु का गोंद से बनाया हुआ अग्नि का योग (नुसखा) बड़ा विश्वासघाती योग है अर्थात् इस औपधि के योग के रखने से अग्नि के लगाने का बिल्कुल पता नहीं चलता है और आग चमक उठती है। इन सारी चीजों तथा सन, रांग और बबूल के चूर्ण से लिपटा हुआ बाण भी अग्नि लगाने के काम में आता है ॥ १५-२२ ॥

नत्वेव त्रिद्यमाने पराक्रमे ऽग्निमवसृजेत् ॥ २३ ॥ अविश्वास्यो ह्यग्निः
दैवपीडनं च ॥ २४ ॥ अप्रतिसंख्यातप्राणिधान्यपशुहिरण्यकुप्यद्रव्यक्षयकरः
॥ २५ ॥ क्षीणनिचयं चावाप्तमपि राज्यं क्षयायैव भवति ॥ २६ ॥ इति पर्युपा-
सनकर्म ॥ २७ ॥

जब युद्ध का आरम्भ हो रहा हो-तब अग्नि के प्रयोग नहीं करने चाहिए। अग्नि का विश्वास नहीं है, यह दैवका पीड़ा देने का शस्त्र है। यह अग्नि, असंख्यात प्राणी, धान्य, पशु, तथा अन्य लकड़ी आदि वस्तुओं के नाश करने का साधन है। यदि जीते जाने वाले राज्य का भी सब कुछ क्षय हो गया है, तो उसके प्राप्त करने पर भी वह राज्य क्षय के लिए ही होता है। यहांतक शत्रु के दुर्ग के घेरने के सम्बन्ध में विचार हुआ ॥ २३-२७ ॥

सर्वारम्भोपकरणविष्टसंपन्नो ऽस्मि ॥ २८ ॥ व्याधितः पर उपधाविरुद्ध-
प्रकृतिरकृतदुर्गकर्मनिचयो वा निरासारः सासारो वा पुरा मित्रैः संधत्ते इत्यवम-
र्दकालः ॥ २९ ॥

जब विजेता को यह पता हो जावे, कि मैं युद्ध की सारी सामग्रियों और कर्मचारी वर्ग से संयुक्त हूं। शत्रु व्याधि ग्रस्त है, छल करके उसके अमात्य उससे विरुद्ध हो रहे हैं। शत्रु के यहां दुर्ग की मरम्मत आदि भी नहीं हो रही है। धान्य आदि का कोई संग्रह भी नहीं है। यदि इसके मित्र हैं भी तो अभी उनके साथ शत्रु ही तय नहीं हुई हैं यही समय चढ़ाई करने का होता है ॥ २८-२९ ॥

स्वयमग्नौ जाते समुत्थापिते वा प्रहवणे प्रेक्षानीकदर्शनसङ्गसौरिककलहेषु
 नित्ययुद्धश्रान्तवले बहुलयुद्धप्रतिविद्धप्रेतपुरुषे जागरणक्लान्तसुप्तजने दुर्दिने
 नदीवेगे वा नीहारसंक्षेपे वा मृदनीयात् ॥ ३० ॥ स्कन्धावारमुत्सृज्य वा वनगूढः
 शत्रुं सत्रान्निष्क्रान्तं घातयेत् ॥ ३१ ॥ मित्रासारमुख्यव्यञ्जना वा संरुद्धेन मैत्रीं
 कृत्वा दूतमभित्यक्तं प्रेषयेत् ॥ ३२ ॥ इदं ते छिद्रम् ॥ ३३ ॥ इमे दूष्याः ॥ ३४ ॥
 संरोद्धवां छिद्रमयं ते कृत्यपक्ष इति ॥ ३५ ॥ तं प्रतिदूतमादाय निर्गच्छन्तं
 विजिगीषुगृहीत्वां दोषमभिविख्याप्य प्रवास्यापगच्छेत् ततः ॥ ३६ ॥ मित्रासा-
 रव्यञ्जनो वा संरुद्धं व्रूयात् ॥ ३६ ॥ मां व्रातुमुपनिर्गच्छ ॥ ३७ ॥ मया वा
 सह सरोद्धारं जहीति ॥ ३८ ॥ प्रतिपन्नमुभयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥
 जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत् ॥ ४१ ॥ नगरं वास्य प्रमृदनीयात् ॥ ४२ ॥
 सारवलं वास्य वमयित्वाभिहन्यात् ॥ ४३ ॥ तेन दण्डोपनताटविका व्याख-
 याताः ॥ ४४ ॥

स्वयं अग्नि लगने या लगाने किसी विशेषोत्सव नाटक, सेना की कवायद के देखने
 और सुरा पीने वालों के कलह में एवं नित्य के युद्ध से थकी हुई सेनाके होने, लंबे
 युद्ध से बहुत से मनुष्यों के मरने या हताहत हो जाने, जागरण से दुःखी होकर सोने, नदी
 के वेगके पार करने, आन्धी में ह के अन्धकार से युक्त, दिन या कुहरा पड़ने के समय
 में राजा शत्रु की सेना को कुचल डाले। अपनी छावनी को छोड़कर राजा वन में छुप
 जावे और वहां से निकलते हुए शत्रु को मरवा डाले। मित्र की सेना के मुख्य व्यक्ति
 के रूप में रहने वाला गुप्तचर घिरे हुए शत्रु राजा के साथ मित्रता करके अपराधी
 व्यक्ति को दूत बनाकर भेज देवे। उसके द्वारा कहलावे, कि ये २ तुम्हारे भीतरी विगड़े
 हुए अमात्य हैं। यह आक्रान्ता के छिद्र हैं और यह विजेता के अमुक २ पुरुष भय या
 लोभ से तुम्हारी ओर आजाना चाहते हैं। जब शत्रु के दूत को लेकर मार्ग में जाते हुए
 उस पुरुष को देखे तो विजयेच्छुक राजा, उन्हें पकड़कर और शत्रु राजा के दोष को
 विख्यात करके उसे मारकर आप चलदेवे। मित्र की सेना के रूप में रहता हुआ गुप्तचर
 घिरे हुए शत्रु राजा से कहे, तुम मेरी रक्षा में तत्पर हो जाओ। तुम मेरे साथ होकर
 आक्रमण कारी राजा को मार लो। जब मान ले-तो इसे दोनों ओर से घेर कर मार दिया
 जावे अथवा जीता ही पकड़ कर उसके राज्य पर किसी दूसरे को बैठा देवे। इसके नगर
 को लूटलाट ले। इसकी दृढ़ सेना को दुर्ग से निकाल कर मार दे। यही दण्डोपनत
 (दण्डसे वशमें किये हुए) या आटविकों (वनचर भील) के वशमें करने की रीति हैं ॥ ३०-४४ ॥

दण्डोपनतादविकयोरन्यतरो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ४५ ॥ अयं संरोद्धा
व्याधितः पार्ष्णिग्राहेणाभियुक्तरिद्धमन्यदुत्थितमन्यस्यां भूमावपयातुकाम इति
॥ ४६ ॥ प्रतिपन्ने संरोद्धा स्कन्धावारमादीप्यापयायात् ॥ ४७ ॥ ततः पूर्ववदा-
चरेत् ॥ ४८ ॥

दण्डोपनत आटविक, घिरे हुए राजा के पास दूत भेजें, कि यह विजेता रोगी
है और इसके पीछे से शत्रु लगा दें। इसमें बहुत छिद्र हो रहे हैं। अब दूसरी भूमि में
जाना चाहता है। यदि शत्रु राजा इस बात पर विश्वास करले-तो विजेता अपनी
छावनी में आग लगाकर चलदे और जब शत्रु धावा करे-तो दोनों मिलकर उसे
मार लें ॥ ४५-४८ ॥

पण्यसंपातं वा कृत्वा पण्येनैनं रसविद्वेनातिसंदध्यात् ॥ ४९ ॥ आसार-
व्यञ्जनो वा संरुद्धस्य दूतं प्रेषयेत् ॥ ५० ॥ मया बाह्यमभिहतमपनिर्गच्छाभि-
हन्तुमिति ॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं पूर्ववदाचरेत् ॥ ५२ ॥ मित्रं बन्धुं वापदिश्य
योगपुरुषाः शासनमुद्राहस्ताः प्रविश्य दुर्गं ग्राहयेयुः ॥ ५३ ॥ आसारव्यञ्जनो
वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ५४ ॥ अमुष्मिन्देशे काले च स्कन्धावारमभिहनिष्यामि
॥ ५५ ॥ युष्माभिरपि योद्धव्यमिति ॥ ५६ ॥ प्रतिपन्नं यथोक्तमभ्याधातसंकुलं
दर्शयित्वा रात्रौ दुर्गान्निष्क्रान्तं घातयेत् ॥ ५७ ॥

राजा किसी बड़े भारी व्यापारी के आने की खबर फैलवावे और उसके द्वारा विप
मिश्रित चीजें विकवाकर राजा या राजा की सेना को मरवा डाले। मित्र सेना के अध्यक्ष
के रूप में रहने वाला कर्मचारी, घिरे हुए राजा के पास संदेश भेजे-कि मैंने तुम्हारे शत्रु
को मार २ कर दीला कर दिया है, अब तुम आकर इसे मारलो। यदि वह चला आवे-तो
दोनों मिलकर इसकी बुरी तरह दुर्दशा कर डाले। गुप्तचर, वनावटी मुद्रा का पत्र लेकर
और अपने आपको राजा का मित्र या बन्धु बताकर क्लिप्ते में घुस जावे और वहां पर
अधिकार कर लेवे। मित्र सेना के वेष में रहने वाला, गुप्तचर, शत्रु राजा के पास यह
संदेश भेजे कि मैं अमुक देश और समय में तुम्हारे शत्रु की छावनी पर आक्रमण
करूंगा, तुमको भी आकर युद्ध करना चाहिए। जब वह स्वीकार करले-तो पूर्व कथन के
अनुसार विजेता राजा की छावनी में घमसान युद्ध का नाटक दिखावे। इसे देखकर जब
शत्रु राजा दुर्ग से बाहर आजावे, तो उसे भी मार डाला जावे ॥ ४९-५७ ॥

यद्वा मित्रमावाहयेत् आटविकं वा, तमुत्साहयेत् ॥ ५८ ॥ विक्रम्य संरुद्धे भूमिमस्य प्रतिपद्यस्वेति ॥ ५९ ॥ विक्रान्तं प्रकृतिभिर्दूष्यमुख्योपग्रहेण वा घातयेत्, स्वयं वा रसेन ॥ ६० ॥ मित्रघातको ऽयमित्यवाप्तार्थः ॥ ६१ ॥ विक्रमितु-
कामं वा मित्रव्यञ्जनः परस्याभिशंसेत् ॥ ६२ ॥ आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषा-
नस्योपघातयेत् ॥ ६३ ॥ संधिं वा कृत्वा जनपदमेनं निवेशयेत् ॥ ६४ ॥ निवि-
ष्टमन्यजनपदमविज्ञातो हन्यात् ॥ ६५ ॥

विजयाभिलाषी राजा, अपने शत्रु या किसी आटविक (वनचर भील) को बुलावे और उसे शत्रु के विरुद्ध उत्तेजित करे कि तुम इसपर चढ़ाई करके इसकी भूमि छीनलो । जब वह चढ़ाई करदे-तो उसके अमात्य या दूषित मुख्य सेनापति आदि के द्वारा तथा विष प्रयोग से मरवा देवे । यह मेरे मित्र का घातक था, इसको भगवान् ने स्वयं ही दण्ड दे दिया । इस प्रकार प्रसिद्ध करे । शत्रु का मित्र बना हुआ गुप्तचर, शत्रु राजा से कहे, अमुक राजा तुम्हारे ऊपर आक्रमण करना चाहता है । जब राजा उसपर विश्वास करले-तो समय २ पर वह उसके वीर पुरुषों को मरवाता रहे । अपने राजा या अन्य से सन्धि करवाकर इससे किसी देश को बसवावे । जब यह राजा अन्य देश में घुसे-तो अनजान पुरुषों द्वारा इसे मरवा डाले ॥ ५८-६५ ॥

अपकारयित्वा दूष्याटविकेषु वा बलैकदेशमतिनीय दुर्गमवस्कन्देन हारयेत् ॥ ६६ ॥ दूष्यामित्राटविकद्वेष्यप्रत्यपसृताश्च कृतार्थमानसंज्ञाचिन्हाः परदुर्गमव-
स्कन्देयुः ॥ ६७ ॥ परदुर्गमवस्कन्द्य स्कन्धावारं वा पतितपराङ्मुखाभिपन्नमुक्तकै-
शशस्त्रभयविरूपेभ्यश्चाभयमयुष्मानेभ्यश्च दधुः ॥ ६८ ॥ परदुर्गमेवाप्य विशुद्धशत्रु-
पक्षः कृतोपांशुदण्डप्रतीकारमन्तर्वाहिश्च प्रविशेत् ॥ ६९ ॥

अपने दूषित पुरुष या वनचर भीलों के अपकार का बहाना करके उनपर थोड़ी सी सेना लेकर चढ़ाई करदे और घेरा डालकर उनके दुर्ग छीन ले । इस समय अपने से भीतरी विगड़े हुए वीर, शत्रु, आटविक, अपने द्वेषी, शत्रु के पास जाकर लौटे हुए पुरुषों का मान और सत्कार करके पूर्वोक्त शत्रु के दुर्ग पर धावा करवावे । शत्रु के दुर्ग या छावनी को अपने अधीन करके रण भूमि में गिरे हुए, रण से विमुख, शरणागत, विखरे वालों वाले, शस्त्राग्राही, भयातुर और नहीं लड़ने वाले शत्रुओं को अभयदान देवे । जब राजा शत्रु के दुर्ग पर अधिकार करले-तो वह सबसे प्रथम शत्रु पक्ष के मनुष्यों को मार डाले तथा जिस का गुप्त-चुप वध करना कराना हो, उसे कर कराकर दुर्ग के बाहर घूमे या भीतर प्रवेश करे ॥ ६६-६९ ॥

एवं विजिगीपुरमित्रभूमिं लब्ध्वा मध्यमं लिप्सेत ॥ ७० ॥ तत्सिद्धावुदा-
सीनम् ॥ ७१ ॥ एष प्रथमो मार्गः पृथिवीं जेतुम् ॥ ७२ ॥ मध्यमोदासीनयोरभावे
गुणातिशयेनारिप्रकृतीः साधयेत् ॥ ७३ ॥ तत उत्तराः प्रकृतीः ॥ ७४ ॥ एष
द्वितीयो मार्गः ॥ ७५ ॥ मण्डलस्याभावे शत्रूणां मित्रं मित्रेण वा शत्रुमुभयतः
संपीडनेन साधयेत् ॥ ७६ ॥ एष तृतीयो मार्गः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार विजयेच्छुक राजा, शत्रु भूमि पर अधिकार करके मध्यम नृपति
की भूमि पर आक्रमण करे। जब उसपर अधिकार हो जावे-तो उदासीन को जा दबावे।
पृथ्वी के विजय करने का यह प्रथम मार्ग है। मध्यम और उदासीन के न होने पर अपने
गुणों की अधिकता के कारण शत्रु की प्रकृति (अमात्य) को अपने वश में लावे। इसके
अनन्तर उत्तर प्रकृति कोश सेना पर कब्जा करे। यह दूसरा मार्ग है। यदि मण्डल
भी विरोधी न रहे-तो शत्रु द्वारा मित्र और मित्र द्वारा शत्रु को पीड़ा दिलाकर दबा देवे।
यह तीसरा मार्ग है ॥ ७०-७७ ॥

शक्यमेकं वा सामन्तं साधयेत् ॥ ७८ ॥ तेन द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्त्रितीयम्
॥ ७९ ॥ एष चतुर्थो मार्गः पृथिवीं जेतुम् ॥ ८० ॥ जित्वा च पृथिवीं विभक्त-
वर्णाश्रमां स्वधर्मेण भुञ्जीत ॥ ८१ ॥

विजेता इन सब कगड़ों को छोड़कर शक्तिशाली एक ही सामन्त को अपनी ओर
कर लेवे। इससे दूसरे को वश में करके दुगुना और तीसरे को वश में करके तिगुना
शक्तिशाली बन जावे। यह पृथ्वी के जीतने का चौथा मार्ग है। जब पृथ्वी अपने अधि-
कार में हो जावे-तो वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार धर्म पूर्वक उसका उपभोग करे ॥ ७८-८१ ॥

उपजापापसर्पौ च वामनं पर्युपासनम् ।

अवमर्दश्च पञ्चैते दुर्गलम्भस्य हेतवः ॥ ८२ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे पर्युपासनकर्म, अवमर्दश्च चतुर्थोऽध्यायः

आदितश्चतुश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४४ ॥

शत्रु के मनुष्यों में तोड़ फोड़, अपने गूढ़ पुरुषों के द्वारा शत्रु पक्ष का नाश, विप
आदि विषम उपाय, शत्रु के दुर्ग का घेरा, तथा शत्रु के दुर्ग का कुचलना-ये पांच साधन
शत्रु के दुर्ग के प्राप्त करने के उत्तम कारण माने गए हैं ॥ ८२ ॥

इति श्रीकौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में शत्रु के दुर्ग घेरने

आदि के उपायों के वर्णन का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पांचवां अध्याय

१७६वां प्रकरण

लब्धप्रशमनम्

इस प्रकरण में जीते हुए प्रान्त में शान्ति स्थापन के ढंगों का वर्णन किया जावेगा ।

द्विविधं विजिगीषोः समुत्थानम् ॥ १ ॥ अटव्यादिकमेकग्रामादिकं च
॥ २ ॥ त्रिविधश्चास्य लम्भः ॥ ३ ॥ नवो भूतपूर्वः पित्र्य इति ॥ ४ ॥

विजयाभिलाषी राजा का उदय दो तरह का माना गया है—एक तो वन और दूसरा नगरों का उदय । विजेता के तीन लाभ माने गए हैं—एक तो नया लाभ, दूसरा अपना गया हुआ द्रव्य वापिस लेकर प्राप्त किया लाभ और तीसरा अपने पिता के समय में गई हुई भूमि आदि का लाभ ॥१-४॥

नवमवाप्य लाभं परदोषान्स्वगुणैश्छादयेत् गुणान्गुणद्वैगुण्येन ॥ ५ ॥
स्वधर्मकर्मनुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिश्च प्रकृतिप्रियहितान्यनुवर्तेत ॥ ६ ॥ यथा-
संभाषितं कृत्यपक्षमुपग्राहयेत् ॥ ७ ॥ भूयश्च कृतप्रयासम् ॥ ८ ॥ अविश्वास्यो
हि विसंवादकः स्वेषां परेषां च भवति प्रकृतिविरुद्धाचारश्च ॥ ९ ॥ तस्मात्समा-
नशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत् ॥ १० ॥ देशदैवतसमाजोत्सवविहारेषु च भक्ति-
मनुवर्तेत ॥ ११ ॥

नये लाभ को प्राप्त करके विजेता अपने गुणों से शत्रु के किये हुए दोषों को नष्ट करदे । तथा शत्रु में जो गुण की बातें हो-उन्हें अपने दुगुने गुण से दबादे । राजा अपने प्रजापालन आदि धर्म, यज्ञानुष्ठान आदि कर्म, प्रजा को सहायता आदि का अनुग्रह, अधिक करका परित्याग, उपहार, और सत्कार आदि कर्मों से प्रजा प्रिय और हितकारी तरों को सन्तुष्ट बनाये रखे । अपने से कुपित हुए पक्ष को भी उनके वायदे पूरे करके अपने वश में रखे तथा जिसने राजा के निमित्त बहुत परिश्रम किया हो-उसे अधिक अधिकार या धन देवे । जो राजा प्रथम देने की कहकर फिर जब मुकर जाता है, तो वह अपने और पराये सबकी दृष्टि में पतित हो जाता है क्योंकि उसने अपनी प्रजा के विरुद्ध आचरण किया है । इन सब कारणों से राजा, अपनी प्रजा के अनुकूल वेष, भूषा, भाषा, और आचार स्वीकार करे । इसी तरह देश के देवता, समाज, उत्सव, और विहारों में सर्वदा सहयोग देते रहें ॥५-११॥

देशग्रामजातिसंघमुख्येषु चाभीक्षणं सन्निधः परस्यापचारं दर्शयेयुः
 ॥१२॥ माहाभाग्यं भक्तिं च तेषु स्वामिनः स्वामिसत्कारं च विद्यमानम् ॥१३॥
 उचितैश्चैनान्भोगपरिहाररक्षावेक्षणैः भुञ्जीत ॥ १४ ॥ सर्वदेवताश्रमपूजनं च
 विद्यावाक्यधर्मशूरपुरुषाणां च भूमिद्रव्यदानपरिहारान्कारयेत् ॥ १५ ॥ सर्ववन्ध-
 नमोक्षणमनुग्रहं दीनानाथव्याधितानां च ॥ १६ ॥ चातुर्मास्येष्वर्धमासिकम-
 धातम् ॥ १७ ॥ पौर्णमासीषु च चातूरात्रिकम् ॥ १८ ॥ राजदेशनक्षत्रेष्वैक-
 रात्रिकम् ॥ १९ ॥ योनिवालवधं पुंस्तोपघातं च प्रतिषेधयेत् ॥ २० ॥

विजेता के गुप्तचर, देश ग्राम और जातियों के मुख्य पुरुषों के सन्मुख सदा पूर्व राजा के
 दुरे व्यवहारों का वर्णन करते रहें : अपने स्वामी की उदारता, भक्ति को दिखलावे और
 वर्तमान काल में होने वाली सत्कार की भी प्रसिद्धि करें। उचित राज्य का कर, टैक्सों की
 मुआफ़ी तथा रक्षा के उपायों के साथ राजा उस पृथ्वी का भोग करे। विजेता, सारे देवता
 और आश्रमों का पूजन करे। विद्वान्, व्याख्याता, धार्मिक पुरुषों को भूमि द्रव्य का दान
 या कर की मुआफ़ी कर देवे। विजेता राजा को सारे कैदी छोड़ना, दीन, अनाथ और
 रोगियों पर दया दिखानी चाहिए। चार महीने में पन्द्रह दिन किसी को फांसी न दी
 जावे; सारी पौर्णमासियों में चार पौर्णमासियों को भी प्राण दण्ड न हो। राज्य प्राप्ति या
 सिंहासन के नक्षत्र में भी प्राण दण्ड न दिया जावे। स्त्री जन्तु और बालक पशु का वध न
 हो, तथा किसी जीव का पुंस्त्व नाश न किया जावे ॥१२-२०॥

यच्च कोशदण्डोपघातिकमधर्मिष्ठं वा चरित्रं मन्येत तदपनीय धर्म्यव्यवहारं
 स्थापयेत् ॥ २१ ॥ चोरप्रकृतीनां म्लेच्छजातीनां च स्थानविपर्यासमनेकस्थं
 कारयेत् दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यानां च ॥२२॥ परोपगृहीतानां च मन्त्रिपुरोहितादीनां
 परस्य प्रत्यन्तेष्वनेकस्थं वासं कारयेत् ॥ २३ ॥ अपकारसमर्थाननुक्षियतो वा
 भर्तृविनाशमुपांशुदण्डेन प्रशमयेत् ॥ २४ ॥ स्वदेशीयान्वा परेण वावरुद्धानप-
 वाहितस्थानेषु स्थापयेत् ॥२५॥ यश्च तत्कुलीनः प्रत्यादेयमादातुं शक्तः प्रत्यन्ता-
 टवीस्थो वा प्रवाधितुमभिजातस्तस्मै विगुणां भूमिं प्रयच्छेत् ॥ २६ ॥

जो व्यवहार कोश और सेना का घातक और धर्महीन हो उसको हटाकर धर्म व्य-
 वहार की स्थापना की जावे। चोरी का पेशा करने वाले तथा म्लेच्छों को इधर उधर बसाता
 रहे और दुर्ग राष्ट्र तथा सेना के मुख्य पुरुषों के भी स्थानों की बदली होती रहे। शत्रु
 से उपकार पाये हुए मन्त्री और पुरोहित आदि को शत्रु की सीमा के पास पृथक् २ वास
 करावे। जो अपकार करने में समर्थ राजा को मारना चाहते हों-उन्हें राजा गुप्तचुप मरवा

देवे । अपने देश के या शत्रु द्वारा बन्धन में डाले हुए पुरुषों को निकाले हुए शत्रु के साथी मनुष्यों के स्थानों पर राजा नियुक्त करे । यदि छीनी हुई भूमि को पूर्व राजा के बांधव छीनने में समर्थ हों या सीमा के समीप रहने वाले वनचर भील उसे छीन सकते हों-तो विजेता राजा उस भूमि का व्यर्थ का भाग देकर उन्हें शान्त कर देवे ॥ २१-२६ ॥

गुणवत्याश्चतुर्भागं वा कोशदण्डदानमवस्थाप्य, यदुपकुर्वाणः पौरजानप-
दान्कोपयेत् ॥ २७ ॥ कुपितैस्तैरेनं घातयेत् ॥ २८ ॥ प्रकृतिभिरुपकुण्टमपनयेत्
॥ २९ ॥ औपधातिके वा देशे निवेशयेदिति ॥ ३० ॥ भूतपूर्वे येन दोषेणापवृ-
त्तस्तं प्रकृतिदोषं छादयेत् ॥ ३१ ॥ येन च गुणेनोपावृत्तस्तं तीव्रीकुर्यादिति
॥ ३२ ॥ पित्र्ये पितृदोषांश्छादयेत् ॥ ३३ ॥ गुणांश्च प्रकाशयेदिति ॥ ३४ ॥

यदि ये लोग कोश और सेना देना स्वीकार करें-तो इन्हें भूमि का उत्तम चतुर्थांश भाग भी दिया जा सकता है । इस कोश और सेना के संग्रह से इस पर देश और नगर निवासी कुपित हो उठेंगे । इन कुपित लोगों से फिर इसे मरवा देना चाहिए । यदि कोई अमात्य राजा की निन्दा करे-तो उसे उस पद से हटा दिया जावे या उसे मरवा देने योग्य प्रदेश में भेज दिया जावे । जिस दोष के कारण अपना राज्य प्रथम शत्रु के अधीन हुआ था उस दोष को न उभरने देवे । जिस गुण की लोग प्रशंसा करते हों-उसको और बढ़ाकर दिखावे । यदि पिता के दोष से राज्य हाथ से निकला था-तो पिता के दोषों को दबाया जावे और अपने पिता के गुणों को बढ़ाकर दिखाते रहना चाहिए ॥ २७-३४ ॥

चरित्रमकृतं धर्म्यं कृतं चान्यैः प्रवर्तयेत् ।

प्रवर्तयेन्न चाधर्म्यं कृतं चान्यैर्निवर्तयेत् ॥ ३५ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे लब्धप्रशमनं पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

आदितः पञ्चचत्वारिंशच्छतः ॥ १४५ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य

दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशाधिकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

जिन धर्म युक्त व्यवहारों का लोप हो गया हो-उनको विजेता प्रचलित करे । और जो धर्म व्यवहार किये जा रहे हों-उनको सहायता पहुंचावे । राजा अपनी ओर से अधर्म युक्त व्यवहारों को न होने दे और न अन्य द्वारा किये गए अधार्मिक व्यवहारों को फैलने देवे ॥३५॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में प्राप्त हुए राज्य में

शान्ति स्थापन के वर्णन का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ और यहीं पर

दुर्गलम्भोपाय नामक अधिकरण भी समाप्त हो गया ।



श्रौपनिषदिक चतुर्दशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१७७वां प्रकरण

परधातप्रयोग ।

इस प्रकरण में शत्रु के मारण के लिए श्रौपधों के प्रयोगों का वर्णन किया जावेगा ।

चातुर्वर्ण्यरक्षार्थमौपनिषदिकमधर्मिष्ठेषु प्रयुज्जीत ॥ १ ॥ कालकूटादिः
विषवर्गः श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाजनापदेशैः कुब्जवामनकिरातमूकवधिरजडान्धच्छ
द्मभिः म्लेच्छजातीयैरभिप्रेतैः स्त्रीभिः पुंभिश्च परशरीरोपभोगेष्वधातव्यः ॥ २ ॥
राजक्रीडाभाण्डनिधानद्रव्योपभोगेषु गूढाः शस्त्रनिधानं कुर्युः ॥ ३ ॥ सत्त्राजी-
विनश्च रात्रिचारिणो ऽग्निजीविनश्चाग्निनिधानम् ॥ ४ ॥

राजा को चाहिए, कि वह चारों वर्णों की रक्षा के निमित्त इन मन्त्र और श्रौपधों के प्रयोगों को अधार्मिक लोगों में ही प्रयुक्त करे । श्रद्धा के योग्य देश, वेष, शिल्प और सुपात्रता का ढोंग बनाये हुए, कुब्ज, बौने, किरात, गूंगे, बहरे, मूर्ख, और अन्धों के रूप में विचरने वाले अपने अनुकूल म्लेच्छ स्त्री पुरुषों के द्वारा शत्रु के शरीर या भोजन में विजयाभिलाषी राजा कालकूट आदि विष समूह का प्रयोग करे । राजा के क्रीडागृह, चखालझार आदि के रखने, तथा उपभोग के साधन इत्र आदि अन्य वस्तुओं के स्थानों में गुप्त तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्रों को छुपाकर रख देवे और समय पर राजा पर प्रहार करके उसे मार देवे । घने जंगल आदि स्थानों में रात में घूमकर जीविका करने वाले या आग लगाने वाले गुप्तचर, शत्रु के स्थान में आग रख देवे ॥१-४॥

चित्रभेककौण्डिन्यककृकणपञ्चकुष्ठशतपदीचूर्णमुचिदिङ्गकंवलीशतकन्देध्म-
कृकलासचूर्णं गृहगोलिकान्धाहिककृकणकपूतिकीटगोमारिकाचूर्णं भस्मातकावल्गु-
कारसयुक्तं सद्यः प्राणहरमेतेषां वा धूमः ॥ ५ ॥

चितकवरा भेंदक, कौण्डिन्यक कीड़ा, जंगली तीतर, कूट जड़ी के पत्ते फूल आदि पांचों अङ्ग, कान खजूरा, इन सब चीजों के चूर्ण को मिलाया और वावची के रस में मिलाकर

खिला दिया जावे-या इनका धुंआ दे दिया जावे-तो यह फौरन प्राणों का नाश करता है । इसी तरह उच्चिदिङ्ग कीड़ा, कम्बली कीड़ा, शतावरी, जमीकन्द, और किरकांट जन्तु के चूर्ण में भिलावां और वावची के रस की भावना देकर खिलाया या धुंआ दिया जावे-तो फौरन मृत्यु होती है । गृहगोलिका (छपकली) अन्धाहिक (दुमई सांप) कृकणक (जंगली तीतर) पूतिकीड़ा, गोमारिका (गाय खाते ही मर जावे भोरी कीड़ा) के चूर्ण में भिलावा और वावची का रस मिलाकर मारण के लिए देवे या धुंआ दे-तो फौरन मृत्यु हो जावे ॥१॥

कोटो वान्यतमस्तप्तः कृष्णसर्पप्रियङ्गुभिः ।

शोपयेदेष संयोगः सद्यः प्राणहरो मतः ॥ ६ ॥

उपर्युक्त जन्तुओं में किसी एक जन्तु को लेकर काले सांप और प्रियङ्गु (कांगणी) के साथ पका लिया जावे और उसके तेल का प्रयोग नाक आदि के द्वारा मनुष्य के शरीर में कर दिया जावे, तो वह मनुष्य सूख २ कर मर जाता है ॥६॥

धामार्गवयातुधानमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तमार्धमासिकः ॥ ७ ॥ व्याघात-
कमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तं कीटयोगो मासिकः ॥ ८ ॥ कलामात्रं पुरुषाणां
द्विगुणं खराधानां चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ॥ ९ ॥

चिड़चिड़े और यातुधान नामक जड़ी की जड़ को भिलावे के फूलों के साथ मिला कर खिला दिया जावे-तो यह प्रयोग मनुष्य को पन्द्रह दिन में मार देता है । अमलतास की जड़, भिलावे के फूलों के चूर्ण के साथ मिलाकर उसमें उपर्युक्त किसी जन्तु को मिलाकर खिला दिया जावे-तो मनुष्य की एक मास में मृत्यु हो जावेगी । इस प्रयोग की पुरुषों को कला मात्रा, गधों घोड़ों को दो कला और हाथी तथा ऊंटों को चार कला देनी चाहिए ॥७-९॥

शतकंदमोचिदिङ्गकरवीरकटुतुम्बीमत्स्यधूमो मदनक्रोद्रवपलालेन हस्तिक-
र्णपलाशपलालेन वा प्रवातानुवाते प्रणीतो यावच्चरति तावन्मारयति ॥ १० ॥

शतावरी, कपूर, अगर, कस्तूरी और कंकोल का घिसा हुआ लेप, उच्चिदिङ्ग, कनेर, कड़वी तुम्बी और मछली का धुंआ, धतूरा, कोदों और पलाल-धान की बाल के नीचे का तूड़ा (घास) अथवा धनिया, ढाक और पलाल (घास) के साथ हवा के रुख पर उड़ाया जावे तो वह जहां तक जावेगा-वहीं तक लोगों को मार देगा ॥१०॥

पूतिकीटमत्स्यकटुतुम्बिशितकंदमेन्द्रगोपचूर्णं पूतिकीटक्षुद्रारालाहेमविदा-
रीचूर्णं वा वस्तश्चक्षुरचूर्णयुक्तमन्धीकरो धूमः ॥ ११ ॥

पूति कीट (कुछ २ कांटेदार कीड़ा मछली, कद्दू की तूम्बी, शतावर, कपूर, अगर आदि का लेप, इन्द्रगोप (वीरवहूटी) का चूर्ण अथवा पूतिकीट, छोटी कटेली, राल, धतूरा और विदारी कंद का चूर्ण यदि वक्रे के सींग और खुर के साथ मिला दिया जावे-तो इन सब का धुंआ मनुष्यों को अन्धा बना देता है ॥ ११ ॥

पूतिकरञ्जपत्रकहरितालमनःशिलागुञ्जारक्तकार्पासपललान्यास्फोटकाचगोश-
कृद्रसपिष्टमन्धीकरो धूमः ॥१२॥ सर्पनिर्मोकं गोश्वपुरीषमन्धाहिकशिरश्चान्धीकरो
धूमः ॥ १३ ॥

कांटेदार करंजुवा, पत्रक, हड़ताल, मैन्शिल, रत्ती, लाल कपास और धान्य का काण्ड-इन सब चीजों को आल काच और गोबर के रस में पीसा जाकर धुंआ दी जावे-तो वह फौरन ही अन्धा बना देता है। सांप को कैंचुली, गोबर और घोड़े की लीढ़ और विपरहित दुमई सांप का शिर मिला कर धुंआ दी जावे-तो वह फौरन ही अन्धा कर देता है ॥ १२-१३ ॥

पारावतस्रवकक्रव्यादानां हस्तिनखराहाणां च मूत्रपुरीषं कासीसहिङ्गु यवतु-
पकणतण्डुलाः कार्पासकुटजकोशातकीनां च बीजानि गोमूत्रिकाभाण्डीमूलं
निम्बशिग्रुफणिज्जकाक्षीवपीलुकभङ्गः सर्पशफरीचर्म हस्तिनखशृङ्गचूर्णमित्येष धूमो
मदनकोद्रवपललेन हस्तिकर्णपलाशपललेन वा प्रणीतः प्रत्येकशो याचच्चरति
तावन्मारयति ॥ १४ ॥

कवूतरं, बतख, गीध, हाथी, मनुष्य और सूअर का मलमूत्र, कसीस, हींग जौ का छिलका, टूटे चावल, कपास, कुटज, कड़वी तोरई के बीज, गोमूत्रिका घास, मजीठ की जड़, नीम सेंजना, सफेद मरवा, काक्षीव वृक्ष, और पीलू-इन पांचों वृक्षों की छाल सांप और मछली की चर्ची, हाथी के नाखून और दांतों के चूरे का धुंआ धतूरा, कोदों और धान के पलाल या धनिया, दाक और पलाल के साथ छोड़ा जावे-तो जहां तक पहुंचे वहां तक प्रत्येक मनुष्य को मार बैठेगा ॥ १४ ॥

कालीकुष्ठनडशतावरीमूलं सर्पप्रचलाककृकणपञ्चकुष्ठचूर्णं वा धूमः पूर्वकल्पे-
नार्द्रशुष्कपललेन वा प्रणीतः संग्रामावतरणावस्कन्दनसंकुलेषु कृततेजनोदकाक्षि-
प्रतीकारैः प्रणीतः सर्वप्राणिनां नेत्रघ्नः ॥ १५ ॥

चकोतरा, कूठ, नरसल, और शतावरी, इन चीजों की जड़का; या सांप, मोर की पूंछ, जंगली तीतर, कूट के पांचों अंग ('कूट' एक वृक्ष का नाम है, उसके पत्ते फल फूल

छाल और जड़, ये पांच अंग कहे जाते हैं), इन सब चीजों के चूर्ण का पूर्वकल्प अर्थात् पहिले सूत्र में बतलाये हुए योग (धतूरा, कोदों, पलाल, या धनिया, पलाश, पलाल; देखो सूत्र १४) के साथ मिलाकर जो धुंआ बनाया जाता है; अथवा कुछ गीले और कुछ सूखे केवल पलाल (पुराल) के साथ जो धुंआ बनाया जाता है; संग्राम में उतरने और रात्रि के बलात्कार आक्रमण की भीड़ के समय में, तेजनोदक (देखो० अधि० १४, अध्या० ४, सूत्र १) के सहारे से आंखों का प्रतीकार किये हुए पुरुषों के द्वारा बनाया गया हुआ वह धुंआ, सब ही प्राणियों के नेत्रों को नष्ट कर डालता है । तात्पर्य यह है, कि इस उपर्युक्त धुंए का प्रयोग करते समय, प्रयोग करने वाले पुरुष इसके प्रतीकार का प्रयोग अपनी आंखों पर अवश्य करलें, नहीं तो उनकी भी आंखें नष्ट हो जावेंगी ॥१५॥

शारिकाकपोतकबलाकालण्डमर्काक्षिपीलुकस्तुहिक्षीरपिष्टमन्धीकरणमञ्ज-
नमुदकंदूपणं च ॥ १६ ॥

मैना, कवूतर, बगला और बगली, इन पक्षियों की विष्टा को; आख [आरु], अक्षी [सेंजने या वहेड़े की किसम का एक पेड़], पीलु, तथा सेंद, इन चारों वृक्षों के दूध में पीसकर, अंजन तैयार किया जावे, यह अंजन प्राणियों के अन्धा करने वाला, तथा जल को दूषित करने वाला होता है ॥ १६ ॥

यवकशालिमूलमदनफलजातीपतूनरमूत्रयोगः सलविदारीमूलयुक्तो मूकोदु-
म्बरमदनकोद्रवकाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशकाथयुक्तो वा मदनयोगः ॥ १७ ॥

यवक (जौ, अथवा जलपीपल) और शाली [धान] की जड़, मैनफल, चमेली, पत्रक, और नरमूत्र [आदमी का पेशाब] इन सब चीजों को मिलाकर, तथा इनमें पिलखन या लाख देने वाले पीपल और विदारी की जड़ का योग करके, अथवा मलिन जल में घने हुए गूलर धतूरा और कोदों के क्वाथ का योग करके, अथवा धनियां और पलाश के क्वाथ का योग करके, 'मदनयोग' तैयार हो जाता है । अर्थात् यह योग चित्त का उन्मादक चित्त को भ्रम में डालने वाला होता है ॥१७॥

शृङ्गिगौतमवृक्षकण्टकारमयूरपदीयोगो गुञ्जालाङ्गुलीविषमूलिकेङ्गुदीयोगः
करवीराक्षिपीलुकार्कमृगमारणीयोगो मदनकोद्रवकाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशकाथ-
युक्तो वा मदनयोगः ॥ १८ ॥ समस्ता वा यवसेन्धनोदकदूपणाः ॥१९॥

शृङ्गी नामकी मछलीका पित्ता (शृङ्गिगौतम), लोध, सिंभल और मोरशिखा (अजमोदी) इन चीजों का योग; तथा चौंटली (रत्ती), जलपीपल या नारियल कालकूट आदि विष और इंगुदी (हिंमनवेठ, या गोंदी । इन सब चीजों का योग; करवीर (कनेर)

अक्षी [सेंजना या बहेड़े की किस्म का एक पेड़], पीलु, आक, मृगमारणी [मृग को मारने वाली कोई औषधि विशेष], इन सब चीजों का योग; धतूरा और कोदों को क्वाथ के साथ, अथवा धनिया और पलाश के क्वाथ के साथ 'मदनयोग' अर्थात् उन्माद कर देने वाला योग हो जाता है ॥ १८ ॥ अथवा ये सब ही मदनयोग, पशुओं के चारे, ईन्धन और जल को भी दूषित करने वाले होते हैं ॥ १९ ॥

कृतकण्डलकृकलासगृहगोलिकान्धाहिकधूमो नेत्रवधमुन्मादं च करोति ॥ २० ॥ कृकलासगृहगोलिकायोगः कुष्ठकरः ॥ २१ ॥ स एव चित्रभेकान्त्रमधु-युक्तः प्रमेहमापादयति ॥ २२ ॥ मनुष्यलोहितयुक्तः शोषम् ॥ २३ ॥ दूषीविषं मदनकोद्रवचूर्णं भुपजिह्विकायोगः मातृवाहकाञ्जलिकारप्रचलाकभेकाक्षिपीलुकयोगो विपूचिकाकरः ॥ २४ ॥ पञ्चकुष्ठकौण्डिन्यकराजवृक्षमधुपुष्पमधुयोगो ज्वरकरः ॥ २५ ॥ भासनकुलजिह्वाग्रन्थिकायोगः खरीदीरपिष्टो मूकवधिरकरो मासार्धमासिकः ॥ २६ ॥ कलामात्रं पुरुषाणामिति समानं पूर्वेण ॥ २७ ॥ भङ्गाकाथोपनयन-मौषधानां चूर्णं प्राणभृताम् ॥ २८ ॥ सर्वेषां वा काथोपनयनमेवं वीर्यवत्तरं भवति ॥ २९ ॥ इति योगसंपत् ॥ ३० ॥

कृतकण्डल, गिरगट, छिपकली और दुमई सर्पका धुआं दृष्टि का नाश कर देता है और पागल बना देता है । गिरगट और छिपकली को मिलाकर खिलाने या धुआं देनेसे कुष्ठ रोग हो जाता है यही योग चितकवरे में उसकी आंत और शहद में मिलाकर देनेसे प्रमेह रोग उत्पन्न कर देता है । यदि मनुष्य के लोहित से युक्त करके दिया जावे-तो इससे शोष [तपेदिक] रोग हो जावेगा । हीन शक्ति विष, धतूरा कोदों का चूर्ण, दीमक कीटके साथ मिलाकर बनाया हुआ योग [नुसख्रा] अथवा मातृ वाहक पत्ती, अञ्जलिकार औषधि, मेंढक, अक्षिवृक्ष, पीलू की छाल के संयोग से बनाया हुआ योग विपूचिका [हैजे] को उत्पन्न करता है । कूट के पाचों अङ्ग, कौण्डिन्यक कीड़ा [जिसका मल मूत्र विपैला होता है गुदेरा] अमलतास, शहद, महुआ-इन सब को मिलाकर बनाया हुआ योग ज्वर उत्पन्न करता है । गीध, नेचला और मंजीठके योग को गधीके दूध में पीसा जावे । यह प्रयोग एक महिने या पन्द्रह दिन में मनुष्य को गूंगा और बहरा बना देता है । इन सबकी मनुष्य को एक कला, गधे घोड़े को दो कला, ऊंट हाथी को चार कला मात्रा होती हैं । उपर्युक्त सारे योगों में दवाओं को कूट छानकर और काथ बनाकर करना चाहिए और जन्तुओं का व्यवहार कूटपीस कर चूर्ण करके करना उचित है । इन सबका काथ बना लिया जावे-तो और भी उत्तम तेज योग बनता है । यहां तक औषधों के चमत्कार का वर्णन किया गया ॥ २०-२९ ॥

शान्मलीविदारीधान्यसिद्धो मूलवत्सनाभसंयुक्तश्चुचुन्दरीशोणितप्रलेपेने
दिग्धो वाणो यं विध्यति स विद्धो ऽन्यान्दशपुरुषान्दशति ॥ ३१ ॥ ते
दष्टाश्चान्यान्दशन्ति पुरुषान् ॥ ३२ ॥ भल्लातकयातुधानापामार्गवाणनां पुष्पैरैल-
काचिगुगुलुहालाहलानां च कषायं वस्तनरशोणितयुक्तदंशयोगः ॥ ३३ ॥
ततो ऽर्धधरणिको योगः सक्तुपिण्याकाभ्यामुदके प्रणीतो धनुःशतायाममुदकाशयं
दूषयति ॥ ३४ ॥ मत्स्यपरम्परा ह्येतेन दष्टाभिमृष्टा वा विपीभवन्ति ॥ ३५ ॥
यश्चैतदुदकं पिबति स्पृशति वा ॥ ३६ ॥

सेमल, विदारीकन्द धनिया पीपलामूल और वत्सनाभ के संयोग से बनाया
हुआ, और छद्मंदर के रक्त से भीगा हुआ वाण, जिसके लगेगा-वह पुरुष दश को काट
लेगा और फिर प्रत्येक मनुष्य दश २ को काटते जावेंगे । इस प्रकार यह पागल कुत्ते
का सा विष सर्वत्र फैलेगा । भिलावा, यातु धान जड़ी, अपामार्ग [चिड़चिटा] और अर्जुन
वृक्ष, के पुष्पों के साथ इलायची, अक्षि, गुगल और हलाहल विष का काढ़ा बकरे और
मनुष्य के रक्त से संयुक्त कर दिया जावे-तो यह दंश योग बन जाता है । यह जिसके
रक्त में मिल जावेगा-वही दश २ मनुष्यों को काटता चला जावेगा । इसी योग का आधा
धारणक प्रमाण योग, सक्तू और खल (पशु के खाने का तिलशेष) के साथ जल में मिल
दिया जावे-तो वह सौ धनुष लम्बे चौड़े जलाशय को दूषित कर देता है । इस जल के
संयोग और परस्पर काटने से उस तालाव की मञ्जलियां भी जहरीली बन जाती हैं । जो
इसका उदक पीता या छूता है-वह भी जहरीली प्रकृति का हो जाता है ॥ ३१-३६ ॥

रक्तश्चेतसर्पपैगोंधा त्रिपक्षमुष्टिकायां भूमौ निखातायां निहिता वध्येनोदूधता
यावत्पश्यति तावन्मारयति ॥ ३७ ॥ कृष्णसर्पो वा ॥ ३८ ॥

लाल और सफेद सरसों के साथ गोधा जन्तु को तीन पक्ष तक मिट्टी
के वर्तन में भूमि में गढ़ा खोद कर गाड़ देवे । अब जिसे मारना है, उसके
द्वारा उसे खुदवाओ-तो वह ज्यों ही उसे देखेगा उसी वक्त मर जावेगा । काला सांप भी
इस तरह रखा हुआ देखते ही मृत्यु जनक हो जाता है ॥ ३७-३८ ॥

विद्युत्प्रदग्धोद्गारोऽज्वालो वा विद्युत्प्रदग्धैः काष्ठैर्गृहीतश्चानुवासितः
कृत्तिकासु भरणीषु वा रौद्रेण कर्मणाभिहुतोऽग्निः प्रणीतश्च निष्प्रतीकारो दहति ॥ ३९ ॥

विजली से जला हुआ अङ्गारा या कोयला विजली से जली हुई लकड़ी के
द्वारा प्रदीप्त करके कृत्तिका या भरणी नक्षत्र में रौद्र कर्म द्वारा उसमें हवन किया जावे

उस अग्नि को लेकर यदि कहीं लगा दिया जावे-तो वह अग्नि फिर पानी से नहीं बुझाई जा सकती है ॥ ३६ ॥

कर्मारदग्निमाहृत्य चौद्रेण जुहुयात्पृथक् ।

सुरया शौण्डिकादग्निं भार्यायाग्निं घृतेन च ॥ ४० ॥

माल्येन चैकपत्न्यग्निं पुंश्चन्यग्निं च सर्पपैः ।

दध्ना च सूतिकास्यग्निमाहिताग्निं च तण्डुलैः ॥ ४१ ॥

चण्डालाग्निं च मांसेन चित्ताग्निं मानुषेण च ।

समस्तान्वस्तवसया मानुषेण ध्रुवेण च ॥ ४२ ॥

जुहुयादग्निमन्त्रेण राजवृक्षस्य दारुभिः ।

एष निष्प्रतिकारो ऽग्निर्द्विषतां नेत्रमोहनः ॥ ४३ ॥

कुम्हार के आवे से आग लाकर उसमें शहद, कलाल की भट्टी से आग लाकर उसमें सुरा, हलवाई की अग्नि में घृत, पतिव्रता के पास से लाई अग्नि में माला, वेश्या के घर की आग में सर्पप, सूतिका घर से लाई आग में दही, अग्नि होत्री की आग में चावल पकावे, चण्डाल की अग्नि में मांस, चिता की अग्नि में मनुष्य मांस से हवन करे । इस के बाद इन सारी अग्नियों में वकरे की चर्वी और मनुष्य मांस तथा बड़ या साल की लकड़ी से हवन करे । अमल तास की लकड़ी और अग्नि के मन्त्रों के साथ भी हवन किया जावे-जब यह अग्नि तय्यार हो जावे, तो जहां यह लगाया जावेगा-वहां वह अग्नि बिना भस्म किये शान्त नहीं होगा इस को देखते ही शत्रुओं की आँखें चुन्धिया जावेगी ॥ ४०-४३ ॥

अदिते नमस्ते ॥ ४४ ॥ अनुमते नमस्ते ॥ ४५ ॥ सरस्वति नमस्ते ॥ ४६ ॥ सवितर्नमस्ते ॥ ४७ ॥ अग्नये स्वाहा ॥ ४८ ॥ सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥ भूः स्वाहा ॥ ५० ॥ भुवः स्वाहा ॥ ५१ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे परधातप्रयोगः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितः षट्चत्वारिंशदुत्तरशतः ॥ १४६ ॥

इन उपर्युक्त मन्त्रों को हवन के समय उच्चारण करना चाहिए ॥ ४४-५१ ॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत औपनिषदिक अधिकरण में शत्रु के मारण के प्रयोगों के वर्णन का पहला अध्याय समाप्त हुआ ।



दूसरा अध्याय

१७८वाँ प्रकरण

प्रलम्भनम्

इस प्रकरण में औषधियों से भूख घास नष्ट करने, या आकृति परिवर्तन के द्वारा शत्रु को भूल भूलैया में डालने का वर्णन होगा ।

शिरिषोदुम्बरशमीचूर्णं सर्पिषा संहृत्यार्ध मासिकः जुद्योगः ॥ १ ॥ कशेरु-
कोत्पलकन्देक्षुमूलत्रिसर्वाक्षीरघृतमण्डसिद्धो मासिकः ॥ २ ॥ मापयवकुलुत्यदर्भ-
मूलचूर्णं वा क्षीरघृताभ्याम् ॥ ३ ॥ बल्लीक्षीरघृतं वा ममसिद्धं, सालपृश्निपर्णीमू-
लकल्कं पयसा पीत्वा ॥ ४ ॥ पयो वा तत्सिद्धं मधुघृताभ्यामशित्वा मासमु-
पवसति ॥ ५ ॥

सिरस, गूलर और छोंकरा के चूर्ण को घृत में मिलाकर खावे-तो पन्द्रह दिन तक भूख नहीं लगती है । कसेरु, कमल की जड़, गन्ने की जड़, कमल की डण्डी, दूध, घी तथा मांड-इन सब चीजों को मिलाकर बनाया हुआ योग [नुसखा] एक महीने तक भूख नहीं लगने देता । उड़द, जौ, कुलथी, दाभ की जड़ का चूर्ण, दूध और घी के साथ मिलाकर खालेने तथा अजमोद को दूध और घी के साथ मिलाकर पी लेने एवं सालपर्णी और पृष्ठपर्णी अथवा अर्जुन जल पीपल या नारियल की जड़ के कल्क को दूध के साथ पीलेने पर भी महीने तक भूख नहीं लगती है । सालवन और पिठवन नामक पूर्वोक्त औषधियों के साथ पकाए हुए दूध को शहद और घृत के साथ खाने से महीने भर भूख से पीछा छुट जाता है ॥ १-५ ॥

श्वेतवस्तमूत्रे सप्तरात्रोपितैः सिद्धार्थकैः सिद्धं तैलं कटुकालावौ मासार्ध-
मासस्थितं चतुष्पदद्विपदानां विरूपकरणम् ॥ ६ ॥ तक्रयवभक्षस्य सप्तरात्रादूर्ध्व
श्वेतगर्दभस्य लण्डयवैः सिद्धं गौरसर्पपतैलं विरूपकरणम् ॥ ७ ॥ एतयोरन्यतरस्य
मूत्रलण्डरससिद्धं सिद्धार्थतैलमर्कतूलपतङ्गचूर्णप्रतिषापं श्वेतीकरणम् ॥ ८ ॥ श्वेत-
कुक्कुटाजगरलण्डयोगः श्वेतीकरणम् ॥ ९ ॥

सफेद वकरे के मूत्र में सात रात तक भीगी हुई सरसों का तेल निकाल कर उसे पन्द्रह दिन या महीने भर कंडुबी तूँबी में रखे । इसको जिस मनुष्य या पक्षियों पर लगाया जावेगा-उनका दूसरा रंग दिखाई देने लगेगा । जौ की रोटी और छाछ सात रात तक

खाने के अनन्तर श्वेत गधे की लीं और जौ के साथ पकाया हुआ सरसों का तेल लगाने से मनुष्य की आकृति में फर्क पड़ जाता है। श्वेत बकरे या श्वेत गधे के मूत्र और मल के रस के साथ पकाया हुआ सरसों का तेल, आक, पारसपीपल [या आक की रुई] और धान के चूण के साथ मिलाकर लगाने से मनुष्य श्वेत रंग का हो जाता है। सफेद मुर्गा और अजगर सांप की विष्ठा मिलाकर तय्यार किया हुआ योग मनुष्य को श्वेत रंग का बना देता है ॥६-६॥

श्वेतवस्तमूत्रे श्वेतसर्पपाः सप्तरात्रोपितास्तक्रमर्कदीरमर्कतूल कटुकमत्स्य-
विलङ्गाश्च, एष पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥ १० ॥ समुद्रमण्डकीशङ्खसुधा-
कदलोच्चारतक्रयोगः श्वेतीकरणम् ॥ ११ ॥ कदल्यवल्गुजचाररसशुक्ताः सुरायु-
क्तास्तक्रार्कतूलस्तुहिलवणं धान्याम्लं च पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥ १२ ॥
कडुकालावौ वल्लीगते नागरमर्धमासस्थितं गौरसर्पपापेष्टं रोम्णां श्वेतीक-
रणम् ॥ १३ ॥

सफेद बकरे के मूत्र में सफेद सरसों को सात रात तक भिगोया जावे। उसी तरह छाछ और आक के दूध में आक, पारसपीपल, [या आक की रुई] पटोल, [कडवा परवल] मत्स्य और वायविडङ्ग को मिलाकर पन्द्रह दिन रखा जावे। इस तेल के लगाने से भी मनुष्य का रंग श्वेत हो जाता है। समुद्र की मैडकी, शंख, सुधा [कलई] केला, जवाखार और छाछ को मिलाकर पन्द्रह दिन रखा जावे और फिर मालिश की जावे-तो मनुष्य श्वेत रंग का हो जाता है केला, वावची, जवाखार पारा और खटाई [जम्बोरी का रस आदि] किसी वर्तन में शराब के साथ मिलाकर रख दिया जावे। फिर छाछ, आक पारसपीपल, (या आक की रुई) थूहर नमक तथा कांजी मिलाकर पन्द्रह दिन तक रख दिया जावे-तो इस योग के लगाने से मनुष्य का रंग सफेद हो जाता है। बेल में लटकती हुई कडुवी तूंची सौंठ में भरकर पन्द्रह दिन तक रखी जावे और फिर उसे सफेद सरसों के साथ पीसकर लगाया जावे, तो इससे बाल सफेद हो जावेंगे ॥१०-१३॥

अर्कतूलोऽर्जुने कीटः श्वेता च गृहगोलिका ।

एतेन पिष्टेनाभ्यक्ताः केशाः स्युः शङ्खपाण्डुराः ॥ १४ ॥

आक की रुई, [या आक और पारसपीपल] अर्जुनवृक्ष का कीड़ा, सफेद छपकली इन सब चीजों को पीस कर बालों पर लगाया जावे-तो बाल शंख की भांति सफेद हो जाते हैं ॥१४॥

गोमयेन तिन्दुकारिष्टकल्केन वा मर्दिताङ्गस्य भस्मातकरसानुलिप्तस्य
मासिकः कुण्ठयोगः ॥ १५ ॥ कृष्णसर्पमुखे गृहगोलिङ्गमुखे वा सप्तरात्रोपिता
गुञ्जाः कुण्ठयोगः ॥ १६ ॥ शुक्रपित्ताण्डरसाभ्यङ्गः कुण्ठयोगः ॥ १७ ॥ कुष्ठस्य
प्रियालकल्ककपायः प्रतीकारः ॥ १८ ॥

गोबर, तेंदुए के फल और नीम के पत्तों के कल्क को शरीर पर मलने के अनन्तर
भिलावा का लेप कर देने से शरीर में एक महीने तक कोढ़ हो जाता है। काले सांप के
मुख या छिपकली के मुख में सात रात तक गुञ्जा [रत्ती] रख देवे-उन गुञ्जाओं के
स्वल्प मात्रा में खिलाने या लेप करने से कुष्ठ रोग हो जाता है। तोते के पित्रे को अण्ड की
जर्दी के साथ मालिश करने पर भी कुष्ठ रोग होता है। इन सारे कुष्ठों को हटाना होतो
चिरोंजी के कल्क का बनाया हुआ काढ़ा पिलाना चाहिए ॥१५-१८॥

कुक्कुटकोशातकीशतावरीमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति
॥ १९ ॥ वटकपायस्नातः सहचरकल्कादिग्धः कृष्णो भवति ॥ २० ॥ शकुनकङ्गु-
तैलयुक्ता हरितालमनःशिलाः श्यामीकरणम् ॥ २१ ॥

मुर्गा, कड़वी तोरई, शतावरी की जड़ को मिलाकर खाने वाला मनुष्य, एक महीने
में गोरा निकल आता है। वट के कपाय, से स्नान करने तथा पिया वांसा के कल्क की
मालिश करने से मनुष्य काला हो जाता है। गोधपत्ती का मांस, कांगनी, का तेल, हड़ताल
और मनसिल भी मनुष्य को काला बना देती है ॥१९-२१॥

खद्योतचूर्णं सर्पपतैलयुक्तं रात्रौ ज्वलति ॥ २२ ॥ खद्योतगण्डूपदचूर्णं
समुद्रजन्तूनां भृङ्गकपालानां खदिरकर्षिकाराणां पुष्पचूर्णं वा शकुनकङ्गुतैलयुक्तं
तेजनचूर्णम् पारिभद्रकत्वग्मपी मण्डूकवसया युक्ता गात्रप्रज्वालनमग्निना ॥ २३ ॥

खद्योत [जुगनू] जन्तु का चूरा, सरसों के तेल में मिलाने पर रात में जलने
लगता है। जुगनू और केंचुआ तथा समुद्र के जन्तु मस्तकचूड़, जन्तु, के शिर की हड्डियों
का चूरा, खैर और कनेर के फलों का चूर्ण, गोध और कांगनी के तेल से युक्त वांस
का चूर्ण, मेंढक की चर्वी के साथ नीम की छाल की स्याही, का बना हुआ योग, शरीर
में अग्नि प्रज्वलित कर देता है ॥२२-२३॥

पारिभद्रकत्वग्जकदलीतिलकल्कप्रदिग्धं शरीरमग्निना ज्वलति ॥ २४ ॥
पीलुत्वग्मपीमयः पिण्डो हस्ते ज्वलति ॥ २५ ॥ मण्डूकवसादिग्धोऽग्निना

ज्वलति ॥ २६ ॥ तेन प्रदिग्धमङ्गकुशाग्रफलतैलसिक्तं समुद्रमण्डूकीफेनकसर्ज-
रसचूर्णयुक्तं वा ज्वलति ॥ २७ ॥ मण्डूकवसासिद्धेन पयसा कुलीरादीनां वसया
समभागं तैलं सिद्धमभ्यङ्गो गात्राणामग्निप्रज्वालनम् ॥ २८ ॥ मण्डूकवसादिग्धो-
ऽग्निना ज्वलति ॥ २९ ॥ वेणुमूलशैवललिप्तमङ्गं मण्डूकवसादिग्धमग्निना ज्वलति
॥ ३० ॥ पारिभद्रकप्रतिवलावज्जुलवज्रकदलीमूलकल्केन मण्डूकवसादिग्धेन तैले-
नाभ्यक्तपादोऽङ्गारेषु गच्छति ॥ ३१ ॥

नीम की छाल, थोहर, कदली और तिल के कल्क से लिपटा हुआ शरीर अग्नि लगाने पर जलने लगता है, परन्तु बाधा नहीं होती। पीलू वृक्ष की छाल की स्याही से बना हुआ गोला हाथ पर जलाया जा सकता है। मेंडक की चर्वी के साथ शरीर पर लेप करने से पीलू वृक्ष की त्वचा अग्नि के लगाने पर जलने लगती है और बाधा नहीं होती। पीलू की त्वचा और मेंडक की चर्वी तथा कुशा और आम के फल को तेल में भिगोकर बनाया हुआ योग, एवं समुद्र की मेंडकी समुद्र का भाग, राल इनके चूर्ण से युक्त योग शरीर पर लगाने पर आग से जलने लगता है। मेंडक की चर्वी के साथ पके हुए दूध तथा कैंकड़े आदि की चर्वी में मिला हुआ वरावर का तेल, शरीर पर मालिश करके आग लगाने पर जलने लग जाता है। केवल मेंडक की चर्वी लगाकर आग लगाने पर भी शरीर जलता ही रहेंगा, पर बाधा नहीं होगी। बांस की जड़ और शिवाल [सेवाल] से लपेटे हुए अङ्ग पर मेंडक की चर्वी, लपेट कर आग लगाने पर शरीर प्रदीप्त हो जाता है। नीम खरेटी, वेंत, थोहर, केला, इन सब वृक्षों की जड़ का कल्क बनाकर और उसमें मेंडक की चर्वी मिलाकर तेल बनावे-उस तेल की पैरों में मालिश करके मनुष्य, अङ्गारों पर चल सकता है ॥२४-३१॥

उपोदका प्रतिवला वज्जुलः पारिभद्रकः ।

एतेषां मूलकल्केन मण्डूकवसया सह ॥ ३२ ॥

साधयेत्तैलमेतेन पादावभ्यज्य निर्मलौ ।

अङ्गारराशौ विचरेद्यथा कुसुमसंचये ॥ ३३ ॥

पोदीना, खरेटी, वेंत, नीम, इन वृक्षों की मूल का कल्क बनाकर उसमें मेंडक की चर्वी मिला दी जावे। इनसे पकाये हुए तेल का पैर धोकर मालिश करने से मनुष्य, आग के अंगारों पर, फूलों की ढेरी पर चलने की तरह चल सकता है ॥३२-३३॥

हंसक्रौञ्चमयूराणामन्येषां वा महाशकुनीनामुदकलवानां पुच्छेषु बद्धा नल-
दीपिका रात्रावुल्कादर्शनम् ॥ ३४ ॥ वैद्युतं भस्माग्निशमनम् ॥ ३५ ॥ स्त्रीपुष्प-

पायिता माप्रा व्रजकुलीमूलमण्डकयसामिश्रं चुल्यां दीप्तायामपाचनम् ॥३६॥
 चुल्लीशोधनं प्रतीकारः ॥ ३७ ॥ पीलुमयो मणिरग्निगर्भः सुवर्चलामूलग्रन्थिः
 सूत्रग्रन्थिर्वा पित्तुपरिवेष्टितो मुखादग्निधूमोत्सर्गः ॥ ३८ ॥ कुशाम्रफलतैलसिक्तो-
 ऽग्निर्वर्षप्रवातेषु ज्वलति ॥ ३९ ॥

हंस, कुंज, मोर अथवा अन्य जल में तैरने वाले, पक्षियों की पूंछ में बंधी नरमल पर लगाई हुई वत्ती रात में उल्कासी चमकती है। विजली से जले हुए वृक्ष आदि की भस्म अग्नि को बुझा देती है। स्त्री के रज में भिगोये हुए उड़द, और गाय के गांठ में उत्पन्न कटेली की जड़ में मेंडक की चर्वी मिलाकर जलते चूल्हे पर चढ़ा देने से भी उड़द नहीं पकेंगे। चूल्हे से उतारकर धो लेने पर फिर वे पक जावेंगे। पीलू की लकड़ी से बनाया हुआ मटका अग्नि को फौरन पकड़ लेता है। अलसी की जड़ की गांठ या उसके सूतों की गांठ, रुई से लिपटी हुई, मुंह से आग निकालने का साधन बन जाती है। कुशा, आम के फल, और तेल के सहारे से जलाई हुई आग, आंधी और वर्षा में भी जलती रहती है ॥३४-३९॥

समुद्रफेनकस्तैलयुक्तो ऽम्भसि स्रवमानो ज्वलति ॥ ४० ॥ स्रवङ्गमानाम-
 स्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितो ऽग्निर्नोदकेन शाम्यत्युदकेन च ज्वलति ॥४१॥
 शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुरुषस्य वामपार्श्वपर्शुनास्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथि-
 तोऽग्निर्यत्र त्रिरपसव्यं गच्छति न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति ॥ ४२ ॥

समुद्र भाग, तेल में पकाया हुआ पानी में तैरता हुआ भी जलता रहता है। वन्दर की हड्डियों में चित्रवर्ण के वांस की आग, पानी से शान्त नहीं होती, प्रत्युत अधिक जलती है। शस्त्र से मारे गये या शूली पर चढ़ाये गए, पुरुष के वाम पार्श्व की पसली की हड्डियों में कल्माष वांस की लकड़ी से मथकर निकाली हुई आग, जहां तीन चार घुमाद्री जावे-वहां अन्य आग नहीं जल सकती है ॥४०-४२॥

चुचुन्दरी खञ्जरीटः खारकीटश्च पिष्यते ।

अश्वमूत्रेण संस्पृष्टा निगलानां तु भञ्जनम् ॥ ४३ ॥

अयस्कान्तो वा पापाणः ॥ ४४ ॥

छछूंदर खञ्जरीट, खारकीट, जन्तुओं को अश्व के मूत्र में पीस लिया जावे। यदि इसका सांकलों पर लेप कर दिया जावे तो उनके टुकड़े २ उड़ जावेंगे। अयस्कान्त (चम्वक)-पत्थर भी सांकलों को तोड़ देता है ॥४३-४४॥

कुलीराण्डदुर्गखारकीटवसाप्रदेहेन द्विगुणो दारकगर्भः कङ्कभासपार्श्वोत्प-
लोदकपिष्टश्चतुष्पदद्विपदानां पादलेपः, उल्लूकगृध्रवसाभ्यामुष्ट्रचर्मोपानहावभ्यज्य
वटपत्रैः प्रतिच्छाद्य पञ्चाशद्योजनान्यश्रान्तो गच्छति ॥ ४५ ॥ श्येनकङ्ककाकगृध्र-
हंसकौश्रवीचिरल्लानां मज्जानो रेषांसि वा योजनशताय ॥ ४६ ॥ सिंहव्याघ्र-
द्वीपिकाकोलूकानां मज्जानो रेषांसि वा सार्ववर्णिकानि गर्भपतनान्युष्ट्रिकायाम-
भिपूय श्मशाने प्रेतशिशून्या तत्समुत्थितं भेदो योजनशताय ॥ ४७ ॥

कंकड़े के अण्डे, मैडक और खारकीट की चर्बी से दुगुने अण्डे तथा कङ्क, गीध,
की पसलियों को कमल के जल से पीसकर चौपायों या पक्षियों पर लेप कर दिया जावे,
और उल्लू तथा गीध की चर्बी से लिपटी हुए ऊंट के चमड़े की बनी हुई जूतियों को
पहन लिया जावे-तो मनुष्य पचास योजन जा सकता है। वाज कंक, कौआ, गीध, हंस कुंज,
की वीचिरल्ल जन्तुओं की चर्बी और उनके वीर्य को मिलाकर पैरों पर लेप करने और
जूतियों के चुपड़ने पर मनुष्य सौ योजन जा सकता है। सिंह, व्याघ्र, गैंडा, कौआ, उल्लू
की चर्बी और वीर्य तथा किसी भी वर्ण के गिरे हुए गर्भों को मिट्टी के पात्र में भरकर
रख देवे और फिर उनका अर्क निकाल ले अथवा श्मशान में मरे बच्चों की चर्बी या
उनका अर्क निकालकर उसे अपने पैरों में मलकर चले-तो मनुष्य सौ योजन जा
सकता है ॥ ४५-४७ ॥

अनिष्टैरद्भुतोत्पातैः परस्योद्वेगमाचरेत् ।

अराज्यायेति निर्वादः समानः कोपः उच्यते ॥ ४८ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे प्रलम्भने अद्भुतोत्पादनं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥

आदितः सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतः ॥ १४७ ॥

इस प्रकार के अनेक अनिष्टकारी, अद्भुत उत्पातों से, राजा, शत्रु को वेचैन कर
देवे। ये बातें शत्रु के राज्य में हलचल कर देने के लिए पर्याप्त हैं। कोप होने पर अपने
मान की रक्षा के निमित्त यह सब कुछ करना ही पड़ता है ॥ ४८ ॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत औपनिषदिक अधिकरण में शत्रु राजा के
अचम्भित करने का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



तीसरा अध्याय

१७८वां प्रकरण

प्रलम्भने भैषज्यमन्त्रयोगः ।

इस प्रकरण में अब औषध और मन्त्रों के विधान का वर्णन होगा.

मार्जारोष्ट्रवृकवराहश्वाविद्धागुलीनप्तृकाकोलूकानामन्येषां वा निशाचराणां सत्त्वानामेकस्य द्वयोर्वहूनां वा दक्षिणानि कांमानि चाक्षीणि गृहीत्वा द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥ १ ॥ ततो दक्षिणं वामेन वामं दक्षिणेन समभ्यज्य रात्रौ तमसि च पश्यति ॥ २ ॥

बिलाव, उंट, भेड़िया, शूकर, सेह, वगली, नत्ता (पाँच विशेष) कौआ और उल्लू अथवा रात में घूमने वाले अन्य जन्तुओं में से किसी एक या दो या बहुतों की दांयी और बांयी दोनों आंखें लेकर उनको पृथक् २ कूट पीसले । इसके बाद बाँई आंख के चूर्ण को अपनी दाँई और दाँई आंख के चूर्ण को अपनी बाँई आंख में आज्ञे तो मनुष्य रात में अन्धेरे में भी देख सकता है ॥१-२॥

एकाम्लकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिवा ।

एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौ रूपाणि पश्यति ॥ ३ ॥

एक बड़हल फल, सूअर की आंख जुगनू तथा काला शारिवा-इन सब औषधियों को मिलाकर आंख में आजने से मनुष्य रात में भी रूप देख सकता है ॥३॥

त्रिरात्रोपोषितः पुण्ये शत्रुहतस्यशूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्ति-कायां यवानावास्याविक्षीरेण सेचयेत् ॥ ४ ॥ ततो यवविरूढमालामावद्वय नष्ट-च्छायारूपश्चरति ॥ ५ ॥ त्रिरात्रोपोषितः पुण्येण श्वमार्जारोलूकवागुलीनां दक्षि-णानि वामानि चाक्षीणि द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥ ६ ॥ ततो यथास्वमभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ७ ॥

शस्त्र से मारे हुए या शूली पर चढ़ाये हुए पुरुष की खोपड़ी में मिट्टी डालकर पुण्य नक्षत्र में तीन दिन का व्रतधारी पुरुष जौ वो देवे और उन्हें भेड़ के दूध से सींचे । इसके अनन्तर उसमें से उत्पन्न हरे भरे जौओं के शस्य की माला गूँथ कर जो पुरुष पहन लेता है, वह किसी को दिखाई नहीं पड़ता । तीन दिन व्रत धारण करने के अनन्तर पुरुष, पुण्य नक्षत्र में कुत्ता चिल्ली, उल्लू और वागली-इन चारों जीवों को दाँई

वाँई आंख अलग २ कूट छानले । इनको जिस किसी तरह भी मनुष्य, अपनी आंख में आंजले-तो वह किसी को भी दिखाई न देकर घूम सकता है ॥४-७॥

त्रिरात्रोपोषितः पुण्येण पुरुषधातिनः काण्डकस्य शलाकामञ्जनीं च कारयेत् ॥ ८ ॥ ततोऽन्यतमेनाक्षिचूर्णेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ९ ॥ त्रिरात्रोपोषितः पुण्येण कालायसीमञ्जनीं शलाकां च कारयेत् ॥ १० ॥ ततो निशाचराणां सत्त्वानामन्यतमस्य शिरः कपालमञ्जनेन पूरयित्वा मृतायाः स्त्रिया योनौ प्रवेश्य दाहयेत् ॥ ११ ॥ तदञ्जनं पुण्येणोद्धृत्य तस्यामञ्जन्यां निदध्यात् ॥ १२ ॥ तेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १३ ॥

तीन दिन का व्रतधारी पुरुष, पुण्य नक्षत्र में पुरुष के मार देने वाले किसी बाण की शलाका और सुरमादानी बना लेवे इसके बाद पूर्वोक्त जीवों की आंखों के चूर्ण को इस सलाई से डाले तो पुरुष किसी को दिखाई न देवे । तीन रात तक व्रत रख के पुरुष, पुण्यनक्षत्र में फौलाद लोहे की सलाई बनवावे । तदनन्तर रात में घूमने चमगादड़ आदि किसी जन्तु को खोपड़ी समेत शिर में अञ्जन भरकर मरी स्त्री की योनि में रखकर जला लेवे । उस अञ्जन को पुण्यनक्षत्र में निकाल कर उसी सुरमादानी में रखे । इस अञ्जन के लगाने से भी पुरुष की छाया और रूप नष्ट हो जाता है ॥८-१३॥

यत्र ब्राह्मणमाहितार्णि दग्धं दह्यमानं वा पश्येत्तत्र त्रिरात्रोपोषितः पुण्येण स्वयंमृतस्य वाससा प्रसेवं कृत्वा चित्ताभस्मना पूरयित्वा तमावध्य नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १४ ॥ ब्राह्मणस्य प्रेतकार्ये या गौः मार्यते तस्या अस्थिमज्जाचूर्ण-पूर्णाहिभस्त्रा पशूनामन्तर्धानम् ॥ १५ ॥ सर्पदण्डस्य भस्मना पूर्णा प्रचलाकभस्त्रा मृगाणामन्तर्धानम् ॥ १६ ॥ उलूकवागुलीपुच्छपुरीषजान्वस्थिचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पक्षिणामन्तर्धानम् ॥ १७ ॥ इत्यष्टावन्तर्धानयोगाः ॥ १८ ॥

जिस श्मशान में अग्नि होत्री जलाया गया या जलाया जा रहा हो-वहां पर तीन दिन व्रत रखकर पुरुष, स्वयं मरे हुए पुरुष के कफन की पोटली बनावे और उसे फिर चित्ता को भस्म से भरकर अपने शरीर में बांध लेवे-तो मनुष्य दिखाई नहीं पड़ेगा । ब्राह्मण के प्रेतकार्य में जो गौ मारी जाती है, उसकी हड्डी और मज्जा का चूर्ण, सांप की कंचुली में भर दिया जावे । यह कंचुली जिस पशुके बांध दी जावेगी वह दिखाई नहीं देगा । सर्प के काटे हुए पुरुष की चित्ता की भस्म से भरी हुई मोर पंख की थैली जिस किसी वनैले जन्तु के बांध दी जावेगी वह दिखाई नहीं देगा । उलू और वागली की पूंछ,

विष्ठा, जानु (टांग) और हड्डियों के चूण को सांप की कांचुली में भर दिया जावे और यह कांचुली किसी पत्नी के गले में बांध दी जावे-तो वह दिखाई नहीं देगा। यहां तक दिखाई नहीं देने के आठ योगों का वर्णन किया गया ॥१४-१८॥

बलिं विरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम् ।

भण्डीरपाकं नरकं निकुम्भं कुम्भमेव च ॥ १६ ॥

देवलं नारदं वन्दे वन्दे सावर्णिगालवम् ।

एतेषामनुयोगेन कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २० ॥

यथा स्वपन्त्यजगराः स्वपन्त्यपि चमूखलाः ।

तथा स्वपन्तु पुरुषा ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ २१ ॥

भण्डकानां सहस्रेण रथनेमिशतेन च ।

इमं गृहं प्रवेक्ष्यामि तूष्णीमासन्तु भण्डकाः ॥ २२ ॥

नमस्कृत्वा च मनवे बध्वा शुनकफेलकाः ।

ये देवा देवलोकेषु मानुषेषु च ब्राह्मणाः ॥ २३ ॥

अध्ययनपारगाः सिद्धा ये च कैलासतापसाः ।

एतेभ्यः सर्वसिद्धेभ्यः कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २४ ॥

अतिगच्छति च मध्यपगच्छन्तु संहताः ॥ २५ ॥

अलिते पलिते मनवे स्वाहा ॥ २६ ॥

अब मन्त्र योग का वर्णन चलता है। ये आठ मन्त्र हैं। इन के प्रयोग की विधि आगे साथ ही दी है। मैं विरोचन पुत्र बलि और सैकड़ों माया करने वाले शम्बर भण्डीर पाक, नरक, निकुम्भ और कुम्भ वन्दना करता हूँ। देवल, नारद, सावर्णि, गालव आदि ऋषि मुनियों की वन्दना करता हूँ, जिनके योग से तुम्हारा यह महान् शयन सिद्ध हो, जैसे अजगर और चमूखल (जन्तु) सोते रहते हैं। तथा गांव के सांगी सोते हैं। वैसे ही तुम भी सोते रहो। मैं सहस्रों राक्षसों तथा सैकड़ों रथों को साथ लेकर इस घर में घुसता हूँ। तुम यहां के भण्डक नामक राक्षस चुपचाप रहो। मनु को नमस्कार करके और शुनक और फेलक नामक राक्षसों को बांधकर इस घर में घुसता हूँ। जो देव लोक में देव, मनुष्यों में अध्ययन शील ब्राह्मण, कैलाश पर्वत पर रहने वाले सिद्ध तपस्वी हैं, इन सारे सिद्धों से तुम्हारे इस गाढ़े शयन को सिद्ध करना चाहता हूँ। मेरे गमन करने पर ये सब भाग जावें। अब अलित पलित रूपधारी मनुको बलि प्रदान करते हैं। इन मन्त्रों के अर्थ का उपयोग नहीं है-इनके तो पाठ से ही श्रद्धालुओं ने सिद्धि मानी है ॥ १६-२६ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ २७ ॥ त्रिरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां पुण्ययो
गिन्यां श्वपाकीहस्ताद्विलखादलेखनं क्रीणीयात् ॥ २८ ॥ तन्मापैः सह
कण्डोलिकायां कृत्वासङ्कीर्णं आदहने निखानयेत् ॥ २९ ॥ द्वितीयस्यां चतुर्दश्यां
मुद्घृत्य कुमार्या पेपयित्वा गुलिकाः कारयेत् ॥ ३० ॥ तत एकां गुलिकामभि-
मन्त्रयित्वा यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्थापयति ॥ ३१ ॥ एतेनैव कल्पेन
श्वाविधः शल्यकं त्रिकालं त्रिश्वेतमसङ्कीर्णं आदहने निखानयेत् ॥ ३२ ॥ द्विती-
यस्यां चतुर्दश्यामुद्घृत्य दहनमस्मना सह यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्था-
पयति ॥ ३३ ॥

इस मन्त्र समूह के प्रयोग का यह प्रकार है। जो कोई पुरुष तीन का रात व्रत रख
कर पुण्य नक्षत्र से युक्त कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में चाण्डाली के हाथ से चूहे का टुकड़ा
खरीद लेवे। उसको उड़दों में रखकर खुले श्मशान में गड़्ढा खोदकर पिटारी में गाड़
देवे। जब दूसरी चतुर्दशी आवे-तो उसे उखाड़कर कुमारी कन्या से पिसवाकर इसकी
गोली बनवा लेवे। इसके अनन्तर एक गोली को इन मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके इन्हीं
मन्त्रों के द्वारा जहां डालोगे वहां सब लोग सो जावेंगे। पूर्वोक्त प्रकार से तीन दिन व्रत
करके पुण्य नक्षत्र यदि मास की कृष्ण चतुर्दशी को तीन जगह सेही जन्तु के काले कांटे
और तीन जगह से सफेद कांटे लेकर खुले श्मशान में गाड़ देवे। जब दूसरी चतुर्दशी
आवे-तो उसमें उखाड़कर चिता भस्म के साथ जहां कांटों को इन्ही मन्त्रों के द्वारा फेंक
देता है-तो वहां वह सबको सुला देता है ॥२७-३३॥

सुवर्णपुष्पीं ब्रह्मणीं ब्रह्माणं च कुशध्वजम् ।

सर्वाश्च देवता वन्दे वन्दे सर्वाश्च तापसान् ॥ ३४ ॥

वशं मे ब्राह्मणा यान्तु भूमिपालाश्च क्षत्रियाः ।

वशं वैश्याश्च शूद्राश्च वशतां यान्तु मे सदा ॥ ३५ ॥

स्वाहा अमिले किमिले वयुजारे प्रयोगे फक्के वयुथे विहाले दन्तकटके
स्वाहा ॥ ३६ ॥

सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ।

श्वाविधः शल्यकं चैतस्त्रिश्वेतं ब्रह्मनिर्मितम् ॥ ३७ ॥

प्रसुप्ताः सर्वसिद्धा हि एतत्ते स्वापनं कृतम् ।

यावद्ग्रामस्य सीमान्तः सूर्यस्योद्गमनादिति ॥ ३८ ॥

स्वाहा ॥ ३९ ॥

अब दूसरे मन्त्रों को लिखा जाता है सुवर्ण पुष्पी ब्रह्माणी, ब्रह्मा, कुश ध्वजा तथा सारे देवता और तपस्वियों को मैं वन्दना करता हूँ। मेरे वश में ब्राह्मण भूमिपालक क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-ये सारे वश में हो जावे। इस प्रस्वापन प्रयोग में अमिल किमिल नामक देवताओं को स्वाहा प्राप्त हो, इसी तरह फक्क, वयुश्च, विशाल, और दन्तकटक देवता को भी स्वाहा समर्पित है। गांव के कुत्ते सुख से सो जावे तथा जो रात में तमाशा करते हैं, वे भी सुख से सोवे, यह ब्रह्मा निर्मित सेह जन्तु का तीन स्थान से श्वेत कांटा है-यह तुम्हारा स्वापन कर देगा। इसके द्वारा सारे सिद्ध सो चुके हैं तथा सूर्य के उद्गमन स्थान से लेकर अस्त तक यह सबको सुला सकता है। इसके देवता को स्वाहा प्राप्त हो ॥३४-३६॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४० ॥ श्वाविधः शल्यकानि त्रिश्वेतानि सप्तरात्रोपितः कृष्णचतुर्दश्यां खादिराभिः समिधामिरग्निमेतेन मन्त्रेणाष्टशतसंपातं कृत्वा मधु-घृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ४१ ॥ तत एकमेतेन मन्त्रेण ग्रामद्वारि गृहद्वारि वा यत्र निखन्यते तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ४२ ॥

इन उपयुक्त मन्त्रों के प्रयोग की यह विधि है, कि सेह जन्तु के तीन स्थान से श्वेत कांटे लेकर सात दिन उपवास करके खुले शमशान में पूर्ववत् गाड़ देवे। फिर कृष्ण चतुर्दशी में खदिर (खैर) की समिधा लेकर उनमें आग लगावे और इन मन्त्रों द्वारा घृत और शहद का एक सौ आठ बार हवन करे। इन कांटों में से एक लेकर इन मन्त्रों के द्वारा ग्राम के द्वार या घर के द्वार पर जहां गाड़ दिया जावेगा-वहां सारे गांव या सारे घर को सुला देगा ॥ ४०-४२ ॥

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम् ।

निकुम्भं नरकं कुम्भं तन्तुकच्छं महासुरम् ॥ ४३ ॥

अर्मालवं प्रमीलं च मण्डोलूकं घटोद्वलम् ।

कृष्णकंसोपचारं च पौलोमीं च यशस्विनीम् ॥ ४४ ॥

अभिमन्त्रय्य गृह्णामि सिद्धार्थं शिवसारिकाम् ।

जयतु जयति च नमः शलकभूतेभ्यः स्वाहा ॥ ४५ ॥

सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ ४६ ॥

सुखं स्वपन्तु सिद्धार्था यमर्थं मार्गयामहे ।

यावदस्तमयादुदयो यावदर्थं फलं मम ॥ ४७ ॥

इति स्वाहा ॥ ४८ ॥

यह तीसरा मन्त्र प्रयोग है। मैं विरोचन पुत्र बलि और सैकड़ों माया करने वाले शम्बरासुर की वन्दना करता हूँ। निकुंभ, नरक, कुम्भ महासुर : तन्तु - कन्ध, अर्मात्व प्रमील, मण्डोलक घटोद्वल, कृष्णकंसोपचार, यशस्विनी पौलीभी (इन्द्राणी) अभिमन्त्रित करके मैं अपने अर्थ की सिद्धि के लिए इस मरी हुई मैना पक्षिणी को पकड़ता हूँ। सारे शलके भूतों की जय हो-ये सब से उत्कृष्ट हैं, इन को स्वाहा प्राप्त हो। गाँव के कुत्ते और रात में नाच गाकर कुतूहल करने वाले लोग सुख से सो जावें-सिद्ध लोग सुख से सोवे जिन से हम अपने अर्थ की सिद्धि मांगते हैं। सूर्योदय से लेकर अस्त पर्यन्त शयन करा देना मेरा अर्थकल है। इस के लिए मैं हवन करता हूँ ॥ ४३-४८ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४९ ॥ चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्या मसंकीर्ण आदहने बलिं कृत्वा एतेन मन्त्रेण शवशारिकां गृहीत्वा पोत्रीपोडूलिकां बध्नीयात् ॥ ५० ॥ तन्मध्ये श्वाविधः शल्यकेन विध्वा यत्रैतेन मन्त्रेण निखन्यते तत्सर्वं प्रस्थापयति ॥ ५१ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग की विधि यह है कि चार रात का व्रत करके कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में खुले श्मशान में बलि देकर इस मन्त्र से किसी मरी हुई मैना को लेकर कपड़े की छोटी सी पोदली में बाँध लेवे। उसके बीच में पूर्वोक्त सेह का कांटा बाँध कर इसी मन्त्र समूह से जहाँ गाड़ देता है, वहीं पर यह प्रयोग सब को सुला देता है ॥ ४९-५१ ॥

उपैमि शरणं चाग्निं दैवतानि दिशो दश ।

अपयान्तु च सर्वाणि वशातां यान्तु मे सदा ॥ ५२ ॥

स्वाहा ॥ ५३ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ५४ ॥ त्रिरात्रोपोषितः पुण्येण शर्करा एकविंशतिसं-पातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ५५ ॥ ततो गन्धमाल्येन पूजयित्वा निखनयेत् ॥ ५६ ॥ द्वितीयेन पुण्येणोद्धृत्यैकां शर्करामभिमन्त्रय्य क्वाटमाह-न्यात् ॥ ५७ ॥ अभ्यन्तरं चतसृणां शर्कराणां द्वारमपात्रियते ॥ ५८ ॥

इस के आगे द्वार खोलने का मन्त्र है। मैं अग्नि और दशों दिशा के देवताओं की शरण प्राप्त होता हूँ। यहाँ से सारे यातुधान चले जावे और जो रहें-वे मेरे वश में होजावें इनको मैं बलिदान देता हूँ। इस मन्त्र के प्रयोग की विधि इस प्रकार है। कि तीन रात का व्रत करके पुरुष, पुण्य नक्षत्र युक्त कृष्णाचतुर्दशी को इक्कीस कंकड़ी लेकर उन्हें धी और शहद में भिगोकर अग्नि में डाले। फिर इन कंकड़ियों की गन्ध और मालाओं से पूजा कर

के एक गढ़े में गाड़ देवे । जब दूसरा पुष्प का योग आवे-तो उन्हें उखाड़ले और उन में से एक कंकड़ी इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके दुगे के किवाड़ों के मारे-तो उसमें चार कंकड़ियों के बराबर छेद हो जावेगा-उसमें हाथ डालकर द्वार खोला जा सकता है ॥ ५२-५८ ॥

चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां भग्नस्य पुरुषस्यास्थ्ना ऋषभं कारयेत् ॥ ५९ ॥ अभिमन्त्रयेच्च तेन ॥ ६० ॥ द्विगोयुक्तं गोयानमाहृतं भवति ॥ ६१ ॥ ततः परमाकाशे विक्रामति ॥ ६२ ॥

चार रात तक उपवास रखकर पुरुष, इसी मन्त्र के द्वारा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में किसी मरे पुरुष की हड्डियों का बैल का ढाँचा बनाकर अभिमन्त्रित करे । इसके सिद्ध होने पर दो बैलों की गाड़ी वहाँ उपस्थित होगी उस गाड़ी से पुरुष, आकाश में उड़ सकता है ॥ ५९-६२ ॥

सदारविरविः सगण्डपरिधाति सर्वं भयाति ॥ ६३ ॥ चण्डालीकुम्भीतु-
म्भकटुकसारीषः सनारीभगो ऽसि स्याहा ॥ ६४ ॥ तालोद्घाटनं प्रस्वापनं च ॥ ६५ ॥

उपर्युक्त मन्त्र का प्रयोग द्वार खोलने के मन्त्र की तरह करना चाहिए । यह मन्त्र ताला खोलने और सब के सुला देने में काम आता है ॥ ६३-६५ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुण्येण शस्त्रहतस्य शूलघ्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्ति-
कायां तुवरीरा वास्योदकेन सेचयेत् ॥ ६६ ॥ जातानां पुण्येणैव गृहीत्वा रज्जुकां
वर्तयेत् ॥ ६७ ॥ ततः सज्यानां धनुषां यन्त्राणां च पुरस्ताच्छेदनं ज्याच्छेदनं
करोति ॥ ६८ ॥

तीन रात तक व्रत रखकर पुण्य नक्षत्र युक्त समय में पुरुष शस्त्र से मरे या शूली पर चढ़ाये हुये मनुष्य का शिर वा कपाल ले आवे । उस कपाल में मिट्टी भरकर उनमें सन वो देवे और उसको वासी पानी से सींचता रहे । जब वह उत्पन्न हो जावे-तो उसको पुण्य नक्षत्र में काट कर उस की धनुष की डोरी बनावे । जब इनपर चढ़ाकर वाण चलाया जावेगा तो सामने के चढ़े हुए धनुष यन्त्र और धनुष की डोरियों को काटता चला जावेगा ॥ ६६-६८ ॥

उदकाहिभस्त्रामुच्छ्वासमृत्तिकया स्त्रियाः पुरुषस्य वा पूरयेत् ॥ ६९ ॥
नासिकावन्धनं मुखग्रहश्च ॥ ७० ॥ वराहवस्तिमुच्छ्वासमृत्तिकया पूरयित्वा मर्क-
टस्त्रायुना बध्नीयात् ॥ ७१ ॥ आनाहकारणम् ॥ ७२ ॥ कृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रह-

ताया गोः कपिलायाः पित्तेन राजवृक्षमयीममित्रप्रतिमां अञ्ज्यात् ॥ ७३ ॥
अन्धीकरणम् ॥ ७४ ॥

जल के सांप की कैकुली को किसी स्त्री या पुरुष की चिता की ऊपर की भस्म से भर देवे। इसको नासिका में सुंघा देने पर नासिका और मुख बन्ध जाते हैं। इसी तरह सुअर के वस्ति स्थान को लेकर चिता की भस्म भरे और उसे बन्दर की नाडियों से बांध देवे। इस भस्म को जिसे खिलादी जावेगी उसे अफारा हो जावेगा। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में हथियार से मारी हुई कपिल गौ के पित्ते को अमलतास की लकड़ी की बनी हुई शत्रु की मूर्ति की आँखों में आंजे इसके आँज ने से शत्रु अन्धा हो जाता है ॥ ६६-७४ ॥

चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां वलिं कृत्वा शूलप्रोतस्य पुरुषस्यास्थना कीलकान्कारयेत् ॥७५॥ एतेषामेकः पुरीषे मूत्रे वा निखातः आनाहं करोति ॥७६॥ पादे ऽस्यासने वा निखातः शोपेण मारयति ॥७७॥ आपणेक्षेत्रे गृहे वा वृत्ति-च्छेदं करोति ॥७८॥ एतेन कल्पेन विद्युद्गन्धस्य वृक्षस्य कीलका व्याख्याताः ॥७९॥

चार रात उपवास रख कर पुरुष कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में वलि देकर शूली पर चढ़े हुए पुरुष की अस्थियों की कीले बनवावे। इसमें से एक कील को जिसके मूत्र या पुरीष स्थान में गाड़ देवे-तो उस पुरुष के अफारा हो जाता है। यदि किसी के पाद चिन्ह में या आसन के नीचे गाड़ देवे-तो वह शोप रोग द्वारा मारा जाता है। यदि बाजार, दुकान, घर या खेत में गाड़ दे-तो रोजगार नष्ट हो जाता है। इसी तरह विजली से जले हुए वृक्ष की कीलों का प्रकार है ॥ ७५-७९ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्नः काकमधुश्च यः ।

कपिरोम मनुष्यास्थि वध्वा मृतकवाससा ॥ ८० ॥

निखन्येत गृहे यस्य पिष्ट्वा वा यं प्रपाययेत् ।

सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते ॥ ८१ ॥

दक्षिणी पुनर्नवा, कौओं को मीठा लगने वाला नीम, बन्दर के रोम और मनुष्यकी हड्डी, मृतक वस्त्र (कफन) में बांधकर जिस घर में गाड़ दिया जावे या पीस कर पिला दिया जावे-तो वह अपने स्त्री पुत्र और धन के सहित तीन पक्ष में नष्ट हो जाता है ॥ ८०-८१ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्नः काकमधुश्च यः ।

स्वयंगुप्ता मनुष्यास्थि पदे यस्य निखन्यते ॥ ८२ ॥

द्वारे गृहस्य सेनाया ग्रामस्य नगरस्य वा ।

सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पत्नान्नातिवर्तते ॥ ८३ ॥

दर्क्षिणी पुनर्नवा काकमधु, नीम, धमासा और मनुष्य की हड्डी जिसके पद चिन्ह या गृह के द्वार, तथा सेना ग्राम और नगर के द्वार में गाड़ दी जाती है, वह तीन पक्ष में स्त्री पुत्र धन धान्य सहित नष्ट हो जाता है ॥ ८२-८३ ॥

अजमर्कटरोमाणि मार्जारनकुलस्य च ।

ब्राह्मणानां श्वपाकानां काकोलूकस्य चाहरेत् ॥ ८४ ॥

एतेन विष्ठावक्षुण्णा सद्य उत्सादकारिका ।

प्रेतनिर्मालिकाफिएवं रोमाणि नकुलस्य च ॥ ८५ ॥

वृश्चिफाल्यहिकृत्तिश्च पदे यस्य निखन्यते ।

भवत्यपुरुषः सद्यो यावत्तन्नापनीयते ॥ ८६ ॥

बकरा, बन्दर, बिलाव, नौला, ब्राह्मण, चाण्डाल, कोआ और उल्लू के बाल इकट्ठे करके जिसकी विष्ठा पर डाल दिये जावेंगे-वह फौरन नाशको प्राप्त हो जावेगा । मुर्दे पर डाली हुई माला, सुरा बीज, नोले के बाल, बिच्छू, भौंरा और सांप की खाल-इन सब चीजों को मिलाकर जिसके पद चिन्ह पर गाड़ दिया जाता है । वह पुरुष उस समय तक नपुसक हो जाता है-जब तक वे वहां से उखाड़ न लिये जावे ॥ ८४-८६ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्तिकायां गुञ्जा आवास्योदकेन च सेचयेत् ॥ ८७ ॥ जातानाममावास्यायां पौर्णिमांस्यां वा पुष्ययोगिन्यां गुञ्जावल्लीग्राहयित्वा मण्डलिकानि कारयेत् ॥ ८८ ॥ तेष्वन्नपानभाजनानि न्यस्तानि न क्षीयन्ते ॥ ८९ ॥

तीन रात तक व्रत करके पुरुष-पुष्य नक्षत्र में शस्त्र से या शूली द्वारा मारे हुए पुरुष की शिर की खोपड़ी ले आवे और मिट्टी भर कर उसमें गुञ्जा बो देवे । तथा वासी पानी से सींचता रहे । जब वे उत्पन्न हो जावें-तो अमावस्या या पूर्णिमा को पुष्य नक्षत्र के दिन उन बेलों को उखाड़ लेवे । उन बेलों का फिर घेरा सा बना कर डालो और उन के मध्य में जो खाने पीने से भरे हुए पात्र रख दिये-उनमें से कितना ही खर्च करो वह क्षीण नहीं हो सकेगा ॥ ८७-८९ ॥

रात्रिप्रेक्षायां प्रवृत्तायां प्रदीपाग्निषु मृतधेनोः स्तनानुत्कृत्य दाहयेत् ॥६०॥
 दग्धान्वृषमूत्रेण पेपयित्वा नवकुम्भमन्तर्लेपयेत् ॥ ६१ ॥ तं ग्राममपसव्यं
 परिणीय यत्तत्र न्यस्तं नवनीतमेपां तत्सर्वमागच्छतीति ॥ ६२ ॥

रात के तमाशा होने पर कोई जलाई हुई आग में गिर कर मरी हुई
 गाय के स्तन काट कर उन्हें जलालो-जब वे जल जावे-तो उनको बैल के मूत्रमें पीस कर
 नये घड़े के भीतर लीप दो । उसको लेकर गांव की दांयी ओर से परिक्रमा करे । फिर जहां
 पर भी उस घड़े को रखोगे-गांव का सारा मक्खन उसमें इकट्ठा हो जावेगा ॥ ६०-६२ ॥

कृष्णचतुर्दश्यां पुण्ययोगिन्यां शुनो लग्नकस्य योनौ कालायसीं मुद्रिकां
 प्रेषयेत् ॥ ६३ ॥ तां स्वयं पतितां गृह्णीयात् ॥ ६४ ॥ तथा वृक्षफलान्याका-
 रितान्यागच्छन्ति ॥ ६५ ॥

पुण्य नक्षत्र युक्त कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को जब कुत्ता कुत्ती पर चढ़ता हो-तो एक
 लोहे की अंगूठी कुत्ती की योनि में डाल देवे । जब कुत्ता हटे-तो स्वयं गिरी हुई अंगूठी को
 उठा लेवे । उस अंगूठी के द्वारा वृक्षों के फल बुलाये जा सकते हैं ॥ ६३-६५ ॥

मन्त्रभैषज्यसंयुक्ता योगा मायाकृताश्च ये ।

उपहन्यादमित्रांस्तैः स्वजनं चाभिपालयेत् ॥ ६६ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे प्रलम्भने भैषज्यमन्त्रयोगः तृतीयो

ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितो ऽष्टचत्वारिंशच्छतः ॥ १४८ ॥

जो मन्त्र औषध या माया द्वारा प्रयोग करना बताया गया है-उनके द्वारा शत्रुओं का
 नाश और स्वजनों की परिपालना करनी चाहिए ॥ ६६ ॥

इति श्री कौटलीयअर्थशास्त्रान्तर्गत औपनिषदिक अधिकरण में शत्रु के प्रवंचन में

औषध और मन्त्र के वर्णन का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



चौथा अध्याय

१७६वां प्रकरण

स्ववलोप घात प्रतीकारः

इस प्रकरण में शत्रु द्वारा किये गए आवातों के प्रतीकार का वर्णन होगा ।

स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविपगराणां प्रतीकारे श्लेष्मातककपित्थदन्तिदन्त-
शठगोजीशिरीषपाटलीवलास्योनाकपुनर्नवाश्चेतावरणकाथयुक्तं चन्दनसालावृक्षी-
लोहितयुक्तं तेजनोदकं राजोपभोग्यानां गुह्यप्रक्षालनं स्त्रीणां सेनायाश्च विपप्र-
तीकारः ॥ १ ॥

शत्रु द्वारा प्रयुक्त किये गए विप हलाहल आदि के द्वारा जब अपने पक्ष का नश हो-तो उसके प्रतीकार का इस तरह उपाय करना चाहिए कि लिसोड़ा, कैथ, जमालगोटा, जंभीरीनींबू, गोभी, सिरस, कालीपाटल, खरैटी, सौनापाठा, पुनर्नवा, शराव और वरना वृक्ष की त्वचा लेकर इन सबका काढ़ा बनावे । फिर चन्दन और गीदड़ी का रक्त मिलाकर इसका तेजन उदक बना लिया जावे । यदि किसी ने विपकन्या बनाकर राजा के पास भेजी है-तो इस पानी से उसकी योनि धो देने या सेना पर किये गए विप प्रयोग को इस जल से धो डालने पर विप का असर नहीं होता है ॥१॥

पृषतनकुलनीलकण्ठगोधापित्तयुक्तं मपीराजिचूर्णं सिन्दुवारितवरणवारुणीतए-
ङ्गुलीयकशतपर्वाग्रपिण्डीतकयोगो मदनदोषहरः ॥२॥ सृगालविन्नामदनसिन्दुवारि-
तवरणवारणवल्लीमूलंकपायाणामन्यतमस्य समस्तानां वा क्षीरयुक्तं पानं मदन-
दोषहरम् ॥ ३ ॥

चीतलहिरन, नौला, नीलकण्ठ और गोह के पित्ते में काले संभालू और राई का चूर्ण मिलाया जावे तथा संभालू वरना, दूबघास, चौलाई, वांस का अग्रभाग और मैनफल, का भी इसमें संयोग हो-तो यह नुसखा धतूरे के विप के असर को दूर कर देता है । सृगालविन्ना ओपधि, धतूरा, संभालू, वरना और गजपीपल-इन पांचों की जड़ सारी या पृथक् २ का काढ़ा दूध के साथ पीने से धतूरे का विप उतर जाता है ॥२-३॥

कैडर्यपूतितिलतैलमुन्मादहरं नस्तःकर्म ॥ ४ ॥ प्रियङ्गुनक्तमालयोगः
कुष्ठहरः ॥ ५ ॥ कुष्ठलोध्रयोगः पाकशोषघ्नः ॥ ६ ॥ कट्फलद्रवन्तीविलङ्गचूर्णं
नस्तःकर्म शिरोरोगहरम् ॥ ७ ॥

कायफल, कांटेदार करंजुआ और तिल का तेल, मिलाकर नाक में डालने से उन्माद हरण होता है। कांगनी और करंजुआ का योग कुष्ठ का नाशक है। कूट और लोध-इनका योग वालों की सफेदी और क्षय रोग का नाशक है। कायफल, द्रवन्ती, (मूपापर्णी) और वायविडङ्ग-इन तीनों जड़ियों का चूर्ण, नासिका में सूंघा जावे-तो सिर के रोगों का नष्ट करने वाला होता है ॥४-७॥

प्रियङ्गुमञ्जिष्टतगरलाक्षारसमधुकहरिद्राक्षौद्रयोगो रज्जूदकविषप्रहारपतन-
निःसंज्ञानां पुनः प्रत्यानयनाय ॥ ८ ॥ मनुष्याणामक्षमात्रं गवाश्चानां द्विगुणं
चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ॥ ९ ॥ रुक्मगर्भश्चैषां मणिः सर्वविषहरः ॥ १० ॥ जीव-
न्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः
॥ ११ ॥

कांगनी, मंजीठ, तगर, लाख, महुआ, हलदी, और शहद-इन सब का योग, रस्सी, दूँपत जल, प्रहार, ऊपर से गिरने के कारण अचेत पुरुष के सचेत करने में बड़ा उत्तम है। इस की मात्रा मनुष्यों को एक अक्ष (सोलह माशा) बैल तथा अश्वों को दो अक्ष (वत्तीस माशा) एवं हाथी और ऊंटों को चार अक्ष (चौसठ माशा) होती है। सोने में जड़वा कर मणि को धारण किया जावे तो मनुष्य आदि सबका विष दूर हो जाता है अथवा इन औषधों को सोने के ताबीज में मँढकर पहननेसे सारे विष दूर होंगे। गिलोय, सफेद संभालू, काली पांढरी, पुष्प औषध, अमरवेल, नीमपर उत्पन्न पीपल का बनाये हुए योग को सुवर्ण के ताबीज में पहने तो सब विष दूर हों ॥८-११॥

तूर्याणां तैः प्रलिप्तानां शब्दो विषयिनाशनः ।

लिप्तध्वजं पताकां वा दृष्ट्वा भवति निर्विषः ॥ १२ ॥

एतैः कृत्वा प्रतीकारं स्वसेन्यानामथात्मनः ।

अमित्रेषु प्रयुञ्जीत विषयूमांश्चुदूपणान् ॥ १३ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे स्वबलोपघातप्रतीकारः चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥

आदित एकोनपञ्चाशच्छतः ॥ १४६ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्यौ-

पनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १४ ॥

गिलोय आदि औषधियों से लिप्त करके बनाये हुए बाजों का शब्द भी विष नाशक है तथा इनसे लिप्त ध्वजा और पताका को देखकर भी विष नष्ट हो जाता है। विजेता इन

योगों से अपनी और अपनी सेना की रक्षा करे तथा इन विष, धूस और दूषित जल के प्रयोगों को शत्रु पर प्रयुक्त करे ॥१२-१३॥

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत औपनिषदिक अधिकरण में अपनी सेना के घात के प्रतीकार का चौथा अध्याय समाप्त हुआ और यही पर औपनिषदिक अधिकरण भी समाप्त हुआ ।



तन्त्रयुक्ति पंचदशाधिकरणम्

प्रथम अध्याय

१८०वां प्रकरण

तन्त्रयुक्तिः

इस प्रकरण में अर्थशास्त्र में प्रयुक्त बहुत से शब्दों की परिभाषा का अर्थ होगा

मनुष्याणां वृत्तिरर्थः ॥ १ ॥ मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः ॥ २ ॥ तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति ॥ ३ ॥ तद्वान्निशद्य क्तियुक्तम् ॥ ४ ॥ अधिकरणं विधानं योगः पदार्थो हेत्वर्थ उद्देशो निर्देश उपदेशो ऽपदेशो ऽतिदेशः प्रदेश उपमानमर्थापत्तिः संशयः प्रसङ्गो विपर्ययो वाक्यशेषो ऽनुमतं व्याख्यानं निर्वचनं निदर्शनमपवर्गः स्वसंज्ञा पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष एकान्तो ऽनागतावेक्षणमतिक्रान्तावेक्षणं नियोगो विकल्पः समुच्चय उल्लमिति ॥ ५ ॥

मनुष्यों के व्यवहार को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ ही कहा जाता है। इस प्रकार वृत्ति और भूमि कि प्राप्ति उसके पालन के उपायों के शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं। इसमें बत्तीस युक्तियां हैं। अधिकरण, विधान, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, उद्देश, निर्देश, उपदेश, अपदेश, अतिदेश, प्रदेश, उपमान, अर्थापत्ति, संशय, प्रसंग, विपर्यय, वाक्यशेष, अनुमत, व्याख्यान, निर्वचन, निदर्शन, अपवर्ग, स्वसंज्ञा, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, एकान्त, अनागतावेक्षण, अतिक्रान्तावेक्षण, नियोग, विकल्प, समुच्चय और उल्ल ये उनके नाम हैं ॥१-५॥

यमर्थमधिकृत्योच्यते तदधिकरणम् ॥ ६ ॥ पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतमिति ॥ ७ ॥ शास्त्रस्य प्रकरणानुपूर्वी विधानम् ॥ ८ ॥ विद्यासमुद्देशो वृद्धसंयोग इन्द्रियजयो ऽमात्योत्पत्तिरित्येवमादिकमिति ॥ ९ ॥ वाक्ययोजना योगः ॥ १० ॥ चतुर्वर्णाश्रमो लोक इति ॥ ११ ॥ पदावधिकः पदार्थः ॥ १२ ॥

‘मूलहर इति पदम् ॥ १३ ॥ यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहर इत्यर्थः ॥ १४ ॥

जिस अर्थ को ध्यान में रखकर प्रकरण का आरम्भ किया जाता है-उसे अधिकरण कहते हैं। जैसे पृथिवी के लाभ और पालन के निमित्त जितने अर्थशास्त्र पूर्वाचार्यों ने बनाये हैं, उनका ही इसमें संचेप से संग्रह करके यह एक अर्थशास्त्र बनाया गया है। शास्त्र का प्रकरणानुसार कथन करना विधान कहाता है। विद्या समुद्देश आदि प्रकरणों का कथन विधान हैं। वाक्य योजना को योग कहते हैं, प्रथम अधिकरण के चौथे अव्याय का चतुर्वेणीश्रमोलोक यह इसका उदाहरण है। पद के अर्थ को बताने वाला पदार्थ अर्थात् पारिभाषिक संकेत होता है जैसे-मूलहर पद है जिसका अर्थ है, कि जो पिता पितामह का धन अन्याय से भोगता है-वह मूलहर कहाता है-यह अर्थ माना गया ॥६-१४॥

हेतुरर्थसाधको हेत्वर्थः ॥ १५ ॥ अर्थमूलौ हि धर्मकमाविति ॥ १६ ॥ समासवाक्यमुद्देशः ॥ १७ ॥ विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजय इति ॥ १८ ॥ व्यास-वाक्यं निर्देशः ॥ १९ ॥ कण त्वागक्षिजिह्वाग्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरस-गन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजय इति ॥ २० ॥ एवं वर्तितव्यमित्युपदेशः ॥ २१ ॥ धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत न निःसुखः स्यादिति ॥ २२ ॥ एवमसावाहेत्युपदेशः ॥ २३ ॥ मन्त्रिपरिषद् द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः ॥ २४ ॥ षोडशेति वार्हस्पत्याः ॥ २५ ॥ विंशतिमित्यौशनसाः ॥ २६ ॥

अर्थ को सिद्ध करने वाला हेतु ही हेत्वर्थ कहाता है। जैसे धर्म और काम-ये दोनों अर्थ से ही सिद्ध होते हैं-यह हेतु दिया गया है। संचित वाक्य का कथन उद्देश कहाता है। जैसे इन्द्रियों का विजय करना विद्या विनय का हेतु है यह उद्देश वाक्य है, क्योंकि इसमें संचेप से विद्या कि प्राप्ति का हेतु इन्द्रिय जय बताया है। नहीं तो विद्या विनय के तो अन्य भी कारण होते हैं। खोलकर वाक्य लिखना व्यास कहाता है जैसे कान, त्वचा, आंख, जिह्वा और नासिका-इन्द्रिय का अपने २ विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध के प्रति दौड़ने से रोकने को इन्द्रिय जय कहते हैं-इस प्रकार खोलकर बताने से यह व्यास कहा गया है। इस प्रकार तुम्हें करना चाहिए, यह कथन उपदेश कहाता है। जैसे धर्म और अर्थ के साथ विरोध न करके काम का सेवन करो। सुख हीन जीवन व्यतीत न करो। इत्यादि वाक्य उपदेश, क्योंकि इसमें उपदेश किया गया है। अमुक व्यक्ति ने इस विषय में यह कहा है-यह कथन अतिदेश कहाता है। जैसे बारह अमात्यों की मन्त्रिपरिषद्

बनावे-यह मनुके अनुयायी मानते हैं। सोलह की बृहस्पति, बीस की शुक के अनुयायी मानते हैं। कौटल्याचार्य के मत में जितनी आवश्यक समझे उतने व्यक्तियों किं परिपद बनायी जा सकती है। इसमें मनु, बृहस्पति का निर्देश होने से यह अतिदेश है ॥१५-२६॥

यथासामर्थ्यमिति कौटल्य इति ॥ २७ ॥ उक्तेन साधनमतिदेशः ॥ २८ ॥ दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातमिति ॥ २९ ॥ वक्तव्येन साधनं प्रदेशः ॥ ३० ॥ सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्याम इति ॥ ३१ ॥ दृष्टेनादृष्टस्य साधनमुपमानम् ॥ ३२ ॥ निवृत्तपरिहारान्पितृवानुगृहणीयादिति ॥ ३३ ॥ यदनुक्तमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः ॥ ३४ ॥ लोकयात्रात्रिद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृति-संपन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयेत् ॥ ३५ ॥ नाप्रियहितद्वारेणाश्रयेत्तत्प्रार्थादापन्नं भवतीति ॥ ३६ ॥

कही गई बात के द्वारा नहीं कथन की गई बात का भी सिद्ध कर देना अतिदेश कहाता है। जैसे दी हुई वस्तु का नहीं देना-ऋण के नहीं देने की व्यवस्था से समझ लेना चाहिए। इस कथन में दी हुई वस्तु के नहीं देने की ऋण के कथन के अनुसार ही बताने से व्यवस्था हो गई इससे यह अतिदेश है। आगे कही जाने वाली बात से किसी बात को सिद्ध किया जावे-उसे प्रदेश कहते हैं। जैसे, साम, दान-दण्ड, और भेद से उक्तकाय की सिद्धि करे-इसका वर्णन आगे आपत्ति काल के वर्णन में होगा। इस वाक्य में आगे वर्णन करने का निर्देश हा जिससे यह प्रदेश कहाता है। दृष्ट वस्तु का अदृष्ट वस्तु द्वारा सिद्ध करना उपमान कहाता है। जैसे यदि प्रजा के लोग पारदार द्रव्य (स्वास्थ्य का टैक्स) चुकाते रहें-तो राजा उनपर पिता की तरह कृपा बनावे रखे। यह वाक्य पिता की उपमा से प्रयुक्त होने से उपमान वाक्य कहाता है। नहीं कही हुई बात भी जो अर्थ से निकल आवे-उसे अर्थापत्ति कहते हैं—जैसे-संसार यात्रा को जानने वाला चतुर पुरुष, आत्मगुण, द्रव्य, अमात्यादि प्रकृतियों से युक्त राजा का अपने प्रिय और हितकारी पुरुषों के द्वारा आश्रय ग्रहण करे-इससे यह बात निकल आई कि अप्रिय और अहित पुरुषों के द्वारा और अयोग्य राजा का आश्रय न करे, इसमें अर्थ से यह बात निकली इससे यह वाक्य अर्थापत्ति है ॥२७-३६॥

उभयतोहेतुमानर्थः संशयः ॥ ३७ ॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति ॥ ३८ ॥ प्रकरणान्तरेण समानो ऽर्थः प्रसङ्गः ॥ ३९ ॥ कृपिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वणेति ॥ ४० ॥ प्रतिलोमेन साधनं विपर्ययः ॥ ४१ ॥

विपरीतमतुष्टस्येति ॥ ४२ ॥ येन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः ॥ ४३ ॥

छिन्नपक्षस्येव राजश्रेष्ठानाशश्चेति ॥ ४४ ॥ तत्र शकुनेरिति वाक्यशेषः ॥ ४५ ॥

किसी अर्थ में दोनों पक्षों का होना-संशय कहाता है। जैसे दुर्बल और लालची अमात्यों वाले राजा पर प्रथम आक्रमण करे या दुराचारी अमात्य वाले राजा पर। इस वाक्य में विकल्प होने से यह संशय युक्त वाक्य है। दूसरे प्रकरण के साथ अर्थ की समानता होना-प्रसङ्ग कहाता है। गृहपतिक गुप्तचर, कृषि कार्य को नियत की हुई भूमि में उदास्थित गुप्तचर की भांति कार्य करे। इसमें गृहपतिक को उदास्थित गुप्तचर की तरह कार्य करना-बताया इससे यह प्रसङ्ग कहाता है। कही हुई बात को विपरीत रीति से सिद्ध करना-विपर्यय कहाता है। जैसे-पूर्वोक्त प्रकार प्रसन्नता का है और इसके विपरीत भाव अप्रसन्नता के समझो। यह कथन पूर्वोक्त को विपरीत करने को कहता है-इससे इसे विपर्यय कहते हैं। जिसके द्वारा वाक्य की समाप्ति हो-वह वाक्य शेष कहाता है। इस प्रकार कटे पक्ष वाले की तरह राजा के पक्ष का नाश हो जाता है-इसमें कटे पक्ष वाले शब्द के आने पक्षी शब्द शेष होने से यह वाक्य शेष का उदाहरण है ॥३७-४५॥

परवाक्यमप्रतिषिद्धमनुमतम् ॥ ४६ ॥ पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभाग इति ॥ ४७ ॥ अतिशयवर्णना व्याख्यानम् ॥ ४८ ॥ विशेषतश्च संधानां संधधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः ॥ ४९ ॥ तन्निमित्तो विनाश इत्यसत्परिग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति ॥ ५० ॥ गुणतः शब्दनिष्पत्तिर्निर्वचनम् ॥ ५१ ॥ व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनमिति ॥ ५२ ॥ दृष्टान्तो दृष्टान्तयुक्तो निदर्शनम् ॥ ५३ ॥ विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैतीति ॥ ५४ ॥ अभिप्लुतव्यपकर्षणमपवर्गः ॥ ५५ ॥ नित्यमासन्नमरिवलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरोपशङ्काया इति ॥ ५६ ॥

प्रतिषेध नहीं किया हुआ दूसरे का वाक्य अनुमत कहाता है। अगले दोनों भाग, मध्य भाग और पिछला भाग ये चार शुक्राचार्य ने व्यूह के विभाग किये हैं। कौटल्याचार्य ने इस पक्ष को नहीं काटा इससे यह अनुमत कहाता है। सिद्ध किये हुए पदार्थ का अत्यन्त खोलकर वर्णन करना व्याख्यान कहाता है। जैसे विशेषकर साथ २ रहने वाले साथी राजकुमारों का भी द्यूत के कारण भेद (फूट) देखा गया है। इससे नाश भी हो जाता है। इसमें दुष्ट जनों का आगमन होता है-इससे यह मद्यपान सब व्यसनो में दुरा और राज्य को क्षीण का देने वाला होता है—यहां अपमान के दोष खोलकर बताये-इससे यह

व्याख्यान कहाता है। गुण के द्वारा किसी शब्द की निरुक्ति करना निर्वचन होता है। जैसे-यह मनुष्य को कल्याण से दूर कर देता है इससे इसे व्यसन कहते हैं-यहां व्यसन शब्द की व्युत्पत्ति की गई-इससे इसे निर्वचन कहते हैं। दृष्टान्त-पूर्वक दृष्टान्त देना निदर्शन कहाता है जैसे-बड़े से युद्ध करना-हाथी के साथ पैदल का युद्ध करना है। इसमें दृष्टान्त देकर बताया-इससे यह निदर्शन है। किसी विधि को सामान्य रूप से कहते हुए उसके विषय का संकोच कर जाना अपवर्ग कहाता है—जैसे-यदि अपने भीतरी अमात्य आदि के कुपित होने की आशंका न हो तो-शत्रु सेना को सदा पास रखे-इसमें शत्रु सेना को पास रखने की व्यवस्था करते २ अपने भीतरी अमात्यों के कुपित हो जाने का डर हो तो पास न रखे-इस प्रकार संकोच किया गया-इससे यह अपवर्ग है ॥४६-५६॥

परैरसंज्ञितः शब्दः स्वसंज्ञा ॥ ५७ ॥ प्रथमा प्रकृतिस्तस्य भूम्यन्तरा
द्वितीया भूम्येकान्तरा तृतीयेति ॥ ५८ ॥ प्रतिपेद्व्यं वाक्यं पूर्वपक्षः ॥ ५९ ॥
स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ६० ॥ तस्य निर्णयनवाक्यमु-
त्तरपक्षः ॥ ६१ ॥ तदायत्तत्वात् ॥ ६२ ॥ तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ॥ ६३ ॥
सर्वत्रायत्तमेकान्तः ॥ ६४ ॥ तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीतेति ॥ ६५ ॥ पश्चादेवं
विहितमित्यनागतावेक्षणम् ॥ ६६ ॥ तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्याम इति
॥ ६७ ॥ पुरस्तादेवं विहितमित्यतिक्रान्तावेक्षणम् ॥ ६८ ॥ अमात्यसंपदुक्ता
पुरस्तादिति ॥ ६९ ॥

दूसरों द्वारा उस अर्थ में नहीं लिखा हुआ शब्द, स्वसंज्ञा कहाता है। जैसे-समीप की प्रथमा प्रकृति, भूमि के अन्तर से रहने वाली द्वितीया प्रकृति और भूमि के एक राजा के अन्तर से तृतीय प्रकृति होती है—यह संज्ञा इसी शास्त्र की है-इससे स्वसंज्ञा कहाती है प्रतिपेध करने योग्य वाक्य पूर्व पक्ष होता है—जैसे-स्वामी और अमात्य व्यसन में अमात्य व्यसन भारी है इस वाक्य को काटकर स्वामी व्यसन को भारी बताया-इससे इसे पूर्व पक्ष कहते हैं। इसका निर्णय का वाक्य उत्तर पक्ष होता है। जैसे-इसी में राजा के अधीन सारी प्रकृतियों के होने से राजा का व्यसन ही भारी है-यह सिद्ध किया है इससे यह उत्तर पक्ष है। जो अर्थ, किसी देशकाल में न छोड़ा जा सके उसे एकान्त कहते हैं। जैसे-इसलिए अपनी आत्मा को सदा उन्नत करे-इस वाक्य में सर्वदा आत्मा को उन्नत करे-इसे कभी न छोड़े इस आत्मा की उन्नति के विधान को कभी न छोड़े-इसे एकान्त कहते हैं। पीछे से इसका कथन से विधान किया जावेगा ऐसा कथन करना-अनागतावेक्षण कहाता है। जैसे-तुला का प्रतिमान पौतवाध्यक्ष प्रकरण में कहेंगे। इसमें इस बात का

आगे वर्णन करना कहा गया-इससे यह अनागतावेक्षण वाक्य है। पहिले ऐसा कहा गया यह अतिक्रान्तावेक्षण कहाता है-जैसे अमात्यसंपत् कही जा चुकी। इस वाक्य में पूर्व कथन का निर्देश होने से यह अतिक्रान्तावेक्षण कहाता है ॥५७-६६॥

एवं नान्यथेति नियोगः ॥ ७० ॥ तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं चेति ॥ ७१ ॥ अनेन वानेन वेति विकल्पः ॥ ७२ ॥ दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाता इति ॥ ७३ ॥ अनेन चानेन चेति समुच्चयः ॥ ७४ ॥ स्वसं (यं) जातः पितृवन्धूनां च दायाद इति ॥ ७५ ॥ अनुक्तकरणमूह्यम् ॥ ७६ ॥ यथा-वद्वाता प्रतिगृहीता च नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुरिति ॥७७॥

इस काम को यों करो-अन्यथा नहीं-इस प्रकार का कथन नियोग कहाता है। जैसे-इसलिए राजा को धर्म और अर्थ (नीति) का उपदेश करे-अधर्म और अनीति का नहीं। इसमें उपदेश करने की आज्ञा होने से यह नियोग है। इससे या इससे करो-इस तरह कहना विकल्प कहाता है। जैसे-पुत्रवान् के पुत्र धन के स्वामी हो या धर्म-पूर्वक विवाह द्वारा उत्पन्न कन्या भी मालिक हो सकती है। इस वाक्य में दोनों का विधान है, इससे यह विकल्प कहाता है। इससे भी और इससे ही यहकार्य करो-यह समुच्चय कहाता है। जैसे-अपना उत्पन्न किया हुआ-पिता के बन्धुओं के धन का स्वामी होता है-इसमें पिता के बन्धुओं का भी ग्रहण किया गया-इससे यह समुच्चय है। नहीं कही हुई बात का भी अनुमान कर लेना-उह्य कहाता है। जैसे-लेने देने वाले जिस तरह दुःखी न होवे, उस तरह कुशल न्यायाधीश अनुशय (धरोहर) द्रव्य का निर्णय करदे। इसमें नहीं बताने पर भी अपनी बुद्धि से विचार किया जाता है इससे यह उह्य है ॥७०-७७॥

एवं शास्त्रमिदं युक्तमेताभिस्तन्त्रयुक्तिभिः ।

अवाप्तौ पालने चोक्तं लोकस्यास्य परस्य च ॥ ७८ ॥

धर्ममर्थं च कामं च प्रवर्तयति पाति च ।

अधर्मनर्थविद्वेषानिदं शास्त्रं निहन्ति च ॥ ७९ ॥

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।

अमर्षणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥ ८० ॥

इस प्रकार यह अर्थशास्त्र इन तंत्र युक्तियों से पूर्ण है। इस लोक के पालन और परलोक में हितकारी यही अर्थशास्त्र है। यह अर्थशास्त्र, धर्म, अर्थ, और काम को प्रवृत्त करता है तथा उनकी पालना करता है। इसी तरह यह अर्थ के साथ विरोध रखने वाले

अधर्मों का नाश भी करता है। जिसने शास्त्र, शस्त्र और नन्द राजाओं से भूमि का क्रोध के कारण उद्धार किया, उसी विष्णुगुप्त ने यह अर्थशास्त्र बनाया है ॥७८-८०॥

इति तन्त्रयुक्तौ पञ्चदशेऽधिकरणे तन्त्रयुक्तयः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितः पञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥ एतावता कौट-
लीयस्यार्थशास्त्रस्य तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणं समाप्तम् ॥१५॥

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरण समाप्त

चाणक्यार्थ सुगुम्फितां बहुतिथा-

दारभ्य गीर्वाणगी-

मञ्जूपा निहिता मनर्घ रुचिरां-

भन्यार्थशास्त्रस्रजम्-

आयासैरधुनार्थ जाति ललना कण्ठे स्पर्पित्वा चिरात्

सम्पत्ताम सुतोऽहमिन्द्र नगरे, गङ्गाप्रसादः कृती ।

इति श्रीकौटलीय अर्थशास्त्रान्तर्गत तन्त्रयुक्ति अधिकरण में अर्थशास्त्र की प्रसिद्ध

युक्तियों के लक्षण के वर्णन का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ और
यहीं पर यह अर्थशास्त्र भी समाप्त हो गया ।



चाणक्य प्रणीत सूत्रम्

सुखस्य मूलं धर्मः ॥ १ ॥ धर्मस्य मूलमर्थः ॥ २ ॥ अर्थस्य मूलं राज्यम् ॥ ३ ॥ राज्यमूलमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः ॥ ५ ॥ विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा ॥ ६ ॥ वृद्धसेवाया विज्ञानम् ॥ ७ ॥ विज्ञानेनात्मानं संपादयेत् ॥ ८ ॥ संपादितात्मा जितात्मा भवति ॥ ९ ॥ जितात्मा सर्वार्थैस्संयुज्येत ॥ १० ॥ अर्थसंपत्प्रकृतिसंपदं करोति ॥ ११ ॥ प्रकृतिसंपदा ह्यनायकमपि राज्यं नीयते ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोपस्सर्वकोपेभ्योः गरीयान् ॥ १३ ॥

सुख का मूल कारण धर्म है। धर्म का मूल अर्थ है। अर्थ का मूल राज्य माना जाता है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने से राज्य की सत्ता रह सकती है। नम्रता या सदाचार इन्द्रियों के जय का प्रधान कारण माना गया है। सदाचार वृद्धों की सेवा या सद्गतिसे प्राप्त होता है। जब मनुष्य को विज्ञानका प्रादुर्भाव होता है, तो उसे वृद्धों की सद्गति की आकाङ्क्षा होती है। इस प्रकार विज्ञान ही सर्व श्रेष्ठ है, जिसके द्वारा आत्मोन्नति का प्रयत्न करे। जिसने अपनी आत्मा को सम्हाल लिया-वही जितात्मा या जितेन्द्रिय कहाता है। जो जितात्मा होता है, वह अपने सारे मनोरथों के प्राप्त करने में सफल हो जाता है। धन और सम्पत्ति ही अमात्य, सेना, मित्र आदि प्रकृति सम्पत्ति को उत्पन्न करती है। जिसके पास अमात्य आदि का उत्तम साधन है, वे राजा के बिना भी कुछ दिन तक राज्य का कार्य चला सकते हैं। अमात्य मन्त्री आदि का कोप सब कोषों से अधिक भारी है ॥१-१३॥

अविनीतस्वामिलाभादस्वामिलाभः श्रेयान् ॥ १४ ॥ संपाद्यात्मानमन्विच्छेत्सहायवान् ॥ १५ ॥ नासहायस्य मन्त्रनिश्चयः ॥ १६ ॥ नैकं चक्रं परिभ्रमयति ॥ १७ ॥ सहायस्समसुखदुःख ॥ १८ ॥

उदरह स्वामी की अपेक्षा, राजा का आश्रय नहीं प्राप्त होना ही अच्छा है। अपने आपको योग्य बनाने के अनन्तर सहायकों को उत्पन्न करे। जिस राजा के सहायक नहीं होते उसका मन्त्र सफल नहीं हो सकता है। एक पहिए से गाड़ी नहीं चला करती-अर्थात् केवल राजा से राज्य नहीं चलता। सुख और दुःख में एक समान रहने वाला ही सच्चा सहायक कहाता है ॥१४-१८॥

मानी प्रतिमानिनमात्मनि द्वितीयं मन्त्रमुत्पादयेत् ॥ १६ ॥ अविनीतं स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत ॥ २० ॥ श्रुतवन्तमुपधाशुद्धं मन्त्रिणं कुर्वीत ॥ २१ ॥ मन्त्रमूलास्सवारम्भाः ॥ २२ ॥ मन्त्ररक्षणे कार्यसिद्धिर्भवति ॥ २३ ॥ मन्त्रविस्त्रावी कार्यं नाशयति ॥ २४ ॥ प्रमादात् द्विषतां वशमुपयास्यति ॥ २५ ॥ सर्वद्वारेभ्यो मन्त्रो रक्षितव्यः ॥ २६ ॥ मन्त्रसंपदा राज्यं वर्धते श्रेष्ठतमां मन्त्रगुप्तिमाहुः ॥ २७ ॥ कार्यान्धस्य प्रदीपो मन्त्रः ॥ २८ ॥ मन्त्रचक्षुषा परच्छिद्राण्यवलोकयन्ति ॥ २९ ॥ मन्त्रकाले न मत्सरः कर्तव्यः ॥ ३० ॥ त्रयाणामेङ्गाव्ये संप्रत्ययः ॥ ३१ ॥ कार्याकार्यतत्त्वार्थदर्शिनो मन्त्रिणः ॥ ३२ ॥ षट्कर्णाद्भिद्यते मन्त्रः ॥ ३३ ॥

मन्त्री राजा, किसी दूसरे मन्त्री पुत्र का हो अपना मन्त्री बनावे। स्नेह के कारण किसी अशिक्षित उद्दण्ड या असदाचारी सम्बन्धी को मन्त्र का अधिकार न सौंपें। जिसने शास्त्र का अध्ययन किया और जो शुद्ध आचार वाला है, उसे ही मन्त्री बनाना चाहिए। राज्य के सारे कार्य मन्त्री के ही अधीन होते हैं। मन्त्र के सुरक्षित रहने में ही कार्य-सिद्धि है। जिसने अपने मन्त्र का उद्घाटन कर दिया-उसने स्वयं अपने कार्य का नाश कर लिया। जो मन्त्र के विषय में प्रमाद करता है, वह व्यक्ति शत्रु के फंदे में फंस जाता है, इस लिए सारे प्रयत्न करके अपने मन्त्र की रक्षा करनी चाहिए। मन्त्र की ही शक्ति से राज्य बढ़ता चला जाता है। मन्त्र का गुप्त रख लेना सबसे श्रेष्ठ कार्य है। जब मनुष्य किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है, तब मन्त्र ही दीपक के तुल्य प्रकाश दिखाता है। मन्त्र रूपी आंखों से राजा शत्रु, के छिद्रों को देख सकता है। मन्त्र के अवसर में किसीसे मत्सर (डाह) या द्वेष नहीं करना चाहिए अर्थात् किसी मन्त्रिण को द्वेष के कारण नहीं ठुकरा देना चाहिए। जब तीन व्यक्ति एक मत को निश्चित करले, तो उसके अनुसार कार्य कर देने में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। मन्त्री लोग ही कार्य और अकार्य के तत्व के पारगामी होते हैं। कोई २ मन्त्र तो छः कानों में अर्थात् तीसरे व्यक्ति को मालूम होते ही फूट जाता है ॥ १६-३३ ॥

आपत्सु स्नेहसंयुक्त मित्रम् ॥ ३४ ॥ मित्रसंग्रहणे बलं संपद्यते ॥ ३५ ॥ बलवानलब्धलाभे प्रयतते ॥ ३६ ॥ अलब्धलाभो नालसस्य ॥ ३७ ॥ अलसस्य लब्धमपि रक्षितुं न शक्यते ॥ ३८ ॥ स चालसस्य रक्षितुं विवर्धते ॥ ३९ ॥ न भृत्यो न प्रेषयति ॥ ४० ॥

जो व्यक्ति आपत्ति में भी साथ न छोड़े उसे ही मित्र कहते हैं। मित्रों के बढ़ जाने पर बल बढ़ जाता है। जब मनुष्य बलवान् हो जाता है, तो वह दुर्लभ शत्रु के पाने का भी साहस कर सकता है। आलसी मनुष्य को वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। आलसी पुरुष तो मिली हुई वस्तु की रक्षा करने में भी असमर्थ हो जाता है। आलसी का सुरक्षित द्रव्य बढ़ भी नहीं सकता है और न वह अपने धन को भृत्यों के उपयोग में ही ला सकता है ॥ ३४-४० ॥

अलब्धलाभादिचतुष्टयं राज्यतन्त्रम् ॥ ४१ ॥ राज्यतन्त्रायत्तं नीतिशास्त्रम् ॥ ४२ ॥ राज्यतन्त्रेष्वप्येतौ तन्त्रावापौ ॥ ४३ ॥ तन्त्रं स्वविषयकृत्येष्वायत्तम् ॥ ४४ ॥ आवापो मण्डलनिविष्टः ॥ ४५ ॥ सन्धिविग्रहयोनिर्मण्डलः ॥ ४६ ॥

(१) नहीं मिली वस्तु का लाभ करना (२) मिली हुई की रक्षा कर लेना (३) रक्षित वस्तु की वृद्धि करना (४) और वृद्धि वस्तु को सेवकादि के उपयोग में लाना-ये चार बातें ही राज्यतन्त्र कहाता है। राज्यतन्त्र का आधार लेकर ही नीति शास्त्र चलता है। राज्य की सत्ता से ही अर्था शास्त्र को सत्ता और नीति के बीजों का बपन हो सकता है, अपने देश के कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय करने में तन्त्र की इति कर्तव्यता है। राजा मंडल के अधीन आवाप (नीति बीज की बपन) है। राजमंडल भी सन्धि और विग्रह के अधीन माना जाता है ॥ ४२-४६ ॥

नीतिशास्त्रानुगो राजा ॥ ४७ ॥ अनन्तरप्रकृतिशत्रुः ॥ ४८ ॥ एकान्तरितं मित्रमिष्यते ॥ ४९ ॥ हेतुतरशत्रुमित्रे भविष्यतः ॥ ५० ॥ हीयमानस्सन्धि कुर्वीत ॥ ५१ ॥ तेजो हि संधानहेतुस्तदर्थानाम् ॥ ५२ ॥ नातप्तलोहो लोहेन संधीयते ॥ ५३ ॥ बलवान् हीनेन विगृहणीयात् ॥ ५४ ॥ न ज्यायसा समेन वा ॥ ५५ ॥ गजपादयुद्धमिव बलवद्विग्रहः ॥ ५६ ॥ आमपात्रसामेन सह विनश्यति ॥ ५७ ॥ अरिप्रयत्नमभिसमीक्षेत ॥ ५८ ॥ संधायैकतो वा ॥ ५९ ॥

जो नीति के अनुसार कार्य करता है-वही सच्चा राजा होता है। अपने देश के साथ लगा हुआ राजा शत्रु बन जाता है। एक राजा जब बीच में पड़ जाता है, तो अगला राजा मित्र बन जाता है ! बात तो यह है, कि कारण से हो मित्र और कारण से शत्रु होते हैं। किसी की शक्ति क्षीण होती है। उसे सन्धि कर लेनी चाहिए। पृथक् २ कार्यों की सिद्धि का हेतु मनुष्य का तेज ही होता है। बिना गर्म हुए लोहा लोहे से नहीं जुड़ता है। बलवान् राजा, दुर्बल राजा से युद्ध छेड़ देवे, अपने से बड़े या बराबर की शक्ति रखने वाले के साथ कभी युद्ध नहीं करे। बलवान् के साथ युद्ध कर बैठना, हाथी का पैदल के साथ

युद्ध करना है। कच्चा पात्र, कच्चे पात्र से टकराकर फूट जाता है-इसी तरह दो दुर्बल राजा लड़कर नष्ट हो जाते हैं। राजा शत्रु के प्रयत्नों को बराबर देखता रहे और बहुत से शत्रु हों-तो एक से सन्धि करलेवे ॥ ४७-४८ ॥

अभिन्नविरोधादात्मरक्षामावसेत् ॥ ६० ॥ शक्तिहीनो बलवन्तमाश्रयेत् ॥ ६१ ॥ दुर्बलाश्रयो दुःखमावहति ॥ ६२ ॥ अग्निवद्राजानमाश्रयेत् ॥ ६३ ॥ राज्ञः प्रतिकूलनाचरेत् ॥ ६४ ॥ उद्धतवेषधरो न भवेत् ॥ ६५ ॥ न देवचरितं चरेत् ॥ ६६ ॥ द्वयोरपीर्ष्यतोः द्वैधीभावं कुर्वीत ॥ ६७ ॥ न व्यसनपरस्य कार्यावाप्तिः ॥ ६८ ॥ इन्द्रियवशवर्ती चतुरङ्गवानपि विनश्यति ॥ ६९ ॥ नास्ति कार्यं व्यूतप्रवृत्तस्य ॥ ७० ॥ मृगयापरस्य धर्मार्थौ विनश्यतः ॥ ७१ ॥ अर्थपणा न व्यसनेषु गण्यते ॥ ७२ ॥ न कामासक्तस्य कार्यानुष्ठानम् ॥ ७३ ॥ अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम् ॥ ७४ ॥ दण्डपारुष्यात्सर्वजनद्वेष्यो भवति ॥ ७५ ॥ अर्थतोपिणं श्रीः परित्यजति ॥ ७६ ॥

शत्रु के किये गए विरोध के कार्यों से अपनी रक्षा करता रहे। जो राजा निर्बल हो वह बलवान् का आश्रय ग्रहण करे। जो दुर्बल का आश्रय ग्रहण करता है, वह दुःख उठाता है। आग के समीप जैसे-कपड़े लत्ते बचाकर बैठते हैं, ऐसे ही राजा के समीप हाथ पांव बचाकर रहे। राजा के प्रतिकूल कोई कार्य न करे और उसके सन्मुख उद्धत वेष धारण न करे। देवों के चरित के अनुसार अपने चरित चलाने की चेष्टा न करे। जब दो राजा अपने से बैर रखते हों-तो उनमें एक से बनावटी मित्रता करके दूसरे से लड़ाई करले जो व्यक्ति व्यसन (विषयों) में फंसा होता है, उसके कार्य सिद्ध नहीं होते। जो इन्द्रियों के अधीन है वह चतुरङ्गिणी सेना रखता हुआ भी नष्ट हो जाता है। जुआरी के कार्य सिद्ध नहीं हो सकते हैं। शिकार में उलझे हुए राजा के धर्म और अर्थ दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। धन कमाने में फंस जाना-व्यसन नहीं है। कामातुर राजा के कार्यों का परिणाम अच्छा नहीं निकलता। वाणी की कठोरता, अग्नि दाह से भी अधिक होती है। दंड की कठोरता से सब मनुष्य द्वेष करने लग जाते हैं। राज्य लक्ष्मी की वृद्धि से सन्तुष्ट हुए राजा को राज्य लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ ६०-७६ ॥

अभिन्नो दण्डनीत्यामायत्तः ॥ ७७ ॥ दण्डनीतिमधितिष्ठन् प्रजास्संरक्षति ॥ ७८ ॥ दण्डस्संपदा योजयति ॥ ७९ ॥ दण्डाभावे मन्त्रिवर्गाभावः ॥ ८० ॥ न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति ॥ ८१ ॥ दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम् ॥ ८२ ॥

आत्मनि रक्षिते सर्वं रक्षितं भवति ॥ ८३ ॥ आत्मायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ८४ ॥
दण्डो हि विज्ञाने प्रणीयते ॥ ८५ ॥

रात्रु, सेनाकी प्रबलता के अधीन होता है। सेना का आश्रय लेकर ही राजा प्रजा को रक्षा में तत्पर हो सकता है। सेना ही सम्पत्ति के प्राप्त कराने का साधन है। यदि सेना न होगी, तो मन्त्रो समूह भां न रह पावेगा। सेना के रहने पर वे लोग भी अकार्य नहीं कर सकते हैं। सेना की वृद्धि के साथ ही अपनी रक्षा हो सकती है। जो अपनी रक्षा हो गई। तो सब कुछ सुरक्षित समझो। वृद्धि और विनाश अपने ही अधीन हैं। अच्छी तरह सोच विचार कर ही दंड का प्रयोग करना चाहिए ॥ ७७-८५ ॥

दुर्वलोपि राजा नावमन्तव्यः ॥ ८६ ॥ नास्त्यग्रेदौर्वन्यम् ॥ ८७ ॥
दण्डे प्रतीयते वृत्तिः ॥ ८८ ॥ वृत्तिमूलमर्थलाभः ॥ ८९ ॥ अर्थमूलौ धर्मकामौ
॥ ९० ॥ अर्थमूलं कार्यम् ॥ ९१ ॥ यदल्पप्रयत्नात्कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ९२ ॥
उपायपूर्वं न दुष्करं स्यात् ॥ ९३ ॥ अनुपायपूर्वं कार्यं कृतमपि नश्यति ॥ ९४ ॥
कार्यार्थिनामुपाय एव सहायः ॥ ९५ ॥ कार्यं पुरुषकारेण लक्ष्यं संपद्यते ॥ ९६ ॥
पुरुषकारमनुवर्तते दैवम् ॥ ९७ ॥ दैवं विनाऽतिप्रयत्नं करोति यत्तद्विफलम् ॥ ९८ ॥

राजा दुर्बल भी हो गया हो तो भी उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए, कहीं आग दुर्बल नहीं हुआ करती। सारे संसार का व्यवहार राज दंड पर ही अवलम्बित है। व्यवहार के नियम से चलने पर ही अर्थ का लाभ हो सकता है। धर्म और काम, अर्थ के ही अधीन है। सारे कार्य धन के कारण से सम्पन्न होते हैं। यदि धन हो तो थोड़े प्रयत्न से भी कार्य सिद्ध हो जाता है। यदि कार्य, उपाय के साथ किया है, तो अवश्य सिद्ध होगा। अनुपाय के साथ किया गया कार्य, जितना हो गया है, उतना भी नष्ट हो जाता है। जो अपने कार्यों की सिद्धि चाहते हैं, उन्हें उपाय का ही अवलम्बन लेना चाहिए। पुरुषार्थ के द्वारा किया गया कार्य अवश्य सिद्ध होता है। दैव की सहायता के बिना अत्यन्त प्रयत्न से किया गया कार्य भी विफल हो जाता है ॥ ७८-९८ ॥

असमाहितस्य वृत्तिर्न विद्यते ॥ ९९ ॥ पूर्वं निश्चित्य पश्चात्कार्यमारभेत्
॥ १०० ॥ कार्यान्तरे दीर्घसूत्रता न कर्तव्या ॥ १०१ ॥ न चलचित्तस्य कार्या-
वाप्तिः ॥ १०२ ॥ हस्तगतावमाननात्कार्यव्यतिक्रमो भवति ॥ १०३ ॥ दोषव-
र्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ॥ १०४ ॥ दुरनुबन्धं कार्यं नारभेत् ॥ १०५ ॥
कालवित् कार्यं साधयेत् ॥ १०६ ॥ कालातिक्रमात्काल एव फलं पिबति ॥ १०७ ॥

क्षणं प्रति कालविज्ञेयं न कुर्यात्सर्वकृत्येषु ॥ १०८ ॥ देशफलविभागौ ज्ञात्वा
कार्यमारभेत ॥ १०९ ॥ दैवहीनं कार्यं सुसाधमपि दुस्साधं भवति ॥ ११० ॥

प्रमादी पुरुष का कोई व्यवहार नहीं चल सकता है। प्रथम निश्चित करके फिर कार्य का आरम्भ करे। उस कार्य को छोड़कर उसके सहायक दूसरे कार्य के करने में दीर्घ सूत्रता (आलसी पन) नहीं करना चाहिए। चञ्चल मन वाले पुरुष की कभी कार्य सिद्धि नहीं होती। हाथ में आये हुए कार्य का प्रमाद से त्याग करने पर फिर कार्य में बड़ी उलझन पड़ जाती है। सर्वोद्गम पूर्ण कार्य बहुत कम पूरे होते हैं। जिन कार्यों में दुःखदायी भगड़ों का सामना करना पड़े, उनका आरम्भ ही न करे। जो काल की गति को जानकर चलता है, वही अपना कार्य बना सकता है। किसी कार्य के करने के समय को चूक जाने पर वह कार्य सम्पन्न नहीं होता, उसके फल को वह काल ही पी जाता है, इसलिए सारे कार्यों के करने में कभी काल को न चूके। देश और काल का विभाग करके ही कार्य का आरम्भ करे। दैव की सहायता से हीन, सीधा कार्य भी टेढ़ा हो जाता है ॥६६-११०॥

नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत ॥ १११ ॥ परीक्ष्यकारिणि श्रीश्विरं तिष्ठति
॥ ११२ ॥ सत्राश्च संपदः सर्वोपायेन परिग्रहेत् ॥ ११३ ॥ भाग्यवन्तमपरीक्ष्य-
कारिणं श्रोः परित्यजति ॥ ११४ ॥ ज्ञानानुमानैश्च परीक्षा कर्तव्या ॥ ११५ ॥
यो यस्मिन् कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेव योजयेत् ॥ ११६ ॥ दुस्साधमपि सुसाधं
करोत्युपायज्ञः ॥ ११७ ॥ अज्ञानिना कृतमपि न बहुमन्तव्यम् ॥ ११८ ॥
यादृच्छिकत्वात् कृमरपि रूपान्तराणि करोति ॥ ११९ ॥ सिद्धस्यैव कार्यस्य
प्रकाशनं कर्तव्यम् ॥ १२० ॥ ज्ञानवतामपि दैवमानुषदोषात्कार्याणि दुष्यन्ति ॥ १२१ ॥

नीतिमान् राजा, देशकाल को देखता रहे। जो देश काल का देखकर कार्य करता है, उसके पास चिरकाल तक लक्ष्मी ठहरती है। सम्पूर्ण सम्पत्तियों को सारे उपायों से इकट्ठी करे। बिना सोचे विचारे कार्य करने करने वाले को लक्ष्मी छोड़ देती है, चाहे वह कितना ही भाग्यवान् क्यों न होवे। प्रत्येक वस्तु की परीक्षा प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा कर लेनी चाहिए। जो मनुष्य, जिस कार्य में कुशल हो उसको उसी कार्य में लगाना चाहिए। उपाय का जानने वाला पुरुष, दुःसाध्य कार्य को भी सुलभ बना लेता है। अज्ञानी के द्वारा किये हुए कार्य को बहुत नहीं मानना चाहिए, क्योंकि अनेक कार्य अचानक हो जाते हैं। एक कीड़ा, अचानक कई रूप बदल लेता है। जब कार्य सिद्ध हो जावे, तभी उसका प्रकाश करना चाहिए। ज्ञानी पुरुष के कार्य भी अन्य मनुष्य, के दोष और दैव के विपरीत होने से बिगड़ जाते हैं ॥१११-१२१॥

दैवं शान्तिकर्मणा प्रतिपेद्व्यम् ॥ १२२ ॥ मानुषीं कार्यविपत्तिं कौशलेन
 विनिवारयेत् ॥ १२३ ॥ कार्यविपत्तौ दोषान् वर्णयन्ति बालिशाः ॥ १२४ ॥
 कार्यार्थिना दाक्षिण्यं न कर्तव्यम् ॥ १२५ ॥ क्षीरार्थी वत्सो मातुरुधः प्रतिहन्ति
 ॥ १२६ ॥ अग्रयत्नात्कार्यविपत्तिर्भवेत् ॥ १२७ ॥ न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धिः
 ॥ १२८ ॥ कार्यबाह्यो न पोषयत्याश्रितान् ॥ १२९ ॥ यः कार्यं न पश्यति
 सोऽन्धः ॥ १३० ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमानैः कार्याणि परीक्षेत ॥ १३१ ॥ अपरी-
 क्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥ १३२ ॥ परीक्ष्य तार्या विपत्तिः ॥ १३३ ॥ स्वशक्तिं
 ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥ १३४ ॥ स्वजनं तर्पयित्वा यशोपभोजी सोऽमृत भोजी ॥ १३५ ॥
 सर्वानुष्ठानादायमुखानि वर्धन्ते ॥ १३६ ॥ नास्ति भीरोः कार्यचिन्ता ॥ १३७ ॥

यदि दैव विरुद्ध हो-तो हवन आदि शान्ति कर्मों द्वारा उसका शमन करना उचित है। जो कोई मनुष्य द्वारा विपत्ति खड़ी की गई है, तो उसको अपनी चतुराई से दूर करदे। जब काम विगड़ जाते हैं, तब उसके दोषों का वर्णन मूर्ख लोग किया करते हैं। जो अपने कामों को सिद्ध करना चाहे, उसे बहुत सीधा नहीं रहना चाहिए। दूध की इच्छा करने वाला बछड़ा अपनी माता के स्तनों तक में टक्कर लगाता है अर्थात् बिना टक्कर मारे, सीधे पन से काम नहीं निकल सकता है। उत्तम रीति से उपाय न करने पर काये, विगड़ जाते हैं। दैव के भरोसे रहने वाले पुरुषों के कार्यों की सिद्धि नहीं होती है। जब कार्य असिद्ध हो जाते हैं, तो राजा आश्रित पुरुषों का भरण पोषण करने में समर्थ नहीं हो सकता है। जो अपने कार्य की सिद्धि के समय को नहीं पहचान पाता, वह अन्धा है। प्रत्यक्ष, शब्द और अनुमानों से अपने कामों के उत्तम या सिद्ध होने की परीक्षा करे। जो बिना विचारे कार्य करता है, उसको राज्य लक्ष्मी छोड़ देती है। विचार पूर्वक, विपत्ति से उद्धार का उपाय करे। अपनी शक्ति को जानकर कार्य का आरम्भ करे। अपने स्वजन को खिलाकर जो आप खाता है, वह, अमृत भोजन करता है। अनेक उचित कार्यों के आरम्भ कर देने से आमदनी बढ़ती है। परिश्रम से डरने वाले पुरुष को अपने कार्य विगने की चिन्ता नहीं होती है ॥ १२२-१३७ ॥

स्वामिनश्शीलं ज्ञात्वा कार्यार्थी कार्यं साधयेत् ॥ १३८ ॥ घेनोश्शीलज्ञः
 क्षीरं भुङ्क्ते ॥ १३९ ॥ क्षुद्रे गुह्यप्रकाशनमात्मवान्न कुर्यात् ॥ १४० ॥ आश्रि-
 तैरप्यवमन्यते मृदुस्वभावः ॥ १४१ ॥ तीक्ष्णदण्डस्सर्वैरुद्वेजनीयो भवति ॥ १४२ ॥
 यथार्हदण्डकारी स्यात् ॥ १४३ ॥ अल्पसारं श्रुतवन्तमपि न बहुमन्यते लोकः
 ॥ १४४ ॥ अतिभारः पुरुषमवसादयति ॥ १४५ ॥ यस्संसदि परदोषं शंसति

स स्वदोषबहुत्वं प्रख्यापयति ॥ १४६ ॥ आत्मानमेव नाशयत्यनात्मवतां कोपः
॥ १४७ ॥ नास्त्यप्राप्यं सत्यव्रताम् ॥ १४८ ॥ साहसेन न कार्यसिद्धिर्भवति
॥ १४९ ॥ व्यसनार्तो विस्मरत्यप्रवेशेन ॥ १५० ॥

अपने स्वामी की आदतों के अनुसार चलकर कार्य करने वाला पुरुष अपने कार्यों को सिद्ध करे। जो पुरुष गौ की आदत को जानकर दूध निकालता है, वह अच्छी तरह दूध को प्राप्त कर लेता है। संभक्तदार आदमी, क्षुद्र पुरुष के सन्मुख अपने गुप्त कार्यों को प्रकट न करें। जो मृदुस्वभाव होता है, उसके सेवक या घरके पुरुष भी उसका अपमान कर बैठते हैं। जो अत्यन्त तीक्ष्ण प्रकृति का होता है, उससे सारे लोग विगड़ जाते हैं, इससे यथा योग्य व्यवहार करने वाला बनकर चले। जो शास्त्र का ज्ञाता है, परन्तु शक्तिहीन है, उस राजा या व्यक्ति का भी संसार आदर नहीं करता है। अत्यन्त बौद्धा पुरुष को खिन्न बना देता है। जो मनुष्य, सभा में दूसरे के दोष कहता है वह तो सबसे अधिक अपनी दुष्टता प्रकट करता है। अपने आपको बश में नहीं रखकर चलने वाले निर्बल व्यक्ति, यदि कोप कर बैठते हैं, तो वे अपना ही नाश करते हैं। सत्यव्रती पुरुषों को कुछ अप्राप्त नहीं है। कोरे साहस से कार्य नहीं बना करता है ॥१३८-१५०॥

नास्त्यनन्तरायः कालविक्षेपे ॥ १५१ ॥ असंशयविनाशात्संशयविनाश-
श्रेयान् ॥ १५२ ॥ अपरधनानि निक्षेप्तुः केवलं स्वार्थम् ॥ १५३ ॥ दानं धर्मः
॥ १५४ ॥ नार्यागतोऽर्थवद्विपरीतोऽनर्थभावः १५५ ॥ यो धर्मार्थौ न विवर्धयति
स कामः ॥ १५६ ॥ तद्विपरीतोऽनर्थसेवी ॥ १५७ ॥ ऋजुस्वभावपरो जनेषु
दुर्लभः ॥ १५८ ॥ अवमाने नागतमैश्वर्यमवमन्यते साधुः ॥ १५९ ॥ बहूनापि
गुणानेकदोषो ग्रसति ॥ १६० ॥ महात्मना परेण साहसं न कर्तव्यम् ॥ १६१ ॥
कदाचिदपि चारित्रं न लङ्घयेत् ॥ १६२ ॥ जुधाऽऽर्तो न तृणंचरति सिंहः
॥ १६३ ॥ प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्यः ॥ १६४ ॥ पिशुनश्चोता पुत्रदारैरपि
त्यज्यते ॥ १६५ ॥

किसी कार्य के करने में काल व्यतीत कर देने से विघ्न उपस्थित हो जाना, स्वार्थावक बात है। जिस कार्य के करने में अवश्य विनाश हो-उसकी अपेक्षा जिस कार्य के करने में विनाश का सन्देह हो-तो सन्देह वाला कार्य करना चाहिए। दूसरे के धन को धरोहर के रूप में रखने वाले पुरुष का स्वार्थ ही स्वार्थ है। दान को ही धर्म समझो। वैश्य के ढंग पर स्वार्थ के ध्यान से किया हुआ दान सफल नहीं होता और जो दान दिया

ही न जावेगा, वह तो बहुत ही अनर्थ का कारण बन जावेगा। जो धर्म और अर्थ की हानि नहीं करता है-उसे ही काम समझो और जो धर्म और अर्थ की हानि करने वाले काम का सेवन करता है, वह अनर्थ का सेवन करता है। शील प्रकृति मनुष्य, बहुत ही दुर्लभ है। अपमान से आने वाले ऐश्वर्य को मनस्वी पुरुष, ठुकरा देते हैं। कभी २ बहुत से गुणों को एक दोष भी नष्ट कर देता है। समझदार पुरुष को शत्रु के साथ खिलवाड़ नहीं करनी चाहिए। सदाचार का कभी उल्लंघन न करे। भूला भी सिद्धास नहीं चरा करता। प्राण देकर भी अपने पर किये गए दूसरे के भरोसे को पूरा करो। चुगुली करने और सुनने वाले को उसके पुत्र और स्त्री भी छोड़ देते हैं ॥१५१-१६५॥

वालादप्यर्थजातं शृणुयात् ॥ १६६ ॥ सत्यमप्यश्रद्धेयं न वदेत् ॥ १६७ ॥
नाल्पदोषाद्बहुगुणास्त्यज्यन्ते ॥ १६८ ॥ त्रिपश्चित्स्रपि सुलभा दोषाः ॥ १६९ ॥
नास्ति रत्नमखण्डितम् ॥ १७० ॥ मर्यादातीतं न कदाचिदपि विश्वसेत् ॥ १७१ ॥
अप्रिये कृतं प्रियमपि द्वेष्यं भवति ॥ १७२ ॥ नमन्त्यपि तुलाकोटिः
कूपोदकक्षयं करोति ॥ १७३ ॥ सतां मतं नातिक्रमेत् ॥ १७४ ॥ गुणवदाश्र-
यान्निर्गुणोपि गुणो भवति ॥ १७५ ॥ क्षीराश्रितं जलं क्षीरमेव भवति ॥ १७६ ॥
मृत्पिण्डोपि पाटलिगन्धमुत्पादयति ॥ १७७ ॥ रजतं कनकसंगात्कनकं भवति
॥ १७८ ॥ उपकर्तर्यपकर्तुमिच्छत्यबुधः ॥ १७९ ॥ न पापकर्मणामाक्रोश-
भयम् ॥ १८० ॥

बालक के वचन भी यदि कार्य के बनाने वाले हैं, तो उन पर भी ध्यान देना चाहिए। अश्रद्धा के योग्य सत्य बात को भी एक दम न कह देवे। थोड़े से दोष के कारण बहुत गुण वाले पुरुष को छोड़ नहीं देना चाहिए। दोष तो विद्वान् पुरुष में भी निकल आते हैं, रत्न में भी छिद्र होता ही है। मर्यादा से अधिक, किसी का विश्वास न करे। अप्रिय पुरुष के साथ किया गया प्रियकार्य भी लोग वैर ही समझने हैं। झुकी हुई भी ढँकली की डण्डी कुए के पानी को उलीच देती है, अर्थात् झुक कर कार्य करने वाला ही गहराई से भी अपने कार्य को बना लेता है। विद्वानों की सम्मति को अतिक्रमण न करो। गुणवान् के आश्रय से निर्गुण भी गुणी बन जाता है। दूध में ढाला हुआ जल भी दूध ही होकर बिकता है। मिट्टी का पिण्ड भी, पाटलिपुष्प की सुगन्ध उसके सहवास से देने लगता है। सोने में मिलाई हुई चोरी भी सोन के समान दिखाई देती है। दुष्ट पुरुष, उपकारी का भी अपकार ही करना चाहता है। पाप कर्म करने वाले पुरुष, निन्दा से नहीं डरा करते हैं ॥१६६-१८०॥

उत्साहवतां शत्रवोऽपि वशीभवन्ति ॥ १८१ ॥ विक्रमधनो राजानाः ॥ १८२ ॥
नास्त्यलसस्यैहिकामुष्मिकम् ॥ १८३ ॥ निरुत्साहाद्वैवं पतीत ॥ १८४ ॥ मत्स्या
र्थैव जलमुपयुज्यार्थं गृह्णीयात् ॥ १८५ ॥ अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः
॥ १८६ ॥ विषं विषमेव सार्वकालम् ॥ १८७ ॥ अर्थसमादाने वैरिणां सङ्ग
एव न कर्तव्यः ॥ १८८ ॥ अर्थसिद्धौ वैरिणं न विश्वसेत् ॥ १८९ ॥ अर्थाधीन
एव नियतसम्बन्धः ॥ १९० ॥ शत्रोरपि सुतस्सखा रक्षितव्यः ॥ १९१ ॥ याव-
च्छत्रोश्छिद्रं पश्यति तावद्धस्तेन वा स्कन्धेन वा बाह्यः ॥ १९२ ॥ शत्रुं छिद्रे
परिहरेत् ॥ १९३ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ १९४ ॥ छिद्रप्रहारिणश्शत्रवः
॥ १९५ ॥ हस्तगतमपि शत्रुं न विश्वसेत् ॥ १९६ ॥

उत्साही पुरुषोंके शत्रु भी वश में हो जाते हैं। राजा का मुख्यपन पराक्रम का दिखाना ही है। आलसी पुरुष का यह लोक और परलोक दोनों नहीं बनते हैं। निरुत्साह होने से भाग्य भी गिर जाता है। मछली पकड़ने वाला पुरुष, जैसे-जलका उपयोग करके अपने कामको बनाता है, ऐसे ही मनुष्य अपने कार्य के सिद्ध करने को श्रम के जलमें गोता लगावे। जो व्यक्ति विश्वास के योग्य नहीं हैं उनका विश्वास न करे, जो विष है, वह तो सदा ही विष रहेगा। अपने कार्य को सिद्ध करने के काल में कभी वैरियों का समागम न करे। जब अपना काम हो जावे, तब भी वैरी का विश्वास न करे। स्वार्थ के साथ सम्बन्ध चलते हैं। शत्रु का पुत्र यदि मित्रता का व्यवहार करे-तो उस की मित्र की तरह रक्षा करनी चाहिए। जब तक शत्रु की कमी हाथ आवे, तब तक उसे हाथ या कन्धे पर ठाये रहे। जब शत्रु का छिद्र हाथ आ जावे, तब उसे छोड़ देवे। अपने छिद्र को कभी प्रकट न होने देवे। शत्रु लोग, छिद्र पर प्रहार कर बैठते हैं। अपने अधीन बने शत्रु का भी विश्वास न करे ॥ १८१-१९६ ॥

स्वजनस्य दुर्वृत्तं निवारयेत् ॥ १९७ ॥ स्वजनावमानोऽपि मनस्विनां
दुःखमावहति ॥ १९८ ॥ एकाङ्गदोषः पुरुषमवसादयति ॥ १९९ ॥ शत्रुं जयति
सुवृत्तता ॥ २०० ॥ निकृतिप्रिया नीचाः ॥ २०१ ॥ नीचस्य मतिर्न दातव्या
॥ २०२ ॥ तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ २०३ ॥ सुपूजितोऽपि दुर्जनः पीडयत्येव
॥ २०४ ॥ चन्द्रनादीनपि दात्रोऽग्निर्दहत्येव ॥ २०५ ॥ कदाऽपि पुरुषं नाव-
मन्येत ॥ २०६ ॥ क्षन्तव्यमिति पुरुषं न बाधेत् ॥ २०७ ॥ मर्त्राऽधिकं रहस्पृक्तं
वक्तुमिच्छन्त्यबुद्धयः ॥ २०८ ॥ अनुरागस्तु फलेन सूच्यते ॥ २०९ ॥ प्रज्ञाफ

लमैश्वर्यम् ॥ २१० ॥ दातव्यमपि वालिशः परिक्लेशेन दास्यति ॥ २११ ॥
महदैश्वर्यं प्राप्याप्यधृतिमान् विनश्यति ॥ २१२ ॥ नास्त्यधृतेरैहिकामृष्मि-
कम् ॥ २१३ ॥

अपने सम्बन्धी के दुराचरणों को निवृत्त करने की चेष्टा करे। अपने सम्बन्धियों का अपमान भी मनस्वी पुरुष को दुःखी कर देता है। एक साधारण दोष भी पुरुष के नष्ट करने में पर्याप्त होता है। सदाचरण ही शत्रु पर विजय कराता है। छल या अपमान करना नीच पुरुषों को प्रिय लगता है। नीच पुरुष को कभी बुद्धि नहीं देने चाहिए और न उन का विश्वास करना चाहिए। अच्छी तरह आदर करने पर भी दुर्जन पीड़ा ही पहुंचाता है। वन की आग चन्दन के वृक्षों को भी जला देती है, मनस्वी पुरुष का कभी अनादर न करे। किसी पुरुष को क्षमा करने के निमित्त न दबावे, दुर्जन पुरुष भर्ता की एकान्त में कही हुई बात को भी खूब बढ़ा कर खोल देते हैं। प्रेम की परीक्षा-तो फल के द्वारा ही होती है। ऐश्वर्य की प्राप्ति ही बुद्धि का फल है। अवश्य दो जाने वाली वस्तु को भी मूर्ख बड़ी भ्रमण से देता है। महान् ऐश्वर्य को पाकर भी धैर्य रहित पुरुष नष्ट हो जाता है। धैर्य हीन पुरुष इस लोक और परलोक दोनों को नहीं बना सकता है ॥ १६७-२१३ ॥

न दुर्जनैस्सह संसर्गः कर्तव्यः ॥ २१४ ॥ शौण्डहस्तगतं पयो-
प्यवमन्येत ॥ २१५ ॥ कार्यसंकटेष्वर्थव्यवसायिनी बुद्धिः ॥ २१६ ॥ मितभोजनं
स्वास्थ्यम् ॥ २१७ ॥ पथ्यमपथ्यं वाजीर्णे नाशनीयात् ॥ २१८ ॥ जीर्णभोजनं
व्याधिर्नोपसर्पति ॥ २१९ ॥ जीर्णशरीरे वर्धमानं व्याधिं नोपेक्षेत ॥ २२० ॥
अजीर्णं भोजनं दुःखम् ॥ २२१ ॥ शत्रोरपि विशिष्यते व्याधिः ॥ २२२ ॥
दानं निधानमनुगामि ॥ २२३ ॥ पटुतरे तृष्णावरे सुलभमति सन्धानम् ॥ २२४ ॥
तृष्णया मतिश्छाद्यते ॥ २२५ ॥ कार्यबहुत्वे बहुफलमायतिकं कुर्यात् ॥ २२६ ॥
स्वयमेवावस्कन्नं कार्यं निरीक्षेत ॥ २२७ ॥ मूर्खेषु साहसं नियतम् ॥ २२८ ॥ मूर्खेषु
विवादो न कर्तव्यः ॥ २२९ ॥ मूर्खेषु मूर्खवत्कथयेत् ॥ २३० ॥ आयसैरायसं
छेद्यम् ॥ २३१ ॥ नास्त्यधीमतस्सखा ॥ २३२ ॥

दुष्ट पुरुषों का सहवास न करे। सुरा बेचने वाले के हाथ में दूध भी सुरा ही प्रतीत होता है। कार्य के संकट उपस्थित होने पर भी जो बुद्धि काम करती रहती है, वही बुद्धि श्रेष्ठ है। थोड़ा भोजन करना ही स्वास्थ्य की जड़ है। अजीर्ण होने पर हितकारी अहितकारी कोई भी पदार्थ हो-नहीं खाना चाहिए। जीर्ण होने पर जो

भोजन करता है, उसे व्याधि नहीं घेर सकती है। वृद्ध शरीर में बढ़ती हुई व्याधि की उपेक्षा न करो। अजीर्ण में भोजन बड़ा दुःख दायी होता है। व्याधि शत्रु से भी अधिक माननी चाहिए दान कोरा के अनुसार होना चाहिए। जो मनुष्य वृष्णातुर है। उसका मना लेना बहुत ही सोधी बात है। वृष्णासे बुद्धि मारी जाती है। जब अनेक कार्य सामने आ पड़े-तो भविष्य में अत्यन्त फल देने वाला कार्य करना चाहिए। शत्रु पर की गई चढ़ाई आदि के कार्य का राजा स्वयं ही निरीक्षण करे। मूर्खों में किसी भी बात में क्रोध पड़ने की हिम्मत होती है, ऐसे मूर्खों से विवाद नहीं करना चाहिए। मूर्खों में तो मूर्खों की समझ की सी बात करनी चाहिए। लोहे को लोहे से काटो अर्थात् मूर्ख की बात को उसकी सी बात से ही काटो, मूर्ख का कोई मित्र नहीं होता ॥२१४-२३२॥

धर्मेण धार्यते लोकः ॥ २३३ ॥ प्रेतमपि धर्माधर्मावनुगच्छतः ॥ २३४ ॥
दया धर्मस्य जन्मभूमिः ॥ २३५ ॥ धर्ममूले सत्यदाने ॥ २३६ ॥ धर्मेण जयति
लोकान् ॥ २३७ ॥ मृत्युरपि धर्मिष्ठं रक्षति ॥ २३८ ॥ धर्माद्विपरीतं पापं यत्र
यत्र प्रसज्यते तत्र धर्माविमर्तिर्महती प्रसज्यते ॥ २३९ ॥ उपस्थितविनाशानां
प्रकृत्या कार्येण लक्ष्यते ॥ २४० ॥ आत्मविनाशं सूचयत्यधर्मबुद्धिः ॥ २४१ ॥
पिशुनवादिनो न रहस्यम् ॥ २४२ ॥ पररहस्यं नैव श्रोतव्यम् ॥ २४३ ॥
बल्लभस्य कारकत्वमधर्मयुक्तम् ॥ २४४ ॥ स्वजनेष्वतिक्रमो न कर्तव्यः ॥ २४५ ॥
माताऽपि दुष्टा त्याज्या ॥ २४६ ॥ स्वहस्तोपि विषदिग्धश्छेद्यः ॥ २४७ ॥
प्ररोपि च हितो बन्धुः ॥ २४८ ॥ कदादप्यौषधं गृह्यते ॥ २४९ ॥ नास्ति चोरेषु
विश्वासः ॥ २५० ॥ अप्रतीकारेष्वनादरो न कर्तव्यः ॥ २५१ ॥ व्यसनं मनागपि
वाधते ॥ २५२ ॥

संसार की धारणा धर्म से होती है। धर्म और अधर्म, मरे हुए पुरुष के भी साथ जाते हैं। दया ही धर्म की जन्मभूमि है। इसी तरह सत्य और दान भी धर्म के आश्रय हैं। धर्म से सारे लोकों का जय किया जा सकता है। धर्मात्मा पुरुष की मृत्यु भी रक्षा करती है। धर्म के विपरीत जहां २ पाप होता है, वहां २ धर्म का महान् तिरस्कार होता रहता है। उन्नति और अवनति के लक्षण मनुष्य की प्रकृति और कार्यों से प्रतीत हो जाते हैं। अधर्म बुद्धि अपने विनाश की सूचना देती है। चुगलखोर पुरुष की बात खुले बिना नहीं रहनी है। दूसरे की गुप्त बात सुनने की चेष्टा न करो। प्रेमी का स्वार्थी होना बड़े अधर्म की बात है। अपने प्रिय पुरुषों के साथ नियमों का उल्लंघन न करो। माता भी

दुष्ट हो-तो भी छोड़ देनी चाहिए। विष से भरा हुआ, अपना हाथ भी काट दिया जाता है। यदि पराया भी हितकारी हो-तो वह भी अपना बन्धु समझना चाहिए। सूखे जंगल से भी औषध लाई जा सकती है। चोरों का विश्वास नहीं करना चाहिए। प्रतीकार के अयोग्य वस्तुओं में अनादर नहीं दिखाना चाहिए। व्यसन तो थोड़ा भी बाधा पहुंचा देता है ॥२३३-२५२॥

अमरवदर्थजातमार्जयेत् ॥२५३॥ अर्थवान् सर्वलोकस्य बहुमतः ॥२५४॥ महेन्द्रमप्यर्थहीनं न बहुमन्यते लोकः ॥ २५५ ॥ द्रागिद्रयं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ॥ २५६ ॥ विरूपोऽर्थवान् रुरूपः ॥ २५७॥ अदातारमप्यर्थवन्तमर्थिनो न त्यजन्ति ॥ २५८ ॥ अकुलीनोपि कुलीनाद्विशिष्टः ॥ २५९ ॥ नास्त्यमानभयमनार्थस्य ॥ २६० ॥ न चेतनवतां वृत्तिभयम् ॥ २६१ ॥ न जितेन्द्रियाणां विषयभयम् ॥ २६२ ॥ न कृतार्थानां मरणभयम् ॥२६३ ॥ कस्यचिदर्थं स्वमिव मन्यते साधुः ॥ २६४ ॥ परविभवेष्वादरो न कर्तव्यः ॥ २६५ ॥ परविभवेष्वादरोपि नाशमूलम् ॥ २६६ ॥ पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम् ॥ २६७ ॥ परद्रव्यापहरणमात्मद्रव्यनाशहेतुः ॥ २६८ ॥ न चौर्यात्परं मृत्युपाशः ॥२६९॥ यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले ॥२७०॥ न मृतस्यौषधं प्रयोजनम् ॥२७१॥ समकाले स्वयमपि प्रभुत्वस्य प्रयोजनं भवति ॥ २७२ ॥

अपने आपको अमर समझकर धन का अर्ज न करो। अर्थवान् मनुष्य सब लोकों में बहुमत होता है। धन हीन इन्द्र का भी कोई आदर नहीं करता है। दरिद्रो, मनुष्य का जीते जी मृत्यु है। धनवान् सब तरह से भदा भी अच्छा होता है। कजूस धनी को भी उसके याचक छोड़ जाते हैं। लोग धनवान के कुलीन न होने पर भी उसे कुलीनों से श्रेष्ठ समझते रहते हैं। अनार्थ पुरुष को अपमान का भय नहीं होता है। उद्योग शील पुरुषों को अपनी वृत्ति के विषय में भय नहीं होता है। जो जितेन्द्रिय पुरुष हैं, उनको विषय जन्य चुराईयों का भय नहीं हो सकता है। जो अपना काम कर चुके-उन्हें फिर मृत्यु का भय नहीं होता है। सज्जन, किसी भी अन्य पुरुष के स्वार्थ को अपना ही स्वार्थ समझ कर उसे पूरा करते हैं। दूसरे की सम्पत्ति के हड़पजाने को मन नहीं चलाना चाहिए। दूसरे की सम्पत्ति के अंगलने की इच्छा, अपने नाश का कारण होती है। तुपतूड़े की त ह निरर्थक पड़ा हुआ भी दूसरे का धन, नहीं स्वीकार करना चाहिए। दूसरे के द्रव्य का अपहरण अपने द्रव्य के नाश का हेतु है। चोरी से अधिक मृत्यु की दूसरी फांसी नहीं है। रोग आदि के समय पर खिचड़ी भी प्राण धारण कर देती है। मृतक पुरुष को औषध से क्या प्रयोजन रह

जाता है। किसी समय में अपने आप, प्रभुता (ऐश्वर्य) से प्रयोजन पड़ जाता है अर्थात् ऐश्वर्य की आवश्यकता हो जाती है ॥२५३-२७२॥

नीचस्य विद्याः पापकर्मणि योजयन्ति ॥ २७३ ॥ पयःपानमपि विष-
वर्धनं भुजङ्गस्य नामृतं स्यात् ॥ २७४ ॥ न हि धान्यसमो ह्यर्थः ॥ २७५ ॥
न क्षुधासमश्शत्रुः ॥ २७६ ॥ अकृतेर्नियता क्षुत्र ॥ २७७ ॥ नास्त्यभक्ष्यं
क्षुधितस्य ॥ २७८ ॥ इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति ॥ २७९ ॥ सानुक्रोशं
भर्तारमाजीवेत् ॥ २८० ॥ लुब्धसेवी पावकेच्छया खद्योतं धमति ॥ २८१ ॥
विशेषज्ञं स्वामिनमाश्रयेत् ॥ २८२ ॥ पुरुषस्य मैथुनं जरा ॥ २८३ ॥ स्त्रीणाम-
मैथुनं जरा ॥ २८४ ॥ न नीचोत्तमयोर्वैवाहः ॥ २८५ ॥ अगम्यागमनादायु-
र्यशःपुण्यानि क्षीयन्ते ॥ २८६ ॥ नास्त्यहङ्कारसमश्शत्रुः ॥ २८७ ॥ संसदि
शत्रुं न परिक्रोशेत् ॥ २८८ ॥ शत्रुव्यसनं श्रवणसुखम् ॥ २८९ ॥ अधनस्य
बुद्धिर्न विद्यते ॥ २९० ॥ हितमप्यधनस्य वाक्यं न गृह्यते ॥ २९१ ॥ अधन-
स्त्वभार्ययाऽप्यवमन्यते ॥ २९२ ॥ पुष्पहीनं सहकारमपि नोपासते भ्रमराः
॥ २९३ ॥ विद्या धनमधनानाम् ॥ २९४ ॥ विद्या चौरैरपि न ग्राह्या ॥ २९५ ॥
विद्यया ख्यापिता ख्यातिः ॥ २९६ ॥ यशश्शरीरं न विनश्यति ॥ २९७ ॥

नीच पुरुष की विद्याएँ, उसे पाप कर्म में प्रवृत्त कर देती हैं। सर्प को दूध पिलाना भी विष की ही वढ़ाता है, अमृत को नहीं उत्पन्न करता। शत्रु की बराबर कोई धन नहीं है। भूख के बराबर कोई शत्रु नहीं है। कर्म नहीं करने वाले को एक दिन, भूख की बाधा उपस्थित होती है। भूखे पुरुष को कुछ भी अभक्ष्य नहीं है। विषय भोग वासना, ही, पुरुष को वृद्धावस्था में फँक देती है। दयालु स्वामी के पास नौकरी करने की इच्छा करे। लालची स्वामी का सेवक, आग उत्पन्न करने को खद्योत (गुग्गुलू) को पंखे से झलता है। विद्वान् स्वामी की सेवा करनी चाहिए। पुरुष को अधिक मैथुन से बुढ़ापा शीघ्र आ जाता है। पुरुषाभिलाषिणी स्त्री को मैथुन न मिलना-उसे वृद्धा बना देता है। नीच और उत्तम जनों का विवाह सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। अगम्य स्त्री के साथ संभोग करने से आयु यश, और पुण्य क्षीण हो जाता है। अहङ्कार के समान शत्रु नहीं। सभा में शत्रु की भी निन्दा न करे। शत्रु की विपत्ति को सुनकर केवल कानों को आनन्द प्राप्त होता है। धन हीन पुरुष के बुद्धि ही नहीं रह जाती है। धन हीन पुरुष का हितकारी वाक्य भी ग्रहण नहीं किया जा सकता है। निर्धन पुरुष का अपनी भार्या भी तिरस्कार कर देती है।

पुष्प हीन आम के पास भौरे नहीं जाते । निर्धनों का तो विद्या ही धन है । विद्या को चोर भी नहीं चुरा सकते हैं । विद्या से बहुत शीघ्र प्रसिद्धि हो जाती है । मनुष्य के यश का शरीर कभी नष्ट नहीं होता ॥२७३-२६७॥

यः परार्थमुपसर्पतिन सत्पुरुष ॥२६८॥ इन्द्रियाणां प्रशमं शास्त्रम् ॥२६९॥
अशास्त्रकार्यवृत्तौ शास्त्राङ्कुशं निवारयति ॥ ३०० ॥ नीचस्य विद्या नोपेतव्या ॥ ३०१ ॥ स्लेच्छभाषणं न शिञ्चेत् ॥ ३०२ ॥ स्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम् ॥ ३०३ ॥ गुणे न मत्सरः कर्तव्यः ॥ ३०४ ॥ शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः ॥ ३०५ ॥ विषादप्यमृतं ग्राह्यम् ॥ ३०६ ॥ अवस्थया पुरुषस्स मान्यते ॥ ३०७ ॥ स्थान एव नराः पूज्यन्ते ॥ ३०८ ॥ आर्यवृत्तमनुतिष्ठेत् ॥ ३०९ ॥ कदाऽपि मर्यादां नातिक्रमेत् ॥ ३१० ॥ नास्त्यर्घः पुरुषरत्नस्य ॥ ३११ ॥ न स्त्रीरत्नसमं रत्नम् ॥ ३१२ ॥ सुदुर्लभं रत्नम् ॥ ३१३ ॥ अयशो भयं भयेषु ॥ ३१४ ॥ नास्त्यलसस्य शास्त्राधिगमः ॥ ३१५ ॥ नस्त्रेणस्य स्वर्गाप्तिर्धर्मकृत्यं च ॥ ३१६ ॥ स्त्रियोपि स्त्रैणमवमन्यन्ते ॥ ३१७ ॥ न पुष्पार्थी सिञ्चति शुष्कतरुम् ॥ ३१८ ॥ अद्रव्य-प्रयत्नो बालुकाकथनादनन्यः ॥ ३१९ ॥ न महाजनहोसः कर्तव्यः ॥ ३२० ॥ कार्यसंपदं निमित्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२१ ॥ नक्षत्रादपि निमित्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२२ ॥ न त्वरितस्य नक्षत्रपरीक्षा ॥ ३२३ ॥

जो पराये के उपकार को आगे बढ़ता है, वही सत्पुरुष है । शास्त्र ज्ञान ही इन्द्रियों के वेग को रोकने में समर्थ हो सकता है । उच्छृङ्खल कार्य करने लग पड़ने पर शास्त्र का अङ्कुश ही मनुष्य को रोककर ठिकाने पर लाता है । नीच पुरुष की विद्या की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अर्थात् नीच से भी विद्या ग्रहण कर लेनी चाहिए । स्लेच्छों का सा बोल चाल का ढंग नहीं सीखना चाहिए । कोई स्लेच्छों की भी अच्छी बात हो-तो उसे ग्रहण कर लेनी चाहिए । दूसरे के गुण से कभी डाह नहीं करना चाहिए । अच्छे गुणों को शत्रु से भी ग्रहण कर लेना चाहिए । विष से भी अमृत निकाल लेना चाहिए पुरुष जिस अवस्था में होता है, उसीके अनुसार उसका आदर होता है । अपने २ स्थान पर पुरुषों की पूजा होती है । सदा मनुष्य, आर्य (श्रेष्ठ) आचरण करता रहे । मर्यादा का कभी अतिक्रमण न करे । पुरुष रूपी रत्न का कोई मूल्य नहीं हो सकता है । स्त्री रत्न के तुल्य रत्न नहीं है । रत्न वस्तु का मिलना अत्यन्त ही कठिन है । सारे भयों में अपकीर्ति बड़ा भय का स्थान है । आलसी पुरुष को कभी शास्त्र की प्राप्ति नहीं होती । स्त्रियों के व्यसनी को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती और न वह कोई धर्म का कार्य ही कर सकता है । स्त्रियों में

पड़े रहने वाले पुरुष की स्त्रियां भी अपमान कर देती हैं । पुष्पों की इच्छा करने वाला, सूखे वृक्ष को नहीं सींचता है । बिना द्रव्य के किसी बात का प्रयत्न करना वाला मिट्टी का मथ कर तेल निकालना है । बड़े आदमियों की हंसी नहीं करनी चाहिए । किसी कार्य के लक्षण, उसकी सिद्धि असिद्धि को सूचित कर देते हैं । ये निमित्त नक्षत्र से भी अधिक कार्य की सिद्धि के सूचक समझने चाहिए । अपने कार्य को शीघ्र करने की इच्छा रखने वाला पुरुष, कभी नक्षत्र की चर्चा नहीं करता है ॥२६८-३२३॥

परिचये दोषा न छाद्यन्ते ॥ ३२४ ॥ स्वयमशुद्धः परानाशङ्कते ॥ ३२५ ॥
स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ ३२६ ॥ अपराधानुरूपो दण्डः ॥ ३२७ ॥ कथानुरूपं
प्रतिवचनम् ॥ ३२८ ॥ विभवानुरूपमाभरणम् ॥ ३२९ ॥ कुलानुरूपं वृत्तम्
॥ ३३० ॥ कार्यानुरूपः प्रयत्नः ॥ ३३१ ॥ पात्रानुरूपं दानम् ॥ ३३२ ॥
वयोऽनुरूपो वेपः ॥ ३३३ ॥ स्वाम्यनुकूलो भृत्यः ॥ ३३४ ॥ भर्तृवशवर्तिनी
भार्या ॥ ३३५ ॥ गुरुवशानुवर्ती शिष्यः ॥ ३३६ ॥ पितृवशानुवर्ती पुत्रः
॥ ३३७ ॥ अत्युपचारशङ्कितव्यः ॥ ३३८ ॥ स्वामिनमेवानुवर्तेत ॥ ३३९ ॥
मातृताडितो वत्सो मातरमेवानुरोदिति ॥ ३४० ॥ स्नेहवतस्स्वल्पो हि रोषः
॥ ३४१ ॥ आत्मच्छिद्रं न पश्यति परच्छिद्रमेव पश्यति बालिशः ॥ ३४२ ॥
सोपचारः कैतवः ॥ ३४३ ॥ काम्यैर्विशेषैरुपचरणमुपचारः ॥ ३४४ ॥ चिरपरि-
चितानामत्युपचारशङ्कितव्यः ॥ ३४५ ॥ गौर्दुष्करा श्वसहस्रादेकाकिनी श्रेयसी
॥ ३४६ ॥ श्वोमयूरादद्यक्रपोतो वरः ॥ ३४७ ॥

किसी बड़े पुरुष से परिचय हो जाने पर भी दोष नहीं मिट जाते हैं । जो स्वयं अशुद्ध है, वह दूसरों पर अधिक आशङ्का करता है । स्वभाव का अतिक्रमण कर जाना बहुत कठिन बात है । दण्ड अपराध के अनुरूप होना चाहिए । जैसा प्रश्न हो-वैसाही उत्तर होना उचित है । सम्पत्ति के अनुसार ही आभूषण बनाने चाहिए । कुल के अनुरूप कार्य करना योग्य है । कार्य के अनुरूप ही प्रयत्न करना चाहिए । जैसा पात्र हो-वैसा ही दान देना उचित है । जैसी अवस्था हो उसके अनुसार ही वेप बनाना चाहिए । स्वामी के अनुकूल ही भृत्य होना-सेवक होना आवश्यक है । पति की आज्ञाकारिणी जो होती है, वही सच्ची भार्या है । शिष्य गुरु के आज्ञावर्ती होना चाहिए और पुत्र पिता की आज्ञा के अनुसार चले । अत्यन्त अधिक आदर शङ्का का स्थान हो जाता है । सेवक सदा स्वामी के अनुसार ही कार्य करे । माता यदि बच्चे को पीट देती है, तो भी वह रोता २ माता के पीछे ही जाता है-एसे ही सेवक को भी स्वामी के पीछे २ रहना उचित है । स्नेह करने

वाले व्यक्ति का कोप बहुत थोड़ी देर को होता है। दुष्ट पुरुष, अपने दोष को न देखकर सर्वदा दूसरे के छिद्र को ही देखता रहता है। छल सदा सेवा के साथ होता है किसी विशेष कामना को दृष्टि में रखकर सेवा करने को उपचार करते हैं। बहुत परिचय रखने वालों का भी अत्यधिक आदर शंका के योग्य हो जाता है। साधारण गाय भी सौ कुत्तों से अच्छी है। कल के मोर की प्राप्ति से आज का कबूतर अच्छा है अर्थात् नकद थोड़ा भी मिले-तो अधिक उधार से अच्छा समझना चाहिए ॥३२४-३४७॥

अतिसंगो दोषमुत्पादयति ॥ ३४८ ॥ सर्वं जयत्यक्रोधः ॥ ३४९ ॥ यद्य-
पकारिणि कोपः कोपे कोप एव कर्तव्यः ॥ ३५० ॥ मतिमत्सु मूर्खमित्रगुरुवल्लभेषु
विवादो न कर्तव्यः ॥ ३५१ ॥ नास्त्यपिशाचमैश्वर्यम् ॥ ३५२ ॥ नास्ति धन-
वतां शुभकर्मसु श्रमः ॥ ३५३ ॥ नास्ति गतिश्रमो यानवताम् ॥ ३५४ ॥
अलोहमयं निगलं कलत्रम् ॥ ३५५ ॥ यो यस्मिन् कुशलस्य तस्मिन् योक्तव्यः
॥ ३५६ ॥ दुष्कलत्रं मनस्विनां शरीरकर्शनम् ॥ ३५७ ॥ अप्रमत्तो दारान्
निरोक्षेत् ॥ ३५८ ॥ स्त्रीषु किञ्चिदपि न विश्वसेत् ॥ ३५९ ॥ न समाधिः स्त्रीषु
लोकज्ञता च ॥ ३६० ॥ गुरुणां माता गरीयसी ॥ ३६१ ॥ सर्वाविस्थासु माता
भर्तव्या ॥ ३६२ ॥ वैदुष्यमलङ्कारेणाच्छाद्यते ॥ ३६३ ॥ स्त्रीणां भूषणं लज्जा
॥ ३६४ ॥ विप्राणां भूषणं वेदः ॥ ३६५ ॥ सर्वेषां भूषणं धर्मः ॥ ३६६ ॥
भूषणानां भूषणं सविनया विद्यते ॥ ३६७ ॥ अनुपद्रवं देशमावसेत् ॥ ३६८ ॥
साधुजनबहुलो देशः ॥ ३६९ ॥

स्त्रियों का अत्यन्त सहवास करना-दोष को उत्पन्न कर देता है। क्रोध रहित पुरुष, सबको जीत लेता है। यदि तुम अपकारी पर क्रोध करना चाहते हो-तो प्रथम उसके कोप करने पर तुम कोप करो अर्थात् दुष्ट के अपकार कर लेने पर उसे बदला चुकाओ, तुम प्रथम अपकार न करो। बुद्धिमान् मूर्ख, मित्र, गुरु और वल्लभ पुरुषों के साथ व्यर्थ विवाद नहीं करना चाहिए। ऐश्वर्य मनुष्य को पिशाच सा बना देता है। प्रायः धनवानों का शुभ कर्म करने में श्रम नहीं होता। सवारी में चलने वाले को थकान नहीं हो सकती अर्थात् धनवानः धनरूपी सवारी में बैठे रहने से शुभ कर्म की पगडण्डी में नहीं चलते। बिना लोह की सांकल के स्त्री बन्धन है। जो जिस काम में जो कुशल है, उसी को उस स्थान पर नियुक्त करना चाहिए। दुष्ट स्त्री मन्स्वी पुरुषों को कृश बना डालती है। प्रमाद रहित होकर स्त्रियों की रक्षा में प्रयत्न करे। स्त्रियों का कुछ भी विश्वास न करें। स्त्रियों में कुछ भी समझदारी और संसार का

अनुभव नहीं होता है। पूज्यों में माता सब से बड़ी पूज्य है। सब अवस्थाओं में माता का भरण पोषण करना चाहिए। विद्वत्ता अलङ्कारों से ढ़क जाती है। स्त्रियों का आभूषण लज्जा है। विप्रों का आभूषण वेद है। प्रत्येक व्यक्ति का आभूषण धर्म है। सारे भूषणों का भूषण स्त्री का शिक्षित और लज्जाशील होना है। उपद्रव रहित देश में निवास करे। जहां श्रेष्ठ मनुष्य अधिक रहते हों-वही उत्तम देश है ॥ ३४८-३६६ ॥

राज्ञो भेतव्यं सार्वकालम् ॥ ३७० ॥ न राज्ञः परं दैवतम् ॥ ३७१ ॥
सुदूरमपि दहति राजवह्निः ॥ ३७२ ॥ रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत् ॥ ३७३ ॥
गुरुं च दैवं च ॥ ३७४ ॥ कुटुम्बिनो भेतव्यम् ॥ ३७५ ॥ गन्तव्यं च सदा
राजकुलम् ॥ ३७६ ॥ राजपुरुषैस्संवन्धं कुर्यात् ॥ ३७७ ॥ राजदासी न सेवितव्या
॥ ३७८ ॥ न चक्षुषाऽपि राजानं निरीक्षेत् ॥ ३७९ ॥ पुत्रे गुणवति कुटुम्बिनः
स्वर्गः ॥ ३८० ॥ पुत्रा विद्यानां पारं गमयितव्याः ॥ ३८१ ॥ जनपदार्थं ग्रामं
त्यजेत् ॥ ३८२ ॥ ग्रामार्थं कुटुम्बस्त्यज्यते ॥ ३८३ ॥ अतिलाभः पुत्रलाभः
॥ ३८४ ॥ दुर्गतिः पितरौ रक्षति स पुत्रः ॥ ३८५ ॥ कुलं प्रख्यापयति पुत्रः
॥ ३८६ ॥ नानपत्यस्य स्वर्गः ॥ ३८७ ॥ या प्रसूते भार्या ॥ ३८८ ॥ तीर्थस-
मवाये पुत्रवतीमनुगच्छेत् ॥ ३८९ ॥ सतीर्थ्याभिगमनाद्ब्रह्मचर्यं नश्यति ॥ ३९० ॥
नपरक्षेत्रे बीजं विनिक्षिपेत् ॥ ३९१ ॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥ ३९२ ॥

राजा से सर्वदा डरना चाहिए। राजा से बढ़कर कोई देवता नहीं है। राजा रूपी अग्नि दूर तक जला डालती है। खाली हाथ राजा गुरु और देवता के समीप न जावे। कुटुम्बी पुरुष से डरते रहना चाहिए। राजकुल में सदा जाते रहना उचित है। राजपुरुषों के साथ मेल जोल रखे। राजा की दासी से सम्बन्ध नहीं करना चाहिए। राजा को किसी भी प्रकार आंख उठाकर न देखे। पुत्र के गुणवान् होने पर कुटुम्बी को स्वर्ग सा प्राप्त हो जाता है। जहां तक हो सके-पुत्रों को विद्याओं का पारदर्शी विद्वान् बना देना चाहिए-इस में चाहे कितना भी क्लेश हो। सारे देश के हित के लिए एक ग्राम को छोड़ देवे, गांव के हित के लिए एक कुटुम्ब के हित को भुला देना चाहिए। सारे लाभों में श्रेष्ठ पुत्र लाभ है। जो पुत्र अपने माता पिता की संकटों से रक्षा करता है, वही सत्पुत्र है। सत्पुत्र ही कुल को प्रसिद्ध कर देता है। सन्तान पुरुष को स्वर्ग प्राप्ति नहीं होती है। जो ऐसा पुत्र उत्पन्न करती है, वही भार्या है। तीर्थ यात्रा के समय पुत्रवती को साथ लेकर ही जाना चाहिए अथवा अनेक स्त्रियों के एक साथ ऋतुमती होने पर आदर द्योतन करने को प्रथम पुत्रवती के पास ही जाना चाहिए। रजस्त्रला के साथ गमन करने से ब्रह्मचर्य नष्ट

हो जाता है । अन्य की स्त्रियों के गर्भ में बीज वपन न करे । स्त्रियां तो केवल पुत्रोत्पत्ति के लिये हैं और वह अपनी ही स्त्री हो सकती हैं ॥ ३७०-३६२ ॥

स्वदासीपरिग्रहो हि स्वदासभावः ॥ ३६३ ॥ उपस्थितविनाशः पथ्यवाक्यं न शृणोति ॥ ३६४ ॥ नास्ति देहिनां सुखदुःखाभावः ॥ ३६५ ॥ मातरमिव वत्साः सुखदुःखानि कर्तारमेवानुगच्छन्ति ॥ ३६६ ॥ तिलमात्रमप्युपकारं शैलमात्रं मन्यते साधुः ॥ ३६७ ॥ उपकारोऽनार्येष्वकर्तव्यः ॥ ३६८ ॥ प्रत्युपकारभयादनार्यश्शत्रुर्भवति ॥ ३६९ ॥ स्वल्पमप्युपकारकृते प्रत्युपकारं कर्तुमार्यो न स्वपिति ॥ ४०० ॥ न कदाऽपि देवताऽवमन्तव्या ॥ ४०१ ॥ न चक्षुषः समं ज्योतिरस्ति ॥ ४०२ ॥ चक्षुर्हि शरीरिणां नेता ॥ ४०३ ॥ अपचक्षुषः किं शरीरेण ॥ ४०४ ॥ नाप्सु मूत्रं कुर्यात् ॥ ४०५ ॥ न नग्नो जलं प्रविशेत् ॥ ४०६ ॥ यथा शरीरं तथा ज्ञानम् ॥ ४०७ ॥ यथा बुद्धिस्तथा विभवः ॥ ४०८ ॥ अग्रावग्निं न निक्षिपेत् ॥ ४०९ ॥ तपस्विनः पूजनीयाः ॥ ४१० ॥ परदारान् न गच्छेत् ॥ ४११ ॥ अन्नदानं भ्रूणहत्यामपि मार्ष्टि ॥ ४१२ ॥ न वेदवाह्यो धर्मः ॥ ४१३ ॥ कदाचिदपि धर्मं निषेवेत् ॥ ४१४ ॥

अपनी दासी के साथ सम्भोग करना अपने को दास बना लेना है । जिसका विनाश समीप में है, वह हितकारी वचन नहीं सुनता है । देह धारियों को दुःख सुख का अभाव नहीं है, अर्थात् उसे कभी दुःख और कभी सुख प्राप्त होता रहता है । बड़ड़े जैसे अपनी २ माता गौओं के पास पहुंच जाते हैं, उसी तरह पाप पुण्य के करने वालों को उन के अनुसार दुःख सुख प्राप्त हो जाता है । महात्मा पुरुष, तिलमात्र उपकार को भी पर्वत के तुल्य मानता है । अनार्य पुरुषों पर उपकार नहीं करना चाहिए । उपकार का बदला चुकाने से डरकर अनार्य पुरुष शत्रु बन जाता है । थोड़े से उपकार के बदले में भी अत्यन्त प्रत्युपकार करने का सज्जन प्रयत्न करता है । देवताओं का कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिए । आंख समान कोई ज्योतिः नहीं है । आंख ही मनुष्यों को सर्वत्र ले जाने में समर्थ है । चक्षुर्हीन पुरुष के शरीर रहने का भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । जल में मूत्रोत्सर्ग न करे । नंगा होकर जल में प्रवेश न करे । जैसा शरीर सात्विक राजस होता है-वैसा ही ज्ञान होता है । जैसी बुद्धि होती है, वैसा ही वैभव मिलकर रहता है । अग्नि में अग्नि को न फेंके अर्थात् तेजस्वी पर कोप न करे । तपस्वी लोग पूजनीय होते हैं । पर स्त्रियों के साथ गमन न करे । अन्नदान ब्रह्महत्या के पाप को भी

धो डालता है। वेद बाह्य धर्म, धर्म नहीं माना जा सकता है। किसी भी तरह धर्म का सेवन करना चाहिए ॥३६३-४१४॥

स्वर्गं नयति सुनृतम् ॥ ४१५ ॥ नास्ति सत्यात्परं तपः ॥ ४१६ ॥ सत्यं स्वर्गस्य साधनम् ॥ ४१७ ॥ सत्येन धार्यते लोकः ॥ ४१८ ॥ सत्याद्देवो वर्षति ॥ ४१९ ॥ नानृतात्पातकं परम् ॥ ४२० ॥ न मीमांस्या गुरवः ॥ ४२१ ॥ खलत्वं नोपेयात् ॥ ४२२ ॥ नास्ति खलस्य मित्रं ॥ ४२३ ॥ लोकयात्रा दरिद्रं बाधते ॥ ४२४ ॥ अतिशूरो दानशूरः ॥ ४२५ ॥ गुरुदेवब्राह्मणेषु भक्तिभूषणम् ॥ ४२६ ॥ सर्वस्य भूषणं विनयः ॥ ४२७ ॥ अकुलीनोपि विनीतः कुलीनाद्विशिष्टः ॥ ४२८ ॥ आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च ॥ ४२९ ॥ प्रियमप्यहितं न वक्तव्यम् ॥ ४३० ॥ बहुजनविरुद्धमेकं नानुवर्तेत ॥ ४३१ ॥ न दुर्जनेषु भागधेयः कर्तव्यः ॥ ४३२ ॥ न कृतार्थेषु नीचेषु सम्बन्धः ॥ ४३३ ॥ ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः ॥ ४३४ ॥ भूत्याऽनुवर्तनं पुरुषस्य रसायनम् ॥ ४३५ ॥ नार्थिष्ववज्ञा कार्या ॥ ४३६ ॥

मीठा और सत्यभाषण, स्वर्ग ले जाता है। सत्याचरण से अधिक तप नहीं है। सत्य ही स्वर्ग का साधन है। सत्य से लोक की धारणा होती है। सत्य से ही देव वर्षा करता है। मिथ्याचरण से अधिक पाप नहीं है। पूज्य लोगों की आलोचना नहीं करनी चाहिए। दुष्टता को कभी स्वीकार न करे। दुष्ट का कोई मित्र नहीं हुआ करता है। दरिद्री पुरुष को लोक यात्रा निर्वाह करना बड़ा दुःखदायी हो जाता है। जो दान में शूर है वह ही शूरवीर है। गुरु देवता और ब्राह्मणों में भक्ति रखना, मनुष्यका भूषण है। विनय (नम्रता) सब का भूषण है। जो कुलहीन होकर भी नम्र है, वह उदण्डकुलीन से लाख दर्जे उत्तम है। सदाचार से आयु की और कीर्ति वृद्धि होती है। अहितकारी बात प्रिय हो-तो भी नहीं कहनी चाहिए। बहुत जनों से विरोध करने वाला एक पुरुष का साथी न बने। दुर्जन पुरुषों के साथ अपने भाग्य को नहीं जोड़ देना चाहिए। कृतकार्य नीच पुरुषों की सङ्गति भी योग्य नहीं है। ऋण, शत्रु और व्याधि को निःशेष कर देनी चाहिए। कल्याण का पीछा करना, पुरुष के लिए रसायन है। किसी सहायता की याचना करने वाले पुरुषों से घृणा नहीं करनी चाहिए ॥४१५-४३६॥

दुष्करं कर्म कारयित्वा कर्तारमवमन्यते नीचः ॥ ४३७ ॥ नाकृतज्ञस्य नरकान्निवर्तनम् ॥ ४३८ ॥ जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ४३९ ॥ विषामृतयो-

राकरी जिह्वा ॥ ४४० ॥ प्रियवादिनो न शत्रुः ॥ ४४१ ॥ स्तुता अपि
 देवतास्तुष्यन्ति ॥ ४४२ ॥ अनृतमपि दुर्वचनं चिरं तिष्ठति ॥ ४४३ ॥
 राजद्विष्टं न च वक्तव्यम् ॥ ४४४ ॥ श्रुतिसुखात् कोकिलालापास्तुष्यन्ति ॥ ४४५ ॥
 स्वधर्महेतुस्सत्पुरुषः ॥ ४४६ ॥ नास्त्यर्थिनो गौरवम् ॥ ४४७ ॥ स्त्रीणां भूषणं
 सौभाग्यम् ॥ ४४८ ॥ शत्रोरपि न पातनीया वृत्तिः ॥ ४४९ ॥ अप्रयत्नो दकं
 क्षेत्रम् ॥ ४५० ॥ एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरं न कोपयेत् ॥ ४५१ ॥ अतिप्रवृद्धा
 शाल्मली वारणस्तम्भो न भवति ॥ ४५२ ॥ अतिदीर्घोपि कर्णिकारो
 न मुसली ॥ ४५३ ॥ अतिदीप्तोपि खद्योतो न पावकः ॥ ४५४ ॥ न प्रवृद्धत्वं
 गुणहेतुः ॥ ४५५ ॥ सुजीर्णोपि पिचुमन्दो न शङ्कुलायते ॥ ४५६ ॥

नीच पुरुष, किसी अन्य सहायक द्वारा दुष्कर कार्य कराकर फिर उसकी उपेक्षा या
 अपमान कर देता है । कृतघ्न पुरुष को नरक छोड़कर अन्य गति नहीं है । उन्नति और
 अवनति जिह्वा के ही अधीन है । अमृत और विष दोनों की ही खान जिह्वा है । प्रिय
 बोलने वाले पुरुष के शत्रु नहीं होते । स्तुति से तो देवता भी सन्तुष्ट हो जाते हैं । झूठ
 भी दुर्वचन चिरकाल तक जलाता रहता है । राजा से द्वेष उत्पन्न करने वाजा वचन नहीं
 कहना चाहिए । कानों को सुख देने वाले वचन तो काली घोयल के भी अच्छे लगते हैं ।
 अपने ही धर्माचरण के कारण पुरुष, सत्पुरुष बन जाता है । याचक का कोई गौरव नहीं
 रहता है । स्त्रियों का भूषण सौभाग्य ही है । शत्रु की जिविका का भी नाश नहीं करना
 चाहिए । जहाँ बिना प्रयत्न के जल निकले, वही अपना खेत है अर्थात् जहाँ धन की
 सुलभता से प्राप्ति हो-वही स्वदेश है । एरण्ड का सहारा लेकर हाथी को कुपित करना
 अच्छा नहीं होता । बहुत लम्बा चौड़ा सेमल का पेड़ भी हाथी के बांधने में समर्थ
 नहीं हो सकता है अर्थात् गुणहीन धनवान् विद्वान् के वश में करने में समर्थ नहीं
 होता । बहुत बड़ा भी कनेर का वृक्ष मूसल बनाने के काम में नहीं आ सकता ।
 अत्यन्त चमकने वाला भी खद्योत आग नहीं बन जाता । बहुत मालदार हो जाना,
 गुणों का हेतु नहीं है । बहुत पुराना भी नीम का वृक्ष, सरोता (काटने का साधन) नहीं
 बन जाता ॥ ४३७-४५६ ॥

यथा वीजं तथा निष्पत्तिः ॥ ४५७ ॥ यथा श्रुतं तथा बुद्धिः ॥ ४५८ ॥
 यथा कुलं तथाऽऽचारः ॥ ४५९ ॥ संस्कृतः पिचुमन्दो न सहकारो भवति ॥ ४६० ॥
 न चागतं सुखं त्यजेत् ॥ ४६१ ॥ स्वयमेव दुःखमधिगच्छति ॥ ४६२ ॥
 रात्रिचारणं न कुर्यात् ॥ ४६३ ॥ न चार्धरात्रं स्वपेत् ॥ ४६४ ॥ तद्विद्वद्भिः

परीक्षेत ॥ ४६५ ॥ परगृहमकारणतो न प्रविशेत् ॥ ४६६ ॥ ज्ञात्वाऽपि दोषमेव
करोति लोकः ॥ ४६७ ॥ शास्त्रप्रधाना लोकवृत्तिः ॥ ४६८ ॥ शास्त्राभावे शिष्टा-
चारमनुगच्छेत् ॥ ४६९ ॥ नाचरिताच्छास्त्रं गरीयः ॥ ४७० ॥ दूरस्थमपि चार-
चक्षुः पश्यति राजा ॥ ४७१ ॥ गतानुगतिको लोकः ॥ ४७२ ॥ यमनुजीवेत्
तं नापवदेत् ॥ ४७३ ॥ तपस्सार इन्द्रियनिग्रहः ॥ ४७४ ॥ दुर्लभस्त्रीवन्धना-
न्मोक्षः ॥ ४७५ ॥ स्त्री नाम सर्वाशुभानां क्षेत्रम् ॥ ४७६ ॥ न च स्त्रीणां पुरुष-
परीक्षा ॥ ४७७ ॥ स्त्रीणां मनः क्षणिकम् ॥ ४७८ ॥ अशुभद्वेषिणः स्त्रीषु न
प्रसक्ताः ॥ ४७९ ॥

जैसा बीज होता है, वैसा ही फल उत्पन्न होता है, जैसे माता पिता होते हैं—वैसी
ही सन्तान होती है। जैसा शास्त्र पढ़ा है, वैसी ही वृत्ति करने में समर्थ होता है। जैसा
कल होता है—वैसा ही आचार होता है। संस्कार किया हुआ नाम का वृत्त, आम नहीं
निकल सकता है। प्राप्त सुख को कभी नहीं छोड़े। कर्मानुसार स्वयं ही मनुष्य, दुख को प्राप्त
करता है। रात में इधर उधर न घूमें। आधी रात में न सोवे। विद्वानों के साथ ब्रह्म
की विचारणा करे। बिना कारण दूसरे के घर पर न जावे। कामों के दोषों को
जान कर भी (लालच धरा) उनमें फंसते रहते हैं। शास्त्र के अनुसार ही लोक की वृत्ति
ज्ञानी चाहिए। जब शास्त्र का ज्ञान न होता—श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का अनुकरण करे।
शिष्टाचार से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है। राजा गुप्तचरों के द्वारा दूर की चीजें भी देख
लेता है। लोग-तो (भेड़िया घसान की तरह) एक के पीछे एक चलता रहता है, तब कोई
नहीं देखता। जिसके द्वारा अपनी वृत्ति चलावे—उसकी निन्दा न करे। इन्द्रियों का रोकना
तपका सार है। स्त्री के बन्धन से छुटकारा पाना दुर्लभ है। स्त्री सारे अशुभ कर्मों के
उत्पादन करने का खेत है। स्त्री, पुरुषों के गुणों की परीक्षा करना नहीं जानती है। स्त्रियों का
न चञ्चल होता है। कभी किधर और कभी किधर होता रहता है। जो अशुभ कर्म
करना चाहते-वे स्त्रियों के भागड़े में नहीं फंसते हैं ॥ ४५७-४७९ ॥

यज्ञफलज्ञास्त्रिवेदविदः ॥ ४८० ॥ स्वर्गस्थानं न शाश्वतं यावत्पुण्यफलम्
॥ ४८१ ॥ न च स्वर्गपतनात्परं दुःखम् ॥ ४८२ ॥ देही देहं त्यक्त्वा ऐन्द्रपदं
न वाञ्छति ॥ ४८३ ॥ दुःखानामौषधं निर्वाणम् ॥ ४८४ ॥ अनार्यसंवन्धाद्वर-
मार्यशत्रुता ॥ ४८५ ॥ निहन्ति दुर्वचनं कुलम् ॥ ४८६ ॥ न पुत्रसंस्पर्शात्परं
सुखम् ॥ ४८७ ॥ विवादे धर्ममनुस्मरेत् ॥ ४८८ ॥ निशान्ते कार्यं चिन्तयेत्

॥ ४८६ ॥ प्रदोषे न संयोगः कर्तव्यः ॥ ४८७ ॥ उपस्थितविनाशः दुर्नयं
मन्यते ॥ ४८८ ॥ क्षीरार्थिनः किं करिष्या ॥ ४८९ ॥ न दानसमं वश्यम् ॥ ४९० ॥
परायत्तेषूपत्कण्ठां न कुर्यात् ॥ ४९१ ॥ असत्समृद्धिरसद्भिरेव भुज्यते ॥ ४९२ ॥
निम्नफलं काकैर्भुज्यते ॥ ४९३ ॥ नाम्मोधिस्तृष्णामपोहति ॥ ४९४ ॥ बालुका
अपि स्वगुणमाश्रयन्ते ॥ ४९५ ॥ सन्तोऽसत्सु न रमन्ते ॥ ४९६ ॥ हंसः
प्रेतवने न रमते ॥ ५०० ॥

तीनों वेदों के ज्ञाता ही यज्ञ के फल को जान पाते हैं। स्वर्ग की स्थिति सदा के लिए नहीं है, जब तक पुण्य-तब तक स्वर्ग में रहना होगा। स्वर्ग के पतन से अधिक दुःख नहीं है। मनुष्य देह को छोड़कर वइ इन्द्र पद को भी नहीं चाहता है अर्थात् उसकी इच्छा मोक्ष की ही होती है। सारे दुःखों की औषध केवल मोक्ष है। अनार्य पुरुषों के साथ सम्बन्ध की अपेक्षा आर्य लोगों से शत्रुता भी अच्छी है दुर्वचन, कुलों का भी नाश कर देता है। पुत्र के स्पर्श से अधिक कोई सुख नहीं है। विवाद बढ़ने पर भी धर्मानुसार ही आचरण करे। रात के अन्त होने पर प्रातःकाल अपने हित का विचार करे। सायंकाल के समय संभोग नहीं करना चाहिए। जिसका नाश होने वाला है, वह अन्याय पर उत्तर आता है। जो दूध चाहता है, उसे हथिनी से क्या प्रयोजन है अर्थात् जिसको जैसे व्यक्ति से कार्य है वह उसे ही चाहेगा, उसे बड़े आदमी से क्या लेना है। दान के समान वश करने वाली कोई वस्तु नहीं है। दूसरों के अधीन वस्तुओं को प्राप्ति की उत्कट इच्छा न करे। असज्जनों की सम्पत्ति को असज्जन ही भोगते हैं, जैसे नींव के फल को काक ही खाते हैं, समुद्र कभी प्यास नहीं बुझाता है। बालू भी अपने ही गुणों का अवलम्ब ग्रहण करती है, अर्थात् क्षुद्र मनुष्य भी अपनी आदत नहीं छोड़ता। सज्जन असज्जनों से प्रेम नहीं करते हैं जैसे-हंस, श्मशान में नहीं रहता है ॥ ४८८-५०० ॥

अर्थार्थं प्रवर्तते लोकः ॥ ५०१ ॥ आशया बध्यते लोकः ॥ ५०२ ॥ न चाशापरैश्श्रीस्सह तिष्ठति ॥ ५०३ ॥ आशापरे न धैर्यम् ॥ ५०४ ॥ दैन्याः
न्मरणमुत्तमम् ॥ ५०५ ॥ आशा लज्जां व्यपोहति ॥ ५०६ ॥ न मात्रा सह वासः
कर्तव्यः ॥ ५०७ ॥ आत्मा न स्तोतव्यः ॥ ५०८ ॥ न दिवा स्वप्नं कुर्यात्
॥ ५०९ ॥ न चासन्नमपि पश्यत्यैश्वर्यान्धः न शृणोतीष्टं वाक्यम् ॥ ५१० ॥
स्त्रीणां न भर्तुः परदैवतम् ॥ ५११ ॥ तदनुवर्तनमुभयसौख्यम् ॥ ५१२ ॥
अतिथिमभ्यागतं पूजयेद्यथाविधि ॥ ५१३ ॥ नास्ति हव्यस्य व्याघातः ॥ ५१४ ॥

शत्रुर्मित्रवत्प्रतिभाति ॥ ५१५ ॥ मृगतृष्णा जलवद्भाति ॥ ५१६ ॥ दुर्मेधसाम-
सच्छास्त्रं मोहयति ॥ ५१७ ॥ सत्संगः स्वर्गवासः ॥ ५१८ ॥ आर्यः स्वमिव
परं मन्यते ॥ ५१९ ॥ रूपानुवर्ती गुणः ॥ ५२० ॥ यत्र सुखेन वर्तते तदेव
स्थानम् ॥ ५२१ ॥

सारा संसार धन के पीछे ही चक्कर लगाता रहता है। सारा लोक आशा से ही
बंधा हुआ है। आशा में फंसे हुए पुरुषों के लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती है। आशा में लिपटे
हुए पुरुष को धैर्य नहीं होता। दीन दशा की अपेक्षा मरना अच्छा है। आशा से लज्जा नष्ट
हो जाती है अर्थात् आशा रखने वाला लज्जा छोड़कर याचना करता हुआ इधर उधर
भटकता है। एकान्त में माता तक के साथ वास नहीं करना चाहिए। अपनी स्तुति (प्रशंसा)
नहीं करनी चाहिए। दिन में नहीं सोवे। ऐश्वर्य में अन्धा हुआ पुरुष, अपने समीप स्थित
घटना को भी नहीं देखता है और हितकारी वचन सुनता है। पति से अधिक स्त्रियों को
अन्य देवता नहीं है। पति के अनुकूल चलना—इस लोक और परलोक दोनों में उत्तम
है। अतिथि और अभ्यागत का यथाशक्ति आदर करना चाहिए। देवों के निमित्त किया
हुआ दान कर्म नष्ट नहीं होता। अज्ञानी को शत्रु, मित्र जैसा दिखाई देने लगता है, जैसे
मृग को बालू जल के तुल्य प्रतीत होती है। दुष्ट बुद्धि पुरुषों को दुष्ट शास्त्र, मोहित करता
है। सत्संग ही स्वर्ग का वास है। आर्य पुरुष, अपने समान ही दूसरों को समझता है।
आकार के अनुसार ही गुण होते हैं। जहां मनुष्य सुखपूर्वक रह सके—वहीं अपना स्थान
समझता चाहिए ॥५०१-५२१॥

विश्वासघातिनो न निष्कृतिः ॥ ५२२ ॥ दैवायत्तं न शोचेत् ॥ ५२३ ॥
आश्रितदुःखमात्मन इव मन्यते साधुः ॥ ५२४ ॥ हृदतमाच्छाद्यान्यद्वदत्यनार्यः
॥ ५२५ ॥ बुद्धिहीनः पिशाचतुल्यः ॥ ५२६ ॥ असहायः पथि न गच्छेत्
॥ ५२७ ॥ पुत्रो न स्तोतव्यः ॥ ५२८ ॥ स्वामी स्तोतव्योऽनुजीविभिः ॥ ५२९ ॥
धर्मकृत्येष्वपि स्वामिन एव घोषयेत् ॥ ५३० ॥ राजाज्ञां नातिलङ्घयेत् ॥ ५३१ ॥
यथोऽऽज्ञप्तं तथा कुर्यात् ॥ ५३२ ॥ नास्ति बुद्धिमतां शत्रुः ॥ ५३३ ॥ आत्म-
छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ ५३४ ॥ क्षमावानेव सर्वं साधयति ॥ ५३५ ॥ आपदर्थं
धनं रक्षेत् ॥ ५३६ ॥ साहसवतां प्रियं कर्तव्यम् ॥ ५३७ ॥ श्वः कार्यमघः कुर्वीत
॥ ५३८ ॥ आपराहणिकं पूर्वाहण एव कर्तव्यम् ॥ ५३९ ॥ व्यवहारानुलोमो
धर्मः ॥ ५४० ॥ सर्वज्ञता लोकज्ञता ॥ ५४१ ॥ शास्त्रज्ञोऽप्यलोकज्ञो मूर्ख-
तुल्यः ॥ ५४२ ॥

विश्वासघाती पुरुष का किसी तरह भी उद्धार नहीं हो सकता है, उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है, जिसके उसका पाप नष्ट हो जावे । जो बात देव के अधीन है, उसकी चिन्ता न करे । अपने आश्रय में रहने वाले पुरुषों के दुःख को महात्मा अपना ही दुःख मानते हैं । अनार्य पुरुष, अपने हृदय के सत्य भाव को छिपाकर ऊपर से मीठी २ बातें बनाते हैं । बुद्धिहीन पुरुष को पिशाच समझना चाहिए । किसी को साथ लिए बिना मार्ग में न चले । अपने पुत्र की प्रशंसा न करे । सेवक लोग, अपने स्वामी के गुणों का सर्वदा अनुकीर्तन करते रहें । जो भी धर्म आचरण करें, उसे भी स्वामी की ही कृपा बतावें । राजा की आज्ञा का उलंघन न करे । वह जैसी आज्ञा करे उसका वैसा ही पालन करना उचित है । बुद्धिमानों का कोई शत्रु नहीं होता । अपने छिद्र को कभी प्रकाशित न करे । क्षमावान् पुरुष ही सब कुछ सिद्ध कर लेता है । आपत्ति से उद्धार पाने के लिए धन की रक्षा करे । जिनको साहस (हिम्मत) है-वे कर्तव्य करना अधिक पसन्द करते हैं । कल करने योग्य कार्य को आज ही कर डालना चाहिए । जो दोपहर दिन के अनन्तर करना है, उसे दोपहर से पूर्व ही कर डालो । व्यवहार के अनुसार ही धर्म हो सकता है अर्थात् जैसा कर्म करोगे-वैसा ही धर्म होगा । लोक का अनुभव ही सर्वज्ञता है अर्थात् जिसको लोक का अनुभव है, वही सर्वज्ञ है, कोरे शास्त्र पढ़ने से क्या है । जो शास्त्र जानता, वह मूर्ख तुल्य ही समझना चाहिए ॥५२२-५४२॥

शास्त्रप्रयोजनं तत्त्वदर्शनम् ॥ ५४३ ॥ तत्त्वज्ञानं कार्यमेव प्रकाशयति ॥ ५४४ ॥ व्यवहारे पक्षपातो न कार्यः ॥ ५४५ ॥ धर्मादपि व्यवहारो गरीयान् ॥ ५४६ ॥ आत्मा हि व्यवहारस्य साक्षी ॥ ५४७ ॥ सर्वसाक्षी ह्यात्मा ॥ ५४८ ॥ न स्यात्कूटसाक्षी ॥ ५४९ ॥ कूटसाक्षिणो नरके पतन्ति ॥ ५५० ॥ प्रच्छन्नपापानां साक्षिणो महाभूतानि ॥ ५५१ ॥ आत्मनः पापमात्मैव प्रकाशयति ॥ ५५२ ॥ व्यवहारेऽन्तर्गतमाकारस्त्वचयति ॥ ५५३ ॥ आकरसंवरणं देवानामशक्यम् ॥ ५५४ ॥ चोरराजपुरुषेभ्यो वित्तं रक्षेत् ॥ ५५५ ॥ दुर्दर्शना हि राजनः प्रजा नाशयन्ति ॥ ५५६ ॥ सुदर्शना हि राजानः प्रजा रक्षयन्ति ॥ ५५७ ॥ न्याययुक्तं राजनं मातरं मन्यन्ते प्रजाः ॥ ५५८ ॥ तादृशस्त राजा इह सुखं ततस्स्वर्गं भाप्नोति ॥ ५५९ ॥

समस्त वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान कराना ही शास्त्र का प्रयोजन है । लोक-ज्ञान ही तत्त्व ज्ञान को उत्पन्न करता है । व्यवहार में कभी-पक्ष-पात नहीं करने चाहिए । परस्पर का व्यवहार धर्म से भी बढ़कर धर्म समझना चाहिए । आत्मा भी तो इस सारे लोक

व्यवहार का साक्षी है (द्रष्टा) है अर्थात् आत्मा को भी लोक व्यवहार देखना पड़ता है, क्योंकि आत्मा सबका साक्षी है। झूठे साक्षी, नरक में गिरते हैं। छुपकर पाप करने वाले पुरुषों के साक्षी महाभूत [पृथ्वी जल आदि] होते हैं। अपने पाप को मनुष्य, आपही प्रकट करता है। जब मनुष्य कोई कार्य करता है, तो उसकी आकृति, सारे हृद्गतभावों को प्रकट कर देती है। अपने हृदय के भावों को देवता भी छुपाने में समर्थ नहीं हो सकते। राजपुरुष और चोरों से अपने धन की सर्वदा रक्षा करता रहे। जो राजा कभी प्रजा को दशेन भी कठिनता से देते हैं। उनकी प्रजा नष्ट हो जाती है। जो राजा बार २ आकर प्रजा के सुख दुःख की पूछते हैं, उनसे प्रजा प्रसन्न रहती है। न्यायशील राजा को प्रजा अपनी माता के तुल्य पालक समझती है। माता के समान प्रजा पालक राजा इस लोक में सुख और अन्त में स्वर्ग प्राप्त करता है ॥५४३-५५६॥

अहिंसालक्षणो धर्मः ॥ ५६० ॥ स्वशरीरमपि परशरीरं मन्यते साधुः
॥ ५६१ ॥ मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् ॥ ५६२ ॥ न संसारभयं ज्ञानवताम् ॥ ५६३ ॥
॥ ५६४ ॥ विज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्तते ॥ ५६५ ॥ सर्वमनित्यं भवति
॥ ५६६ ॥ कृमिशकृन्मूत्रभाजनं शरीरं पुण्यपापजन्महेतु ॥ ५६७ ॥ जन्ममर-
णादिपुदुःखमेव ॥ ५६८ ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति ॥ ५६९ ॥ क्षमायुक्तस्य तपो
विवर्धते ॥ ५७० ॥ तस्मात्सर्वेषां कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ५७१ ॥

॥ इति चाणक्यसूत्राणि ॥

अहिंसाही मुख्य धर्म है। महात्मा लोग, अपने शरीर को भी दूसरों के निमित्त समझते हैं। मांस खाना सबको अनुचित है। ज्ञानी लोगों को संसार का भय नहीं होता है। विज्ञान के दीपक से संसार का भय हटता है। यह सारा संसार अनित्य है। यह शरीर कीड़े, मलमूत्र आदि का पात्र है और इससे पुण्य पाप होते रहते हैं। जन्म मरण में तो दुःख ही दुःख है। तप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। क्षमाशील पुरुष का तप बढ़ता रहता है। इससे सिद्ध है, कि तप से ही सारे कार्यों की सिद्धि होती है ॥५६०-५७१॥

इति श्री महामुनि चाणक्य प्रणीत नीति सूत्रों का भाषानुवाद समाप्त ॥



REFERENCE
BOOK.

भारतीय इतिहास का महान् ग्रन्थ

महाभारत

मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद सहित सस्ता और सुन्दर प्रकाशन हो रहा है। यह महत्व-पूर्ण ग्रन्थ अनेक भारतीय नरेशों, रईसों, आचार्यों, प्रोफेसरों और प्रायः सभी विचारों के विद्वानों द्वारा प्रशंसित है। अब तक इसके ११ भाग छप चुके हैं, प्रत्येक भाग का रियायती मूल्य २) है। लगभग १८ भाग छपेंगे। प्रत्येक भाग में लगभग १००० पृष्ठ हैं।

आप भी अपनी लाइब्रेरी के लिये महाभारत के एक सेट का आर्डर भेजने की कृपा करें।

इन्हीं पसन्द होने पर वापिस

भवदीय—
चतुरसेन गुप्त
प्रबन्धक

भारत कार्यालय दिल्ली।

